सा पीत्वा मदिरां मत्ता सपुत्रा मदविह्वला ।
सह सर्वैः सुतै राजंस्तस्मिन्नेव निवेशने ।
सुष्वाप विगतज्ञाना मृतकल्पा नराधिप ॥ ८ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! वह बहेलिन अपने बेटोंके साथ मदिरा पीकर उन्मत्त और नशेसे विह्वल होकर ज्ञान रहित होकर मृतके समान होकर उस घरहीमें सो गयी ॥ ८ ॥

अथ प्रवाते तुमुले निशि सुप्ते जने विभो ।
तदुपादीपयद्भीमः शेते यत्र पुरोचनः ॥ ९ ॥

हे विभो ! अनन्तर रात्रिको बडी हवा बह रही थी और नगरके लोग सोगये थे, कि ऐसे समयमें भीमसेनने उस गृहमें, जहां पुरोचन सोता था, आग लगा दी ॥ ९ ॥

ततः प्रतापः सुमहाञ्शब्दश्चैव विभावसोः ।
प्रादुरासीत्तदा तेन बुबुधे स जनव्रजः ॥ १० ॥

तब जलती हुई आगका बहुत तेज और घोर शब्द फैलने लगा, उसके कारण वहांका सारा जनसमूह जाग गया ॥ १० ॥

पौरा ऊचुः

दुर्योधनप्रयुक्तेन पापेनाकृतबुद्धिना ।
गृहमात्मविनाशाय कारितं दाहितं च तत् ॥ ११ ॥

नगरवासी बोले— दुर्योधनके द्वारा भेजे हुए कुमति पापात्मा पुरोचनने अपनेको नष्ट करनेके लिये ही यह गृह बनवाया था, अब उसमें आग लगा दी है ॥ ११ ॥

अहो धिग्धृतराष्ट्रस्य बुद्धिर्नातिसमञ्जसी ।
यः शुचीन्पाण्डवान्बालान्दाहयामास मन्त्रिणा ॥ १२ ॥

हाय ! धृतराष्ट्रकी बुद्धि पूर्ण नहीं है ! उनकी उस बुद्धिपर धिक्कार है, जिन्होंने निष्पापी पाण्डुपुत्रोंको मन्त्रीके द्वारा जलवा डाला ॥ १२ ॥

दिष्ट्या त्विदानीं पापात्मा दग्धोऽयमतिदुर्मतिः ।
अनागसः सुविश्वस्तान्यो ददाह नरोत्तमान् ॥ १३ ॥

पर जिस पापी पुरोचनने विश्वासयुक्त और निर्दोषी नरोत्तम पाण्डवोंको जलाया, अब वही दुरात्मा स्वयं भी अपने कर्मफलसे ही जल मरा है ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं ते विलपन्ति स्म वारणावतका जनाः ।
परिवार्य गृहं तच्च तस्थू रात्रौ समन्ततः ॥ १४ ॥

वैशम्पायन बोले— वारणावतके निवासी इस प्रकार विलाप करते करते हुए उस रात्रिको गृहको चारों ओरसे घेरकर खडे हो गए ॥ १४ ॥

पाण्डवाश्चापि ते राजन्मात्रा सह सुदुःखिताः ।
बिलेन तेन निर्गत्य जग्मुर्गूढमलक्षिताः ॥ १५ ॥

इधर शत्रुनाशी पाण्डवलोग माताके साथ बहुत दुःखी होकर लोगोंसे छिपकर उस बिलसे निकलकर शीघ्र चलने लगे ॥ १५ ॥

तेन निद्रोपरोधेन साध्वसेन च पाण्डवाः ।
न शेकुः सहसा गन्तुं सह मात्रा परंतपाः ॥ १६ ॥

पर वे शत्रुको तपानेवाले पाण्डव सब निद्राके झोकों और भयके कारण माताके साथ एक-दम शीघ्र नहीं चल सके ॥ १६ ॥

भीमसेनस्तु राजेन्द्र भीमवेगपराक्रमः ।
जगाम भ्रातॄनादाय सर्वान्मातरमेव च ॥ १७ ॥

हे राजेन्द्र ! तब भयंकर वेग और पराक्रमवाले भीमसेन माता और सम्पूर्ण भाईयोंको लेकर चलने लगे ॥ १७ ॥

स्कन्धमारोप्य जननीं यमावङ्केन वीर्यवान् ।
पार्थौ गृहीत्वा पाणिभ्यां भ्रातरौ सुमहाबलौ ॥ १८ ॥
तरसा पादपान्भञ्जन्महीं पद्भ्यां विदारयन् ।
स जगामाशु तेजस्वी वातरंहा वृकोदरः ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥ ४७९९ ॥

वीर्यशाली वृकोदर माताको कन्धेपर, नकुल और सहदेवको गोदमें और महाबली युधिष्ठिर तथा अर्जुनके हाथ पकडकर, वेगसे पेडोंको तोडते और पांवोंसे धरतीको फोडते हुए हवाकी गतिसे अतिशीघ्र चले ॥ १८–१९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३६ ॥ ४७९९ ॥

: १२७ :

वैशम्पायन उवाच

अथ रात्र्यां व्यतीतायामशेषो नागरो जनः ।
तत्राजगाम त्वरितो दिदृक्षुः पाण्डुनन्दनान् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद रात्रि बीत जाने पर संपूर्ण नगरवाले पाण्डवोंको देखनेके लिये शीघ्रतासे वहां आये ॥ १ ॥

निर्वापयन्तो ज्वलनं ते जना ददृशुस्ततः ।
जातुषं तद्गृहं दग्धममात्यं च पुरोचनम् ॥ २ ॥

आग बुझानेके बाद उन मनुष्योंने मंत्री पुरोचनको और जतुगृहको जला हुआ पाया ॥२॥

नूनं दुर्योधनेनेदं विहितं पापकर्मणा ।
पाण्डवानां विनाशाय इत्येवं चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३ ॥

यह देखकर रोते हुए चिल्लाकर कहने लगे, कि निश्चयसे जान पडता है, कि पापात्मा दुर्योधनने केवल पाण्डवोंको नष्ट करनेके लिये ही ऐसा किया है ॥ ३ ॥

विदिते धृतराष्ट्रस्य धार्तराष्ट्रो न संशयः ।
दग्धवान्पाण्डुदायादान्न ह्येनं प्रतिषिद्धवान् ॥ ४ ॥

इसमें संदेह नहीं है, कि धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने धृतराष्ट्रके जानते बूझते पाण्डुके पुत्रोंको जलाया है और उसपर भी धृतराष्ट्रने उसे मना नहीं किया (इससे ज्ञात होता है कि इस कार्यमें धृतराष्ट्रकी भी संमति थी) ॥ ४ ॥

नूनं शान्तनवो भीष्मो न धर्ममनुवर्तते ।
द्रोणश्च विदुरश्चैव कृपश्चान्ये च कौरवाः ॥ ५ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्म, द्रोण, विदुर, कृप और दूसरे कौरव भी इस विषयमें धर्मपर नहीं चल रहे हैं ॥ ५ ॥

ते वयं धृतराष्ट्रस्य प्रेषयामो दुरात्मनः ।
संवृत्तस्ते परः कामः पाण्डवान्दग्धवानसि ॥ ६ ॥

अब हम दुरात्मा धृतराष्ट्रके पास यह सन्देश भेजते हैं, कि तुम्हारी आशा अब पूरी हो गई है, तुमने पाण्डवोंको जला मारा है ॥ ६ ॥

ततो व्यपोहमानास्ते पाण्डवार्थे हुताशनम् ।
निषादीं ददृशुर्दग्धां पञ्चपुत्रामनागसम् ॥ ७ ॥

तब उन्होंने पाण्डवोंको ढूंढनेके लिये अग्निको उठा कर बुझाते हुए, पांचों पुत्रोंके सहित जलीभुनी निरपराधी बहेलिनको देखा ॥ ७ ॥

खनकेन तु तेनैव वेश्म शोधयता बिलम् ।
पांसुभिः प्रत्यपिहितं पुरुषैस्तैरलक्षितम् ॥ ८ ॥

उस समय विदुरके भेजे हुए उस पूर्वोक्त खनिकने उस गृहके साफ करनेके बहाने दूसरोंके अनजानेमें उस बिलका द्वार धूलसे ढक दिया ॥ ८ ॥

ततस्ते प्रेषयामासुर्धृतराष्ट्रस्य नागराः ।
पाण्डवानग्निना दग्धानमात्यं च पुरोचनम् ॥ ९ ॥

इसके बाद नगरवालोंने धृतराष्ट्रके पास जले हुए पाण्डवगण और मंत्री पुरोचनके सन्देशको भेज दिया ॥ ९ ॥

श्रुत्वा तु धृतराष्ट्रस्तद्राजा सुमहदप्रियम् ।
विनाशं पाण्डुपुत्राणां विललाप सुदुःखितः ॥ १० ॥

तब राजा धृतराष्ट्र पाण्डवोंके विनाश रूपी उस अति अप्रिय समाचारको सुनकर दुःखी-चित्तसे विलाप करते हुए कहने लगे ॥ १० ॥

अद्य पाण्डुर्मृतो राजा भ्राता मम सुदुर्लभः ।
तेषु वीरेषु दग्धेषु मात्रा सह विशेषतः ॥ ११ ॥

हाय ! आज उन सब वीरोंके माता समेत जल जानेसे मेरे बडे भाई तथा कठिनाईसे प्राप्त होनेवाले पाण्डु आज सचमुच मर गए ॥ ११ ॥

गच्छन्तु पुरुषाः शीघ्रं नगरं वारणावतम् ।
सत्कारयन्तु तान्वीरान्कुन्तिराजसुतां च ताम् ॥ १२ ॥

कौरवलोग वारणावतमें शीघ्र ही जावें और वीरों और कुंतीराजपुत्रीका अग्निसंस्कार करें ॥ १२ ॥

कारयन्तु च कुल्यानि शुभानि च महान्ति च ।
ये च तत्र मृतास्तेषां सुहृदोऽर्चन्तु तानपि ॥ १३ ॥

मेरे कुलकी प्रथाके अनुसार जितने शुभ तथा बडे बडे कर्म हैं, उनको भी भलीप्रकार करें और भी जो जो लोग वहां पर मर गए हैं, उनके बांधव भी उनकी पूजा करें ॥ १३ ॥

एवं गते मया शक्यं यद्यत्कारयितुं हितम् ।
पाण्डवानां च कुन्त्याश्च तत्सर्वं क्रियतां धनैः ॥ १४ ॥

इस दशामें पांण्डवों और कुन्तीके लिये जितने भी हितके कार्य मेरे द्वारा किए जाने योग्य हैं, वे सब धनके सहारे कर डालें जाएं ॥ १४ ॥

×

एवमुक्त्वा ततश्चक्रे ज्ञातिभिः परिवारितः ।
उदकं पाण्डुपुत्राणां धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ १५ ॥

अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रने ऐसा कहकर ज्ञातियोंसे घिरकर पाण्डवोंकी जलक्रिया की ॥१५॥

चुक्रुशुः कौरवः सर्वे भृशं शोकपरायणाः ।
विदुरस्त्वल्पशश्चक्रे शोकं वेद परं हि सः ॥ १६ ॥

सब कौरव एकत्र मिलकर बहुत शोकसे युक्त होकर चिल्ला चिल्लाकर रोने लगे। विदुरने भी थोडासा शोक दिखाया क्योंकि वह सच्चे समाचारको जानते थे ॥ १६ ॥

पाण्डवाश्चापि निर्गत्य नगराद्वारणावतात् ।
जवेन प्रययू राजन्दक्षिणां दिशमाश्रिताः ॥ १७ ॥

इधर महाबली पाण्डवगण वारणावत नगरसे निकल करके दक्षिण दिशाकी तरफ शीघ्रतासे चलने लगे ॥ १७ ॥

विज्ञाय निशि पन्थानं नक्षत्रैर्दक्षिणामुखाः ।
यतमाना वनं राजन्गहनं प्रतिपेदिरे ॥ १८ ॥

हे राजन् ! दक्षिण दिशामें जाते हुए वे नक्षत्रोंके सहारे मार्गका पता लगाते हुए बडे प्रयत्नोंके बाद अन्तमें एक गहन वनमें गए ॥ १८ ॥

ततः श्रान्ताः पिपासार्ता निद्रान्धाः पाण्डुनन्दनाः ।
पुनरूचुर्महावीर्यं भीमसेनमिदं वचः ॥ १९ ॥

इतः कष्टतरं किं नु यद्वयं गहने वने ।
दिशश्च न प्रजानीमो गन्तुं चैव न शक्नुमः ॥ २० ॥

तब नींदसे अन्धे हुए हुए, थके और प्याससे व्याकुल पाण्डवोंने महाबली भीमसेनसे यह वचन कहा, कि देखो, इससे अधिक और क्या कष्ट हो सकता है, कि हम इस सघन वनमें आ पडे हैं, अब न तो दिशाका पता है और नाही हम और ज्यादा चल सकते हैं ॥ १९–२० ॥

तं च पापं न जानीमो यदि दग्धः पुरोचनः ।
कथं नु विप्रमुच्येम भयादस्मादलक्षिताः ॥ २१ ॥

हम यह भी नहीं जानते कि वह पापात्मा पुरोचन जला वा नहीं; वह जल भी गया हो, तो हम औरोंके अनजाने इस गहरी विपत्तिसे कैसे पार होंगे ? ॥ २१ ॥

पुनरस्मानुपादाय तथैव व्रज भारत ।
त्वं हि नो बलवानेको यथा सततगस्तथा ॥ २२ ॥

हे भारत ! अकेले तुम्हीं हम सबसे अधिक बलवान् और पवनके समान वेगवान् हो, अतः फिर हम सबको लेकर पहलेके समान चलो ॥ २२ ॥

इत्युक्तो धर्मराजेन भीमसेनो महाबलः ।
आदाय कुन्तीं भ्रातॄंश्च जगामाशु महाबलः ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥ ४८२२ ॥

धर्मराजके ऐसा कहनेपर महाबली भीमसेन कुंती और भाइयोंको लेकर शीघ्र चलने लगे ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ सैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३७ ॥ ४८२२ ॥

: १३८ :

वैशम्पायन उवाच

तेन विक्रमता तूर्णमूरुवेगसमीरितम् ।
प्रववावनिलो राजञ्शुचिशुक्रागमे यथा ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– महाबली भीमसेनके चलते समय जिस प्रकार जेष्ठ और आषाढ महीनोंमें प्रबल हवा बहती रहती है, वैसे ही उन महाबलीकी जांघकी चोटसे पवन सनसनाने लगा ॥ १ ॥

स मृद्नन्पुष्पितांश्चैव फलितांश्च वनस्पतीन् ।
आरुजन्दारुगुल्मांश्च पथस्तस्य समीपजान् ॥ २ ॥

वह उस रास्तेके निकटके फूल और फलवाले वनस्पति और लताओंको खूंदते हुए चलने लगे ॥ २ ॥

तथा वृक्षान्भञ्जमानो जगामामितविक्रमः ।
तस्य वेगेन पाण्डूनां मूर्च्छेव समजायत ॥ ३ ॥

वह अत्यन्त बलशाली भीम बडे बडे पेडोंको तोडते हुए चलने लगे। उस भीमसेनकी गतिके वेगसे युधिष्ठिर आदि अचेतनकी भांति हो गये ॥ ३ ॥

असकृच्चापि संतीर्य दूरपारं भुजप्लवैः ।
पथि प्रच्छन्नमासेदुर्धार्तराष्ट्रभयात्तदा ॥ ४ ॥

वह सब अपनी दोनों भुजरूपी पतवारोंसे रास्तेमें गंगाकी बहती धारको बार बार पार कर दुर्योधनके भयसे छिपकर गये ॥ ४ ॥

कृच्छ्रेण मातरं त्वेकां सुकुमारीं यशस्विनीम् ।
अवहत्तत्र पृष्ठेन रोधःसु विषमेषु च ॥ ५ ॥

नदीतटके ऊंचे नीचे स्थानमें यशस्विनी कोमलाङ्गी माताको पीठपर बैठाकर अति कष्टसे चले ॥ ५ ॥

आगमंस्ते वनोद्देशमल्पमूलफलोदकम् ।
क्रूरपक्षिमृगं घोरं सायाह्ने भरतर्षभाः ॥ ६ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर ऐसे निर्जन वनमें जहां फलफूल जल मिलते नहीं हैं और हिंसक प्राणी हैं, संध्याके समय आ पहुंचे ॥ ६ ॥

घोरा समभवत्सन्ध्या दारुणा मृगपक्षिणः ।
अप्रकाशा दिशः सर्वा वातैरासन्ननार्तवैः ॥ ७ ॥

वहां गहन अंधेरेसे भरी सन्ध्या आयी । भयावने पशुपक्षियोंके शब्द सुनाई देने लगे और दिशायें प्रकाशरहित हो गईं और बडी प्रचण्ड अकालिक हवा बहने लगी ॥ ७ ॥

ते श्रमेण च कौरव्यास्तृष्णया च प्रपीडिताः ।
नाशक्नुवंस्तदा गन्तुं निद्रया च प्रवृद्धया ॥ ८ ॥

तब कुरुवंशमें उत्पन्न वे पाण्डव नींदसे व्याकुल थके और प्याससे पीडित होकर आगे चल नहीं सके ॥ ८ ॥

ततो भीमो वनं घोरं प्रविश्य विजनं महत् ।
न्यग्रोधं विपुलच्छायं रमणीयमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥

उसके बाद भीम एक निर्जन और घोर महावनमें प्रवेशकर दूरतक छांह देनेवाले एक सुन्दर बरगदके वृक्षके पास पहुंचे ॥ ९ ॥

तत्र निक्षिप्य तान्सर्वानुवाच भरतर्षभः ।
पानीयं मृगयामीह विश्रमध्वमिति प्रभो ॥ १० ॥

हे प्रभो ! भरतश्रेष्ठ भीमसेन उन सबको वहां उतारकर बोले, कि आप यहां विश्राम करें मैं जल ढूंढ लाता हूं ॥ १० ॥

एते रुवन्ति मधुरं सारसा जलचारिणः ।
ध्रुवमत्र जलस्थायो महानिति मतिर्मम ॥ ११ ॥

यहां जलमें रहनेवाले सारस पक्षियोंका मीठा शब्द सुनाई पडता है, मुझको जान पडता है, कि यहां निश्चयसे बडा जलाशय होगा ॥ ११ ॥

अनुज्ञातः स गच्छेति भ्रात्रा ज्येष्ठेन भारत ।
जगाम तत्र यत्र स्म रुवन्ति जलचारिणः ॥ १२ ॥

तब " जाओ " इस प्रकार युधिष्ठिरके कहनेपर वह बडे भाईकी आज्ञासे उस स्थानपर गए कि जहां जलचारी शब्द कर रहे थे ॥ १२ ॥

स तत्र पीत्वा पानीयं स्नात्वा च भरतर्षभ ।
उत्तरीयेण पानीयमाजहार तदा नृप ॥ १३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ राजन् ! उन्होंने वहां जाकर नहा करके जल पीया और दुपट्टेमें जल लेकर लौट चले ॥ १३ ॥

गव्यूतिमात्रादागत्य त्वरितो मातरं प्रति ।
स सुप्तां मातरं दृष्ट्वा भ्रातृंश्च वसुधातले ।
भृशं दुःखपरीतात्मा विललाप वृकोदरः ॥ १४ ॥

तब वेगसे उन दो कोसोंकी दूरीसे लौटकर वृकोदर भीम माता और भाईयोंको धरती पर पडे और सोये देखकर बहुत दुःखी होकर विलाप करने लगे ॥ १४ ॥

शयनेषु परार्ध्येषु ये पुरा वारणावते ।
नाधिजग्मुस्तदा निद्रां तेऽद्य सुप्ता महीतले ॥ १५ ॥

पहिले वारणावत नगरमें बडे बडे मूल्यवान् बिस्तरोंपर भी जिनको नींद नहीं आती थी, आज वे ही भूमि पर सो रहे हैं ॥ १५ ॥

स्वसारं वसुदेवस्य शत्रुसङ्घावमर्दिनः ।
कुन्तिभोजसुतां कुन्तीं सर्वलक्षणपूजिताम् ॥ १६ ॥
स्नुषां विचित्रवीर्यस्य भार्यां पाण्डोर्महात्मनः ।
प्रासादशयनां नित्यं पुण्डरीकान्तरप्रभाम् ॥ १७ ॥
सुकुमारतरां स्त्रीणां महार्हशयनोचिताम् ।
शयानां पश्यताद्येह पृथिव्यामतथोचिताम् ॥ १८ ॥

शत्रुदलको नष्ट करनेवाले वसुदेवकी बहिन, राजा कुन्तिभोजकी बेटी, सब लक्षणोंसे युक्त विचित्रवीर्यकी पुत्रवधू, महात्मा राजा पाण्डुकी स्त्री और हमेशा महलोंमें सोनेवाली, पद्म-गर्भके सदृश रूपवती, स्त्रियोंमें अत्यन्त कोमलाङ्गी और बडे बडे मूल्यवान् बिस्तरोंपर सोनेवाली, पृथ्वी पर सोनेके लिए अयोग्य कुन्तीको आज मिट्टी पर सोती हुई देखो ॥ १६-१८ ॥

धर्मादिन्द्राच्च वायोश्च सुषुवे या सुतानिमान् ।
सेयं भूमौ परिश्रान्ता शेते ह्यद्यातथोचिता ॥ १९ ॥

जिन्होंने धर्म, इन्द्र और पवन देवोंसे यह सब सन्तानें उत्पन्न की हैं, वह भूमि पर सोनेके लिए अयोग्य कुन्ती आज थकावटके मारे धरती पर ही सोयी हुई है ॥ १९ ॥

किं नु दुःखतरं शक्यं मया द्रष्टुमतः परम् ।
योऽहमद्य नरव्याघ्रान्सुप्तान्पश्यामि भूतले ॥ २० ॥

आज इन नरव्याघ्र पाण्डवोंको भूमिपर सोते हुए देख रहा हूँ । इससे बढकर और कौनसा दुःख मैं देख सकूंगा ? ॥ २० ॥

त्रिषु लोकेषु यद्राज्यं धर्मविद्योऽर्हते नृपः ।
सोऽयं भूमौ परिश्रान्तः शेते प्राकृतवत्कथम् ॥ २१ ॥

धार्मिकवर राजा युधिष्ठिर, जो तीनों लोकोंके अकेले अधिकारी होनेके योग्य हैं, आज सामान्य जनकी भांति थकावटके मारे पृथ्वी पर कैसे सो रहे हैं ? ॥ २१ ॥

अयं नीलाम्बुदश्यामो नरेष्वप्रतिमो भुवि ।
शेते प्राकृतवद्भूमावतो दुःखतरं नु किम् ॥ २२ ॥

इससे और क्या अधिक दुःख होना है कि, नीले बादलके समान काले श्रीमान् अर्जुन, जिनकी बराबरी करनेवाला इस मर्त्यलोकमें नहीं है, आज साधारण मनुष्यकी भांति पृथ्वी पर पडे सो रहे हैं ॥ २२ ॥

अश्विनाविव देवानां याविमौ रूपसंपदा ।
तौ प्राकृतवदद्येमौ प्रसुप्तौ धरणीतले ॥ २३ ॥

और यह दो जुडवे भाई, जो रूपसम्पद्में देवोंमें अश्विनीकुमारोंके सदृश द्युतिमान् हैं, वे साधारण लोगोंकी भांति धरतीपर सो रहे हैं ॥ २३ ॥

ज्ञातयो यस्य नैव स्युर्विषमाः कुलपांसनाः ।
स जीवेत्सुसुखं लोके ग्रामे द्रुम इवैकजः ॥ २४ ॥

कुलको कलंकित करनेवाले और दुश्मनी करनेवाले भाई जिसके नहीं होते, वह अकेला जन्मा हुआ पुरुष, गांव भरमें अकेले वृक्षके समान, सुखसे रहता है ॥ २४ ॥

एको वृक्षो हि यो ग्रामे भवेत्पर्णफलान्वितः ।
चैत्यो भवति निर्ज्ञातिरर्चनीयः सुपूजितः ॥ २५ ॥

गांवमें उत्पन्न एक ही वृक्ष जब फूलों और फलोंसे भर जाता है और उस जातीका कोई दूसरा वृक्ष उस गांवमें नहीं होता, तब वही वृक्ष चैत्य अर्थात् पूज्य वृक्षके रूपमें पूज्य और मान्य होता है ॥ २५ ॥

येषां च बहवः शूरा ज्ञातयो धर्मसंश्रिताः ।
ते जीवन्ति सुखं लोके भवन्ति च निरामयाः ॥ २६ ॥

अथवा इस भूलोकमें जिनके अनेक भाइयोंके होनेपर भी भाई यदि शूर और धर्मके अनुसार चलनेवाले होते हैं, तो वे भी विना क्लेशके सुखसे रहते हैं ॥ २६ ॥

बलवन्तः समृद्धार्था मित्रबान्धवनन्दनाः ।
जीवन्त्यन्योन्यमाश्रित्य द्रुमाः काननजा इव ॥ २७ ॥

बलवान् ऐश्वर्ययुक्त और मित्र बान्धवोंको आनन्द देते हुए वे वनमें उपजे हुए वृक्षोंकी भांति एक दूसरेके सहारे परम सुखसे काल व्यतीत करते हैं ॥ २७ ॥

वयं तु धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण दुरात्मना ।
विवासिता न दग्धाश्च कथंचित्तस्य शासनात् ॥ २८ ॥

पर कुबुद्धि धृतराष्ट्रने अपने पुत्र दुर्योधनकी बात मानकर हमको देशसे निकाल दिया है; किन्तु हम किसी तरह जलनेसे बच गए ॥ २८ ॥

तस्मान्मुक्ता वयं दाहादिमं वृक्षमुपाश्रिताः ।
कां दिशं प्रतिपत्स्यामः प्राप्ताः क्लेशमनुत्तमम् ॥ २९ ॥

उस आगसे बचकर कठोर क्लेश भोगते हुए इस वृक्षके आसरेमें आये हैं, अब फिर किधर जायेंगे, यह हम नहीं जानते ॥ २९ ॥

नातिदूरे च नगरं वनादस्माद्धि लक्षये ।
जागर्तव्ये स्वपन्तीमे हन्त जागर्म्यहं स्वयम् ॥ ३० ॥

मुझको जान पडता है, कि नगर इस वनसे बहुत दूर नहीं है अतः इनको जागना चाहिये पर ये सो गये हैं, अतः मैं ही जागूंगा ॥ ३० ॥

पास्यन्तीमे जलं पश्चात्प्रतिबुद्धा जितक्लमाः ।
इति भीमो व्यवस्यैव जजागार स्वयं तदा ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥ समाप्तं जतुगृहदाहपर्व ॥ ४८५३ ॥

थकावट दूर होनेपर जब यह जागेंगे, तब जल पीयेंगे ! तब ऐसा निश्चय कर भीमसेन स्वयं जागने लगे ॥ ३१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ अडतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३८ ॥ ४८५३ ॥

: १३९ :

वैशम्पायन उवाच

तत्र तेषु शयानेषु हिडिम्बो नाम राक्षसः।
अविदूरे वनात्तस्माच्छालवृक्षमुपाश्रितः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— वे जहां सोये हुए थे, वहांसे थोडी दूर पर एक सालके वृक्षपर आश्रय लिए हुए हिडिम्ब नामक एक राक्षस रहता था ॥ १ ॥

क्रूरो मानुषमांसादो महावीर्यो महाबलः।
विरूपरूपः पिङ्गाक्षः करालो घोरदर्शनः।
पिशितेप्सुः क्षुधार्तस्तानपश्यत यदृच्छया ॥ २ ॥

बडे क्रूर, नरमांसको खानेवाले, बडे वीर्यवान्, अति बलशाली, भयंकर रूपवाले, पिंगल आंखोंवाले मांसखोर, भूखे, करालरूप तथा भयंकर रूपवाले उस राक्षसकी दृष्टि एकाएक सोते हुए पाण्डवोंपर जापडी ॥ २ ॥

ऊर्ध्वाङ्गुलिः स कण्डूयन्धुन्वन्रूक्षाञ्शिरोरुहान्।
जृम्भमाणो महावक्त्रः पुनः पुनरवेक्ष्य च ॥ ३ ॥
दुष्टो मानुषमांसादो महाकायो महाबलः।
आघ्राय मानुषं गन्धं भगिनीमिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥

उंगली उठाकर सिर खुजलाता, अपने सिरके सूखे बालोंको कंपाता हुआ, लम्बा चौडा मुंह खोलकर जम्हाई लेता हुआ, बार बार उनको देखता हुआ, बडा भारी, अति बलवान्, मनुष्यका मांस खानेवाला, मनुष्योंकी गंध सूंघकर नरमांस खानेकी आशासे प्रसन्न होकर अपनी बहिनसे यह बोला ॥ ३–४ ॥

उपपन्नश्चिरस्याद्य भक्ष्यो मम मनःप्रियः।
स्नेहस्रवान्प्रस्रवति जिह्वा पर्येति मे मुखम् ॥ ५ ॥

कि बहुत दिनके बाद आज मेरे मनको प्रिय लगनेवाला भोजन आ पहुंचा है; मांस खानेका सुख प्राप्त होनेपर लार गिर रही है और मेरी जीभ मुंहमें चारों ओर घूम रही है ॥ ५ ॥

अष्टौ दंष्ट्राः सुतीक्ष्णाग्राश्चिरस्यापातदुःसहाः।
देहेषु मज्जयिष्यामि स्निग्धेषु पिशितेषु च ॥ ६ ॥

मेरे आठों दांतोंका अगला भाग बडा तेज है; यह बडे दांत जिस पर जा लगते हैं, इनकी चोट उससे सही नहीं जाती; उन दांतोंको आज बहुत दिनके बाद कोमल मांसवाली देहमें घुसाऊंगा ॥ ६ ॥

आक्रम्य मानुषं कण्ठमाच्छिद्य धमनीमपि ।
उष्णं नवं प्रपास्यामि फेनिलं रुधिरं बहु ॥ ७ ॥

आज मैं मनुष्यका गला पकडकर नसें निकालकर गर्म गर्म, ताजा तथा फेनसे भरा हुआ बहुतसा रक्त पीऊंगा ॥ ७ ॥

गच्छ जानीहि के त्वेते शेरते वनमाश्रिताः ।
मानुषो बलवान्गन्धो घ्राणं तर्पयतीव मे ॥ ८ ॥

तुम वहां जाओ और जानो, कि वे कौन हैं और इस वनमें क्यों सो रहे हैं ? मुझको निश्चयसे जान पडता है, कि वे मनुष्य होंगे; क्योंकि मनुष्यकी तेज गन्ध मेरी नाकको सुख पहुंचा रही है ॥ ८ ॥

हत्वैतान्मानुषान्सर्वानानयस्व ममान्तिकम् ।
अस्मद्विषयसुप्तेभ्यो नैतेभ्यो भयमस्ति ते ॥ ९ ॥

तुम उन सब मनुष्योंको मार कर मेरे पास लेती आओ । वे मेरे राज्यमें सो रहे हैं, अतः उनसे तुम कुछ भय मत करो ॥ ९ ॥

एषां मांसानि संस्कृत्य मानुषाणां यथेष्टतः ।
भक्षयिष्याव सहितौ कुरु तूर्णं वचो मम ॥ १० ॥

हम दोनों एकत्र होकर उन मनुष्योंके मांसको भून कर कर मनमाना खावेंगे, तुम तुरन्त मेरी बात मानकर काम करो ॥ १० ॥

भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणेव राक्षसी ।
जगाम तत्र यत्र स्म पाण्डवा भरतर्षभ ॥ ११ ॥

तब राक्षसी अपने भाईकी आज्ञा मानकर जहां पाण्डवलोग सो रहे थे, वहां शीघ्रतासे जा पहुंची ॥ ११ ॥

ददर्श तत्र गत्वा सा पाण्डवान्पृथया सह ।
शयानान्भीमसेनं च जाग्रतं त्वपराजितम् ॥ १२ ॥

वहां पहुंचकर पाण्डवलोगोंको पृथाके साथ सोते हुए और अपराजित भीमसेनको जागते हुए देखा ॥ १२ ॥

दृष्ट्वैव भीमसेनं सा शालस्कन्धमिवोद्गतम् ।
राक्षसी कामयामास रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥ १३ ॥

राक्षसी नये सालवृक्षके समान कंधोंवाले और धरती भरमें अनुपम रूप सौन्दर्यसे युक्त सुन्दर पुरुष भीमसेनको देखते ही कामदेवके वशमें हो गयी और उन्हें चाहने लगी ॥ १३ ॥

अयं श्यामो महाबाहुः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः ।
कम्बुग्रीवः पुष्कराक्षो भर्ता युक्तो भवेन्मम ॥ १४ ॥

उसने इच्छा की कि यह श्यामवर्ण, महाभुज सिंहके समान कंधोंवाला, अति द्युतिमान् शंखके समान गर्दनवाला पद्मनेत्र पुरुष मेरा पति हो जाए ॥ १४ ॥

नाहं भ्रातुर्वचो जातु कुर्यां क्रूरोपसंहितम् ।
पतिस्नेहोऽतिबलवान्न तथा भ्रातृसौहृदम् ॥ १५ ॥

मैं भाईकी यह हिंसायुक्त बात कभी नहीं मानूंगी, क्योंकि पतिका स्नेह जितना बलवान् होता है, उतना भाईका स्नेह नहीं होता ॥ १५ ॥

मुहूर्तमिव तृप्तिश्च भवेद्भ्रातुर्ममैव च ।
हतैरेतैरहत्वा तु मोदिष्ये शाश्वतीः समाः ॥ १६ ॥

इनको मारनेसे भाई और मुझको क्षणभर सुख मिलेगा, पर इनको न मारकर मैं इनके साथ अनेकों वर्षोंतक सुख भोग सकूंगी ॥ १६ ॥

सा कामरूपिणी रूपं कृत्वा मानुषमुत्तमम् ।
उपतस्थे महाबाहुं भीमसेनं शनैः शनैः ॥ १७ ॥

ऐसा सोचकर अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाली वह राक्षसी सुन्दर मानवीका रूप धरकर महाभुज भीमसेनके पास धीरे धीरे जा पहुंची ॥ १७ ॥

विलज्जमानेव लता दिव्याभरणभूषिता ।
स्मितपूर्वमिदं वाक्यं भीमसेनमथाब्रवीत् ॥ १८ ॥

इसके बाद सुन्दर आभूषणोंसे सजी हुई वह राक्षसी नम्र भावसे लज्जितासी कुछ मुसकराती हुई भीमसेनसे यह वाक्य बोली ॥ १८ ॥

कुतस्त्वमसि संप्राप्तः कश्चासि पुरुषर्षभ ।
क इमे शेरते चेह पुरुषा देवरूपिणः ॥ १९ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप कौन हैं, कहांसे आये हैं ! और जो यह देवोंके समान रूपवान् हुए पुरुषगण सोये हुए हैं, वे कौन हैं ? ॥ १९ ॥

केयं च बृहती श्यामा सुकुमारी तवानघ ।
शेते वनमिदं प्राप्य विश्वस्ता स्वगृहे यथा ॥ २० ॥

हे अनघ ! यह जो तप्त सुवर्णके रङ्गकी कोमलांगी रमणी घरमें रहनेकी भांति विश्वास पूर्वक इस वनमें लेटकर सो रही है, यह आपकी कौन लगती है ! ॥ २० ॥

नेदं जानाति गहनं वनं राक्षससेवितम् ।
वसति ह्यत्र पापात्मा हिडिम्बो नाम राक्षसः ॥ २१ ॥

क्या वह नहीं जानती, कि इस घने वनमें राक्षस रहते हैं, यहां हिडिम्ब नामक एक पापात्मा राक्षस बसता है ॥ २१ ॥

तेनाहं प्रेषिता भ्रात्रा दुष्टभावेन रक्षसा ।
बिभक्षयिषता मांसं युष्माकममरोपम ॥ २२ ॥

हे देवके समान मनुष्य ! मांसको खानेकी इच्छा करनेवाले मेरे उस भाईने आपके मांस भोजन करनेके लिये बुरे अभिप्रायसे मुझे भेजा है ॥ २२ ॥

साहं त्वामभिसंप्रेक्ष्य देवगर्भसमप्रभम् ।
नान्यं भर्तारमिच्छामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २३ ॥

पर मैं आपसे सच कहती हूं, कि देवके समान तेजस्वी आपको देखकर मैं आपके सिवाय किसी दूसरेको अपना पति बनाना नहीं चाहती ॥ २३ ॥

एतद्विज्ञाय धर्मज्ञ युक्तं मयि समाचर ।
कामोपहतचित्ताङ्गीं भजमानां भजस्व माम् ॥ २४ ॥

हे धर्मशील ! इसपर ध्यान देकर मुझसे यथोचित व्यवहार करिये, मेरा मन और अंग सब कामके बाणसे घायल हो गए हैं । मैं आपको भज रही हूं, अतः मेरा सेवन कीजिए ॥२४॥

त्रास्येऽहं त्वां महाबाहो राक्षसात्पुरुषादकात् ।
वत्स्यावो गिरिदुर्गेषु भर्ता भव ममानघ ॥ २५ ॥

हे महाभुज ! मैं आपको इस पुरुष–भोजी राक्षससे बचाऊंगी । हे अनघ ! आप मेरे पति होवें । हम दोनों पहाड पर दुर्गमें रहेंगे ॥ २५ ॥

अन्तरिक्षचरा ह्यस्मि कामतो विचरामि च ।
अतुलामाप्नुहि प्रीतिं तत्र तत्र मया सह ॥ २६ ॥

मैं आकाशमें उडनेवाली हूं; इच्छानुसार आकाशादि सब स्थानोंमें चलती फिरती हूं, आप मेरे संग उन सब स्थानोंमें घूमकर अपार आनन्द लूटें ॥ २६ ॥

भीम उवाच

मातरं भ्रातरं ज्येष्ठं कनिष्ठानपरानिमान् ।
परित्यजेत को न्वद्य प्रभवन्निह राक्षसि ॥ २७ ॥

भीमसेन बोले– राक्षसी ! इन्द्रिय निग्रहवाले मुनिके समान कौन मनुष्य माता और बडे तथा छोटे भाईयोंका त्याग कर सकता है ? ॥ २७ ॥

को हि सुप्तानिमान्भ्रातॄन्दत्त्वा राक्षसभोजनम् ।
मातरं च नरो गच्छेत्कामार्त इव मद्विधः ॥ २८ ॥

और मेरे सदृश कौन मनुष्य कामसे पीडितकी भांति सुखसे सोये हुए इन छोटे भाई और माताको राक्षसके भोजनके लिये छोडकर जा सकता है ? ॥ २८ ॥

राक्षस्युवाच

यत्ते प्रियं तत्करिष्ये सर्वानेतान्प्रबोधय ।
मोक्षयिष्यामि वः कामं राक्षसात्पुरुषादकात् ॥ २९ ॥

राक्षसी बोली– आप जैसा चाहेंगे मैं वही करूंगी; आप इनको जगावें, मैं सहजहीमें तुम सबोंको मनुष्योंको खानेवाले राक्षसके हाथसे मुक्त कर दूंगी ॥ २९ ॥

भीम उवाच

सुखसुप्तान्वने भ्रातॄन्मातरं चैव राक्षसि ।
न भयाद्बोधयिष्यामि भ्रातुस्तव दुरात्मनः ॥ ३० ॥

भीम बोले– हे राक्षसी ! तुम्हारे दुरात्मा भाईके भयसे इस वनमें सुखसे सोये हुए भाइयों और माताको नहीं जगा सकूंगा ॥ ३० ॥

न हि मे राक्षसा भीरु सोढुं शक्ताः पराक्रमम् ।
न मनुष्या न गन्धर्वा न यक्षाश्चारुलोचने ॥ ३१ ॥

हे भीरु तथा उत्तम नेत्रोंवाली राक्षसी ! न मनुष्य, न गंधर्व, न यक्ष और नाही राक्षस मेरा पराक्रम सह सकते हैं ॥ ३१ ॥

गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे यद्वापीच्छसि तत्कुरु ।
तं वा प्रेषय तन्वङ्गि भ्रातरं पुरुषादकम् ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥ ४८८५ ॥

हे भद्रे ! तुम चाहे जाओ अथवा रहो अथवा तुम जो चाहती हो करो, किंवा हे पतले अंगोंवाली ! तुम अपने उस पुरुषभोजी भाईको भेजो ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ उन्तालिसवां अध्याय समाप्त ॥ १३९ ॥ ४८८५ ॥

: १४० :

वैशम्पायन उवाच

तां विदित्वा चिरगतां हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ।
अवतीर्य द्रुमात्तस्मादाजगामाथ पाण्डवान् ॥ १ ॥
लोहिताक्षो महाबाहुरूर्ध्वकेशो महाबलः ।
मेघसङ्घातवर्ष्मा च तीक्ष्णदंष्ट्रोज्ज्वलाननः ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले— तब लालनेत्रवाला महाभुज, केश ऊपर चढाया हुआ, महाबली; घने बादलके समान काला और तेज दांतवाला तथा जलते हुए मुखवाला वह राक्षसराज हिडिम्ब अपनी बहिन हिडिम्बाको बडी देर लगाता हुआ देखकर उस वृक्षसे नीचे उतर पाण्डवोंके पास आ गया ॥ १–२ ॥

तमापतन्तं दृष्ट्वैव तथा विकृतदर्शनम् ।
हिडिम्बोवाच वित्रस्ता भीमसेनमिदं वचः ॥ ३ ॥

उस भयंकर रूपवाले राक्षसको आते देखकरके ही भयसे घबराकर हिडिम्बा भीमसेनसे यह वचन बोली ॥ ३ ॥

आपतत्येष दुष्टात्मा संक्रुद्धः पुरुषादकः ।
त्वामहं भ्रातृभिः सार्धं यद्ब्रवीमि तथा कुरु ॥ ४ ॥

वह देखो, दुष्टात्मा पुरुषभक्षी राक्षस क्रोधित होकर आ रहा है; अब मैं जैसा कहती हूं, आप भाइयोंके साथ वैसा ही करें ॥ ४ ॥

अहं कामगमा वीर रक्षोबलसमन्विता ।
आरुहेमां मम श्रोणिं नेष्यामि त्वां विहायसा ॥ ५ ॥

हे वीर ! मैं राक्षसोंके बलसे युक्त होनेके कारण जहां चाहे वहां जा सकती हूं । आप मेरी कमरपर चढ जायें आपको आकाशमें ले जाऊंगी ॥ ५ ॥

प्रबोधयैनान्संसुप्तान्मातरं च परंतप ।
सर्वानेव गमिष्यामि गृहीत्वा वो विहायसा ॥ ६ ॥

हे शत्रुनाशिन् ! आप इन सोती हुई माता और भाइयोंको जगावें, मैं सबोंको लेकर आकाश मार्गमें चली जाऊंगी ॥ ६ ॥

भीम उवाच

मा भैस्त्वं विपुलश्रोणि नैष कश्चिन्मयि स्थिते।
अहमेनं हनिष्यामि प्रेक्षन्त्यास्ते सुमध्यमे ॥ ७ ॥

भीमसेन बोले– विशाल जांघोंवाली! तुम भय मत करो, मेरे सामने यह कुछ नहीं है। हे सुन्दरी! तुम देखलो, तुम्हारे सामने ही तुम्हारे देखते देखते मैं उसको नष्ट कर दूंगा ॥ ७ ॥

नायं प्रतिबलो भीरु राक्षसापसदो मम।
सोढुं युधि परिस्पन्दमथवा सर्वराक्षसाः ॥ ८ ॥

हे भीरु! उस नीच राक्षसकी क्या कहती हो; जितने भी राक्षस हैं, सब भी आ जाएं तो भी युद्धमें मेरा पराक्रम सहन नहीं कर सकते ॥ ८ ॥

पश्य बाहू सुवृत्तौ मे हस्तिहस्तनिभाविमौ।
ऊरू परिघसङ्काशौ संहतं चाप्युरो मम ॥ ९ ॥

हस्तीकी सूंडके समान गोल गोल भुजाओं, यह दो लोहेके मुद्गरके समान दो जांघों और बडी विशाल छातीको देखो ॥ ९ ॥

विक्रमं मे यथेन्द्रस्य साद्य द्रक्ष्यसि शोभने।
मावमंस्थाः पृथुश्रोणि मत्वा मामिह मानुषम् ॥ १० ॥

हे सुन्दरि! तुम आज महेन्द्रकी भांति मेरे विक्रमको देखोगी। हे विशाल जांघोंवाली! तुम मुझको मनुष्य मानकर कुछ कमजोर न समझो ॥ १० ॥

हिडिम्बोवाच

नावमन्ये नरव्याघ्र त्वामहं देवरूपिणम्।
दृष्टापदानस्तु मया मानुषेष्वेव राक्षसः ॥ ११ ॥

हिडिम्बा बोली– हे नरव्याघ्र! देवके समान सुन्दर आपका मैं अनादर नहीं करती, पर मनुष्योंपर राक्षसका जितना प्रभाव है, वह मैं देख चुकी हूं ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथा संजल्पतस्तस्य भीमसेनस्य भारत।
वाचः शुश्राव ताः क्रुद्धो राक्षसः पुरुषादकः ॥ १२ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत! भीमसेन हिडिम्बासे यह बातें कर रहे थे, उसी समय उस मनुष्यभक्षी हिडिम्बने क्रोधपूर्वक आकर वह बातें सुन लीं ॥ १२ ॥

अवेक्षमाणस्तस्याश्च हिडिम्बो मानुषं वपुः ।
स्रग्दामपूरितशिखं समग्रेन्दुनिभाननम् ॥ १३ ॥

और देखा, कि हिडिम्बाने सुन्दर मनुष्यका स्वरूप लिया है। उसके केशोंमें फूलहार लगे हुए हैं, मुंह पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभायमान है ॥ १३ ॥

सुभ्रूनासाक्षिकेशान्तं सुकुमारनखत्वचम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तं सुसूक्ष्माम्बरवाससम् ॥ १४ ॥

भौंहे, नाक, नेत्र और केश सब सुशोभित हैं, नख और त्वचा कोमल हैं और सुन्दर पतला वस्त्र पहिने हुए है तथा सम्पूर्ण आभूषणोंसे सब शरीर बना ठना है ॥ १४ ॥

तां तथा मानुषं रूपं बिभ्रतीं सुमनोहरम् ।
पुंस्कामां शङ्कमानश्च चुक्रोध पुरुषादकः ॥ १५ ॥

उसको ऐसा सुन्दर मानवी स्वरूप लिये और पुरुषको चाहनेवाली जान करके वह मनुष्य-भक्षी राक्षस बडा क्रोधित हुआ ॥ १५ ॥

संक्रुद्धो राक्षसस्तस्या भगिन्याः कुरुसत्तम ।
उत्फाल्य विपुले नेत्रे ततस्तामिदमब्रवीत् ॥ १६ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! तब वह राक्षस क्रोधके मारे अपनी बडी बडी आंखोंको निकाल कर उस अपनी बहिनसे यह बोला ॥ १६ ॥

को हि मे भोक्तुकामस्य विघ्नं चरति दुर्मतिः ।
न बिभेषि हिडिम्बे किं मत्कोपाद्विप्रमोहिता ॥ १७ ॥

कौन दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य इन मनुष्योंको खानेकी इच्छा करनेवाले मेरे काममें विघ्न डालना चाहता है ? हिडिम्बे ! मोहित हुई हुई तू क्या मेरे क्रोधसे भय नहीं खाती ? ॥ १७ ॥

धिक्त्वामसति पुंस्कामे मम विप्रियकारिणि ।
पूर्वेषां राक्षसेन्द्राणां सर्वेषामयशस्करि ॥ १८ ॥

हे असति और पहलेके सभी राक्षसोंके यशमें धब्बा लगानेवाली हिडिम्बे ! तू पुरुषकी चाहसे मेरे अप्रिय काममें हाथ डालती है ? तुझे धिक्कार है ! ॥ १८ ॥

यानिमानाश्रिताकार्षीरप्रियं सुमहन्मम ।
एष तानद्य वै सर्वान्हनिष्यामि त्वया सह ॥ १९ ॥

तू जिनके भरोसे मेरा बडा अप्रिय करनेपर उद्यत हुई है, आज मैं अभी तेरे सहित उन सबको मारे देता हूं ॥ १९ ॥

एवमुक्त्वा हिडिम्बां स हिडिम्बो लोहितेक्षणः ।
वधायाभिपपातैनां दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन् ॥ २० ॥

हिडिम्ब आंखें लालकर हिडिम्बासे इस प्रकार कह करके दांतसे दांत पीसता हुआ पाण्डवोंके वधके लिये दौडा ॥ २० ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य भीमः प्रहरतां वरः ।
भर्त्सयामास तेजस्वी तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥ ४९०६ ॥

प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ भीमसेन उनको आते देखकर उसे डांटकर " ठहर ठहर " ऐसा बोले ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ चालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४० ॥ ४९०६ ॥

: १४१ :

वैशम्पायन उवाच

भीमसेनस्तु तं दृष्ट्वा राक्षसं प्रहसन्निव ।
भगिनीं प्रति संक्रुद्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– भीमसेन उस राक्षसको बहिन पर क्रोधित होते देखकर हंसते हुए यह वचन बोले ॥ १ ॥

किं ते हिडिम्ब एतैर्वा सुखसुप्तैः प्रबोधितैः ।
मामासादय दुर्बुद्धे तरसा त्वं नराशन ॥ २ ॥
मय्येव प्रहरैहि त्वं न स्त्रियं हन्तुमर्हसि ।
विशेषतोऽनपकृते परेणापकृते सति ॥ ३ ॥

हे दुष्ट बुद्धिवाले मनुष्यभक्षी राक्षस ! इन सब सुखसे सोये भाइयोंको जगानेकी क्या आवश्यकता है ? तू तुरन्त मेरे ऊपर आक्रमण कर, स्त्रीको मारना तुझे शोभा नहीं देगा। इसके अलावा एकके दोषसे दूसरेको मारना ठीक नहीं है, अतः आ, तू मुझी पर प्रहार कर ॥ २–३ ॥

न हीयं स्ववशा बाला कामयत्यद्य मामिह ।
चोदितैषा ह्यनङ्गेन शरीरान्तरचारिणा ।
भगिनी तव दुर्बुद्धे राक्षसानां यशोहर ॥ ४ ॥

हे दुर्बुद्धे और राक्षसोंके यशको नष्ट करनेवाले राक्षस ! तेरी बहिन यह बाला आज अपने वशमें रहकर मेरी कामना नहीं कर रही, अपितु शरीरमें संचार करनेवाले कामदेवसे प्रेरित होकर ही यह मुझे चाहती है ॥ ४ ॥

त्वन्नियोगेन चैवेयं रूपं मम समीक्ष्य च ।
कामयत्यद्य मां भीरुर्नैषा दूषयते कुलम् ॥ ५ ॥

यह सुन्दरी तेरी ही आज्ञासे यहां आकर मेरा रूप देखकर ही मुझे चाह रही है, अतः यह भीरु अबला तेरे कुलको दोषी बनानेवाली नहीं है ॥ ५ ॥

अनङ्गेन कृते दोषे नेमां त्वमिह राक्षस ।
मयि तिष्ठति दुष्टात्मन्न स्त्रियं हन्तुमर्हसि ॥ ६ ॥

कामदेवने ही यह दोष किया है, अतः, हे दुष्टात्मन् राक्षस ! मेरे यहां रहते तू इस नारीको मार नहीं सकेगा ॥ ६ ॥

समागच्छ मया सार्धमेकेनैको नराशन ।
अहमेव नयिष्यामि त्वामद्य यमसादनम् ॥ ७ ॥

हे नरभक्षी ! तू अकेला है, अकेले मेरेही साथ तू लड, मैं अकेला ही आज तुझको यम-राजके घर पहुंचा दूंगा ॥ ७ ॥

अद्य ते तलनिष्पिष्टं शिरो राक्षस दीर्यताम् ।
कुञ्जरस्येव पादेन विनिष्पिष्टं बलीयसः ॥ ८ ॥

आज तेरा सिर मेरे भुजबलसे पीसा जाकर ऐसा चूर चूर हो जायगा, कि मानो किसी बलवान् हाथीके पांवोंके द्वारा कुचल दिया गया हो ॥ ८ ॥

अद्य गात्राणि क्रव्यादाः श्येना गोमायवश्च ते ।
कर्षन्तु भुवि संहृष्टा निहतस्य मया मृधे ॥ ९ ॥

आज रणभूमिमें मेरे द्वारा मारे जानेसे मांसभक्षी श्येन और गोमायु आनन्दसे नीचे उत-रकर तेरे शरीरको खींचें ॥ ९ ॥

क्षणेनाद्य करिष्येऽहमिदं वनमकण्टकम् ।
पुरस्ताद्दूषितं नित्यं त्वया भक्षयता नरान् ॥ १० ॥

पहिले तूने सदा मनुष्य खाकर जिस वनको दूषित किया था, आज मैं क्षणभरमें उस वनको राक्षससे खाली कर निष्कण्टक कर दूंगा ॥ १० ॥

अद्य त्वां भगिनी पाप कृष्यमाणं मया भुवि ।
द्रक्ष्यत्यद्रिप्रतीकाशं सिंहेनेव महाद्विपम् ॥ ११ ॥

हे पापी ! सिंह जिस प्रकार महान् गजको पछाड देता है, वैसे ही आज पर्वतके समान विशाल तुझको तेरी बहिन मेरे द्वारा पृथ्वी पर खींचे जाते हुए देखेगी ॥ ११ ॥

×

निराबाधास्त्वयि हते मया राक्षसपांसन ।
वनमेतच्चरिष्यन्ति पुरुषा वनचारिणः ॥ १२ ॥

हे राक्षस-कुलमें अधम ! मेरे द्वारा तेरे मारे जानेसे इस वनमें विचरनेवाले पुरुष लोग बिना बाधाके इस वनमें विचरेंगे ॥ १२ ॥

हिडिम्ब उवाच

गर्जितेन वृथा किं ते कत्थितेन च मानुष ।
कृत्वैतत्कर्मणा सर्वं कत्थेथा मा चिरं कृथाः ॥ १३ ॥

हिडिम्ब बोला—हे मनुष्य ! तेरे इस व्यर्थके गर्जन और व्यर्थकी बातोंके कहनेसे क्या होना है? जैसा कह रहा है उसे दिखाकर अपनी बडाईको प्रगट कर, देर मत कर ॥ १३ ॥

बलिनं मन्यसे यच्च आत्मानमपराक्रमम् ।
ज्ञास्यस्यद्य समागम्य मयात्मानं बलाधिकम् ॥ १४ ॥

तू अपनेको बडा बली और पराक्रमी समझता है; पर तू कितना बल और वीर्यवाला है, वह आज मुझसे युद्ध करके ही समझ सकेगा ॥ १४ ॥

न तावदेतान्हिंसिष्ये स्वपन्त्वेते यथासुखम् ।
एष त्वामेव दुर्बुद्धे निहन्म्यद्याप्रियंवदम् ॥ १५ ॥

मैं इस समय उनको नहीं मारूंगा, वे सुखसे सोये रहें । हे कुबुद्धे ! अभी तो कडी बात कहनेवाले तुझको ही नष्ट करूंगा ॥ १५ ॥

पीत्वा तवासृग्गात्रेभ्यस्ततः पश्चादिमानपि ।
हनिष्यामि ततः पश्चादिमां विप्रियकारिणीम् ॥ १६ ॥

पहिले तेरी देहसे रक्त पीऊंगा; फिर बादमें इनको मारूंगा और अन्तमें इस अत्यंत अप्रिय करनेवालीको भी मार डालूंगा ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा ततो बाहुं प्रगृह्य पुरुषादकः ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो भीमसेनमरिन्दमम् ॥ १७ ॥

वैशम्पायन बोले— नरमांस खानेवाला वह राक्षस यह बात कहके हाथ बढाकर क्रोधसे शत्रुनाशी भीमसेनकी ओर दौडा ॥ १७ ॥

तस्याभिपततस्तूर्णं भीमो भीमपराक्रमः ।
वेगेन प्रहृतं बाहुं निजग्राह हसन्निव ॥ १८ ॥

भीम-पराक्रमी भीमने हंसते हुए, उसीक्षण दौडे आते हुए उस राक्षसके वेगसे चलाये हुए हाथोंको पकड लिया ॥ १८ ॥

निगृह्य तं बलाद्भीमो विस्फुरन्तं चकर्ष ह ।
तस्माद्देशाद्धनूंष्यष्टौ सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ १९ ॥

वह भीम बलपूर्वक उन फैलाये हुए हाथोंको थामके तथा उसको, जैसे सिंह छोटे मृगको पकडता है, उसी प्रकार खींचकर वहांसे आठ धनु अर्थात् बत्तीस हाथकी दूरीपर ले गये ॥ १९ ॥

ततः स राक्षसः क्रुद्धः पाण्डवेन बलाद्धृतः ।
भीमसेनं समालिङ्ग्य व्यनदद्भैरवं रवम् ॥ २० ॥

तब राक्षस पाण्डव भीमसेनसे बलपूर्वक खींचे जानेपर उनको दबोचकर बडे जोरसे चिल्लाने लगा ॥ २० ॥

पुनर्भीमो बलादेनं विचकर्ष महाबलः ।
मा शब्दः सुखसुप्तानां भ्रातॄणां मे भवेदिति ॥ २१ ॥

कहीं उस शब्दको सुनके सुखसे सोये हुए भाइयोंकी नींद न टूट जाए, इसलिये महाबली भीमसेन फिर बलपूर्वक उसे खींचकर दूर ले गए ॥ २१ ॥

अन्योन्यं तौ समासाद्य विचकर्षतुरोजसा ।
राक्षसो भीमसेनश्च विक्रमं चक्रतुः परम् ॥ २२ ॥

तब राक्षस हिडिम्ब और भीमसेन दोनों एक दूसरेसे चिपटकर बलसे एक दूसरेको खींचने लग गए और वे दोनों विक्रम दिखाने लगे ॥ २२ ॥

बभञ्जतुर्महावृक्षाँल्लताश्चाकर्षतुस्ततः ।
मत्ताविव सुसंरब्धौ वारणौ षष्टिहायनौ ॥ २३ ॥

वे दोनों साठ वर्षके मस्त और क्रोधित गजोंके समान महावृक्षोंको तोडने तथा लताओंको उखाडने लगे ॥ २३ ॥

तयोः शब्देन महता विबुधास्ते नरर्षभाः ।
सह मात्रा च ददृशुर्हिडिम्बामग्रतः स्थिताम् ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥ ४९३० ॥

उनके उस बडे कोलाहलसे नरश्रेष्ठ पाण्डव जाग गए और माताके साथ उन्होंने सामने खडी हुई हिडिम्बाको देखा ॥ २४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ इकतालिसवां अध्याय समाप्त ॥ १४१ ॥ ४९३० ॥

: १४२ :

वैशंपायन उवाच

प्रबुद्धास्ते हिडिम्बाया रूपं दृष्ट्वातिमानुषम् ।
विस्मिताः पुरुषव्याघ्रा बभूवुः पृथया सह ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– वे कुन्ती और पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव जाग गए और हिडिम्बाके उस अलौकिक रूपको देखकर कुन्ती और पाण्डव आश्चर्यचकित हो गए ॥ १ ॥

ततः कुन्ती समीक्ष्यैनां विस्मिता रूपसम्पदा ।
उवाच मधुरं वाक्यं सान्त्वपूर्वमिदं शनैः ॥ २ ॥

तब उसकी रूपसम्पत्तिसे आश्चर्यचकित हुई हुई वह कुन्ती उसकी ओर भलीभांति देखकर शान्त और मीठी बातोंमें धीरे धीरे यह बोली ॥ २ ॥

कस्य त्वं सुरगर्भाभे का चासि वरवर्णिनि ।
केन कार्येण सुश्रोणि कुतश्चागमनं तव ॥ ३ ॥

हे सुन्दर कमरवाली तथा देवकन्याके समान सुन्दरी ! तुम कौन हो ? हे वरवर्णिनि ! तुम किसकी स्त्री हो ? तुम किस कामके लिये और कहांसे यहां आयी हो ? ॥ ३ ॥

यदि वास्य वनस्यासि देवता यदि वाप्सराः ।
आचक्ष्व मम तत्सर्वं किमर्थं चेह तिष्ठसि ॥ ४ ॥

यदि तुम इस वनकी देवी अथवा कोई अप्सरा हो, तो मुझसे सब कहो कि तुम यहां क्यों खडी हो ? ॥ ४ ॥

हिडिम्बोवाच

यदेतत्पश्यसि वनं नीलमेघनिभं महत् ।
निवासो राक्षसस्यैतद्धिडिम्बस्य ममैव च ॥ ५ ॥

हिडिम्बा बोली– नीले बादलकी भांति जो यह महान् वन तुम देख रही हो, वह हिडिम्ब नामक राक्षसके और मेरे रहनेका स्थान है ॥ ५ ॥

तस्य मां राक्षसेन्द्रस्य भगिनीं विद्धि भामिनि ।
भ्रात्रा संप्रेषितामार्ये त्वां सपुत्रां जिघांसता ॥ ६ ॥

हे भामिनि ! मुझे उस राक्षसराज हिडिम्बकी बहिन जानो । हे आर्ये ! पुत्रोंके सहित आपको मारनेकी इच्छावाले मेरे भाईने मुझको भेजा था ॥ ६ ॥

क्रूरबुद्धेरहं तस्य वचनादागता इह ।
अद्राक्षं हेमवर्णाभं तव पुत्रं महौजसम् ॥ ७ ॥

मैं उस कुटिलबुद्धि भाईकी आज्ञासे यहां आई और यहां आकर सुवर्णके समान रंगवाले आपके महा तेजस्वी पुत्रको देखा ॥ ७ ॥

ततोऽहं सर्वभूतानां भावे विचरता शुभे ।
चोदिता तव पुत्रस्य मन्मथेन वशानुगा ॥ ८ ॥

हे कल्याणि ! तब आपके पुत्रको देखकर मैं सब प्राणियोंके हृदयमें संचार करनेवाले काम-देवसे प्रेरित होकर आपके पुत्रके वशमें हो गई ॥ ८ ॥

ततो वृतो मया भर्ता तव पुत्रो महाबलः ।
अपनेतुं च यतितो न चैव शकितो मया ॥ ९ ॥

मैंने मदनबाणको मनसे निकालना चाहा, पर किसी प्रकार समर्थ नहीं हुई; अतएव आपके महाबली पुत्रको मैंने मन ही मनमें अपना पति वरण किया है ॥ ९ ॥

चिरायमाणां मां ज्ञात्वा ततः स पुरुषादकः ।
स्वयमेवागतो हन्तुमिमान्सर्वांस्तवात्मजान् ॥ १० ॥

इसके बाद पुरुष मांसभक्षी वह राक्षस, मुझको जिस कामके लिए भेजा था, उसमें देरी होते देखकर आपके इन सब पुत्रोंको नष्ट करनेके लिए स्वयं ही आ गया ॥ १० ॥

स तेन मम कान्तेन तव पुत्रेण धीमता ।
बलादितो विनिष्पिष्य व्यपकृष्टो महात्मना ॥ ११ ॥

तब मेरे पति और आपके वह बुद्धिमान् और महात्मा पुत्र बलपूर्वक उसको घसीटकर यहांसे कुछ दूर ले गये हैं ॥ ११ ॥

विकर्षन्तौ महावेगौ गर्जमानौ परस्परम् ।
पश्यध्वं युधि विक्रान्तावेतौ तौ नरराक्षसौ ॥ १२ ॥

एक दूसरेको खींचते हुए, महान् वेगवाले, परस्पर गर्जते हुए युद्ध करनेमें पराक्रमी इन दोनों नर और राक्षसको तुम देखो ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्याः श्रुत्वैव वचनमुत्पपात युधिष्ठिरः ।
अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवश्च वीर्यवान् ॥ १३ ॥

वैशम्पायन बोले-- उसकी यह बात सुन करके ही वीर्यवान् युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये सहसा उठकर उस युद्धस्थानके निकट गये ॥ १३ ॥

तौ ते ददृशुरासक्तौ विकर्षन्तौ परस्परम् ।
काङ्क्षमाणौ जयं चैव सिंहाविव रणोत्कटौ ॥ १४ ॥

उन्होंने देखा, कि बहुत शूरवीर राक्षस और भीम दोनों जयकी आशासे एक दूसरेको पकडकर सिंहके समान खींच रहे हैं ॥ १४ ॥

तावन्योन्यं समाश्लिष्य विकर्षन्तौ परस्परम्।
दावाग्निधूमसदृशं चक्रतुः पार्थिवं रजः ॥ १५ ॥

वे एक दूसरेसे लिपटकर बार बार एक दूसरेको खींचकर दावाग्निके धूंएके समान पृथ्वीकी धूलि उडा रहे हैं ॥ १५ ॥

वसुधारेणुसंवीतौ वसुधाधरसंनिभौ।
विभ्राजेतां यथा शैलौ नीहारेणाभिसंवृतौ ॥ १६ ॥

तथा पर्वतके समान विशाल वे दोनों जमीनकी धूलिसे ढके जाकर हिमसे ढंके पर्वतकी भांति शोभित होने लगे ॥ १६ ॥

राक्षसेन तदा भीमं क्लिश्यमानं निरीक्ष्य तु।
उवाचेदं वचः पार्थः प्रहसञ्शनकैरिव ॥ १७ ॥

इसके बाद अर्जुन भीमसेनको राक्षससे पीडित होते देखकर हंसते हुए धीरेसे यह वचन बोले ॥ १७ ॥

भीम मा भैर्महाबाहो न त्वां बुध्यामहे वयम्।
समेतं भीमरूपेण प्रसुप्ताः श्रमकर्शिताः ॥ १८ ॥

हे महाभुज भीम! तुम भय मत करो। हम थके मादे थे, अतः नहीं जान सके, कि तुम ऐसे घोररूप राक्षससे भिड गये हो ॥ १८ ॥

साहाय्येऽस्मि स्थितः पार्थ योधयिष्यामि राक्षसम्।
नकुलः सहदेवश्च मातरं गोपयिष्यतः ॥ १९ ॥

पार्थ! मैं तुम्हारी सहायता करनेके लिए तैय्यार हूं, मैं इस राक्षसके साथ युद्ध करूंगा, नकुल और सहदेव माताकी रक्षा करेंगे ॥ १९ ॥

भीम उवाच

उदासीनो निरीक्षस्व न कार्यः संभ्रमस्त्वया।
न जात्वयं पुनर्जीवेन्मद्बाह्वन्तरमागतः ॥ २० ॥

भीम बोले– तुम एक तरफ खडे होकर देखते जाओ, बीचमें मत आवो, गडबडी पैदा मत करो। यह राक्षस मेरे दोनों हाथोंके बीचमें आकर कभी जीता नहीं रहेगा ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच

किमनेन चिरं भीम जीवता पापरक्षसा।
गन्तव्यं न चिरं स्थातुमिह शक्यमरिन्दम ॥ २१ ॥

अर्जुन बोले– हे भीम! इस पापात्मा राक्षसको देरतक जीवित रखनेसे क्या प्रयोजन? हमें अभी और आगे जाना है, अतः हम यहां बहुत देर तक नहीं रह सकते ॥ २१ ॥

पुरा संरज्यते प्राची पुरा संध्या प्रवर्तते ।
रौद्रे मुहूर्ते रक्षांसि प्रबलानि भवन्ति च ॥ २२ ॥

पूर्वदिशा लाल होकर प्रातःसंध्याका काल आ रहा है, रौद्र मुहूर्तमें अर्थात् ब्राह्ममुहूर्तमें राक्षस प्रबल हो जाते हैं ॥ २२ ॥

त्वरस्व भीम मा क्रीड जहि रक्षो विभीषणम् ।
पुरा विकुरुते मायां भुजयोः सारमर्पय ॥ २३ ॥

अतएव, हे भीम ! तुम शीघ्र काम पूर्ण करो, अब इसे लेकर खेलते न रहो। इस भीषण मांसभोजी राक्षसको मार डालो, इसके पहले कि वह माया फैलाये, अपना भुजबल प्रकट करो ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

अर्जुनेनैवमुक्तस्तु भीमो भीमस्य रक्षसः ।
उत्क्षिप्याभ्रामयद्देहं तूर्णं गुणशताधिकम् ॥ २४ ॥

वैशम्पायन बोले– अर्जुनके द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भीमने उस भयंकर राक्षसकी देहको सौ वारसे भी अधिक ऊपर उठाकर घुमाया तथा बोले ॥ २४ ॥

भीम उवाच

वृथामांसैर्वृथा पुष्टो वृथा वृद्धो वृथामतिः ।
वृथामरणमर्हस्त्वं वृथाद्य न भविष्यसि ॥ २५ ॥

तू वृथा मांससे वृथा ही पुष्ट हुआ है; तेरा बढना भी व्यर्थ है; तेरी बुद्धि भी व्यर्थ है इसलिये तू व्यर्थ मृत्युके अर्थात् जिस बाहु–युद्धमें मरनेसे स्वर्ग नहीं मिलता है, उसके ही योग्य है, इससे तू व्यर्थ मृत्युको प्राप्त करेगा ॥ २५ ॥

अर्जुन उवाच

अथ वा मन्यसे भारं त्वमिमं राक्षसं युधि ।
करोमि तव साहाय्यं शीघ्रमेव निहन्यताम् ॥ २६ ॥

अर्जुन बोले– तुम यदि युद्धमें इस राक्षसको भार समझते हो, तो मैं तुम्हारी सहायता करूं; तुम इसको तुरन्त मार डालो ॥ २६ ॥

अथ वाप्यहमेवैनं हनिष्यामि वृकोदर ।
कृतकर्मा परिश्रान्तः साधु तावदुपारम ॥ २७ ॥

हे वृकोदर ! अथवा तो मैं ही अकेला इसका काम तमाम कर दूं। तुम कार्य करके थक गये हो, अतः अब तुम्हें निवृत्त हो जाना चाहिए ॥ २७ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षणः।
निष्पिष्यैनं बलाद्भूमौ पशुमारममारयत् ॥ २८ ॥

वैशम्पायन बोले— भीमसेनने उनकी उस बातको सुन कर बडे क्रोधित होकर बलसे राक्षसको जमीन पर पीसकर पशुको मारनेकी भांति नष्ट किया ॥ २८ ॥

स मार्यमाणो भीमेन ननाद विपुलं स्वनम्।
पूरयंस्तद्वनं सर्वं जलार्द्र इव दुन्दुभिः ॥ २९ ॥

भीमसेनसे मारे जाते हुए उस राक्षसने मरनेके समय जलसे भीगे हुए नगाडेकी भांति घोर शब्दसे उस वनको गुंजा दिया ॥ २९ ॥

भुजाभ्यां योक्त्रयित्वा तं बलवान्पाण्डुनन्दनः।
मध्ये भङ्क्त्वा स बलवान्हर्षयामास पाण्डवान् ॥ ३० ॥

बलवान् महाभुज पाण्डुनन्दनने राक्षसको हाथोंसे पकड कर उसके बीचके भागको तोडकर पाण्डवोंको आनन्दित किया ॥ ३० ॥

हिडिम्बं निहतं दृष्ट्वा संहृष्टास्ते तरस्विनः।
अपूजयन्नरव्याघ्रं भीमसेनमरिंदमम् ॥ ३१ ॥

बलशाली पाण्डुपुत्रोंने हिडिम्बको नष्ट होते देखकर प्रसन्न चित्तसे नरश्रेष्ठ शत्रुनाशी भीमसेन की बडी प्रशंसा की ॥ ३१ ॥

अभिपूज्य महात्मानं भीमं भीमपराक्रमम्।
पुनरेवार्जुनो वाक्यमुवाचेदं वृकोदरम् ॥ ३२ ॥

इसके बाद अर्जुन महात्मा भीमपराक्रमी भीमका आदर करके वृकोदरसे यह वचन बोले ॥ ३२ ॥

नदूरे नगरं मन्ये वनादस्मादहं प्रभो।
शीघ्रं गच्छाम भद्रं ते न नो विद्यात्सुयोधनः ॥ ३३ ॥

हे प्रभो! मुझको जान पडता है कि इस वनसे नगर बडी दूर नहीं है। आपका कल्याण हो, चलिये, हम उस स्थानमें शीघ्र जायें, जहां सुयोधन हमारा समाचार नहीं पा सके॥३३॥

ततः सर्वे तथेत्युक्त्वा सह मात्रा परंतपाः।
प्रययुः पुरुषव्याघ्रा हिडिम्बा चैव राक्षसी ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥ ४९६३ ॥
॥ समाप्तं हिडिम्बवधपर्व ॥

तब शत्रुनाशी पुरुषोत्तम पांडवगण उसपर संमत हो माताके साथ वहांसे चलने लगे, तब राक्षसी हिडिम्बा भी उनके साथ चलने लगी ॥ ३४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ बयालिसवां अध्याय समाप्त ॥१४२॥ हिडिम्बवधपर्व समाप्त॥४९६३॥

: १४३ :

भीम उवाच

स्मरन्ति वैरं रक्षांसि मायामाश्रित्य मोहिनीम् ।
हिडिम्बे व्रज पन्थानं त्वं वै भ्रातृनिषेवितम् ॥ १ ॥

भीमसेन हिडिम्बाको साथ आते देखकर बोले– हे हिडिम्बे ! राक्षसगण मोहिनी माया धारण कर पहिली शत्रुताको स्मरण किये रहते हैं; अतः तुम्हारा भाई जिस पथमें गया है, तुम भी उसी पथमें जाओ ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

क्रुद्धोऽपि पुरुषव्याघ्र भीम मा स्म स्त्रियं वधीः ।
शरीरगुप्त्याभ्यधिकं धर्मं गोपय पाण्डव ॥ २ ॥

युधिष्ठिर यह सुनकर बोले– हे पुरुषव्याघ्र भीम ! तुम क्रोधित हो, तो भी स्त्रीको मत मारो । हे पाण्डव ! शरीरकी रक्षासे धर्मकी रक्षा बडी है, अतः धर्मका पालन करो ॥२॥

वधाभिप्रायमायान्तमवधीस्त्वं महाबलम् ।
रक्षसस्तस्य भगिनी किं नः क्रुद्धा करिष्यति ॥ ३ ॥

जब तुमने उस महाबली राक्षसको, जो हमको मारने आया था, मार डाला है, अब उसकी बहिन क्रोध करके हमारा क्या कर लेगी ? ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

हिडिम्बा तु ततः कुन्तीमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
युधिष्ठिरं तु कौन्तेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥

वैशम्पायन बोले– तब हिडिम्बा कुन्ती और युधिष्ठिरको प्रणाम कर कुन्तीसे यह वचन बोली ॥ ४ ॥

आर्ये जानासि यद्दुःखमिह स्त्रीणामनङ्गजम् ।
तदिदं मामनुप्राप्तं भीमसेनकृतं शुभे ॥ ५ ॥

हे आर्ये ! आप जानती हैं, कि स्त्रियोंको अनङ्गसे कितना दुःख होता है । हे शुभे ! भीमसेनके द्वारा उत्पन्न की गई इस अनङ्गपीडाके द्वारा मैं सतायी जाती हूं ॥ ५ ॥

सोढं तत्परमं दुःखं मया कालप्रतीक्षया ।
सोऽयमभ्यागतः कालो भविता मे सुखाय वै ॥ ६ ॥

मैंने कालकी प्रतीक्षा करते हुए उस परम दुःखको सह लिया था, अब वह समय आ पहुंचा है, अतः मुझे अब सुख प्राप्त हो ॥ ६ ॥

मया ह्युत्सृज्य सुहृदः स्वधर्मं स्वजनं तथा।
वृतोऽयं पुरुषव्याघ्रस्तव पुत्रः पतिः शुभे ॥ ७ ॥

हे शुभे ! मैंने स्वधर्म, मित्रों और स्वजनोंको तजकर आपके पुरुषश्रेष्ठ पुत्रको पतिके रूपमें वरण किया है ॥ ७ ॥

वरेणापि तथानेन त्वया चापि यशस्विनि।
तथा ब्रुवन्ती हि तदा प्रत्याख्याता क्रियां प्रति ॥ ८ ॥

हे यशस्विनि ! जब मैंने यह बात पहले कही थी, तब मेरे पति भीमने और आपने भी मेरी बात स्वीकार कर ली थी ॥ ८ ॥

त्वं मां मूढेति वा मत्वा भक्ता वानुगतेति वा।
भर्त्रानेन महाभागे संयोजय सुतेन ते ॥ ९ ॥

अतएव आप मुझे चाहे मूर्ख समझकर वा भक्त अथवा कृपापात्र जानकर, हे महाभागे ! अपने पुत्र और मेरे पति इन भीमसेनसे मुझको संयुक्त करें ॥ ९ ॥

तमुपादाय गच्छेयं यथेष्टं देवरूपिणम्।
पुनश्चैवागमिष्यामि विश्रम्भं कुरु मे शुभे ॥ १० ॥

मैं इन देवरूपी पतिको लेकर जहां मन चाहे, वहां ले जाऊंगी और फिर इनको ले आऊंगी। हे शुभे ! आप मेरा विश्वास करें ॥ १० ॥

अहं हि मनसा ध्याता सर्वान्नेष्यामि वः सदा।
वृजिने तारयिष्यामि दुर्गेषु च नरर्षभान् ॥ ११ ॥

आपके मुझे स्मरण करते ही मैं उसी क्षण आकर आप लोगोंको मनमाने स्थानमें ले जाऊंगी, मैं आप सब नरश्रेष्ठोंको कठिन कठिन दुर्गम किलोंसे भी पार पहुंचा दूंगी ॥ ११ ॥

पृष्ठेन वो वहिष्यामि शीघ्रां गतिमभीप्सतः।
यूयं प्रसादं कुरुत भीमसेनो भजेत माम् ॥ १२ ॥

फिर भी आप कहीं शीघ्र जाना चाहेंगे, तो आप लोगोंको उसीक्षण अपने पीठपर चढाकर लेती जाऊंगी। आप प्रसन्न होवें, कि भीमसेन मेरा भोग करें ॥ १२ ॥

आपदस्तरणे प्राणान्धारयेद्येन येन हि।
सर्वमादृत्य कर्तव्यं तद्धर्ममनुवर्तता ॥ १३ ॥

विपत्तिसे बचनेके लिये किसी भी उपायसे अपनी रक्षा कर लेनी चाहिये और उस एक धर्मकी शरण ले करके सब कुछ करना चाहिए ॥ १३ ॥

आपत्सु यो धारयति धर्मं धर्मविदुत्तमः ।
व्यसनं ह्येव धर्मस्य धर्मिणामापदुच्यते ॥ १४ ॥

धर्मशील जनोंके लिये धर्मविषयक विपत्ति ही सबसे बडी आपत्ति कही गई है, अतः जो जन विपत्कालमें भी धर्मकी रक्षा करते हैं, वही धार्मिकोंमें उत्तम हैं ॥ १४ ॥

पुण्यं प्राणान्धारयति पुण्यं प्राणदमुच्यते ।
येन येनाचरेद्धर्मं तस्मिन्गर्हा न विद्यते ॥ १५ ॥

पुण्य ही प्राणको धारण करता है, पुण्यहीको पण्डितोंने प्राण देनेवाला कहा है; अतएव अकर्तव्य कर्मको करके भी प्राण बचाना चाहिये, उससे निन्दा नहीं होती ॥ १५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतद्यथात्थ त्वं हिडिम्बे नात्र संशयः ।
स्थातव्यं तु त्वया धर्मे यथा ब्रूयां सुमध्यमे ॥ १६ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे सुन्दरी हिडिम्बे ! इसमें सन्देह नहीं, कि तुमने जो कहा, वह ठीक है; पर मैं जैसा कहूँ, उस मेरे कथनके अनुसार तुम्हें धर्मपर चलना पडेगा ॥ १६ ॥

स्नातं कृताह्निकं भद्रे कृतकौतुकमङ्गलम् ।
भीमसेनं भजेथास्त्वं प्रागस्तगमनाद्रवेः ॥ १७ ॥

भद्रे ! भीमसेनके नहाने, आह्निक कर लेने और कौतुकमङ्गल कर चुकनेपर सूर्यास्तके पूर्वतक तुम उनका भोग कर सकोगी ॥ १७ ॥

अहःसु विहरानेन यथाकामं मनोजवा ।
अयं त्वानयितव्यस्ते भीमसेनः सदा निशि ॥ १८ ॥

हे मनोवेगके अनुसार चलनेवाली ! दिनमें इस भीमसेनके साथ इच्छानुसार विहार कर रोज रातको उन्हें हमारे पास पहुंचा दिया करना ॥ १८ ॥

वैशंपायन उवाच

तथेति तत्प्रतिज्ञाय हिडिम्बा राक्षसी तदा ।
भीमसेनमुपादाय ऊर्ध्वमाचक्रमे ततः ॥ १९ ॥

वैशम्पायन बोले— तब राक्षसी हिडिम्बा " अच्छा, ऐसा ही करूंगी " इस प्रकार प्रतिज्ञा करके भीमसेनको लेकर उसी क्षण आकाशमार्गसे चली गयी ॥ १९ ॥

शैलशृङ्गेषु रम्येषु देवतायतनेषु च ।
मृगपक्षिविघुष्टेषु रमणीयेषु सर्वदा ॥ २० ॥
कृत्वा च परमं रूपं सर्वाभरणभूषिता ।
सञ्जल्पन्ती सुमधुरं रमयामास पाण्डवम् ॥ २१ ॥

वह राक्षसी परम मनोहर रूप धारणकर सब आभूषणोंसे बनठन कर और मीठी बोली बोलती हुई समय समय पर नाना स्थानोंमें सुन्दर पहाडकी चोटियोंपर, कभी मृग पक्षियोंके शब्दसे गूंजते हुए मनोहर देवमान्दिरोंमें भीमसेनको आनन्द देने लगी ॥ २०-२१ ॥

तथैव वनदुर्गेषु पुष्पितद्रुमसानुषु ।
सरःसु रमणीयेषु पद्मोत्पलयुतेषु च ॥ २२ ॥
नदीद्वीपप्रदेशेषु वैडूर्यसिकतासु च ।
सुतीर्थवनतोयासु तथा गिरिनदीषु च ॥ २३ ॥

उसी प्रकार कभी वन दुर्गोंमें, कभी फूले हुए वृक्षोंसे सुहावनी घाटियोंमें, कभी नीले तथा लाल पद्मसे सुशोभित सुन्दर सरोवरमें, कभी वैडूर्यमणि और नदीके बालूसे भरे हुए द्वीपमें कभी सुन्दर वन और अमृत समान जलसे सुशोभित अच्छे तीर्थवाली पहाडी नदीमें ॥ २२-२३ ॥

सागरस्य प्रदेशेषु मणिहेमचितेषु च ।
पत्तनेषु च रम्येषु महाशालवनेषु च ॥ २४ ॥

कभी मणि और सुवर्णसे पूर्ण सागर खण्डोंमें, कभी मनोहर नगरों और बडे बडे शाल वृक्षोंसे भरे हुए वनोंमें ॥ २४ ॥

देवारण्येषु पुण्येषु तथा पर्वतसानुषु ।
गुह्यकानां निवासेषु तापसायतनेषु च ॥ २५ ॥

कभी देवोंके तीर्थोंमें, कभी पहाडोंकी कन्दरामें, कभी गुह्यकोंकी वासभूमिमें, कभी तपस्वियोंके स्थानमें ॥ २५ ॥

सर्वर्तुफलपुष्पेषु मानसेषु सरःसु च ।
बिभ्रती परमं रूपं रमयामास पाण्डवम् ॥ २६ ॥

अथवा कभी सदासे फलफूलयुक्त मनमोहन मानस सरोवरमें क्रीडा करती हुई परम रूपवती वह हिडिम्बा पाण्डव भीमसेनको आनन्द देने लगी ॥ २६ ॥

रमयन्ती तथा भीमं तत्र तत्र मनोजवा ।
प्रजज्ञे राक्षसी पुत्रं भीमसेनान्महाबलम् ॥ २७ ॥

उसके बाद उस मनके वेगसे विचरनेवाली तथा भीमको आनन्द देनेवाली राक्षसीने भीमसेनसे महाबली पुत्र पैदा किया ॥ २७ ॥

विरूपाक्षं महावक्त्रं शङ्कुकर्णं विभीषणम् ।
भीमरूपं सुताम्रोष्ठं तीक्ष्णदंष्ट्रं महाबलम् ॥ २८ ॥

उस महाबली पुत्रकी आंखें बडी विकट, मुंह बडा, भारी कान शंकुके समान, स्वर अति भयानक, होठोंका रंग ताम्बेकी भांति, दांत कंटीले थे ॥ २८ ॥

महेष्वासं महावीर्यं महासत्त्वं महाभुजम् ।
महाजवं महाकायं महामायमरिंदमम् ॥ २९ ॥

वह अति बलवीर्यवान्, बडा धनुर्धारी, महान् सत्ववान्, बडे बडे हाथयुक्त, अति वेगवान्, बडे शरीरवाला, बडी माया रचनेवाला और शत्रुनाशी था ॥ २९ ॥

अमानुषं मानुषजं भीमवेगं महाबलम् ।
यः पिशाचानतीवान्यान्बभूवाति स मानुषान् ॥ ३० ॥

वह महाबली भयंकर वेगवान् पुत्र मनुष्यके वीर्यसे अमानुषमें पैदा हुआ, वह कुमार सम्पूर्ण पिशाच और राक्षसोंमें बडा विक्रमी हुआ ॥ ३० ॥

बालोऽपि यौवनं प्राप्तो मानुषेषु विशां पते ।
सर्वास्त्रेषु परं वीरः प्रकर्षमगमद्बली ॥ ३१ ॥

हे राजन् ! उस बलवान् वीरपुत्रने बालक होनेपर भी यौवनको प्राप्त किया और उसकी मनुष्य लोकमें प्रचलित सम्पूर्ण अस्त्रोंमें अति उन्नति हुई ॥ ३१ ॥

सद्यो हि गर्भं राक्षस्यो लभन्ते प्रसवन्ति च ।
कामरूपधराश्चैव भवन्ति बहुरूपिणः ॥ ३२ ॥

राक्षसी जिस दिन गर्भ धारण करती है, उसी दिन प्रसव करती है और प्रसव किया हुआ बालक भी जन्म लेते ही बहुरूपी होकर मनमाना रूप धर सकता है ॥ ३२ ॥

प्रणम्य विकचः पादावगृह्णात्स पितुस्तदा ।
मातुश्च परमेष्वासस्तौ च नामास्य चक्रतुः ॥ ३३ ॥

बडा धनुर्धारी हिडिम्बाकुमारने जन्म लेते ही प्रणाम करके पिता माताके पांव पकड लिए उन्होंने भी उसका नाम रख दिया ॥ ३३ ॥

घटभासोत्कच इति मातरं सोऽभ्यभाषत ।
अभवत्तेन नामास्य घटोत्कच इति स्म ह ॥ ३४ ॥

उस बालकके घटके ऐसे उत्कच अर्थात् केश थे, अतः हिडिम्बाने उसको देखकर ऐसा कहा, कि " इसके उत्कच घटकी भांति हैं । " इसलिये भीमसेनने उसका नाम " घटोत्कच " रखा ॥ ३४ ॥

अनुरक्तश्च तानासीत्पाण्डवान्स घटोत्कचः ।
तेषां च दयितो नित्यमात्मभूतो बभूव सः ॥ ३५ ॥

घटोत्कच स्वाधीन होने पर भी उन पाण्डवोंपर बडा स्नेह करता था और वह भी पाण्डवोंका बडा प्यारा था ॥ ३५ ॥

संवाससमयो जीर्ण इत्यभाषत तं ततः ।
हिडिम्बा समयं कृत्वा स्वां गतिं प्रत्यपद्यत ॥ ३६ ॥

आगे हिडिम्बाने शर्तके अनुसार कामकर यह कहकर "कि पतिसे रहनेका काल बीत चुका है," पाण्डवोंके साथ सम्भाषण करके अपने स्थानको चली गई ॥ ३६ ॥

कृत्यकाल उपस्थास्ये पितॄनिति घटोत्कचः ।
आमन्त्र्य राक्षसश्रेष्ठः प्रतस्थे चोत्तरां दिशाम् ॥ ३७ ॥

"जब कार्य उपस्थित होगा आपके समीप आ पहुंचूगा ।" इस प्रकार राक्षसोंमें श्रेष्ठ घटोत्कच भी पितरोंसे कह कर उत्तरकी ओर चला गया ॥ ३७ ॥

स हि सृष्टो मघवता शक्तिहेतोर्महात्मना ।
कर्णस्याप्रतिवीर्यस्य विनाशाय महात्मनः ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥ ५००१ ॥

महात्मा महेन्द्रने अतुलनीय शक्तिशाली कर्णकी एक पुरुषको मारनेवाली शक्तिके लिये तथा उस महात्मा कर्णके विनाशके लिए इस महारथी घटोत्कचको बनाया था ॥ ३८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ तैतालिसवां अध्याय समाप्त ॥ १४३ ॥ ५००१ ॥

: १४४ :

वैशम्पायन उवाच

ते वनेन वनं वीरा घ्नन्तो मृगगणान्बहून् ।
अपक्रम्य ययू राजंस्त्वरमाणा महारथाः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद वे महारथी वीर पाण्डवगण शीघ्रतासे मृगया करते हुए एक बनसे अन्य वनको, फिर उस वनसे वनान्तरमें गमन करने लगे ॥ १ ॥

मत्स्यांस्त्रिगर्तान्पञ्चालान्कीचकानन्तरेण च ।
रमणीयान्वनोद्देशान्प्रेक्षमाणाः सरांसि च ॥ २ ॥

जाते हुए पथमें मत्स्य, त्रिगर्त, पाञ्चाल और कीचक देशोंके भीतरके सुन्दर सुन्दर बन-खण्ड और नाना प्रकारके नदी और तालाब देखते चले ॥ २ ॥

जटाः कृत्वात्मनः सर्वे वल्कलाजिनवाससः ।
सह कुन्त्या महात्मानो बिभ्रतस्तापसं वपुः ॥ ३ ॥

वे सभी अपनी जटा बढाये, वल्कल और अजिन पहने हुए, तथा तपस्वी वेशको धारण कर वे महात्मा पाण्डव गण कुन्तीके साथ चले ॥ ३ ॥

क्वचिद्वहन्तो जननीं त्वरमाणा महारथाः ।
क्वचिच्छन्देन गच्छन्तस्ते जग्मुः प्रसभं पुनः ॥ ४ ॥

वे कहीं कहीं शीघ्रताके लिये कुन्तीको उठा लेते थे; और कहीं कहीं सहज चालमें सुखसे चलकर बादमें शीघ्र चलते थे ॥ ४ ॥

ब्राह्मं वेदमधीयाना वेदाङ्गानि च सर्वशः ।
नीतिशास्त्रं च धर्मज्ञा ददृशुस्ते पितामहम् ॥ ५ ॥

एक समय वे सम्पूर्ण वेद वेदाङ्ग और नीतिशास्त्र पढ रहे थे, ऐसे समयमें उन धर्मज्ञोंने पितामह व्यासको देखा ॥ ५ ॥

तेऽभिवाद्य महात्मानं कृष्णद्वैपायनं तदा ।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे सह मात्रा परंतपाः ॥ ६ ॥

महात्मा कृष्णद्वैपायनको देखते ही शत्रुनाशी पाण्डवगण माताके साथ प्रणाम कर दोनों हाथ जोडके सामने खडे हो गए ॥ ६ ॥

व्यास उवाच

मयेदं मनसा पूर्वं विदितं भरतर्षभाः ।
यथा स्थितैरधर्मेण धार्तराष्ट्रैर्विवासिताः ॥ ७ ॥

व्यास बोले– राजगण ! मैंने पहिले ही मनसे यह जान लिया है, कि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने अधर्मसे तुमको निकाल बाहर किया है ॥ ७ ॥

तद्विदित्वास्मि संप्राप्तश्चिकीर्षुः परमं हितम् ।
न विषादोऽत्र कर्तव्यः सर्वमेतत्सुखाय वः ॥ ८ ॥

उसको जानकर मैं तुम्हारे परम मङ्गलके निमित्त यहां आया हूं ! तुम उस विषयमें दुःखी मत होओ, यह सब तुम्हारे सुखके लिये ही हो रहे हैं ॥ ८ ॥

समास्ते चैव मे सर्वे यूयं चैव न संशयः ।
दीनतो बालतश्चैव स्नेहं कुर्वन्ति बान्धवाः ॥ ९ ॥

इसमें सन्देह नहीं, कि धृतराष्ट्रके बेटे और तुम, दोनों पक्ष मेरे लिए समान स्नेहके पात्र हो, पर जो पक्ष दीन और बालक होता है, मानवलोग उस पर ही अधिक स्नेह प्रगट करते हैं ॥ ९ ॥

तस्मादभ्यधिकः स्नेहो युष्मासु मम सांप्रतम् ।
स्नेहपूर्वं चिकीर्षामि हितं वस्तन्निबोधत ॥ १० ॥

इस हेतु तुम पर इस समय मेरा अधिक स्नेह हो गया है । इसीसे स्नेहपूर्वक मैं तुम्हारा हित कार्य करना चाहता हूं, उसे तुम सुनो ॥ १० ॥

इदं नगरमभ्याशे रमणीयं निरामयम् ।
वसतेह प्रतिच्छन्ना ममागमनकाङ्क्षिणः ॥ ११ ॥

वह सामने सुन्दर विनारोगका नगर दीख पडता है, वहां मेरे लौटनेकी प्रतीक्षा करते हुए छिपकर रहो ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं स तान्समाश्वास्य व्यासः पार्थानरिंदमान् ।
एकचक्रामभिगतः कुन्तीमाश्वासयत्प्रभुः ॥ १२ ॥

वैशम्पायन बोले– धर्मात्मा प्रभु व्यास उन शत्रुनाशी पाण्डवोंको भली भांति ढाढस देकर संग लेकर उस एकचक्रा नगरीको गए और कुन्तीसे भी फिर समझा कर बोले ॥१२॥

जीव पुत्रि सुतस्तेऽयं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
पृथिव्यां पार्थिवान्सर्वान्प्रशासिष्यति धर्मराट् ॥ १३ ॥

हे बेटी ! जीती रहो, तेरा यह पुत्र धर्मशील धर्मराज युधिष्ठिर पृथ्वी भरके सब भूपोंपर शासन करेंगे ॥ १३ ॥

धर्मेण जित्वा पृथिवीमखिलां धर्मविद्वशी ।
भीमसेनार्जुनबलाद्भोक्ष्यत्ययमसंशयः ॥ १४ ॥

इसमें सन्देह नहीं है, कि वह भीमसेन और अर्जुनके भुजबलसे सागरतक सारी भूमण्डलको धर्मसे जीतकर यह धर्मज्ञ जितेन्द्रिय युधिष्ठिर भोग करेंगे ॥ १४ ॥

पुत्रास्तव च माद्रयाश्च सर्व एव महारथाः ।
स्वराष्ट्रे विहरिष्यन्ति सुखं सुमनसस्तदा ॥ १५ ॥

तुम्हारे सभी महारथी पुत्र और माद्रीके कुमारगण सदा अपने राज्यमें प्रसन्न मन होकर सुखसे आनन्द करेंगे ॥ १५ ॥

यक्ष्यन्ति च नरव्याघ्रा विजित्य पृथिवीमिमाम् ।
राजसूयाश्वमेधाद्यैः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ १६ ॥

यह राजसिंहगण धरतीमण्डलको जीतकर राजसूय और अश्वमेधादि अनेक प्रचुर दक्षिणायुक्त यज्ञ करेंगे ॥ १६ ॥

अनुगृह्य सुहृद्वर्गं धनेन च सुखेन च ।
पितृपैतामहं राज्यमिह भोक्ष्यन्ति ते सुताः ॥ १७ ॥

और भोग, ऐश्वर्य तथा सुखसे मित्रवर्गपर कृपा दिखाकर परम आनन्दपूर्वक पितामहका राज्य तेरे पुत्र भोगेंगे ॥ १७ ॥

एवमुक्त्वा निवेश्यैनान्ब्राह्मणस्य निवेशने ।
अब्रवीत्पार्थिवश्रेष्ठमृषिर्द्वैपायनस्तदा ॥ १८ ॥

महर्षि द्वैपायन यह कहकर उनको एक ब्राह्मणके घरमें बसाकर पाण्डव श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे बोले ॥ १८ ॥

इह मां संप्रतीक्षध्वमागमिष्याम्यहं पुनः ।
देशकालौ विदित्वैव वेत्स्यध्वं परमां मुदम् ॥ १९ ॥

तुम यहां मेरी प्रतीक्षा करो, मैं फिर आऊंगा । तुम देश कालको समझकर काम करते रहोगे, तो परम हर्ष प्राप्त करोगे ॥ १९ ॥

स तैः प्राञ्जलिभिः सर्वैस्तथेत्युक्तो नराधिप ।
जगाम भगवान्व्यासो यथाकाममृषिः प्रभुः ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥ ५०२१ ॥

हे नराधिप ! उन सबोंने हाथ जोड कर उनकी बात मान ली । अनन्तर भगवान् महर्षि व्यास इच्छानुसार पधारे ॥ २० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ चौवालिसवां अध्याय समाप्त ॥ १४४ ॥ ५०२१ ॥

: १४५ :

जनमेजय उवाच

एकचक्रां गतास्ते तु कुन्तीपुत्रा महारथाः ।
अतः परं द्विजश्रेष्ठ किमकुर्वत पाण्डवाः ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके बाद महारथी कुन्तीपुत्र पाण्डवोंने एकचक्रा नगरीमें रहकर क्या किया ? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

एकचक्रां गतास्ते तु कुन्तीपुत्रा महारथाः ।
ऊषुर्नातिचिरं कालं ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– महारथी कुन्तीपुत्र गण एकचक्रा नगरीमें जाकर ब्राह्मणके घर कुछ काल तक रहे ॥ २ ॥

रमणीयानि पश्यन्तो वनानि विविधानि च ।
पार्थिवानपि चोद्देशान्सरितश्च सरांसि च ॥ ३ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! उन दिनों वे नित्य नाना सुन्दर प्रदेश सरोवर और नदी देखते हुए ॥३॥

चेरुर्भैक्षं तदा ते तु सर्व एव विशां पते ।
बभूवुर्नागराणां च स्वैर्गुणैः प्रियदर्शनाः ॥ ४ ॥

वे सब, हे राजन् ! भिक्षावृत्तिसे वहां रहते थे। क्रमशः वे अपने गुणसे नगरवालोंके प्रिय बन गए ॥ ४ ॥

निवेदयन्ति स्म च ते भैक्षं कुन्त्याः सदा निशि ।
तया विभक्तान्भागांस्ते भुञ्जते स्म पृथक्पृथक् ॥ ५ ॥

वे दिनको जो भिक्षा पाते थे वे सब रातको कुन्तीके सामने रख देते थे और कुन्ती उनको उस भिक्षासे मिली हुई वस्तुको अलग अलग बांट देती थी, तब वे भोजन करते थे ॥५॥

अर्धं ते भुञ्जते वीराः सह मात्रा परंतपाः ।
अर्धं भैक्षस्य सर्वस्य भीमो भुङ्क्ते महाबलः ॥ ६ ॥

भिक्षासे जो कुछ मिल जाता था, उसका आधा भाग युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव और कुन्ती भोजन करते थे और सबका आधा भाग भीमसेन खा लेते थे ॥ ६ ॥

तथा तु तेषां वसतां तत्र राजन्महात्मनाम् ।
अतिचक्राम सुमहान्कालोऽथ भरतर्षभ ॥ ७ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! महात्मा पाण्डवोंके इस प्रकार उस राज्यमें वसते हुए बहुत काल बीत गया ॥ ७ ॥

ततः कदाचिद्भैक्षाय गतास्ते भरतर्षभाः ।
संगत्या भीमसेनस्तु तत्रास्ते पृथया सह ॥ ८ ॥

अनन्तर एकदिन युधिष्ठिर आदि सब भिक्षाको गये थे; दैववशसे भीमसेन भिक्षाको न जाकर कुन्तीके साथ घरमें ही थे ॥ ८ ॥

अथार्तिजं महाशब्दं ब्राह्मणस्य निवेशने ।
भृशमुत्पतितं घोरं कुन्ती शुश्राव भारत ॥ ९ ॥

अनन्तर कुन्तीने उस ब्राह्मणके घरसे रोनेकी बहुत ऊंची और दयापूर्ण आवाज उठती सुनी ॥ ९ ॥

रोरूयमाणांस्तान्सर्वान्परिदेवयतश्च सा ।
कारुण्यात्साधुभावाच्च देवी राजन्न चक्षमे ॥ १० ॥

हे राजन् ! कुन्ती उनको अत्यन्त रोते और विलपते देखकर अच्छे स्वभावके और दयाके कारण चुपचाप बैठी नहीं रह सकी ॥ १० ॥

मथ्यमानेव दुःखेन हृदयेन पृथा ततः ।
उवाच भीमं कल्याणी कृपान्वितमिदं वचः ॥ ११ ॥
तब दुःखसे हृदयके मथे जानेपर कल्याणी कुन्ती भीमसेनसे करुणा भरी बातोंमें बोली ॥ ११ ॥

वसामः सुसुखं पुत्र ब्राह्मणस्य निवेशने ।
अज्ञाता धार्तराष्ट्राणां सत्कृता वीतमन्यवः ॥ १२ ॥
बेटा ! हम लोग धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे छिपकर इस ब्राह्मणके घरमें सत्कार पाकर और शोकरहित होकर सुखसे रह रहे हैं ॥ १२ ॥

सा चिन्तये सदा पुत्र ब्राह्मणस्यास्य किं न्वहम् ।
प्रियं कुर्यामिति गृहे यत्कुर्युरुषिताः सुखम् ॥ १३ ॥
इससे मैं सदा इस सोचमें रहा करती हूं, जिसके घरमें बसते हैं, इस ब्राह्मणका उपकार कैसे करूं ? ॥ १३ ॥

एतावान्पुरुषस्तात कृतं यस्मिन्न नश्यति ।
यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्यादभ्यधिकं ततः ॥ १४ ॥
बेटा ! उपकार करनेसे जो उसके पलटेमें उपकार करता है, वही पुरुष है और जो जितना उपकार करता है, पलटेमें उसका उससे अधिक उपकार करना चाहिये ॥ १४ ॥

तदिदं ब्राह्मणस्यास्य दुःखमापतितं ध्रुवम् ।
तत्रास्य यदि साहाय्यं कुर्याम सुकृतं भवेत् ॥ १५ ॥
मुझको निश्चय जान पडता है, कि इस ब्राह्मणके घरमें कोई दुःख आ पडा है, उस दुःखके दूर करनेके लिये इनकी कुछ सहायता कर सकें, तो महान् उपकार होगा ॥ १५ ॥

भीम उवाच

ज्ञायतामस्य यद्दुःखं यतश्चैव समुत्थितम् ।
विदिते व्यवसिष्यामि यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ १६ ॥
भीम बोले— इस ब्राह्मणपर जिस कारण दुःख आ खडा हुआ है, उसे आप जान लेवें; मैं जान लेने पर कठिन भी हो, तो भी उसके दूर करनेका प्रयत्न करूंगा ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथा हि कथयन्तौ तौ भूयः शुश्रुवतुः स्वनम् ।
आर्तिजं तस्य विप्रस्य सभार्यस्य विशां पते ॥ १७ ॥
वैशम्पायन बोले— हे पृथ्वीनाथ ! वे इस प्रकार बात चीत कर रहे थे, कि उस समयमें फिर उस ब्राह्मण और ब्राह्मणी कि कातर रुलाईकी ध्वनि और ज्यादा सुन पडी ॥ १७ ॥

अन्तःपुरं ततस्तस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
विवेश कुन्ती त्वरिता बद्धवत्सेव सौरभी ॥ १८ ॥

अनन्तर कुन्ती वेगसे, कामधेनु अपने बछडेसे बंधे रहनेसे जिस प्रकार उसके पास जाती है, उसी प्रकार उस महात्मा ब्राह्मणके अन्तःपुरमें गई ॥ १८ ॥

ततस्तं ब्राह्मणं तत्र भार्यया च सुतेन च ।
दुहित्रा चैव सहितं ददर्श विकृताननम् ॥ १९ ॥

और स्त्री, पुत्र तथा कन्याके सहित ब्राह्मण महाराजको मलिन मुख किये हुए बैठे देखा ॥ १९ ॥

ब्राह्मण उवाच

धिगिदं जीवितं लोकेऽलनसारमनर्थकम् ।
दुःखमूलं पराधीनं भृशमप्रियभागि च ॥ २० ॥

ब्राह्मण बोले– यह संसार केवल दुःखकी जड, अन्याधीन और अति हानिकारी है; अतएव ऐसे व्यर्थ जीवन पर धिक्कार है ॥ २० ॥

जीविते परमं दुःखं जीविते परमो ज्वरः ।
जीविते वर्तमानस्य द्वन्द्वानामागमो ध्रुवः ॥ २१ ॥

देखो, जीनेमें परम दुःख और जीनेमें परम पीडा भोगनी पडती है, क्यों कि जीते हुए मनुष्यको निश्चय ही दुःख घेर लेता है ॥ २१ ॥

एकात्मापि हि धर्मार्थौ कामं च न निषेवते ।
एतैश्च विप्रयोगोऽपि दुःखं परमकं मतम् ॥ २२ ॥

एक ही आत्मा धर्म, अर्थ और काम, इन तीनोंकी एक दूसरेसे विना विरोध किये सेवा नहीं कर सकता है, और इनके बुरा प्रयोग होने ही से अनन्त दुःख आ पडता है ॥ २२ ॥

आहुः केचित्परं मोक्षं स च नास्ति कथंचन ।
अर्थप्राप्तौ च नरकः कृत्स्न एवोपपद्यते ॥ २३ ॥

कोई कोई पण्डित कहते हैं, कि मोक्ष ही श्रेष्ठ है; पर हम संसारके प्रेमी हैं, हमसे वह किसी प्रकार होनेकी संभावना नहीं है, फिर अर्थ पानेके विषयमें भी सब प्रकारसे दुःख भोगना पडता है ॥ २३ ॥

अर्थेप्सुता परं दुःखमर्थप्राप्तौ ततोऽधिकम् ।
जातस्नेहस्य चार्थेषु विप्रयोगे महत्तरम् ॥ २४ ॥

उपार्जनकी चाह बडी दुःखदायी होती है और उपार्जन हुआ भी तो और भी दुःख भोगना पडता है; क्योंकि प्राप्त किये हुए धन पर स्नेह बढ जाता है, अतः यदि किसी प्रकार वह अर्थ नष्ट हो जाए तो पूर्वोक्त दुःखसे भी अधिक दुःख घेर लेता है ॥ २४ ॥

न हि योगं प्रपश्यामि येन मुच्येयमापदः ।
पुत्रदारेण वा सार्धं प्राद्रवेयमनामयम् ॥ २५ ॥

ऐसा कोई उपाय भी नहीं दीखता, कि इस विपत्तिसे बचें; अथवा स्त्री पुत्र लेकर स्वस्थतासे कहीं भाग जावें ॥ २५ ॥

यतितं वै मया पूर्वं यथा त्वं वेत्थ ब्राह्मणि ।
यतः क्षेमं ततो गन्तुं त्वया तु मम न श्रुतम् ॥ २६ ॥

ब्राह्मणि ! स्मरण करके देखो, कि जहां जहां मङ्गल होना था, मैं वहां जानेका प्रयत्न किया करता था, उस समय तुम मेरी बात पर ध्यान नहीं देती थीं ॥ २६ ॥

इह जाता विवृद्धास्मि पिता चेह ममेति च ।
उक्तवत्यसि दुर्मेधे याच्यमाना मयासकृत् ॥ २७ ॥

वह कुबुद्धि तुम्हारी ही है, कि जब कि मेरे वार वार अन्य स्थानमें जानेको चाहने पर भी तुमने कहा था, कि " यह मेरी पैत्रिक भूमि है, यहां मै जन्म लेकर बुढिया हुयी हूं, इस-को त्याग नहीं सकती " ॥ २७ ॥

स्वर्गतो हि पिता वृद्धस्तथा माता चिरं तव ।
बान्धवा भूतपूर्वाश्च तत्र वासे तु का रतिः ॥ २८ ॥

प्यारी ! तुम्हारे पिता, माता और पहिलेके बान्धवोंके स्वर्ग पाने पर बहुत दिन बीत गये थे, उस पर भी क्यों तुमने यहां वसना चाहा था ? ॥ २८ ॥

सोऽयं ते बन्धुकामाया अशृण्वन्त्या वचो मम ।
बन्धुप्रणाशः संप्राप्तो भृशं दुःखकरो मम ॥ २९ ॥

तुमने जिस प्रकार बन्धुकी कामनासे मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया था, वैसे ही अब तुम्हारे बन्धुनाशका समय आ पहुंचा है, इससे मुझको बडा दुःख हो रहा है ॥ २९ ॥

अथवा मद्विनाशोऽयं न हि शक्ष्यामि कंचन ।
परित्यक्तुमहं बन्धुं स्वयं जीवन्नृशंसवत् ॥ ३० ॥

अपितु, इस समय मेरा ही नाश उपस्थित हुआ है; क्योंकि मैं नृशंसके समान स्वयं जीता रहकर किसी प्रकार बन्धुको त्याग नहीं सकूंगा ॥ ३० ॥

सहधर्मचरीं दान्तां नित्यं मातृसमां मम ।
सखायं विहितां देवैर्नित्यं परामिकां गतिम् ॥ ३१ ॥

तुम मेरी सहधर्मचारिणी, नित्य माताके समान स्नेहकरनेवाली, गुणवती और परम गति हुई हो, देवोंने तुम्हें मेरी मित्र निश्चय कर दिया है ॥ ३१ ॥

मात्रा पित्रा च विहितां सदा गार्हस्थ्यभागिनीम् ।
वरयित्वा यथान्यायं मन्त्रवत्परिणीय च ॥ ३२ ॥
कुलीनां शीलसंपन्नामपत्यजननीं मम ।
त्वामहं जीवितस्यार्थे साध्वीमनपकारिणीम् ।
परित्यक्तुं न शक्ष्यामि भार्यां नित्यमनुव्रताम् ॥ ३३ ॥

पिता माताने तुमको मेरे गार्हस्थ्य आश्रमका धर्मभागिनी बनाया है, विधिके अनुसार चुनकर और मंत्रानुसार विवाह कराकर और तुम कुलीना, शीलवती, सन्तानकी जननी साध्वी, श्रमकारिणी और सदा व्रतशीला भार्याको इस समय अपने जीवनकी रक्षाके हेतु कैसे त्याग सकता हूँ ? ॥ ३२-३३ ॥

कुत एवं परित्यक्तुं सुतां शक्ष्याम्यहं स्वयम् ।
बालामप्राप्तवयसमजातव्यञ्जनाकृतिम् ॥ ३४ ॥

फिर जिस बालककी आजतक दाढी मूंछ नहीं निकली है, ऐसे अल्प अवस्थाके पुत्रहीको मैं स्वयं कैसे त्याग दे सकूंगा ? ॥ ३४ ॥

भर्तुरर्थाय निक्षिप्तां न्यासं धात्रा महात्मना ।
यस्यां दौहित्रजाँल्लोकानाशंसे पितृभिः सह ।
स्वयमुत्पाद्य तां बालां कथमुत्स्रष्टुमुत्सहे ॥ ३५ ॥

महात्मा विधाताने सुयोग्य भर्ताके हाथमें सौंपनेके लिये जिस कन्याको धरोहरके रूपसे मेरे पास रख दिया है, जिस कन्यासे मैं पितरोंके साथ दौहित्रज लोकके पानेकी आशा रखता हूं, उस बालिकाको जन्म देकर स्वयं त्याग देनेको कैसे उद्यत होऊं ? ॥ ३५ ॥

मन्यन्ते केचिदधिकं स्नेहं पुत्रे पितुर्नराः ।
कन्यायां नैव तु पुनर्मम तुल्यावुभौ मतौ ॥ ३६ ॥

कोई कहा करते हैं, कि पिताका पुत्र ही पर अधिक स्नेह होता है, और कन्यापर नहीं। पर मेरे लिये दोनों समान हैं ॥ ३६ ॥

यस्मिँल्लोकाः प्रसूतिश्च स्थिता नित्यमथो सुखम् ।
अपापां तामहं बालां कथमुत्स्रष्टुमुत्सहे ॥ ३७ ॥

जिससे सुगति मिलती है, जिससे वंशकी रक्षा होती है, और जिससे नित्य सुख मिलता है, उस पापकी छूतसे रहित बालिकाको त्याग देनेका कैसे साहस करूं ? ॥ ३७ ॥

आत्मानमपि चोत्सृज्य तप्स्ये प्रेतवशं गतः ।
त्यक्ता ह्येते मया व्यक्तं नेह शक्ष्यन्ति जीवितुम् ॥ ३८ ॥

मैं यदि अपने जीवनकी बलि चढाके परलोकको सिधारूं, तो भी दुःखी होऊंगा; क्योंकि इनको छोडकर चले जानेसे यह कभी जी नहीं सकेंगे ॥ ३८ ॥

एषां चान्यतमत्यागो नृशंसो गर्हितो बुधैः ।
आत्मत्यागे कृते चेमे मरिष्यन्ति मया विना ॥ ३९ ॥

इनमेंसे किसी एकको भी त्याग देना बडा अनुचित और निष्ठुर काम होगा; और अपना जीवन त्यागनेसे भी यह मेरे बिना मर जाएंगे ॥ ३९ ॥

स कृच्छ्रामहमापन्नो न शक्तस्तर्तुमापदम् ।
अहो धिक्तां गतिं त्वद्य गमिष्यामि सबान्धवः ।
सर्वैः सह मृतं श्रेयो न तु मे जीवितं क्षमम् ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥ ५०६१ ॥

अतएव मैं गहरी विपत्तिमें पडा हूं। इस विपत्तिसे बचनेका उपाय नहीं दीखता ! अहो, मुझपर धिक्कार है ! आज परिवार सहित जीवन छोडना ही मेरे लिये मङ्गलदायी है; मेरा जीवित रहना कभी उचित नहीं है ॥ ४० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ पैंतालिसवां अध्याय समाप्त ॥ १४५ ॥ ॥ ५०६१ ॥

: १४६ :

ब्राह्मण्युवाच

न संतापस्त्वया कार्यः प्राकृतेनेव कर्हिचित् ।
न हि संतापकालोऽयं वैद्यस्य तव विद्यते ॥ १ ॥

ब्राह्मणी बोली– हे ब्राह्मण ! साधारण मनुष्यकी भांति शोक करना कदापि आपको नहीं सोहता है; क्योंकि आप विद्वान् हैं, अतः दुःख करनेका समय नहीं है ॥ १ ॥

अवश्यं निधनं सर्वैर्गन्तव्यमिह मानवैः ।
अवश्यभाविन्यर्थे वै संतापो नेह विद्यते ॥ २ ॥

भूमण्डल परके सब लोगोंको अवश्य ही मरना पडेगा, अतएव अवश्य होनेवाले विषयके लिए दुःख करना उचित नहीं है ॥ २ ॥

भार्या पुत्रोऽथ दुहिता सर्वमात्मार्थमिष्यते ।
व्यथां जहि सुबुद्ध्या त्वं स्वयं यास्यामि तत्र वै ॥ ३ ॥

लोग अपने सुखके लिये ही स्त्री, पुत्र, कन्या, इन सबोंकी प्रार्थना करते हैं, अतएव अपनी सुबुद्धिसे मनःपीडा त्याग दो, मैं स्वयं वहां जाऊंगी ॥ ३ ॥

एतद्धि परमं नार्याः कार्यं लोके सनातनम् ।
प्राणानपि परित्यज्य यद्भर्तृहितमाचरेत् ॥ ४ ॥

संसारमें नारीके लिये सनातन धर्म यही है, कि वह प्राण दे करके भी पतिका हित करे ॥ ४ ॥

तच्च तत्र कृतं कर्म तवापीह सुखावहम् ।
भवत्यमुत्र चाक्षय्यं लोकेऽस्मिंश्च यशस्करम् ॥ ५ ॥

अतएव उस कर्मके किये जानेपर वह इस लोकमें यश देनेवाला और परलोकमें अक्षय तथा आपके लिए भी सुखदायी होगा ॥ ५ ॥

एष चैव गुरुर्धर्मो यं प्रवक्ष्याम्यहं तव ।
अर्थश्च तव धर्मश्च भूयानत्र प्रदृश्यते ॥ ६ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं जो तुमसे कहती हूं, वह श्रेष्ठ धर्म है; ऐसा करनेसे आपके लिये भी प्रचुर धर्म और अर्थ प्राप्त होगा ॥ ६ ॥

यदर्थमिष्यते भार्या प्राप्तः सोऽर्थस्त्वया मयि ।
कन्या चैव कुमारश्च कृताहमनृणा त्वया ॥ ७ ॥

जिस अभिप्रायसे स्त्रीकी प्रार्थना की जाती है, वह अभिप्राय मुझसे आपको सिद्ध हो गया है; मैं आपसे पुत्र और कन्या प्रसव कर उऋण हो चुकी हूं ॥ ७ ॥

समर्थः पोषणे चासि सुतयो रक्षणे तथा ।
न त्वहं सुतयोः शक्ता तथा रक्षणपोषणे ॥ ८ ॥

आप इस पुत्र और कन्याके पालने पोषने और देखने भालनेमें समर्थ हैं; मुझसे वह भली प्रकार सिद्ध होना कदापि संभव नहीं है ॥ ८ ॥

मम हि त्वद्विहीनायाः सर्वकामा न आपदः ।
कथं स्यातां सुतौ बालौ भवेयं च कथं त्वहम् ॥ ९ ॥

आपके न रहनेपर मेरे ऊपर भी आपत्तियां टूट पड़ेंगी और आपके न रहनेसे दो शिशु सन्तान भी कैसे जी सकेंगी ? ॥ ९ ॥

कथं हि विधवानाथा बालपुत्रा विना त्वया ।
मिथुनं जीवयिष्यामि स्थिता साधुगते पथि ॥ १० ॥

आपके विना मैं विधवा और अनाथ होकर जीती रहनेपर भी सुपथमें रहकर इन दो बच्चोंको कैसे जिला सकूंगी ? ॥ १० ॥

अहंकृतावलिप्तैश्च प्रार्थ्यमानामिमां सुताम् ।
अयुक्तैस्तव संबन्धे कथं शक्ष्यामि रक्षितुम्　　　॥ ११ ॥

आपके कुलके साथ वैवाहिक सम्बन्धके अयोग्य कलङ्कित और गर्वित जन यदि आपकी इस पुत्रीकी प्रार्थना करें, तो मैं उसकी रक्षा कैसे कर सकूंगी ? ॥ ११ ॥

उत्सृष्टमामिषं भूमौ प्रार्थयन्ति यथा खगाः ।
प्रार्थयन्ति जनाः सर्वे वीरहीनां तथा स्त्रियम्　　　॥ १२ ॥

जिस प्रकार पक्षी जमीन पर पडे हुए मांसको चाहते हैं, वैसे ही मनुष्यगण पतिहीना रमणीकी कामना करते हैं ॥ १२ ॥

साहं विचाल्यमाना वै प्रार्थ्यमाना दुरात्मभिः ।
स्थातुं पथि न शक्ष्यामि सज्जनेष्टे द्विजोत्तम　　　॥ १३ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरे पतिहीना होनेसे दुरात्मा लोग मेरी कामना कर मेरे चित्तको चंचल बना सकते हैं, ऐसा होनेसे मैं साधुओंके अभीष्ट पथमें कैसे रह सकूंगी ! ॥ १३ ॥

कथं तव कुलस्यैकामिमां बालामसंस्कृताम् ।
पितृपैतामहे मार्गे नियोक्तुमहमुत्सहे　　　॥ १४ ॥

और आपके वंशकी एक ही कन्या इस निर्दोषी बालाको पितृ पितामहोंके पथमें कैसे लगा सकूंगी ! ॥ १४ ॥

कथं शक्ष्यामि बालेऽस्मिन्गुणानाधातुमीप्सितान् ।
अनाथे सर्वतो लुप्ते यथा त्वं धर्मदर्शिवान्　　　॥ १५ ॥

और फिर उस पूरे अभावके कालमें इस पितृहीन अनाथ बालकको आप जैसे धर्मज्ञ योग्य वाञ्छित विद्या कैसे पढा सकूंगी ? ॥ १५ ॥

इमामपि च ते बालामनाथां परिभूय माम् ।
अनर्हाः प्रार्थयिष्यन्ति शूद्रा वेदश्रुतिं यथा　　　॥ १६ ॥

अयोग्य जन, मुझको हरा कर, शूद्रोंके वेद सुनानेकी प्रार्थनाके सदृश इस अनाथ बालाको मांगेंगे ॥ १६ ॥

तां चेदहं न दित्सेयं त्वद्गुणैरुपबृंहिताम् ।
प्रमथ्यैनां हरेयुस्ते हविर्ध्वाङ्क्षा इवाध्वरात्　　　॥ १७ ॥

उसपर आपके गुणोंसे सुहावनी इस कन्याको यदि मैं अयोग्य वरको न देना चाहूं, तो कौआ जैसे यज्ञकी वस्तु लूट खाता है, वैसे ही वे लूट कर इसको बलपूर्वक हर ले जायेंगे ॥ १७ ॥

×

संप्रेक्षमाणा पुत्रं ते नानुरूपमिवात्मनः ।
अनर्हवशमापन्नामिमां चापि सुतां तव ॥ १८ ॥

हे ब्रह्मन् ! आपके पुत्रको आपके असदृश होते और आपकी कन्याको अयोग्य जनके वशमें जाते देखकर ॥ १८ ॥

अवज्ञाता च लोकस्य तथात्मानमजानती ।
अवलिप्तैर्नरैर्ब्रह्मन्मरिष्यामि न संशयः ॥ १९ ॥

अपनेको न जानती हुई तथा संसारमें अपमानित होकर इसमें सन्देह नहीं है, कि मैं प्राण छोड दूंगी ॥ १९ ॥

तौ विहीनौ मया बालौ त्वया चैव ममात्मजौ ।
विनश्येतां न सन्देहो मत्स्याविव जलक्षये ॥ २० ॥

अब कुछ भी सन्देह नहीं कि आपके और मेरे बिना यह दो बच्चे बिना जलकी मछलीकी भांति प्राण छोड देंगे ॥ २० ॥

त्रितयं सर्वथाप्येवं विनशिष्यत्यसंशयम् ।
त्वया विहीनं तस्मात्त्वं मां परित्यक्तुमर्हसि ॥ २१ ॥

अतएव, समझ लें कि आपके न रहनेसे मैं और दो बच्चे इन तीनोंहीके जीवन नष्ट हो जाएंगे अतः मेरी समझमें मुझको त्याग देना ही आपको उचित है ॥ २१ ॥

व्युष्टिरेषा परा स्त्रीणां पूर्वं भर्तुः परा गतिः ।
न तु ब्राह्मण पुत्राणां विषये परिवर्तितुम् ॥ २२ ॥

स्त्रियां यदि पतिके पहिले परलोकको सिधारें, तो वह उनके लिये बडा भारी सौभाग्य है। हे ब्राह्मण ! पुत्रोंके बारेमें बदल जाना ठीक नहीं ॥ २२ ॥

परित्यक्तः सुतश्चायं दुहितेयं तथा मया ।
बान्धवाश्च परित्यक्तास्त्वदर्थं जीवितं च मे ॥ २३ ॥

मैं आपके हितके लिये यह पुत्र, यह कन्या, बान्धव और जीवन सब त्यागनेको उद्यत हुई हूं ॥ २३ ॥

यज्ञैस्तपोभिर्नियमैर्दानैश्च विविधैस्तथा ।
विशिष्यते स्त्रिया भर्तुर्नित्यं प्रियहिते स्थितिः ॥ २४ ॥

स्त्रियोंके लिये नाना यज्ञ, तप, नियम और दान इन सब कामोंकी अपेक्षा सदा पतिका प्रिय और हित करना ही अधिक फलदायी है ॥ २४ ॥

तदिदं यच्चिकीर्षामि धर्म्यं परमसंमतम् ।
इष्टं चैव हितं चैव तव चैव कुलस्य च ॥ २५ ॥

अतः मैं जो कुछ करना चाहती हूँ, वही इष्ट परमधर्म और आपके तथा आपके वंशका मंगल करनेवाला है ॥ २५ ॥

इष्टानि चाप्यपत्यानि द्रव्याणि सुहृदः प्रियाः
आपद्धर्मविमोक्षाय भार्या चापि सतां मतम् ॥ २६ ॥

पण्डितोंका मत यह है, कि स्त्री, पुत्र, प्यारे मित्र और धन अथवा चाहे जितनी इष्ट वस्तु भी क्यों न हो, वह सब विपत्तिसे बचनेके लिये होती हैं ॥ २६ ॥

एकतो वा कुलं कृत्स्नमात्मा वा कुलवर्धन ।
न समं सर्वमेवेति बुधानामेष निश्चयः ॥ २७ ॥

हे कुलको बढानेवाले ! एक ओर सम्पूर्ण कुलको और दूसरी ओर आत्माको रखकर तौलनेसे, सम्पूर्ण कुल भी आत्माके समान नहीं होते ॥ २७ ॥

स कुरुष्व मया कार्यं तारयात्मानमात्मना ।
अनुजानीहि मामार्य सुतौ मे परिरक्ष च ॥ २८ ॥

अतएव, हे आर्य ! आप मुझसे काम पूरा कर लीजिये। बुद्धिके द्वारा अपनी रक्षा कीजिये, मुझको जानेकी आज्ञा दीजिये; आप इन दोनों सन्तानोंका पालन कीजिए ॥ २८ ॥

अवध्याः स्त्रिय इत्याहुर्धर्मज्ञा धर्मनिश्चये ।
धर्मज्ञान्राक्षसानाहुर्न हन्यात्स च मामपि ॥ २९ ॥

धर्मका निश्चय करते हुए धर्म जाननेवालोंने कहा है, कि स्त्रियोंका वध नहीं करना चाहिये और राक्षस लोग भी धर्मके जानकार होते हैं, अतः वह राक्षस मुझको न मारकर छोड भी दे सकता है ॥ २९ ॥

निःसंशयो वधः पुंसां स्त्रीणां संशयितो वधः ।
अतो मामेव धर्मज्ञ प्रस्थापयितुमर्हसि ॥ ३० ॥

हे धर्मज्ञ ! जब कि वहां पुरुषका वध निश्चित है और स्त्रीके वधके विषयमें सन्देह है, तब मुझको ही भेजना आपके लिए योग्य है ॥ ३० ॥

भुक्तं प्रियाण्यवाप्तानि धर्मश्च चरितो मया ।
त्वत्प्रसूतिः प्रिया प्राप्ता न मां तप्स्यत्यजीवितम् ॥ ३१ ॥

मैंने बहुत सुख प्राप्त कर लिया है, मेरे बहुत कुछ प्रियकार्य हो गये हैं, मैंने बहुत धर्मार्जन भी किया है, और आपसे प्यारी सन्तान भी पाचुकी हूं, अब जीवन छोडनेमें मुझे दुःख नहीं है ॥ ३१ ॥

जातपुत्रा च वृद्धा च प्रियकामा च ते सदा।
समीक्ष्यैतदहं सर्वं व्यवसायं करोम्यतः ॥ ३२ ॥

मेरी सन्तानें हो चुकी हैं, मैं बूढी हो गयी हूं, और आपके प्रिय कार्य करनेमें सदासे मेरी इच्छा रही है, इन सबोंकी विवेचना करके ही मैंने ऐसा निश्चय किया है ॥ ३२ ॥

उत्सृज्यापि हि मामार्य वेत्स्यस्यन्यामपि स्त्रियम्।
ततः प्रतिष्ठितो धर्मो भविष्यति पुनस्तव ॥ ३३ ॥

हे आर्य ! आप मुझको त्यागकर दूसरी स्त्री भी पा सकेंगे, ऐसा करनेसे आपका धर्म भी फिर प्रतिष्ठित हो जाएगा ॥ ३३ ॥

न चाप्यधर्मः कल्याण बहुपत्नीकृता नृणाम्।
स्त्रीणामधर्मः सुमहान्भर्तुः पूर्वस्य लङ्घने ॥ ३४ ॥

हे मङ्गलमय ! पुरुषके अधिक स्त्री कर लेनेसे भी अधर्म नहीं होता। पर स्त्रीके पूर्वपतिको छोडकर अन्य पुरुषके वशमें जानेसे बडा अधर्म होता है ॥ ३४ ॥

एतत्सर्वं समीक्ष्य त्वमात्मत्यागं च गर्हितम्।
आत्मानं तारय मया कुलं चेमौ च दारकौ ॥ ३५ ॥

आप इन सब बातोंपर भली प्रकार विचार करके और अपना नाश करना अनुचित मानकर अपने कुल, इन दो बच्चे और आत्माकी मेरे द्वारा रक्षा कीजिए ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तया भर्ता तां समालिङ्ग्य भारत।
मुमोच बाष्पं शनकैः सभार्यो भृशदुःखितः ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥ ५०९७ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत ! वह ब्राह्मण ब्राह्मणीकी यह बातें सुनकर उसको गले लगाकरके उसके साथ अति दुःखी चित्तसे आंसू बहाने लगा ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ छियालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४६ ॥ ५०९७ ॥

: १४७ :

वैशम्पायन उवाच

तयोर्दुःखितयोर्वाक्यमतिमात्रं निशम्य तत् ।
भृशं दुःखपरीताङ्गी कन्या तावभ्यभाषत ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— तब कन्या उन दुःखी पितामाताकी बात आद्योपान्त सुनकर बहुत दुःखी होकर उनसे बोली ॥ १ ॥

किमिदं भृशदुःखार्तौ रोरवीथो अनाथवत् ।
ममापि श्रूयतां किंचिच्छ्रुत्वा च क्रियतां क्षमम् ॥ २ ॥

आप अति दुःखी होकर अनाथके समान क्यों रो रहे हैं ? अतः मेरी बात भी सुनें और सुनकर जो उचित हो, करें ॥ २ ॥

धर्मतोऽहं परित्याज्या युवयोर्नात्र संशयः ।
त्यक्तव्यां मां परित्यज्य त्रातं सर्वं मयैकया ॥ ३ ॥

इसमें सन्देह नहीं है, कि आप धर्मके अनुसार मुझको कभी न कभी अवश्य त्याग देंगे, अतः अवश्य छोडी जानेवाली मुझको अब त्यागकर मुझ एकके द्वारा सबकी रक्षा करें ॥३॥

इत्यर्थमिष्यतेऽपत्यं तारयिष्यति मामिति ।
तस्मिन्नुपस्थिते काले तरतं प्लववन्मया ॥ ४ ॥

"सन्तान मुझे तार देगी" ऐसा समझ करके ही लोग सन्तानकी कामना करते हैं; अतएव आप मुझ कन्यारूपी नावसे वर्तमान विपत्तिके समुद्रको पार करें ॥ ४ ॥

इह वा तारयेद्दुर्गादुत वा प्रेत्य तारयेत् ।
सर्वथा तारयेत्पुत्रः पुत्र इत्युच्यते बुधैः ॥ ५ ॥

पुत्र पिताको चाहे इस लोकमें दुःखसे तारे, चाहे परलोकमें दुःखसे तारे, पर वह दुःखसे तारता अवश्य है, इसीलिए वह बुद्धिमानोंके द्वारा "पुत्र" कहा जाता है ॥ ५ ॥

आकाङ्क्षन्ते च दौहित्रानपि नित्यं पितामहाः ।
तान्स्वयं वै परित्रास्ये रक्षन्ती जीवितं पितुः ॥ ६ ॥

पितृलोकोंके उद्धारके निमित्त ही दादा नातीकी आशा करते हैं, पर मैं नातीकी अपेक्षा न करके स्वयं पिताका जीवन बचा कर उनका उद्धार करूंगी ॥ ६ ॥

भ्राता च मम बालोऽयं गते लोकममुं त्वयि ।
अचिरेणैव कालेन विनश्येत न संशयः ॥ ७ ॥

हे पिता ! यदि आप परलोकको सिधार जायेंगे तो इसमें सन्देह नहीं है, कि मेरा यह शिशु भाई स्वल्प कालहीमें नष्ट हो जायगा ॥ ७ ॥

तातेऽपि हि गते स्वर्गं विनष्टे च ममानुजे ।
पिण्डः पितॄणां व्युच्छिद्येत्तत्तेषामप्रियं भवेत् ॥ ८ ॥

आपके स्वर्ग चले जानेपर और भाईके न रहनेसे पितरोंका पिण्ड लुप्त हो जाएगा और उससे उनका बडा अनिष्ट होगा ॥ ८ ॥

पित्रा त्यक्ता तथा मात्रा भ्रात्रा चाहमसंशयम् ।
दुःखाद्दुःखतरं प्राप्य म्रियेयमतथोचिता ॥ ९ ॥

और मैं तब पिता, माता और भ्राताके बिना बडी दुःखी हो जाऊंगी और मैं तब अत्यन्त कठोर दुःख पाकर मृत्युके योग्य न होनेपर भी मृत्युके वशमें हो जाऊंगी ॥ ९ ॥

त्वयि त्वरोगे निर्मुक्ते माता भ्राता च मे शिशुः ।
सन्तानश्चैव पिण्डश्च प्रतिष्ठास्यत्यसंशयम् ॥ १० ॥

आपके स्वस्थ होकर इस विपत्तिसे मुक्त होनेसे माता, और मेरा छोटा भाई, वंश पितरोंको दिए जानेवाले पिण्ड सभी निस्सन्देह रक्षित रहेंगे ॥ १० ॥

आत्मा पुत्रः सखा भार्या कृच्छ्रं तु दुहिता किल ।
स कृच्छ्रान्मोचयात्मानं मां च धर्मेण योजय ॥ ११ ॥

पुत्र अपनी आत्माका स्वरूप, स्त्री मित्रका स्वरूप और कन्या कष्टका स्वरूप है । अतः कष्टके स्वरूप कन्याके द्वारा स्वयंको विपत्तिसे छुडावें और मुझको धर्ममें नियुक्त करें ॥ ११ ॥

अनाथा कृपणा बाला यत्रक्वचनगामिनी ।
भविष्यामि त्वया तात विहीना कृपणा बत ॥ १२ ॥

हे पिता ! मैं एक दीन बालिका हूं, अतः आपके बिना अनाथ और दीन होकर इधर उधर भटकनेवाली हो जाऊंगी ॥ १२ ॥

अथवाहं करिष्यामि कुलस्यास्य विमोक्षणम् ।
फलसंस्था भविष्यामि कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ १३ ॥

अतः मैं इस कुलकी आपत्तिसे छुडानेवाली बनूंगी । और मैं इस कठिन कामको करके कुलकी रक्षा करूंगी ॥ १३ ॥

अथवा यास्यसे तत्र त्यक्त्वा मां द्विजसत्तम ।
पीडिताहं भविष्यामि तदवेक्षस्व मामपि ॥ १४ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! यदि आप मुझे छोडकर उस राक्षसके पास जायेंगे, तो मैं बडी दुःखी हो जाऊंगी, अतएव मुझ पर कृपादृष्टि करें ॥ १४ ॥

तदस्मदर्थं धर्मार्थं प्रसवार्थं च सत्तम ।
आत्मानं परिरक्षस्व त्यक्तव्यां मां च संत्यज ॥ १५ ॥

हे श्रेष्ठ ! हमको, धर्म और वंशको बचानेके लिये अपनी रक्षा करें और त्यागी जाने योग्य मुझको छोड दीजिए ॥ १५ ॥

अवश्यकरणीयेऽर्थे मा त्वां कालोऽत्यगादयम् ।
त्वया दत्तेन तोयेन भविष्यति हितं च मे ॥ १६ ॥

अवश्य किये जानेवाले कामके लिये काल गंवाना उचित नहीं है । आपके द्वारा दिए गए जलसे ही मेरा कल्याण होगा ॥ १६ ॥

किं न्वतः परमं दुःखं यद्वयं स्वर्गते त्वयि ।
याचमानाः परादन्नं परिधावेमहि श्ववत् ॥ १७ ॥

इससे अधिक दुःखकी बात और क्या होगी, कि आपके स्वर्गको सिधार जाने पर हम सदा दूसरोंसे अन्न मांगते हुए कुत्तोंके समान इधर उधर भटकेंगे ॥ १७ ॥

त्वयि त्वरोगे निर्मुक्ते क्लेशादस्मात्सबान्धवे ।
अमृते वसती लोके भविष्यामि सुखान्विता ॥ १८ ॥

और आपके बान्धवोंके समेत इस दुःखसे मुक्त और स्वस्थ होनेसे मैं अमर लोकमें रहती हुई सुखसे युक्त हो सकूंगी ॥ १८ ॥

एवं बहुविधं तस्या निशम्य परिदेवितम् ।
पिता माता च सा चैव कन्या प्ररुरुदुस्त्रयः ॥ १९ ॥

उस कन्याकी इस प्रकारकी नाना दुःखभरी बातें सुनकर पिता, माता और वह कन्या तीनों रोने लगे ॥ १९ ॥

ततः प्ररुदितान्सर्वान्निशम्याथ सुतस्तयोः ।
उत्फुल्लनयनो बालः कलमव्यक्तमब्रवीत् ॥ २० ॥

तब उनका बालक पुत्र उन सबोंको रोते देखकर प्रसन्न नेत्र और हंसते हुए मुखसे मीठी और तोतली बोलीमें कहने लगा ॥ २० ॥

मा रोदीस्तात मा मातर्मा स्वसस्त्वमिति ब्रुवन् ।
प्रहसन्निव सर्वांस्तानेकैकं सोपसर्पति ॥ २१ ॥

हे पिता ! मत रोओ । हे माता ! मत रो । बहिन ! मत रो । यह कहता हुआ हंसकर वह उनमेंसे हरेकके पास गया ॥ २१ ॥

ततः स तृणमादाय प्रहृष्टः पुनरब्रवीत् ।
अनेन तं हनिष्यामि राक्षसं पुरुषादकम् ॥ २२ ॥

और एक तिनका उठाकर आनन्दसे फिर बोला, कि इससे मैं उस मनुष्यभक्षी राक्षसको मारूंगा ॥ २२ ॥

तथापि तेषां दुःखेन परीतानां निशम्य तत् ।
बालस्य वाक्यमव्यक्तं हर्षः समभवन्महान् ॥ २३ ॥

उसके पिता, माता और बहिन यद्यपि दुःखसे कातर थे, तो भी उस समय उस बालककी अस्पष्ट बात सुनकर उनको बडा हर्ष हुआ ॥ २३ ॥

अयं काल इति ज्ञात्वा कुन्ती समुपसृत्य तान् ।
गतासूनमृतेनेव जीवयन्तीदमब्रवीत् ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४७॥ ५१२१॥

तब कुन्ती यह समझकर, कि " यह समय है " उनके निकट जा पहुंची । और मरे हुओंको अमृतसे जिलानेकी भांति उनसे कहने लगी ॥ २४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ सैंतालिसवां अध्याय समाप्त ॥ १४७ ॥ ५१२१ ॥

: १४८ :

कुन्त्युवाच

कुतोमूलमिदं दुःखं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ।
विदित्वा अपकर्षेयं शक्यं चेदपकर्षितुम् ॥ १ ॥

कुन्ती बोली– मैं सच सच जानना चाहती हूं, कि ऐसे दुःखका कारण क्या है ? क्योंकि जानकर यदि उसे दूर करनेका उपाय बन पडेगा, तो अवश्य दूर करूंगी ॥ १ ॥

ब्राह्मण उवाच

उपपन्नं सतामेतद्यद्ब्रवीषि तपोधने ।
न तु दुःखमिदं शक्यं मानुषेण व्यपोहितुम् ॥ २ ॥

ब्राह्मण बोले– हे तपोधने ! तुम जो कहती हो, वह सज्जनोंके योग्य ही है; पर यह दुःख दूर करना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है ॥ २ ॥

समीपे नगरस्यास्य बको वसति राक्षसः ।
ईशो जनपदस्यास्य पुरस्य च महाबलः ॥ ३ ॥

इस नगरके निकट बक नामक एक महाबली राक्षस रहता है; वह इस नगर और प्रदेशका अधीश है ॥ ३ ॥

पुष्टो मानुषमांसेन दुर्बुद्धिः पुरुषादकः ।
रक्षत्यसुरराण्नित्यमिमं जनपदं बली ॥ ४ ॥

मनुष्यके मांससे पुष्ट, बलवान् और दुष्ट बुद्धिवाला वह मनुष्यभक्षी असुरराज सदा इस नगरकी रक्षा किया करता है ॥ ४ ॥

नगरं चैव देशं च रक्षोबलसमन्वितः ।
तत्कृते परचक्राच्च भूतेभ्यश्च न नो भयम् ॥ ५ ॥

इस नगर और देशके राक्षसी बलसे रक्षित होनेके कारण अन्य देश वा किसी प्राणीसे हमें भय नहीं है ॥ ५ ॥

वेतनं तस्य विहितं शालिवाहस्य भोजनम् ।
महिषौ पुरुषश्चैको यस्तदादाय गच्छति ॥ ६ ॥

एक गाडी अन्न और दो भैंसे और वह मनुष्य जो उन्हें ले जाता है, यह सब उस राक्षसके भोजनके लिये वेतनके स्वरूपमें निर्दिष्ट हैं ॥ ६ ॥

एकैकश्चैव पुरुषस्तत्प्रयच्छति भोजनम् ।
स वारो बहुभिर्वर्षैर्भवत्यसुतरो नरैः ॥ ७ ॥

इस देशका हरेक गृहस्थ अपनी अपनी बारीसे एक एक दिनके हिसाबसे नित्य वह भोजन पहुंचाता है । बहुत वर्षोंके बाद एक एक गृहस्थके लिये यह कठोर बारी आती है ॥ ७ ॥

तद्विमोक्षाय ये चापि यतन्ते पुरुषाः क्वचित् ।
सपुत्रदारांस्तान्हत्वा तद्रक्षो भक्षयत्युत ॥ ८ ॥

यदि कभी कोई पुरुष इससे बचनेकी चेष्टा करता है, तो वह राक्षस स्त्री पुत्रोंके साथ उसको मारकर खा जाता है ॥ ८ ॥

वेत्रकीयगृहे राजा नायं नयमिहास्थितः ।
अनामयं जनस्यास्य येन स्यादद्य शाश्वतम् ॥ ९ ॥

इस स्थलमें वेत्रकीय गृह नामक स्थानमें एक राजा है, वह राजा नीतिज्ञ नहीं है, वह कोई ऐसा उपाय नहीं करता कि इन सब लोगोंके लिये सदा कुशल हो जाये ॥ ९ ॥

एतदर्हा वयं नूनं वसामो दुर्बलस्य ये ।
विषये नित्यमुद्विग्नाः कुराजानमुपाश्रिताः ॥ १० ॥

हम लोग जब उस दुर्बल बुरे राजाके भरोसे सदा भयभीत होकरके भी उसके अधिकारमें रहते हैं, तब अवश्य ही इस दुःखके भोगनेके योग्य हैं ॥ १० ॥

×

ब्राह्मणाः कस्य वक्तव्याः कस्य वा छन्दचारिणः ।
गुणैरेते हि वास्यन्ते कामगाः पक्षिणो यथा ॥ ११ ॥

ब्राह्मणको कोई अपनी भूमिमें बसा नहीं सकता, क्योंकि वे किसीकी इच्छासे नहीं चलते । वे तो अपने गुणसे कामचारी पक्षीके सदृश मनमानी जगहपर वास करते हैं, पर मैंने उसके विपरीत काम किया है ॥ ११ ॥

राजानं प्रथमं विन्देत्ततो भार्यां ततो धनम् ।
त्रयस्य संचये चास्य ज्ञातीन्पुत्रांश्च धारयेत् ॥ १२ ॥
विपरीतं मया चेदं त्रयं सर्वमुपार्जितम् ।
त इमामापदं प्राप्य भृशं तप्स्यामहे वयम् ॥ १३ ॥

और कहा भी है, कि "पहिले अच्छे राजाको प्राप्त करे, तब स्त्रीको प्राप्त करे और तत्पश्चात् धनार्जन करे, इन तीन विषयोंके सञ्चित होजानेपर ज्ञाति और पुत्रोंको उत्पन्न करे ।" इन तीन विषयोंके उपार्जनके विषयमें भी मैंने बडा विपरीत काम किया है; अतः अब इस विपत्तिके समुद्रमें गिरकर हम बडे दुःखी हो रहे हैं ॥ १२–१३ ॥

सोऽयमस्माननुप्राप्तो वारः कुलविनाशनः ।
भोजनं पुरुषश्चैकः प्रदेयं वेतनं मया ॥ १४ ॥

आज हमारे कुलका नाश करनेवाली वह बारी आयी है, राक्षसके भोजनके लिये वेतनके स्वरूपमें एक मनुष्य मुझको देना पडेगा ॥ १४ ॥

न च मे विद्यते वित्तं संक्रेतुं पुरुषं क्वचित् ।
सुहृज्जनं प्रदातुं च न शक्ष्यामि कथंचन ।
गतिं चापि न पश्यामि तस्मान्मोक्षाय रक्षसः ॥ १५ ॥

पर मेरे पास इतना धन भी नहीं है, कि किसीसे एक मनुष्यको मोल लेकर दूं, अथवा किसी स्वजनको भी मैं नहीं दे सकूंगा और ऐसा कोई उपाय भी नहीं दीखता, कि जिससे उस राक्षसके हाथसे बच सकूं ॥ १५ ॥

सोऽहं दुःखार्णवे मग्नो महत्यसुतरे भृशम् ।
सहैवैतैर्गमिष्यामि बान्धवैरद्य राक्षसम् ।
ततो नः सहितान्क्षुद्रः सर्वानेवोपभोक्ष्यति ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥ ५१३७ ॥

इसलिये अति अपार दुःखके समुद्रमें डूब गया हूं । अतएव सोचता हूं, कि मैं सब बान्धवोंके साथ उस राक्षसके पास जाऊं, कि जिससे वह नीचाशय राक्षस एक साथ हम सबोंको खा ले ॥ १६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ अडतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४८ ॥ ५१३७ ॥

: १४९ :

कुन्त्युवाच

न विषादस्त्वया कार्यो भयादस्मात्कथंचन ।
उपायः परिदृष्टोऽत्र तस्मान्मोक्षाय रक्षसः ॥ १ ॥

कुन्ती बोली— हे ब्रह्मन् ! तुम इस भयके कारण दुःख मत करो, मैंने उस राक्षससे बचनेका उपाय निकाल लिया है ॥ १ ॥

एकस्तव सुतो बालः कन्या चैका तपस्विनी ।
न ते तयोस्तथा पत्न्या गमनं तत्र रोचये ॥ २ ॥

तुम्हारा एक ही शिशु पुत्र और एक ही व्रतशीला कन्या है, अतः तुम्हारा अथवा उनमेंसे किसीका अथवा तुम्हारी स्त्रीका जाना मेरी समझमें उचित नहीं है ॥ २ ॥

मम पञ्च सुता ब्रह्मंस्तेषामेको गमिष्यति ।
त्वदर्थं बलिमादाय तस्य पापस्य रक्षसः ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन् ! मेरे पांच पुत्र हैं, उनमेंसे एक तुम्हारे लिये उस पापी राक्षसके यहां बलि लेकर जायेगा ॥ ३ ॥

ब्राह्मण उवाच

नाहमेतत्करिष्यामि जीवितार्थी कथंचन ।
ब्राह्मणस्यातिथेश्चैव स्वार्थे प्राणवियोजनम् ॥ ४ ॥

ब्राह्मण बोले— मैं अपना जीवन बचानेके लिये कभी ऐसा काम नहीं कर सकूंगा, मैं अपने लिये ब्राह्मण और अतिथिके प्राण लेनेका साहस नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

न त्वेतदकुलीनासु नाधर्मिष्ठासु विद्यते ।
यद्ब्राह्मणार्थे विसृजेदात्मानमपि चात्मजम् ॥ ५ ॥

जो नीच वंशसे उत्पन्न और अधार्मिक हैं, वे भी ऐसे काममें हाथ नहीं डालते हैं। ब्राह्मणके उपकारके लिये अपनेको अथवा आत्मजको भी त्याग देना चाहिए ॥ ५ ॥

आत्मनस्तु मया श्रेयो बोद्धव्यमिति रोचये ।
ब्रह्मवध्यात्मवध्या वा श्रेयो आत्मवधो मम ॥ ६ ॥

मुझको वही मंगलदायी समझना चाहिये; और मैं वैसा ही करना चाहता हूं । ब्राह्मणवध और आत्महत्या इन दोनोंमें आत्महत्या ही श्रेयस्कर है ॥ ६ ॥

ब्रह्मवध्या परं पापं निष्कृतिर्नात्र विद्यते ।
अबुद्धिपूर्वं कृत्वापि श्रेयो आत्मवधो मम ॥ ७ ॥

क्योंकि ब्राह्मण वध बडा पाप है, उसे करके फिर उससे बचनेका कोई उपाय नहीं रह जाता। अतः मैं समझता हूं, कि अनिच्छासे ब्रह्मवध करनेकी अपेक्षा अनिच्छासे आत्महत्या करना ही मेरे लिये अच्छा है ॥ ७ ॥

ब्राह्मणाः कस्य वक्तव्याः कस्य वा छन्दचारिणः ।
गुणैरेते हि वास्यन्ते कामगाः पक्षिणो यथा ॥ ११ ॥

ब्राह्मणको कोई अपनी भूमिमें बसा नहीं सकता, क्योंकि वे किसीकी इच्छासे नहीं चलते। वे तो अपने गुणसे कामचारी पक्षीके सदृश मनमानी जगहपर वास करते हैं, पर मैंने उसके विपरीत काम किया है ॥ ११ ॥

राजानं प्रथमं विन्देत्ततो भार्यां ततो धनम् ।
त्रयस्य संचये चास्य ज्ञातीन्पुत्रांश्च धारयेत् ॥ १२ ॥
विपरीतं मया चेदं त्रयं सर्वमुपार्जितम् ।
त इमामापदं प्राप्य भृशं तप्स्यामहे वयम् ॥ १३ ॥

और कहा भी है, कि "पहिले अच्छे राजाको प्राप्त करे, तब स्त्रीको प्राप्त करे और तत्पश्चात् धनार्जन करे, इन तीन विषयोंके सञ्चित होजानेपर ज्ञाति और पुत्रोंको उत्पन्न करे।" इन तीन विषयोंके उपार्जनके विषयमें भी मैंने बडा विपरीत काम किया है; अतः अब इस विपत्तिके समुद्रमें गिरकर हम बडे दुःखी हो रहे हैं ॥ १२–१३ ॥

सोऽयमस्माननुप्राप्तो वारः कुलविनाशनः ।
भोजनं पुरुषश्चैकः प्रदेयं वेतनं मया ॥ १४ ॥

आज हमारे कुलका नाश करनेवाली वह वारी आयी है, राक्षसके भोजनके लिये वेतनके स्वरूपमें एक मनुष्य मुझको देना पडेगा ॥ १४ ॥

न च मे विद्यते वित्तं संक्रेतुं पुरुषं क्वचित् ।
सुहृज्जनं प्रदातुं च न शक्ष्यामि कथंचन ।
गतिं चापि न पश्यामि तस्मान्मोक्षाय रक्षसः ॥ १५ ॥

पर मेरे पास इतना धन भी नहीं है, कि किसीसे एक मनुष्यको मोल लेकर दूं, अथवा किसी स्वजनको भी मैं नहीं दे सकूंगा और ऐसा कोई उपाय भी नहीं दीखता, कि जिससे उस राक्षसके हाथसे बच सकूं ॥ १५ ॥

सोऽहं दुःखार्णवे मग्नो महत्यसुतरे भृशम् ।
सहैवैतैर्गमिष्यामि बान्धवैरद्य राक्षसम् ।
ततो नः सहितान्क्षुद्रः सर्वानेवोपभोक्ष्यति ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥ ५१३७ ॥

इसलिये अति अपार दुःखके समुद्रमें डूब गया हूं। अतएव सोचता हूं, कि मैं सब बान्धवोंके साथ उस राक्षसके पास जाऊं, कि जिससे वह नीचाशय राक्षस एक साथ हम सबोंको खा ले ॥ १६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ अडतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४८ ॥ ५१३७ ॥

: १४९ :

कुन्त्युवाच

न विषादस्त्वया कार्यो भयादस्मात्कथंचन ।
उपायः परिदृष्टोऽत्र तस्मान्मोक्षाय रक्षसः ॥ १ ॥

कुन्ती बोली– हे ब्रह्मन् ! तुम इस भयके कारण दुःख मत करो, मैंने उस राक्षससे बचनेका उपाय निकाल लिया है ॥ १ ॥

एकस्तव सुतो बालः कन्या चैका तपस्विनी ।
न ते तयोस्तथा पत्न्या गमनं तत्र रोचये ॥ २ ॥

तुम्हारा एक ही शिशु पुत्र और एक ही व्रतशीला कन्या है, अतः तुम्हारा अथवा उनमेंसे किसीका अथवा तुम्हारी स्त्रीका जाना मेरी समझमें उचित नहीं है ॥ २ ॥

मम पञ्च सुता ब्रह्मंस्तेषामेको गमिष्यति ।
त्वदर्थं बलिमादाय तस्य पापस्य रक्षसः ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन् ! मेरे पांच पुत्र हैं, उनमेंसे एक तुम्हारे लिये उस पापी राक्षसके यहां बलि लेकर जायेगा ॥ ३ ॥

ब्राह्मण उवाच

नाहमेतत्करिष्यामि जीवितार्थी कथंचन ।
ब्राह्मणस्यातिथेश्चैव स्वार्थे प्राणवियोजनम् ॥ ४ ॥

ब्राह्मण बोले– मैं अपना जीवन बचानेके लिये कभी ऐसा काम नहीं कर सकूंगा, मैं अपने लिये ब्राह्मण और अतिथिके प्राण लेनेका साहस नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

न त्वेतदकुलीनासु नाधर्मिष्ठासु विद्यते ।
यद्ब्राह्मणार्थे विसृजेदात्मानमपि चात्मजम् ॥ ५ ॥

जो नीच वंशसे उत्पन्न और अधार्मिक हैं, वे भी ऐसे काममें हाथ नहीं डालते हैं। ब्राह्मणके उपकारके लिये अपनेको अथवा आत्मजको भी त्याग देना चाहिए ॥ ५ ॥

आत्मनस्तु मया श्रेयो बोद्धव्यमिति रोचये ।
ब्रह्मवध्यात्मवध्या वा श्रेयो आत्मवधो मम ॥ ६ ॥

मुझको वही मंगलदायी समझना चाहिये; और मैं वैसा ही करना चाहता हूं । ब्राह्मणवध और आत्महत्या इन दोनोंमें आत्महत्या ही श्रेयस्कर है ॥ ६ ॥

ब्रह्मवध्या परं पापं निष्कृतिर्नात्र विद्यते ।
अबुद्धिपूर्वं कृत्वापि श्रेयो आत्मवधो मम ॥ ७ ॥

क्योंकि ब्राह्मण वध.बडा पाप है, उसे करके फिर उससे बचनेका कोई उपाय नहीं रह जाता। अतः मैं समझता हूं, कि अनिच्छासे ब्रह्मवध करनेकी अपेक्षा अनिच्छासे आत्महत्या करना ही मेरे लिये अच्छा है ॥ ७ ॥

न त्वहं वधमाकाङ्क्षे स्वयमेवात्मनः शुभे ।
परैः कृते वधे पापं न किंचिन्मयि विद्यते ॥ ८ ॥

हे शुभे ! मैं स्वयं आत्महत्या करना नहीं चाहता, अन्य ही जन मुझको मारेगा, अतः इसका पाप मुझपर नहीं लग सकता ॥ ८ ॥

अभिसन्धिकृते तस्मिन्ब्राह्मणस्य वधे मया ।
निष्कृतिं न प्रपश्यामि नृशंसं क्षुद्रमेव च ॥ ९ ॥

जान नहीं पडता, कि बुद्धिसे अथवा छलपूर्वक ब्रह्मवध करके सहजमें पार पा सकूंगा । क्योंकि वह कार्य बडा अत्याचार पूर्ण और नीच है ॥ ९ ॥

आगतस्य गृहे त्यागस्तथैव शरणार्थिनः ।
याचमानस्य च वधो नृशंसं परमं मतम् ॥ १० ॥

अतिथि वा शरण लिये हुएको त्याग देना और मांगनेवालेको मार डालना अति निष्ठुर और अनुचित कार्य कहा गया है ॥ १० ॥

कुर्यान्न निन्दितं कर्म न नृशंसं कदाचन ।
इति पूर्वे महात्मान आपद्धर्मविदो विदुः ॥ ११ ॥

आपद्धर्मके जानकार पहिलेके महात्माओंने कहा है, कि निन्दित और निष्ठुर कर्म कभी न करे ॥ ११ ॥

श्रेयांस्तु सहदारस्य विनाशोऽद्य मम स्वयम् ।
ब्राह्मणस्य वधं नाहमनुमंस्ये कथंचन ॥ १२ ॥

अतएव आज मैं स्त्रीके साथ प्राण छोडूंगा, मेरे लिये यही अच्छा है; मैं किसी भी प्रकारसे ब्राह्मणहत्याकी सम्मति नहीं दे सकता ॥ १२ ॥

कुन्त्युवाच

ममाप्येषा मतिर्ब्रह्मन्विप्रा रक्ष्या इति स्थिरा ।
न चाप्यनिष्टः पुत्रो मे यदि पुत्रशतं भवेत् ॥ १३ ॥

कुन्ती बोली– हे ब्रह्मन् ! मेरी भी यही निश्चित सम्मति है, कि ब्राह्मणोंकी अवश्य रक्षा करनी चाहिए । सौ पुत्र भी होवें, तो भी पुत्र कभी मेरे लिए अनादरके योग्य नहीं हो सकते ॥ १३ ॥

न चासौ राक्षसः शक्तो मम पुत्रविनाशने ।
वीर्यवान्मन्त्रसिद्धश्च तेजस्वी च सुतो मम ॥ १४ ॥

पर मेरा पुत्र वीर्यवान्, तेजस्वी और मन्त्रमें सिद्ध है, अतः वह राक्षस मेरे पुत्रको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं होगा ॥ १४ ॥

राक्षसाय च तत्सर्वं प्रापयिष्यति भोजनम् ।
मोक्षयिष्यति चात्मानमिति मे निश्चिता मतिः ॥ १५ ॥

मुझे निश्चय है, कि मेरा पुत्र राक्षसको वह सब खानेकी वस्तु पहुंचा भी देगा और अपनी रक्षा भी कर लेगा ॥ १५ ॥

समागताश्च वीरेण दृष्टपूर्वाश्च राक्षसाः ।
बलवन्तो महाकाया निहताश्चाप्यनेकशः ॥ १६ ॥

मैंने पहिले भी देखा है, कि बडे बडे बलवान् बहुत राक्षस मेरे वीर पुत्रसे लडने आये, पर वे सब मेरे पुत्र द्वारा मार दिए गए ॥ १६ ॥

न त्विदं केषुचिद्ब्रह्मन्व्याहर्तव्यं कथंचन ।
विद्यार्थिनो हि मे पुत्रान्विप्रकुर्युः कुतूहलात् ॥ १७ ॥

हे ब्रह्मन् ! यह बात तुम किसीसे कहना मत; प्रकट होनेपर विद्यार्थी लोग बडे कौतूहलसे इस विद्याको सीखनेके लिये मेरे पुत्रको सदा तंग किया करेंगे ॥ १७ ॥

गुरुणा चाननुज्ञातो ग्राहयेद्यं सुतो मम ।
न स कुर्यात्तया कार्यं विद्ययेति सतां मतम् ॥ १८ ॥

मेरा पुत्र गुरुकी आज्ञाके बिना अन्य किसीको जो विद्या देगा, तो उस विद्यासे फिर वह भी काम नहीं कर सकेगा ऐसा सज्जनोंने कहा है ॥ १८ ॥

वैशंपायन उवाच

एवमुक्तस्तु पृथया स विप्रो भार्यया सह ।
हृष्टः संपूजयामास तद्वाक्यममृतोपमम् ॥ १९ ॥

वैशम्पायन बोले– ब्राह्मणने कुन्तीकी यह बात सुनकर स्त्रीके साथ बहुत प्रसन्न होकर अमृतके सदृश उस बातको आदरपूर्वक मान लिया ॥ १९ ॥

ततः कुन्ती च विप्रश्च सहितावनिलात्मजम् ।
तमब्रूतां कुरुष्वेति स तथेत्यब्रवीच्च तौ ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥ ४८८५ ॥

तब कुन्ती और ब्राह्मणने एकत्र होकर पवननन्दन भीमसे वह कठोर कार्य करनेको कहा । भीमसेनने भी उसमें संमति देकर "मैं करूंगा" यह प्रत्युत्तर दिया ॥ २० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ उनञ्चासवां अध्याय समाप्त ॥ १४९ ॥ ४८८५ ॥

: १५० :

वैशम्पायन उवाच

करिष्य इति भीमेन प्रतिज्ञाते तु भारत ।
आजग्मुस्ते ततः सर्वे भैक्ष्यमादाय पाण्डवाः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत ! भीमसेनके उस कामको करनेकी प्रतिज्ञा करनेपर सम्पूर्ण पाण्डव भिक्षाकी वस्तु लेकर गृहको लौट आये ॥ १ ॥

आकारेणैव तं ज्ञात्वा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ।
रहः समुपविश्यैकस्ततः पप्रच्छ मातरम् ॥ २ ॥

तब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने चेहरेके द्वारा वह सब जानकर एकान्तमें बैठकर मातासे पूछा ॥२॥

किं चिकीर्षत्ययं कर्म भीमो भीमपराक्रमः ।
भवत्यनुमते कच्चिदयं कर्तुमिहेच्छति ॥ ३ ॥

माता ! भयंकर पराक्रमवाला यह भीम किस कामको करना चाहता है ? क्या आपकी सम्मतिसे ही वह यह काम करना चाहता है ॥ ३ ॥

कुन्त्युवाच

ममैव वचनादेष करिष्यति परंतपः ।
ब्राह्मणार्थे महत्कृत्यं मोक्षाय नगरस्य च ॥ ४ ॥

कुन्ती बोली– यह शत्रुनाशी वृकोदर मेरी ही संमतिसे ब्राह्मणके उपकार और इस नगरको मुक्त करनेके लिये यह भारी काम पूरा करेगा ॥ ४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

किमिदं साहसं तीक्ष्णं भवत्या दुष्करं कृतम् ।
परित्यागं हि पुत्रस्य न प्रशंसन्ति साधवः ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर बोले– तुमने यह कैसा कठिन और भयानक साहस किया है ? साधुगण कभी पुत्र त्यागनेकी प्रशंसा नहीं करते ॥ ५ ॥

कथं परसुतस्यार्थे स्वसुतं त्यक्तुमिच्छसि ।
लोकवृत्तिविरुद्धं वै पुत्रत्यागात्कृतं त्वया ॥ ६ ॥

और दूसरेके पुत्रको बचानेके लिये अपना पुत्र क्यों त्यागना चाहती हो । आज तुमने पुत्रको तजकर लोकाचारके बिपरीत कर्म किया है ! ॥ ६ ॥

यस्य बाहू समाश्रित्य सुखं सर्वे स्वपामहे ।
राज्यं चापहृतं क्षुद्रैराजिहीर्षामहे पुनः ॥ ७ ॥

जिसके भुजबलका सहारा लेकर हम सुखसे सोते हैं; जिसके भुजबलके भरोसे हम नीच दुर्योधनादिसे छीने गए राज्यको वापस पानेकी आशामें हैं ॥ ७ ॥

यस्य दुर्योधनो वीर्यं चिन्तयन्नमितौजसः ।
न शेते वसतीः सर्वा दुःखाच्छकुनिना सह ॥ ८ ॥

जिसके अपरिमित वीर्यको स्मरण कर दुर्योधन शकुनिके साथ दुःखके मारे रात्रिको सो भी नहीं पाता ॥ ८ ॥

यस्य वीरस्य वीर्येण मुक्ता जतुगृहाद्वयम् ।
अन्येभ्यश्चैव पापेभ्यो निहतश्च पुरोचनः ॥ ९ ॥

जिस वीरके भुजवीर्यसे हम जतुगृहसे और दूसरी विपत्तियोंसे पार हो गये हैं और जिसके द्वारा पुरोचन मार दिया गया ॥ ९ ॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य वसुपूर्णां वसुन्धराम् ।
इमां मन्यामहे प्राप्तां निहत्य धृतराष्ट्रजान् ॥ १० ॥

यहां तक कि जिसके भुजवीर्यपर भरोसा रखकर हमको ऐसा विश्वास है, कि मानो हम धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर इस धनसे भरी हुई धरतीको पा चुके हैं ॥ १० ॥

तस्य व्यवसितस्त्यागो बुद्धिमास्थाय कां त्वया ।
कच्चिन्न दुःखैर्बुद्धिस्ते विप्लुता गतचेतसः ॥ ११ ॥

उन भीमसेनको किस तरहकी बुद्धिका आश्रय लेकर तुमने त्याग देनेका निश्चय किया है ? क्या दुःखसे चेतनाहीन तुम्हारी बुद्धि तो नहीं बिगड गई ॥ ११ ॥

कुन्त्युवाच

युधिष्ठिर न संतापः कार्यः प्रति वृकोदरम् ।
न चायं बुद्धिदौर्बल्याद्व्यवसायः कृतो मया ॥ १२ ॥

कुन्ती बोली— हे युधिष्ठिर ! तुम वृकोदरके लिये दुःख मत करो, मैंने बुद्धिकी दुर्बलतासे इसका निश्चय नहीं किया है ॥ १२ ॥

इह विप्रस्य भवने वयं पुत्र सुखोषिताः ।
तस्य प्रतिक्रिया तात मयेयं प्रसमीक्षिता ।
एतावानेव पुरुषः कृतं यस्मिन्न नश्यति ॥ १३ ॥

हे पुत्र ! इस ब्राह्मणके घरमें हम सुखसे रहे हैं, उसीके प्रत्युपकारके रूपमें मैंने यह निश्चय किया है । क्योंकि जिस पुरुषपर किया गया उपकार व्यर्थ नहीं जाता है अर्थात् जो उपकारके बदले प्रत्युपकार करना जानता है वही सच्चा पुरुष है ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तं तदा जतुगृहे महत् ।
हिडिम्बस्य वधाच्चैव विश्वासो मे वृकोदरे ॥ १४ ॥

उस समय जतुगृहमें भीमसेनका जितना विक्रम देखा है, और उसने जैसे हिडिम्बको मार-डाला है, उससे मुझको भीम पर पूरा विश्वास हो गया है, ॥ १४ ॥

बाह्वोर्बलं हि भीमस्य नागायुतसमं महत् ।
येन यूयं गजप्रख्या निर्व्यूढा वारणावतात् ॥ १५ ॥

जिस वृकोदरने हाथीकी भांति तुमको वारणावत नगरसे निकाला था, उस भीमके दोनों भुजाओंका बल दश सहस्र हाथीके समान है ॥ १५ ॥

वृकोदरबलो नान्यो न भूतो न भविष्यति ।
योऽभ्युदीयाद्युधि श्रेष्ठमपि वज्रधरं स्वयम् ॥ १६ ॥

जो युद्धमें साक्षात् वज्रधारी इन्द्रको भी पराजित कर सकता है, ऐसे उस भीमके समान बली इस धरती भरमें न कोई हुआ है और न होगा ॥ १६ ॥

जातमात्रः पुरा चैष ममाङ्कात्पतितो गिरौ ।
शरीरगौरवात्तस्य शिला गात्रैर्विचूर्णिता ॥ १७ ॥

हे पाण्डवश्रेष्ठ ! पहले यह भीमसेन जन्म लेते ही मेरी गोदसे पहाड पर गिर गया था, उसका शरीर भारी होनेके कारण उसके शरीरकी चोटसे चट्टान चूर चूर हो गयी थी ॥ १७ ॥

तदहं प्रज्ञया स्मृत्वा बलं भीमस्य पाण्डव ।
प्रतिकारं च विप्रस्य ततः कृतवती मतिम् ॥ १८ ॥

अतः, हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ! इस कारण बुद्धिसे मैंने भीमके बलको याद करके ब्राह्मणके शत्रुको नष्ट कर उस ब्राह्मणके प्रत्युपकार करनेका संकल्प किया है ॥ १८ ॥

नेदं लोभान्न चाज्ञानान्न च मोहाद्विनिश्चितम् ।
बुद्धिपूर्वं तु धर्मस्य व्यवसायः कृतो मया ॥ १९ ॥

मैंने न लोभसे, न अज्ञानतासे, न मोहसे इस काममें हाथ डाला है, बुद्धिसे ही इस धर्मकार्यमें मैंने निश्चय किया है ॥ १९ ॥

अर्थौ द्वावपि निष्पन्नौ युधिष्ठिर भविष्यतः ।
प्रतीकारश्च वासस्य धर्मश्च चरितो महान् ॥ २० ॥

हे युधिष्ठिर ! इस कार्यसे दोनों ही प्रयोजन सिद्ध होंगे; एक यह है, कि यहां रहनेके कारण हम पर ब्राह्मणका जो उपकार है, उसका प्रत्युपकार होगा और दूसरा (दुष्टोंको मारने रूप) एक महान् धर्मका पालन ॥ २० ॥

यो ब्राह्मणस्य साहाय्यं कुर्यादर्थेषु कर्हिचित् ।
क्षत्रियः स शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयादिति मे श्रुतम् ॥ २१ ॥

जो क्षत्रिय प्रसंग प्राप्त होनेपर ब्राह्मणकी सहायता करेगा, वह निःसंदेह शुभलोकोंको प्राप्त होगा, ऐसा मेरा मत है ॥ २१ ॥

क्षत्रियः क्षत्रियस्यैव कुर्वाणो वधमोक्षणम् ।
विपुलां कीर्तिमाप्नोति लोकेऽस्मिंश्च परत्र च ॥ २२ ॥

मैं निश्चय जानती हूं, कि जो क्षत्रिय किसी दूसरे क्षत्रियको मरनेसे बचाता है, वह इस लोक और परलोकमें अत्यन्त यश प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

वैश्यस्यैव तु साहाय्यं कुर्वाणः क्षत्रियो युधि ।
स सर्वेष्वपि लोकेषु प्रजा रञ्जयते ध्रुवम् ॥ २३ ॥

इसमें सन्देह नहीं है, कि जो क्षत्रिय होकर युद्धमें वैश्यकी सहायता करे, वह भूमण्डलमें सर्वत्र प्रजाओंको सुखी करता है ॥ २३ ॥

शूद्रं तु मोक्षयन्राजा शरणार्थिनमागतम् ।
प्राप्नोतीह कुले जन्म सद्रव्ये राजसत्कृते ॥ २४ ॥

जो क्षत्रिय शरणमें आए हुए शूद्र जनको विपत्तिसे बचाता है वह ऐश्वर्ययुक्त राजाओंसे पूजे जानेवाले वंशमें जन्म लेता है ॥ २४ ॥

एवं स भगवान्व्यासः पुरा कौरवनन्दन ।
प्रोवाच सुतरां प्राज्ञस्तस्मादेतच्चिकीर्षितम् ॥ २५ ॥

पौरवनन्दन ! पूर्वकालमें अति तेज बुद्धिमान् व्यासदेवने मुझे यह सब उपदेश दिया था इसीलिये मैंने इस कामको करनेकी इच्छा की है ॥ २५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

उपपन्नमिदं मातस्त्वया यद्बुद्धिपूर्वकम् ।
आर्तस्य ब्राह्मणस्यैवमनुक्रोशादिदं कृतम् ।
ध्रुवमेष्यति भीमोऽयं निहत्य पुरुषादकम् ॥ २६ ॥

माताकी यह बातें सुनकर युधिष्ठिर बोले– हे माता ! तुमने विपत्तिमें पडे हुए इस ब्राह्मण पर कृपा दिखाकर बुद्धिसे जो यह कार्य किया है, वह बहुत ही अच्छा हुआ है। इसमें सन्देह नहीं है कि यह भीमसेन मनुष्य–भोजी राक्षसका नाश कर लौट आवेगा ॥ २६ ॥

यथा त्विदं न विन्देयुर्नरा नगरवासिनः ।
तथायं ब्राह्मणो वाच्यः परिग्राह्यश्च यत्नतः ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥ ५१८४ ॥

तुम यत्नपूर्वक ब्राह्मणसे कहकर यह स्वीकार करा लेना, ताकि जिससे नगरमें रहनेवाले मनुष्य यह बात न जान सकें ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ पचासवां अध्याय समाप्त ॥ १५० ॥ ५१८४ ॥

: १५१ :

वैशम्पायन उवाच

ततो रात्र्यां व्यतीतायामन्नमादाय पाण्डवः ।
भीमसेनो ययौ तत्र यत्रासौ पुरुषादकः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद रात्रि बीतने पर पाण्डुपुत्र भीमसेन भोजनकी सामग्री लेकर वहां गए जहां वह मनुष्यभक्षी राक्षस रहता था ॥ १ ॥

आसाद्य तु वनं तस्य रक्षसः पाण्डवो बली ।
आजुहाव ततो नाम्ना तदन्नमुपयोजयन् ॥ २ ॥

और उस राक्षसके बसनेके वनमें घुसकर बलवान् पाण्डव भीमसेन सब भोजनकी सामग्री स्वयं खाते हुए उसका नाम लेकर पुकारने लगे ॥ २ ॥

ततः स राक्षसः श्रुत्वा भीमसेनस्य तद्वचः ।
आजगाम सुसंक्रुद्धो यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ ३ ॥

वह राक्षस भीमसेनकी वह पुकार सुनकर क्रोधित होकर वहां आया, जहां भीमसेन बैठा हुआ था ॥ ३ ॥

महाकायो महावेगो दारयन्निव मेदिनीम् ।
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा संदश्य दशनच्छदम् ॥ ४ ॥

वह विशाल शरीरवाला, महान् वेगवाला तथा चलते हुए मानों भूमिको फाड देता था, ऐसा विकट भयानक वह राक्षस दांतोंसे होठोंको काटता हुआ तीन रेखाओंके साथ भौंहको ऊपर चढा कर ॥ ४ ॥

भुञ्जानमन्नं तं दृष्ट्वा भीमसेनं स राक्षसः ।
विवृत्य नयने क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

उस भीमसेनको अन्न खाते देखकर वह राक्षस दोनों आखें फैलाकर क्रोधसे यह वचन बोला ॥ ५ ॥

कोऽयमन्नमिदं भुङ्क्ते मदर्थमुपकल्पितम् ।
पश्यतो मम दुर्बुद्धिर्यियासुर्यमसादनम् ॥ ६ ॥

कौन यह कुबुद्धि है, कि जो यमराजके घरको जानेकी इच्छावाला होकर मेरे भोजनके लिये मंगाया हुआ अन्न मेरे सामने ही खा रहा है ? ॥ ६ ॥

भीमसेनस्तु तच्छ्रुत्वा प्रहसन्निव भारत ।
राक्षसं तमनादृत्य भुङ्क्त एव पराङ्मुखः ॥ ७ ॥

हे भारत ! भीमसेन यह बात सुनने पर भी हंसते ही हंसते राक्षसका अनादर कर मुंह फेरकर भोजन करने लगे ॥ ७ ॥

ततः स भैरवं कृत्वा समुद्यम्य करावुभौ ।
अभ्यद्रवद्भीमसेनं जिघांसुः पुरुषादकः ॥ ८ ॥

तब वह मांसभोजी राक्षस भयानक शब्द करता हुआ दोनों हाथ उठाकर भीमसेनको मार डालनेके लिये दौडा ॥ ८ ॥

तथापि परिभूयैनं नेक्षमाणो वृकोदरः ।
राक्षसं भुङ्क्त एवान्नं पाण्डवः परवीरहा ॥ ९ ॥

तो भी शत्रुनाशी पाण्डुपुत्र वृकोदर राक्षसको अनादरसे न देखकर भोजन करने लगे ॥९॥

अमर्षेण तु संपूर्णः कुन्तीपुत्रस्य राक्षसः ।
जघान पृष्ठं पाणिभ्यामुभाभ्यां पृष्ठतः स्थितः ॥ १० ॥

राक्षसने तब क्रोधसे जलकर भीमसेनके पीछे खडा होकर दोनों मुट्ठियोंसे उसकी पीठ पर मारा ! ॥ १० ॥

तथा बलवता भीमः पाणिभ्यां भृशमाहतः ।
नैवावलोकयामास राक्षसं भुङ्क्त एव सः ॥ ११ ॥

भीमसेनने उस बलवान् राक्षसकी दोनों भुजाओंकी चोटसे बहुत घायल होने पर भी उन्होंने राक्षसको नहीं देखा, वे एकमनसे भोजनमें लगे रहे ॥ ११ ॥

ततः स भूयः संक्रुद्धो वृक्षमादाय राक्षसः ।
ताडयिष्यंस्तदा भीमं पुनरभ्यद्रवद्बली ॥ १२ ॥

तब महाबलवान् राक्षस और ज्यादा क्रोधित होकर मारनेके लिये वृक्ष उखाडकर उससे भीमको मारते हुए उनके ऊपर आक्रमण करने लगा ॥ १२ ॥

ततो भीमः शनैर्भुक्त्वा तदन्नं पुरुषर्षभः ।
वार्युपस्पृश्य संहृष्टस्तस्थौ युधि महाबलः ॥ १३ ॥

उसके बाद महाबलवान् पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन धीरे धीरे वह अन्न खा कर जलसे मुंह धो करके प्रसन्न चित्तसे युद्धके लिये तैय्यार हो गये ॥ १३ ॥

क्षिप्तं क्रुद्धेन तं वृक्षं प्रतिजग्राह वीर्यवान् ।
सव्येन पाणिना भीमः प्रहसन्निव भारत ॥ १४ ॥

क्रोधके वशमें होकर राक्षसके भीमसेन पर उस वृक्षको फेंकनेपर वीर्यवान् भीमसेनने हंस करके उसी क्षण बांये हाथसे उसको पकड लिया ॥ १४ ॥

ततः स पुनरुद्यम्य वृक्षान्बहुविधान्बली ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय तस्मै भीमश्च पाण्डवः ॥ १५ ॥

यह देखकर बलवान् राक्षस भांति भांतिके वृक्ष उखाड कर भीमपर फेंकने लगा और भीम भी उसी प्रकार वृक्ष उठा कर उसपर फेंकने लगे ॥ १५ ॥

तद्वृक्षयुद्धमभवन्महीरुहविनाशनम् ।
घोररूपं महाराज बकपाण्डवयोर्महत् ॥ १६ ॥

महाराज ! तब पाण्डुपुत्र भीम और बक राक्षसका भयानक वृक्षयुद्ध होने लगा और वह उनका वृक्षयुद्ध वृक्षोंको नष्ट करनेवाला हुआ ॥ १६ ॥

नाम विश्राव्य तु बकः समभिद्रुत्य पाण्डवम् ।
भुजाभ्यां परिजग्राह भीमसेनं महाबलम् ॥ १७ ॥

उसके बाद मांसभोजी बकने अपना नाम सुनाकर दौडकर महाबलवान् भीमसेनको दोनों हाथोंसे पकड लिया ॥ १७ ॥

भीमसेनोऽपि तद्रक्षः परिरभ्य महाभुजः ।
विस्फुरन्तं महावेगं विचकर्ष बलाद्बली ॥ १८ ॥

तब महाभुज बलवान् भीमसेन इस महावेगवान् फुर्तीवाले राक्षसको हाथोंमें भींचकर बलसे खींचने लगे ॥ १८ ॥

स कृष्यमाणो भीमेन कर्षमाणश्च पाण्डवम् ।
समयुज्यत तीव्रेण श्रमेण पुरुषादकः ॥ १९ ॥

भीमसे खींचे जाते हुए तथा स्वयं भी भीमको खींचते हुए वह मनुष्यभोजी राक्षस बहुत बुरी तरह थक गया ॥ १९ ॥

तयोर्वेगेन महता पृथिवी समकम्पत ।
पादपांश्च महाकायांश्चूर्णयामासतुस्तदा ॥ २० ॥

उन दोनोंके बडे वेगसे धरती कांपने लगी और निकटके बडे बडे वृक्षोंको उन्होंने चूर्ण चूर्ण कर दिया ॥ २० ॥

हीयमानं तु तद्रक्षः समीक्ष्य भरतर्षभ ।
निष्पिष्य भूमौ पाणिभ्यां समाजघ्ने वृकोदरः ॥ २१ ॥

हे भरतर्षभ ! तब वृकोदर भीम राक्षसको बलहीन होते देखकर हाथोंसे उसे धरती पर रगड रगड कर मारने लगे ॥ २१ ॥

ततोऽस्य जानुना पृष्ठमवपीडय बलादिव ।
बाहुना परिजग्राह दक्षिणेन शिरोधराम् ॥ २२ ॥

उसकी पीठपर घुटनोंको लगाकर जोरसे रगड करके दाहिने हाथसे गलेको पकडा ॥ २२ ॥

सव्येन च कटीदेशे गृह्य वाससि पाण्डवः ।
तद्रक्षो द्विगुणं चक्रे नदन्तं भैरवान्रवान् ॥ २३ ॥

पाण्डुपुत्र भीमने बांये हाथसे कमरमें पहने हुए वस्त्रसे राक्षसको पकडा तथा उस घोर और भयानक शब्द करनेवाले राक्षसको दुहरा कर दिया ॥ २३ ॥

ततोऽस्य रुधिरं वक्त्रात्प्रादुरासीद्विशां पते ।
भज्यमानस्य भीमेन तस्य घोरस्य रक्षसः ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥ ५२०८ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! तब भीमके द्वारा तोडे जाते हुए उस भयंकर राक्षसके मुंहसे खून निकल कर बहने लगा ॥ २४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ इक्यावनवां अध्याय समाप्त ॥ १५१ ॥ ५२०८ ॥

: १५२ :

वैशम्पायन उवाच

तेन शब्देन वित्रस्तो जनस्तस्याथ रक्षसः ।
निष्पपात गृहाद्राजन्सहैव परिचारिभिः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् ! उस राक्षसके परिवारवर्ग उस शब्दसे भयभीत होकर नौकर चाकरोंके साथ घरसे निकल आया ॥ १ ॥

तान्भीतान्विगतज्ञानान्भीमः प्रहरतां वरः ।
सान्त्वयामास बलवान्समये च न्यवेशयत् ॥ २ ॥

मारनेमें तेज महाबली भीमसेनने उनको भयभीत और ज्ञान रहित देखकर समझाया और उनसे प्रतिज्ञा करा ली ॥ २ ॥

न हिंस्या मानुषा भूयो युष्माभिरिह कर्हिचित् ।
हिंसतां हि वधः शीघ्रमेवमेव भवेदिति ॥ ३ ॥

फिर कभी मनुष्य तुम्हारे द्वारा न मारे जायें अर्थात् तुम कभी मनुष्योंको न मारना, यदि मारोगे, तो तुमकोभी तुरन्त इसी प्रकार नष्ट होना पडेगा ॥ ३ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तानि रक्षांसि भारत ।
एवमस्त्विति तं प्राहुर्जगृहुः समयं च तम् ॥ ४ ॥

हे भारत! उन राक्षसोंने वृकोदरकी यह बात सुनकर "ऐसा ही होगा" यह कहकर उस पर संमति प्रकट करके उस प्रतिज्ञाको मान लिया ॥ ४ ॥

ततः प्रभृति रक्षांसि तत्र सौम्यानि भारत ।
नगरे प्रत्यदृश्यन्त नरैर्नगरवासिभिः ॥ ५ ॥

हे भारत ! तबसे नगरवाले मनुष्योंने उस नगरमें राक्षसोंको शान्तस्वभावी देखा ॥ ५ ॥

ततो भीमस्तमादाय गतासुं पुरुषादकम् ।
द्वारदेशे विनिक्षिप्य जगामानुपलक्षितः ॥ ६ ॥

तब भीमसेन उस मरे हुए मनुष्यभक्षी राक्षसको लेकर नगरके द्वारपर डाल करके लोगोंसे अज्ञात होकर चले गये ॥ ६ ॥

ततः स भीमस्तं हत्वा गत्वा ब्राह्मणवेश्म तत् ।
आचचक्षे यथावृत्तं राज्ञः सर्वमशेषतः ॥ ७ ॥

भीमसेनने उस राक्षसराजको मारकर ब्राह्मणके घरमें जाकर जो कुछ हुआ था, वह सब राजासे आद्योपान्त संपूर्ण कथा कह सुनायी ॥ ७ ॥

ततो नरा विनिष्क्रान्ता नगरात्काल्यमेव तु ।
ददृशुर्निहतं भूमौ राक्षसं रुधिरोक्षितम् ॥ ८ ॥

उसके बाद उस प्रातःकाल नगरवालोंने नगरसे निकलते ही खूनसे नहाये राक्षसको मरकर भूमि पर पडे देखा ॥ ८ ॥

तमद्रिकूटसदृशं विनिकीर्णं भयावहम् ।
एकचक्रां ततो गत्वा प्रवृत्तिं प्रददुः पुरे ॥ ९ ॥

उस पर्वतकी चोटीके समान और बडे भयानक राक्षसको मरा हुआ देखकर उन्होंने एक-चक्रानगरीके नगरमें जाकर वह समाचार फैलाया ॥ ९ ॥

ततः सहस्रशो राजन्नरा नगरवासिनः ।
तत्राजग्मुर्बकं द्रष्टुं सस्त्रीवृद्धकुमारकाः ॥ १० ॥

हे राजन् ! तब स्त्री, वृद्ध, बच्चे आदि सहस्रों नगरवाले बक राक्षसको देखनेके लिये वहां एकत्रित हुए ॥ १० ॥

ततस्ते विस्मिताः सर्वे कर्म दृष्ट्वातिमानुषम् ।
दैवतान्यर्चयांचक्रुः सर्व एव विशां पते ॥ ११ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! वे सब इस अलौकिक कार्यको देखकर आश्चर्यचकित हो गए और वे सब लोग देवताओंकी उपासना करने लगे ॥ ११ ॥

ततः प्रगणयामासुः कस्य वारोऽद्य भोजने ।
ज्ञात्वा चागम्य तं विप्रं पप्रच्छुः सर्व एव तत् ॥ १२ ॥

तब वे गिनने लगे, कि " आज राक्षसको भोजन देनेकी किसकी बारी थी " अन्तमें सब ठीक जान कर उन सबने उस ब्राह्मणके पास जाकर पूछा ॥ १२ ॥

एवं पृष्टस्तु बहुशो रक्षमाणश्च पाण्डवान् ।
उवाच नागरान्सर्वानिदं विप्रर्षभस्तदा ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण नगरवालोंके ब्राह्मणसे बार बार पूछने पर वह विप्रेन्द्र पाण्डवोंको छिपाते हुए नगर निवासियोंसे यह वचन बोले ॥ १३ ॥

आज्ञापितं मामशने रुदन्तं सह बन्धुभिः ।
ददर्श ब्राह्मणः कश्चिन्मन्त्रसिद्धो महाबलः ॥ १४ ॥

मैं राक्षसको भोजन देनेकी आज्ञा पाकर बन्धुओंके साथ रो रहा था, कि ऐसे समयमें एक मन्त्रज्ञ सिद्ध महाबलशाली ब्राह्मणने मुझको देखा ॥ १४ ॥

परिपृच्छ्य स मां पूर्वं परिक्लेशं पुरस्य च।
अब्रवीद्ब्राह्मणश्रेष्ठ आश्वास्य प्रहसन्निव ॥ १५ ॥

वे ब्राह्मणश्रेष्ठ मुझसे पूछकर और इस नगरके घोर क्लेशके वृत्तान्तको जान कर ढाढस देकर हंसते हुए बोले ॥ १५ ॥

प्रापयिष्याम्यहं तस्मै इदमन्नं दुरात्मने।
मन्निमित्तं भयं चापि न कार्यमिति वीर्यवान् ॥ १६ ॥

उस दुरात्माके निकट यह अन्न मैं ले जाऊंगा, मेरे लिये कुछ भय मत करना इस प्रकार उस वीर्यवान् ब्राह्मणने कहा ॥ १६ ॥

स तदन्नमुपादाय गतो बकवनं प्रति।
तेन नूनं भवेदेतत्कर्म लोकहितं कृतम् ॥ १७ ॥

यह कहकर वह अन्न लेकर ब्राह्मण राक्षस बकके वनमें गये थे। इसमें सन्देह नहीं है, कि उन्होंने ही लोकोंके हितके निमित्त वह काम किया होगा ॥ १७ ॥

ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे क्षत्रियाश्च सुविस्मिताः।
वैश्याः शूद्राश्च मुदिताश्चक्रुर्ब्रह्ममहं तदा ॥ १८ ॥

तब यह वृत्तान्त सुनकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब अचरज मानकर और प्रसन्न होकर ब्रह्ममहोत्सव करने लगे ॥ १८ ॥

ततो जानपदाः सर्वे आजग्मुर्नगरं प्रति।
तदद्भुततमं दृष्ट्वा पार्थास्तत्रैव चावसन् ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥
॥ समाप्तं बकवधपर्व ॥ ५२२७ ॥

तब नगरवाले उस आश्चर्यजनक बृहत् लीलाकी बात जानकर नगरको लौट गये। पर पाण्डवलोग वहीं बसे रहे ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ बावनवां अध्याय समाप्त ॥ १५२ ॥ बकवधपर्व समाप्त ॥ ५२२७ ॥

: १५३ :

जनमेजय उवाच

ते तथा पुरुषव्याघ्रा निहत्य बकराक्षसम् ।
अत ऊर्ध्वं ततो ब्रह्मन्किमकुर्वत पाण्डवाः ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– हे ब्रह्मन् ! सुनना चाहता हूं, कि इस प्रकार पुरुषसिंह पाण्डवोंने राक्षस बकको मारकर उसके बाद क्या किया ? ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच

तत्रैव न्यवसन्राजन्निहत्य बकराक्षसम् ।
अधीयानाः परं ब्रह्म ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् ! पाण्डवगण राक्षस बकका वध कर उस ब्राह्मणके घरमें रहकर वेद पढा करते थे ॥ २ ॥

ततः कतिपयाहस्य ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
प्रतिश्रयार्थं तद्वेश्म ब्राह्मणस्याजगाम ह ॥ ३ ॥

तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद एक व्रतशील ब्राह्मण रहनेके लिये उस ब्राह्मणके घर आये ॥ ३ ॥

स सम्यक्पूजयित्वा तं विद्वान्विप्रर्षभस्तदा ।
ददौ प्रतिश्रयं तस्मै तदा सर्वातिथिव्रती ॥ ४ ॥

नित्य अतिथियोंकी सेवा करनेवाले उस ब्राह्मणने उस अतिथि ब्राह्मणकी भलीभांति पूजा कर रहनेको घर दिया ॥ ४ ॥

ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सह कुन्त्या नरर्षभाः ।
उपासाञ्चक्रिरे विप्रं कथयानं कथास्तदा ॥ ५ ॥

वह अभ्यागत द्विज वहां रहकर भांति भांतिकी शुभ कथायें कहने लगे । नरश्रेष्ठ पाण्डवगण और कुन्तीने वह सब कथा सुननेके अभिलाषी होकर उनका आदर किया ॥ ५ ॥

कथयामास देशान्स तीर्थानि विविधानि च ।
राज्ञां च विविधाश्चर्याः पुराणि विविधानि च ॥ ६ ॥

वह भांति भांतिके आश्चर्यकारक देशों, नाना तीर्थों विविध नगरों और अनेक राजाओंकी कथा सुनाने लगे ॥ ६ ॥

×

स तत्राकथयद्विप्रः कथान्ते जनमेजय ।
पाञ्चालेष्वद्भुताकारं याज्ञसेन्याः स्वयंवरम् ॥ ७ ॥
धृष्टद्युम्नस्य चोत्पत्तिमुत्पत्तिं च शिखण्डिनः ।
अयोनिजत्वं कृष्णाया द्रुपदस्य महामखे ॥ ८ ॥

हे जनमेजय ! उस ब्राह्मणने कथा पूरी करते हुए पाञ्चाल देशमें याज्ञसेनीके अलौकिक स्वयंवर, धृष्टद्युम्नकी उत्पत्ति तथा शिखण्डिके जन्मकी कथा और राजा द्रुपदके महायज्ञमें कृष्णाकी अयोनिज उत्पत्ति इन सब बातोंका वर्णन किया ॥ ७–८ ॥

तदद्भुततमं श्रुत्वा लोके तस्य महात्मनः ।
विस्तरेणैव पप्रच्छुः कथां तां पुरुषर्षभाः ॥ ९ ॥

पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवगणने ब्राह्मणसे उन महात्माकी अलौकिक कथाओंको सुनकर उस कथाको बिस्तारसे सुनना चाहा ॥ ९ ॥

कथं द्रुपदपुत्रस्य धृष्टद्युम्नस्य पावकात् ।
वेदिमध्याच्च कृष्णायाः संभवः कथमद्भुतः ॥ १० ॥

हे विप्र ! अग्निसे द्रुपद कुमार धृष्टद्युम्नकी उत्पत्ति कैसे हुई ? वेदीमेंसे कृष्णाका अद्भुत जन्म कैसे हुआ ? ॥ १० ॥

कथं द्रोणान्महेष्वासात्सर्वाण्यस्त्राण्यशिक्षत ।
कथं प्रियसखायौ तौ भिन्नौ कस्य कृतेन च ॥ ११ ॥

धृष्टद्युम्नने बडे धनुर्धारी आचार्य द्रोणसे सब अस्त्रोंकी शिक्षा कैसे पायी ? अत्यन्त प्रिय मित्र उन दोनों द्रुपद और द्रोणमें क्यों फूट पड गई ॥ ११ ॥

एवं तैश्चोदितो राजन्स विप्रः पुरुषर्षभैः ।
कथयामास तत्सर्वं द्रौपदीसंभवं तदा ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥ ५२३९ ॥

हे राजन् ! पुरुषोंमें प्रधान पाण्डवोंकी यह बात सुनकर वह ब्राह्मण द्रौपदीकी जन्म कथा कहने लगे ॥ १२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ तेरेपनवां अध्याय समाप्त ॥ १५३ ॥ ५२३९ ॥

: १५४ :

ब्राह्मण उवाच

गङ्गाद्वारं प्रति महान्बभूवर्षिर्महातपाः ।
भरद्वाजो महाप्राज्ञः सततं संशितव्रतः ॥ १ ॥

ब्राह्मण बोले— गङ्गाद्वारके निकट भरद्वाज नामक सदा व्रतशील महाप्राज्ञ, महातपस्वी एक महर्षि रहते थे ॥ १ ॥

सोऽभिषेक्तुं गतो गङ्गां पूर्वमेवागतां सतीम् ।
ददर्शाप्सरसं तत्र घृताचीमाप्लुतामृषिः ॥ २ ॥

एक समय उन्होंने गङ्गामें नहानेके लिए जानेपर देखा, कि उनके आनेके पहिले ही घृताची नामकी एक अप्सरा आकर नदीतट पर खडी हुई है ॥ २ ॥

तस्या वायुर्नदीतीरे वसनं व्यहरत्तदा ।
अपकृष्टाम्बरां दृष्ट्वा तामृषिश्चकमे ततः ॥ ३ ॥

उस समय नदीके किनारे पवनने उनका वस्त्र उडा दिया । ऋषि उसको नङ्गी देखकर उसी क्षण कामके वशमें हो गये और उसकी कामना करने लगे ॥ ३ ॥

तस्यां संसक्तमनसः कौमारब्रह्मचारिणः ।
हृष्टस्य रेतश्चस्कन्द तदृषिर्द्रोण आदधे ॥ ४ ॥

कुमारकी दशासे ही ब्रह्मचारी उस महर्षिका चित्त घृताची पर आसक्त होते ही उत्तेजित हो गया और उनका वीर्य गिर गया । उन्होंने उसीक्षण उसको द्रोण नामक पात्रमें रख दिया ॥ ४ ॥

ततः समभवद्द्रोणः कुमारस्तस्य धीमतः ।
अध्यगीष्ट स वेदांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ ५ ॥

इस प्रकार उस धीमान् ऋषिसे द्रोण नामक कुमारने जन्म लिया । उस कुमारने सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्ग पढे ॥ ५ ॥

भरद्वाजस्य तु सखा पृषतो नाम पार्थिवः ।
तस्यापि द्रुपदो नाम तदा समभवत्सुतः ॥ ६ ॥

उस समय पृषत् नामक एक राजा भरद्वाजके मित्र थे । उनसे भी द्रुपद नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥

स नित्यमाश्रमं गत्वा द्रोणेन सह पार्षतः ।
चिक्रीडाध्ययनं चैव चकार क्षत्रियर्षभः ॥ ७ ॥

वह क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ पृषत्पुत्र द्रुपद नित्य भरद्वाजके आश्रममें जाकर द्रोणके साथ खेलता था और अध्ययन करता था ॥ ७ ॥

ततस्तु पृषतेऽतीते स राजा द्रुपदोऽभवत् ।
द्रोणोऽपि रामं शुश्राव दित्सन्तं वसु सर्वशः ॥ ८ ॥

बादमें राजा पृषत्के स्वर्गको सिधार जाने पर राजा द्रुपद राज्यपर बैठे । द्रोणने भी इधर सब कुछ दान दे देनेकी इच्छा करनेवाले परशुरामके बारेमें सुना ॥ ८ ॥

वनं तु प्रस्थितं रामं भरद्वाजसुतोऽब्रवीत् ।
आगतं वित्तकामं मां विद्धि द्रोणं द्विजर्षभ ॥ ९ ॥

इसके बाद सब कुछ देकर वनमें जानेको उद्यत हुए हुए परशुरामसे भरद्वाजपुत्र बोले, कि हे द्विजोत्तम ! धन पानेकी इच्छासे आए हुए मुझे तुम द्रोण समझो ॥ ९ ॥

राम उवाच

शरीरमात्रमेवाद्य मयेदमवशेषितम् ।
अस्त्राणि वा शरीरं वा ब्रह्मन्नन्यतरं वृणु ॥ १० ॥

राम बोले– हे ब्रह्मन् ! मैं सब कुछ दान कर चुका हूं, अब मेरा शरीर और अस्त्र ही शेष हैं, अतएव मेरे संपूर्ण अस्त्र वा शरीर इन दोनोंमेंसे एकको मांग लो ॥ १० ॥

द्रोण उवाच

अस्त्राणि चैव सर्वाणि तेषां संहारमेव च ।
प्रयोगं चैव सर्वेषां दातुमर्हति मे भवान् ॥ ११ ॥

द्रोण बोले– हे भगवन् ! आप प्रयोग और उपसंहारके साथ सम्पूर्ण अस्त्र मुझको दे देवें ॥ ११ ॥

ब्राह्मण उवाच

तथेत्युक्त्वा ततस्तस्मै प्रददौ भृगुनन्दनः ।
प्रतिगृह्य ततो द्रोणः कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥ १२ ॥

ब्राह्मण बोले– तदनन्तर भृगुनन्दनने "तथास्तु" कह कर उनको सम्पूर्ण अस्त्र दे दिये । तब द्रोणने उनको लेकर कृतार्थ हो गए ॥ १२ ॥

संप्रहृष्टमनाश्चापि रामात्परमसंमतम् ।
ब्रह्मास्त्रं समनुप्राप्य नरेष्वभ्यधिकोऽभवत् ॥ १३ ॥

रामसे परम संमत ब्रह्मास्त्र पाकर और सब अस्त्रोंके पानेसे अधिक प्रसन्न वह द्रोण सब मनुष्योंसे अधिक बलशाली हो गए ॥ १३ ॥

ततो द्रुपदमासाद्य भारद्वाजः प्रतापवान् ।
अब्रवीत्पुरुषव्याघ्रः सखायं विद्धि मामिति ॥ १४ ॥

तब इसके बाद प्रतापी पुरुषसिंह भरद्वाजनन्दनने द्रुपदके निकट जाकर कहा, कि मुझे अपना मित्र समझो ॥ १४ ॥

द्रुपद उवाच

नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा ।
नाराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ १५ ॥

द्रुपदने उत्तर दिया– जो श्रोत्रिय नहीं है, वह कभी श्रोत्रियका मित्र नहीं हो सकता, जो रथी नहीं है, वह कभी रथीका मित्र नहीं हो सकता, और जो स्वयं राजा नहीं है, वह कभी राजाका मित्र नहीं हो सकता, अतएव तुम मुझे मित्र कहकर क्यों पुकार रहे हो ? ॥ १५ ॥

ब्राह्मण उवाच

स विनिश्चित्य मनसा पाञ्चाल्यं प्रति बुद्धिमान् ।
जगाम कुरुमुख्यानां नगरं नागसाह्वयम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मण बोले– बुद्धिमान् द्रोण पाञ्चाल द्रुपदकी वह बात सुनकर मन ही मनमें बदला लेनेका निश्चय कर कौरवोंके हस्तिनापुर नामक नगरको गये ॥ १६ ॥

तस्मै पौत्रान्समादाय वसूनि विविधानि च ।
प्राप्ताय प्रददौ भीष्मः शिष्यान्द्रोणाय धीमते ॥ १७ ॥

तब भीष्म उन आये हुए बुद्धिमान् द्रोणके निकट अपने पौत्रों और नाना प्रकारके धनोंको लेकर गए और अपने पौत्रोंको शिष्यके रूपमें द्रोणको सौंप दिया ॥ १७ ॥

द्रोणः शिष्यांस्ततः सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ।
समानीय तदा विद्वान्द्रुपदस्यासुखाय वै ॥ १८ ॥

तब द्रोण द्रुपदके दुःखके निमित्त अपने शिष्य पाण्डवोंको बुलवाकर सबसे यह वचन बोले ॥ १८ ॥

आचार्यवेतनं किंचिद्धृदि संपरिवर्तते ।
कृतास्त्रैस्तत्प्रदेयं स्यात्तदृतं वदतानघाः ॥ १९ ॥

हे निष्पाप राजकुमारो ! सत्य बोलो, कि तुम्हारे अस्त्रविद्यामें पंडित होनेपर तुम वह गुरुदक्षिणा दोगे, कि जिसके लिये मैंने निश्चय कर रखा है ॥ १९ ॥

यदा च पाण्डवाः सर्वे कृतास्त्राः कृतनिश्रमाः ।
ततो द्रोणोऽब्रवीद्भूयो वेतनार्थमिदं वचः ॥ २० ॥

जब परिश्रम करनेवाले पाण्डवोंने अस्त्रविद्या भलीभांति सीख ली, तब आचार्य द्रोणने फिर उनसे गुरुदक्षिणाके लिये यह वचन कहा ॥ २० ॥

पार्षतो द्रुपदो नाम छत्रवत्यां नरेश्वरः ।
तस्यापकृष्य तद्राज्यं मम शीघ्रं प्रदीयताम् ॥ २१ ॥

पृषत्के पुत्र द्रुपद छत्रवती देशके अधीश हैं, तुम शीघ्र उनसे उस राज्यको छीन कर मुझको दे दो ॥ २१ ॥

ततः पाण्डुसुताः पञ्च निर्जित्य द्रुपदं युधि ।
द्रोणाय दर्शयामासुर्बद्ध्वा ससचिवं तदा ॥ २२ ॥

अनन्तर पांचों पाण्डवोंने द्रुपदको युद्धमें परास्त करके मंत्रियोंके साथ बांधकर द्रोणको दिखाया ॥ २२ ॥

द्रोण उवाच

प्रार्थयामि त्वया सख्यं पुनरेव नराधिप ।
अराजा किल नो राज्ञः सखा भवितुमर्हति ॥ २३ ॥

तब द्रोण द्रुपदसे बोले– हे राजन् ! मैं फिर तुमसे मित्रता करना चाहता हूं, पर राजा न होनेसे राजासे मित्रता नहीं हो सकती ॥ २३ ॥

अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन मया तव ।
राजासि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे ॥ २४ ॥

इसीलिये मैंने तुम्हारा राज्य लेनेका प्रयत्न किया है। अब तुम भागीरथीके दक्षिण किनारेके राजा होओ और मैं उत्तर किनारेका होऊं ॥ २४ ॥

ब्राह्मण उवाच

असत्कारः स सुमहान्मुहूर्तमपि तस्य तु ।
न व्येति हृदयाद्राज्ञो दुर्मनाः स कृशोऽभवत् ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥ ५२६४ ॥

ब्राह्मण बोला– पर राजा द्रुपदके हृदयसे वह बडा अपमान क्षणभरके लिये भी दूर नहीं हुआ, वह उसके सोचसे अति दुःखी और दुबले होने लगे ॥ २५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ चौव्वनवां अध्याय समाप्त ॥ १५४ ॥ ५२६४ ॥

: १५५ :

ब्राह्मण उवाच

अमर्षी द्रुपदो राजा कर्मसिद्धान्द्विजर्षभान् ।
अन्विच्छन्परिचक्राम ब्राह्मणावसथान्बहून् ॥ १ ॥

ब्राह्मण बोले— दुःखी राजा द्रुपद कर्ममें सिद्ध अच्छे ब्राह्मणोंको ढूंढते हुए बहुतसे ब्राह्मणोंके घर गए ॥ १ ॥

पुत्रजन्म परीप्सन्वै शोकोपहतचेतनः ।
नास्ति श्रेष्ठं ममापत्यमिति नित्यमचिन्तयत् ॥ २ ॥

शोकचित्तवाले होकर पुत्र प्राप्त करनेकी इच्छासे राजा द्रुपदके हृदयमें " मेरी अच्छी सन्तान नहीं है " यह चिन्ता सदा जगती रहती थी ॥ २ ॥

जातान्पुत्रान्स निर्वेदाद्धिग्बन्धूनिति चाब्रवीत् ।
निःश्वासपरमश्चासीद्द्रोणं प्रतिचिकीर्षया ॥ ३ ॥

वह अपने अनादरके कारण अपने उत्पन्न हुए पुत्रों और मित्रोंको धिक्कारते हुए द्रोणसे बदला लेनेकी इच्छासे सदा लंबी सांस छोडा करते थे ॥ ३ ॥

प्रभावं विनयं शिक्षां द्रोणस्य चरितानि च ।
क्षात्रेण च बलेनास्य चिन्तयन्नान्वपद्यत ।
प्रतिकर्तुं नृपश्रेष्ठो यतमानोऽपि भारत ॥ ४ ॥

वह बदला लेनेके लिए प्रयत्न करनेपर भी सोचकर निश्चय नहीं कर सके, कि क्षत्रिय बलसे किस प्रकार द्रोणके प्रभाव, नम्रता, शिक्षा और चरित्रसे बढ सकते हैं ॥ ४ ॥

अभितः सोऽथ कल्माषीं गङ्गाकूले परिभ्रमन् ।
ब्राह्मणावसथं पुण्यमाससाद महीपतिः ॥ ५ ॥

इसके बाद घूमते घामते राजा गङ्गाके किनारे कल्माषपाद नामक राजाके नगरके निकट ब्राह्मणोंके पवित्र स्थानमें जा पहुंचे ॥ ५ ॥

तत्र नास्नातकः कश्चिन्न चासीदव्रती द्विजः ।
तथैव नामहाभागः सोऽपश्यत्संशितव्रतौ ॥ ६ ॥

वहां उन्होंने निवास करनेवाले व्रतशीलोंमें कोई भी अस्नातक नहीं देखा, किसी भी ब्राह्मणको व्रतरहित नहीं देखा, किसीको भी दुर्भाग्यशाली नहीं देखा ॥ ६ ॥

याजोपयाजौ ब्रह्मर्षी शाम्यन्तौ पृषतात्मजः ।
संहिताध्ययने युक्तौ गोत्रतश्चापि काश्यपौ ॥ ७ ॥

उस पृषत्पुत्रने उन ब्राह्मणोंमें याज और उपयाज नामक व्रतशील, ब्रह्मर्षी, शमगुणी, संहिता पाठमें नियुक्त, काश्यप गोत्रवाले ॥ ७ ॥

तारणे युक्तरूपौ तौ ब्राह्मणावृषिसत्तमौ ।
स तावामन्त्रयामास सर्वकामैरतन्द्रितः ॥ ८ ॥

सूर्यके उपासक, सुंदर रूपवाले, ऋषियोंमें श्रेष्ठ दो ब्रह्मर्षियोंको देखकर उनसे इच्छानुरूप कार्य पूरा करानेके योग्य समझ कर राजाने आलस्यको विसार कर सम्पूर्ण कामनाओंसे उनकी उपासना की और उन्हें आमंत्रण दिया ॥ ८ ॥

बुद्ध्वा तयोर्बलं बुद्धिं कनीयांसमुपह्वरे ।
प्रपेदे छन्दयन्कामैरुपयाजं धृतव्रतम् ॥ ९ ॥

तव उन दोनोंके बलकी परीक्षा करके उनमें कनिष्ठको शक्तिमान् जानकर एकान्तमें संपूर्ण कामकी वस्तुओंका लोभ दिखा, उस व्रतशील उपयाजकी शरण ली ॥ ९ ॥

पादशुश्रूषणे युक्तः प्रियवाक्सर्वकामदः ।
अर्हयित्वा यथान्यायमुपयाजमुवाच सः ॥ १० ॥

पैरोंकी सेवामें नियुक्त होकर, मीठी वात कह, सभी अभिलापा पूरी कर इत्यादि उपायोंसे उन व्रतशील उपयाजको प्रसन्न करने लगे और उनकी विधिपूर्वक पूजा कर उससे बोले ॥ १० ॥

येन मे कर्मणा ब्रह्मन्पुत्रः स्याद्द्रोणमृत्यवे ।
उपयाज कृते तस्मिन्गवां दातास्मि तेऽर्वुदम् ॥ ११ ॥

हे ब्रह्मन् उपयाज ! यदि आप यह कर्म करें, कि जिसके करनेसे मेरे द्रोणका नाश करनेवाले एक पुत्रका जन्म हो, तो मैं आपको एक अर्बुद अर्थात् दस करोड गौ दूंगा ॥ ११ ॥

यद्वा तेऽन्यद्द्विजश्रेष्ठ मनसः सुप्रियं भवेत् ।
सर्वं तत्ते प्रदाताहं न हि मेऽस्त्यत्र संशयः ॥ १२ ॥

अथवा, हे द्विजश्रेष्ठ ! यदि आपकी और कोई वस्तु आपके मनको प्रिय हो, तो इसमें संदेह नहीं है, कि उसे भी पूराकर दूंगा ॥ १२ ॥

इत्युक्तो नाहमित्येवं तमृषिः प्रत्युवाच ह ।
आराधयिष्यन्द्रुपदः स तं पर्यचरत्पुनः ॥ १३ ॥

इस प्रकार कहे जानेपर उससे ऋषि बोले, कि मैं यह काम नहीं कर सकूंगा । द्रुपद उस पर भी उन ऋषिको प्रसन्न करनेके लिये फिर सेवा करने लगे ॥ १३ ॥

ततः संवत्सरस्यान्ते द्रुपदं स द्विजोत्तमः ।
उपयाजोऽब्रवीद्राजन्काले मधुरया गिरा ॥ १४ ॥

हे राजन् ! तब एक वर्ष बीत जानेपर एक दिन द्विजोत्तम उपयाजने राजा द्रुपदको मीठी बातोंसे कहा ॥ १४ ॥

ज्येष्ठो भ्राता ममागृह्णाद्विचरन्वननिर्झरे ।
अपरिज्ञातशौचायां भूमौ निपतितं फलम् ॥ १५ ॥

एक समय मेरे ज्येष्ठ भाईने झरनेवाले वनमें चलते समय ऐसे स्थानसे गिरा हुआ फल उठा लिया, कि वह नहीं जानते थे, कि वह स्थान पवित्र है वा नहीं ॥ १५ ॥

तदपश्यमहं भ्रातुरसांप्रतमनुव्रजन् ।
विमर्शं संकरादाने नायं कुर्यात्कथंचन ॥ १६ ॥

मैं उनके पीछे चल रहा था, अतः उन्हें उस अयोग्य कामको मैंने करते देखा था। हे राजन् ! उन्होंने उस दोषयुक्त वस्तुके लेनेमें कोई विचार नहीं किया ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा फलस्य नापश्यद्दोषा येऽस्यानुबन्धिकाः ।
विविनक्ति न शौचं यः सोऽन्यत्रापि कथं भवेत् ॥ १७ ॥

उस फलको देखते ही उसके पापयुक्त दोष उनकी बुद्धिमें एकवार भी नहीं आये; अतएव जिन्होंने एक स्थानमें शौचका विचार नहीं किया, वह अन्य स्थानमें दोषका विमर्श कैसे करेंगे ? ॥ १७ ॥

संहिताध्ययनं कुर्वन्वसन्गुरुकुले च यः ।
भैक्ष्यमुच्छिष्टमन्येषां भुङ्क्ते चापि सदा सदा ।
कीर्तयन्गुणमन्नानामघृणी च पुनः पुनः ॥ १८ ॥

जब वह गुरुकुलमें रहकर संहिता पढते थे, तब बहुधा औरोंकी जूठी की हुई वस्तु भी खा लेते थे, इसमें उनको घृणा नहीं थी; वह सदा अन्नहीका गुण गाया करते थे ॥ १८ ॥

तमहं फलार्थिनं मन्ये भ्रातरं तर्कचक्षुषा ।
तं वै गच्छस्व नृपते स त्वां संयाजयिष्यति ॥ १९ ॥

उनके उस प्रकारके कामोंको देखनेके कारण मैं तर्करूपी आंखोंसे उनको फल प्राप्त करनेका अभिलाषी समझ रहा हूं ! हे महाराज ! तुम उनके पास जाओ; वह तुम्हारे यज्ञका कार्य अवश्य पूरा करेंगे ॥ १९ ॥

×

जुगुप्समानो नृपतिर्मनसेदं विचिन्तयन्।
उपयाजवचः श्रुत्वा नृपतिः सर्वधर्मवित्।
अभिसंपूज्य पूजार्हमृषिं याजमुवाच ह ॥ २० ॥

राजा द्रुपद याजके चरित्रको सुनकर निंदा करनेकी इच्छा होने पर भी मन ही मनमें अपने कार्यके बारेमें विचार कर उपयाजकी बातको सुनकर धर्मज्ञ राजा पूजनीय ऋषि याजको सब प्रकारसे पूजकर बोले ॥ २० ॥

अयुतानि ददान्यष्टौ गवां याजय मां विभो।
द्रोणवैराभिसंतप्तं त्वं ह्लादयितुमर्हसि ॥ २१ ॥

हे विभो ! मैं आपको अस्सी हजार गौ दान करूंगा, आप मेरा याजन कार्य करें। मैं द्रोण-की शत्रुतारूपी आगसे जल रहा हूं, आप कृपारूपी जल सींचकर मुझको शीतल करें ॥ २१ ॥

स हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठो ब्रह्मास्त्रे चाप्यनुत्तमः।
तस्माद्द्रोणः पराजैषीन्मां वै स सखिविग्रहे ॥ २२ ॥

द्रोण ब्रह्मविद्या जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हैं और ब्रह्मास्त्रमें भी अत्यन्त उत्तम हैं; इसलिये उन्होंने मित्रताकी लडाईमें मुझको परास्त किया है ॥ २२ ॥

क्षत्रियो नास्ति तुल्योऽस्य पृथिव्यां कश्चिदग्रणीः।
कौरवाचार्यमुख्यस्य भारद्वाजस्य धीमतः ॥ २३ ॥

उस बुद्धिमान् और कौरवोंके प्रधान आचार्य द्रोणकी तुलनामें इस भूमण्डलमें कोई भी क्षत्रिय श्रेष्ठ नहीं है ॥ २३ ॥

द्रोणस्य शरजालानि प्राणिदेहहराणि च।
षडरत्नि धनुश्चास्य दृश्यतेऽप्रतिमं महत् ॥ २४ ॥

उनका धनुष छः हाथ जितना बडा और अद्वितीय है; उनका बाणजाल भी सब जीवोंके शरीरका नाश कर सकता है ॥ २४ ॥

स हि ब्राह्मणवेगेन क्षात्रं वेगमसंशयम्।
प्रतिहन्ति महेष्वासो भारद्वाजो महामनाः ॥ २५ ॥

इसमें संदेह नहीं है कि वह महानुभाव भारद्वाज ब्राह्मणके वेशमें बडे धनुर्धारी होकर क्षत्रिय-तेजका सत्यानाश कर रहे हैं ॥ २५ ॥

क्षत्रोच्छेदाय विहितो जामदग्न्य इवास्थितः।
तस्य ह्यस्त्रबलं घोरमप्रसह्यं नरैर्भुवि ॥ २६ ॥

वह क्षत्रिय नाशके लिये मानो दूसरे परशुराम बनकर पैदा हुए हैं। इस पृथ्वीभरमें मनुष्योंके द्वारा उनका कठोर अस्त्रबल सहा नहीं जा सकता ॥ २६ ॥

ब्राह्ममुच्चारयंस्तेजो हुताहुतिरिवानलः ।
समेत्य स दहत्याजौ क्षत्रं ब्रह्मपुरःसरः ।
ब्रह्मक्षत्रे च विहिते ब्रह्मतेजो विशिष्यते ॥ २७ ॥

वह आहुतियुक्त प्रज्ज्वलित अग्निकी भांति ब्राह्मतेजके साथ साथ क्षत्रियतेजको मिलाकर शत्रुको जला मारते हैं। उनका ब्राह्मतेज क्षत्रियतेजसे मिलकर श्रेष्ठ होने पर भी आपका ब्राह्मतेज उनसे श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥

सोऽहं क्षत्रबलाद्धीनो ब्रह्मतेजः प्रपेदिवान् ।
द्रोणाद्विशिष्टमासाद्य भवन्तं ब्रह्मवित्तमम् ॥ २८ ॥

केवल क्षत्रियबलको धारण करनेवाला वह मैं उनसे हीन हूं; अतएव मैं आपको जो द्रोणसे श्रेष्ठ और वेदके अच्छे जानकार हैं, प्राप्त होकर आपके ब्राह्मतेजकी शरणमें आया हूं ॥२८॥

द्रोणान्तकमहं पुत्रं लभेयं युधि दुर्जयम् ।
तत्कर्म कुरु मे याज निर्वपाम्यर्बुदं गवाम् ॥ २९ ॥

हे याज ! ऐसा काम करें, कि जिससे मैं लडाईमें जीते जानेके अयोग्य और द्रोणको नष्ट करनेवाला पुत्र प्राप्त कर सकूं; आपको दश करोड गायें देनेको प्रस्तुत हूं ॥ २९ ॥

तथेत्युक्त्वा तु तं याजो याज्यार्थमुपकल्पयत् ।
गुर्वर्थ इति चाकाममुपयाजमचोदयत् ।
याजो द्रोणविनाशाय प्रतिजज्ञे तथा च सः ॥ ३० ॥

याज उस राजासे ' तथास्तु ' कहकर यज्ञके प्रयोगके विषयमें मन ही मनमें विचार करने लगे; और उस कार्यको कठिन जानकर निष्काम कर्म करनेवाले उपयाजसे सहायता करनेको कहा । महर्षि याजने तब द्रोणनाशके लिये प्रतिज्ञा की ॥ ३० ॥

ततस्तस्य नरेन्द्रस्य उपयाजो महातपाः ।
आचख्यौ कर्म वैतानं तदा पुत्रफलाय वै ॥ ३१ ॥

इसके बाद महातपस्वी उपयाजने नरेन्द्र द्रुपदसे उनके पुत्र प्राप्तिरूप फलके लिये श्रौताग्निसे साध्य कर्मकी कथा कह सुनायी और कहा ॥ ३१ ॥

स च पुत्रो महावीर्यो महातेजा महाबलः ।
इष्यते यद्विधो राजन्भविता ते तथाविधः ॥ ३२ ॥

हे द्रुपद ! आप जैसे एक पुत्रकी कामना करेंगे, आपको वैसा ही पुत्र मिलेगा। वह आपका पुत्र महावीर्यवान्, महातेजस्वी और अत्यन्त बलशाली होगा ॥ ३२ ॥

भारद्वाजस्य हन्तारं सोऽभिसंधाय भूमिपः।
आजह्रे तत्तथा सर्वं द्रुपदः कर्मसिद्धये ॥ ३३ ॥

भूपाल द्रुपदने तब द्रोणके विनाशी पुत्रको पानेका उपाय जानकर कार्य सिद्ध करनेके लिये उस यज्ञके योग्य संपूर्ण सामग्री इकट्ठी कर दी, तब उन्होंने यज्ञ आरंभ कर दिया ॥३३॥

याजस्तु हवनस्यान्ते देवीमाह्वापयत्तदा।
प्रैहि मां राज्ञि पृषति मिथुनं त्वामुपस्थितम् ॥ ३४ ॥

तदनन्तर याजने हवनके अन्तमें रानीको बुलाया और कहा कि हे राज्ञी! पृषत्‌राज वधू! तुम हवि लेनेके लिये शीघ्र मेरे पास आओ; तुम्हारे पुत्र और कन्या उपस्थित हैं ॥ ३४ ॥

देव्युवाच

अवलिप्तं मे मुखं ब्रह्मन्पुण्यान्गन्धान्बिभर्मि च।
सुतार्थेनोपरुद्धास्मि तिष्ठ याज मम प्रिये ॥ ३५ ॥

देवी बोली– हे ब्रह्मन्! मेरा मुंह कुंकुमादि पदार्थोंसे लिप्त है, उबटन आदि सुगन्धित पदार्थोंको मैं लगाए हुए हैं, अतएव मेरे अभीष्ट पुत्रके लिये आप कुछ काल विलंब करें; मैं शुद्ध हो जाती हूं ॥ ३५ ॥

याज उवाच

याजेन श्रपितं हव्यमुपयाजेन मन्त्रितम्।
कथं कामं न संदध्यात्सा त्वं विप्रैहि तिष्ठ वा ॥ ३६ ॥

याज बोले– हवनके पदार्थ उपयाजसे मंत्रयुक्त होकर याजके द्वारा पकाये गये हैं, अतः तुम चाहे आओ वा न आओ, अवश्य ही उससे कामना पूरी होगी ॥ ३६ ॥

ब्राह्मण उवाच

एवमुक्ते तु याजेन हुते हविषि संस्कृते।
उत्तस्थौ पावकात्तस्मात्कुमारो देवसंनिभः ॥ ३७ ॥

ब्राह्मण बोले– याजने यह कह कर अग्निमें उस संस्कार किये हुए हव्यकी ज्यों ही आहुति दी, त्यों ही उस अग्निसे देवके समान एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥

ज्वालावर्णो घोररूपः किरीटी वर्म चोत्तमम्।
बिभ्रत्सखड्गः सशरो धनुष्मान्विनदन्मुहुः ॥ ३८ ॥

वह ज्वालावर्ण, भीमाकृति किरीटसे सुशोभित सुन्दर कवचयुक्त तलवारसहित धनुषबाणधारी था। वह कुमार जन्म लेते ही बार बार सिंह–गर्जन करता हुआ ॥ ३८ ॥

सोऽध्यारोहद्रथवरं तेन च प्रययौ तदा ।
ततः प्रणेदुः पाञ्चालाः प्रहृष्टाः साधु साध्विति ॥ ३९ ॥

प्रधान रथ पर चढ गया और उस रथसे इधर उधर जाने लगा । यह देखकर पाञ्चाल-लोग आनन्दित होके "साधु–साधु" कहके भारी शब्द करने लगे ॥ ३९ ॥

भयापहो राजपुत्रः पाञ्चालानां यशस्करः ।
राज्ञः शोकापहो जात एष द्रोणवधाय वै ।
इत्युवाच महद्भूतमदृश्यं खेचरं तदा ॥ ४० ॥

"इस राजकुमारने द्रोणवधके लिये जन्म लिया है । यह पुत्र पाञ्चालोंका यश बढानेवाला, भयनाशी और राजाका शोक दूर करनेवाला होगा ।" इस प्रकार एक अदृश्य बडी आकाशवाणी हुई ॥ ४० ॥

कुमारी चापि पाञ्चाली वेदिमध्यात्समुत्थिता ।
सुभगा दर्शनीयाङ्गी वेदिमध्या मनोरमा ॥ ४१ ॥

तदन्तर वेदीके मध्यसे पाञ्चालराजकुमारी सौभाग्यवती, सुन्दर अंगोंवाली एक कुमारी उत्पन्न हुई ॥ ४१ ॥

श्यामा पद्मपलाशाक्षी नीलकुञ्चितमूर्धजा ।
मानुषं विग्रहं कृत्वा साक्षादमरवर्णिनी ॥ ४२ ॥

वह श्यामवर्णकी पद्मपलाशके समान नीली आंखोंवाली थी । उसके केश काले और घुंघराले थे; उसकी शोभा देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि मानों साक्षात् देवकन्या मानवीके स्वरूपमें प्रगट हुई हो ॥ ४२ ॥

नीलोत्पलसमो गन्धो यस्याः क्रोशात्प्रवायति ।
या बिभर्ति परं रूपं यस्या नास्त्युपमा भुवि ॥ ४३ ॥

उसकी नीलपद्म समान देहकी गन्ध कोसभरकी दूरीतक पहुंचने लगी । वह देवरूपिणी कन्या ऐसी अनुपम रूपवती थी, कि संसारमें उसकी कोई उपमा नहीं थी ॥ ४३ ॥

तां चापि जातां सुश्रोणीं वागुवाचाशरीरिणी ।
सर्वयोषिद्वरा कृष्णा क्षयं क्षत्रं निनीषति ॥ ४४ ॥

उस सुन्दरी कन्याके जन्म लेने पर भी आकाशवाणी हुई, कि "यह कृष्णा सम्पूर्ण नारियोंमें श्रेष्ठ और क्षत्रियकुलोंका नाश करानेवाली होगी ॥ ४४ ॥

सुरकार्यमियं काले करिष्यति सुमध्यमा ।
अस्या हेतोः क्षत्रियाणां महदुत्पत्स्यते भयम् ॥ ४५ ॥

इस सुन्दरीसे उचित समय पर देवताओंका कार्य पूरा होगा । इसके कारण ही क्षत्रियोंमें बडा भय उपस्थित होगा " ॥ ४५ ॥

तच्छ्रुत्वा सर्वपाञ्चालाः प्रणेदुः सिंहसङ्घवत् ।
न चैतान्हर्षसंपूर्णानियं सेहे वसुन्धरा ॥ ४६ ॥

संपूर्ण पाञ्चाल उसे सुनकर हर्षके मारे सिंहोंके समूहके समान ध्वनि करने लगे । और धरती उन हर्षित पाञ्चालोंका भार संभालनेमें असमर्थ हो गई ॥ ४६ ॥

तौ दृष्ट्वा पृषती याजं प्रपेदे वै सुतार्थिनी ।
न वै मदन्यां जननीं जानीयातामिमाविति ॥ ४७ ॥

पुत्रचाहनेवाली राजा द्रुपदकी रानी उस पुत्र और कन्याको देखकर याजके निकट जा पहुंची और बोली, आप ऐसा करें, कि यह पुत्र और कन्या मेरे अतिरिक्त किसी दूसरीको माताके रूपमें जान न सकें ॥ ४७ ॥

तथेत्युवाच तां याजो राज्ञः प्रियचिकीर्षया ।
तयोश्च नामनी चक्रुर्द्विजाः संपूर्णमानसाः ॥ ४८ ॥

याज राजाके प्रिय कार्यको करनेके लिये "तथास्तु" बोले, तब ब्राह्मणगणोंने सफल मनोरथवाले होकर उनके नाम रखे ॥ ४८ ॥

धृष्टत्वादतिधृष्णुत्वाद्धर्माद्द्युत्संभवादपि ।
धृष्टद्युम्नः कुमारोऽयं द्रुपदस्य भवत्विति ॥ ४९ ॥

राजा द्रुपदका यह कुमार धृष्ट अर्थात प्रगल्भ, अति धृष्ट अर्थात् विपक्षियोंकी उन्नति न सहनेवाला और द्युम्नादि अर्थात् कवच कुण्डल आदिके साथ उत्पन्न हुआ है, अतः इसका नाम धृष्टद्युम्न हो ॥ ४९ ॥

कृष्णेत्येवाब्रुवन्कृष्णां कृष्णाभूत्सा हि वर्णतः ।
तथा तन्मिथुनं जज्ञे द्रुपदस्य महामखे ॥ ५० ॥

और यह कुमारी काली हुई है, अतः इसका नाम कृष्णा हो । राजा द्रुपदके महायज्ञसे ऐसे पुत्र और कन्याकी उत्पत्ति हुई थी ॥ ५० ॥

धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यमानीय स्वं निवेशनम् ।
उपाकरोदस्त्रहेतोर्भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५१ ॥

अनन्तर प्रतापी भारद्वाज द्रोणने पाञ्चालराजके पुत्र धृष्टद्युम्नको अपने घरमें लाकर अस्त्रों-की शिक्षा देकर पहिले लिये हुए आधे राज्यको लेनेके बदलेमें उपकार किया ॥ ५१ ॥

अमोक्षणीयं दैवं हि भावि मत्वा महामतिः ।
तथा तत्कृतवान्द्रोण आत्मकीर्त्यनुरक्षणात् ॥ ९२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥ ५३१६ ॥

महामति द्रोणने यह समझ कर कि दैवीभाव लङ्घनयोग्य नहीं है, अपनी कीर्तिकी रक्षाके लिये ऐसा कार्य किया ॥ ९२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ पचपनवां अध्याय समाप्त ॥ १५५ ॥ ५३१६ ॥

: १५६ :

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु कौन्तेयाः शल्यविद्धा इवाभवन् ।
सर्वे चास्वस्थमनसो बभूवुस्ते महारथाः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— अनन्तर महारथी पाण्डवगण वह वृत्तान्त सुनकर शूलीसे बिंधे जानेकी भांति दुःखी हुए ॥ १ ॥

ततः कुन्ती सुतान्दृष्ट्वा विभ्रान्तान्गतचेतसः ।
युधिष्ठिरमुवाचेदं वचनं सत्यवादिनी ॥ २ ॥

सत्य बोलनेवाली कुन्ती पुत्रोंको अनमना देखकर युधिष्ठिरसे यह वचन बोली ॥ २ ॥

चिररात्रोषिताः स्मेह ब्राह्मणस्य निवेशने ।
रममाणाः पुरे रम्ये लब्धभैक्षा युधिष्ठिर ॥ ३ ॥

हमको इस ब्राह्मणके घर रहते हुए बहुत दिन हो गए हैं। इस सुन्दर नगरमें महात्माओंसे भिक्षा ले ले कर खेल कूदकर काल बिताया है ॥ ३ ॥

यानीह रमणीयानि वनान्युपवनानि च ।
सर्वाणि तानि दृष्टानि पुनः पुनररिंदम ॥ ४ ॥

हे शत्रुनाशी ! यहां जितने सुन्दर सुन्दर वन और उपवन हैं, वह सभी हम बार बार देख चुके हैं ॥ ४ ॥

पुनर्दृष्टानि तान्येव प्रीणयन्ति न नस्तथा ।
भैक्षं च न तथा वीर लभ्यते कुरुनन्दन ॥ ५ ॥

हे वीर कुरुनन्दन ! उन स्थानोंको फिर देखनेकी अब वैसी प्रीति नहीं होती, और एक स्थानमें रहनेसे वैसी भिक्षा भी नहीं मिलती ॥ ५ ॥

ते वयं साधु पाञ्चालान्गच्छाम यदि मन्यसे ।
अपूर्वदर्शनं तात रमणीयं भविष्यति ॥ ६ ॥

अतएव यदि तुम्हारा मत होवे, तो हम सुखसे पाञ्चाल देशको जायें, वह स्थान पहिले नहीं देखा है, उसके देखनेसे सुख प्राप्त होगा ॥ ६ ॥

सुभिक्षाश्चैव पाञ्चालाः श्रूयन्ते शत्रुकर्शन ।
यज्ञसेनश्च राजासौ ब्रह्मण्य इति शुश्रुमः ॥ ७ ॥

हे शत्रुनाशि ! सुना है, कि पाञ्चालदेश अन्नसे भरा पूरा है और वहांके राजा यज्ञसेन भी ब्रह्मपरायण हैं ॥ ७ ॥

एकत्र चिरवासो हि क्षमो न च मतो मम ।
ते तत्र साधु गच्छामो यदि त्वं पुत्र मन्यसे ॥ ८ ॥

फिर भी एक स्थानमें सदा रहना मेरा अभीष्ट नहीं है, यह उचित भी नहीं है । यदि तुम्हारा मत होवे, तो हम उस स्थानको सुखपूर्वक पधारें ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

भवत्या यन्मतं कार्यं तदस्माकं परं हितम् ।
अनुजांस्तु न जानामि गच्छेयुर्नेति वा पुनः ॥ ९ ॥

युधिष्ठिर बोले— आपकी जैसी इच्छा होगी, वही हम करेंगे, और वही हमारी मङ्गलदायी होगी; पर मैं नहीं जानता कि भाई भी चलना चाहते हैं या नहीं ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः कुन्ती भीमसेनमर्जुनं यमजौ तथा ।
उवाच गमनं ते च तथेत्येवाब्रुवंस्तदा ॥ १० ॥

वैशम्पायन बोले— अनन्तर कुन्तीने जब भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवसे वहां जानेकी इच्छा पूछी, तब वे भी उस पर राजी हो गए ॥ १० ॥

तत आमन्त्र्य तं विप्रं कुन्ती राजन्सुतैः सह ।
प्रतस्थे नगरीं रम्यां द्रुपदस्य महात्मनः ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥ ५३२७ ॥

महाराज ! अनन्तर कुन्ती और उनके बेटे ब्राह्मणसे मिलकर महात्मा भूपाल द्रुपदके सुन्दर नगरके लिए चल पडे ॥ ११ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥ १५६ ॥ ॥ ५३२७ ॥

: १५७ :

वैशम्पायन उवाच

वसत्सु तेषु प्रच्छन्नं पाण्डवेषु महात्मसु ।
आजगामाथ तान्द्रष्टुं व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– जब महात्मा पाण्डवलोग ब्राह्मणके घरमें छिपकर रह रहे थे, तब एक दिन सत्यवतीके पुत्र व्यास उनकी भेंटके लिये आये ॥ १ ॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य प्रत्युद्गम्य परंतपाः ।
प्रणिपत्याभिवाद्यैनं तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा ॥ २ ॥

शत्रुनाशी पाण्डवगण उनको आते देखकर उठकरके प्रणामपूर्वक उनका अभिवादन करके दोनों हाथ जोड करके खडे हो गए ॥ २ ॥

समनुज्ञाप्य तान्सर्वानासीनान्मुनिरब्रवीत् ।
प्रसन्नः पूजितः पार्थैः प्रीतिपूर्वमिदं वचः ॥ ३ ॥

इसके बाद उनकी आज्ञासे वे सब बैठ गये । वह उनसे पूजे जाकर प्रीतिपूर्वक यह वचन बोले ॥ ३ ॥

अपि धर्मेण वर्तध्वं शास्त्रेण च परंतपाः ।
अपि विप्रेषु वः पूजा पूजार्हेषु न हीयते ॥ ४ ॥

हे शत्रुनाशियो ! तुम धर्ममार्गमें रहकर शास्त्रके अनुसार अपनी जीविका कर लेते हो न? पूजनीय ब्राह्मण लोग तुमसे पूजे तो जाते हैं ? ॥ ४ ॥

अथ धर्मार्थवद्वाक्यमुक्त्वा स भगवानृषिः ।
विचित्राश्च कथास्तास्ताः पुनरेवेदमब्रवीत् ॥ ५ ॥

अनन्तर भगवान् कृष्णद्वैपायन धर्मार्थयुक्त वाक्य कहकर भांति भांतिकी विचित्र कथा कह कर फिर यह कहने लगे ॥ ५ ॥

आसीत्तपोवने काचिदृषेः कन्या महात्मनः ।
विलग्नमध्या सुश्रोणी सुभ्रूः सर्वगुणान्विता । ॥ ६ ॥

एक तपोवनमें किसी महात्मा ऋषिकी एक कन्या थी; उसकी कमर पतली और भौंह अच्छी थीं और वह बडी सुंदरी और सब गुणोंसे युक्त थी ॥ ६ ॥

कर्मभिः स्वकृतैः सा तु दुर्भगा समपद्यत ।
नाध्यगच्छत्पतिं सा तु कन्या रूपवती सती ॥ ७ ॥

ऋषिकन्या अपने कर्मवश अभागी हो गई थी । सती और रूपवती होनेपर भी उसे कोई पति नहीं मिला ॥ ७ ॥

×

तपस्तप्तुमथारेभे पत्यर्थमसुखा ततः।
तोषयामास तपसा सा किलोग्रेण शंकरम् ॥ ८ ॥

तब वह चित्तमें दुःख मानकर पति पानेके लिये तप करने लगी। और कडी तपस्यासे उसने भगवान् शंकरको संतुष्ट किया ॥ ८ ॥

तस्याः स भगवांस्तुष्टस्तामुवाच तपस्विनीम्।
वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मीति भामिनी ॥ ९ ॥

उसकी उस तपस्यासे शंकर प्रसन्न होकर उस तपस्विनीसे बोले— हे भद्रे ! मैं तुमको वर देनेको उद्यत हुआ हूं, वर मांगो, तुम्हारा मंगल होगा ॥ ९ ॥

अथेश्वरमुवाचेदमात्मनः सा वचो हितम्।
पतिं सर्वगुणोपेतमिच्छामीति पुनः पुनः ॥ १० ॥

ऋषिकन्या अपने हितके निमित्त ईश्वरसे वार वार बोली, मैं सब गुणोंसे भूषित पति मांगती हूं ॥ १० ॥

तामथ प्रत्युवाचेदमीशानो वदतां वरः।
पञ्च ते पतयो भद्रे भविष्यन्तीति शंकरः ॥ ११ ॥

वाक्‌पति ईशान शंकर उससे बोले, हे भद्रे ! तुम्हें पांच पति मिलेंगे ॥ ११ ॥

प्रतिब्रुवन्तीमेकं मे पतिं देहीति शंकरम्।
पुनरेवाब्रवीद्देव इदं वचनमुत्तमम् ॥ १२ ॥

हे देव ! हे विभो ! मैं आपकी कृपासे एक ही पति मांगती हूं। इस प्रकार कहती हुई उस कन्यासे देवदेव फिर यह सुन्दर वाणी बोले ॥ १२ ॥

पञ्चकृत्वस्त्वया उक्तः पतिं देहीत्यहं पुनः।
देहमन्यं गतायास्ते यथोक्तं तद्भविष्यति ॥ १३ ॥

तुमने यह बात कि " पति दो " पांच वार मुझसे कही है, अतः अन्य जन्ममें तुम्हारे जाने पर तुम्हारे पांच पति होंगे ॥ १३ ॥

द्रुपदस्य कुले जाता कन्या सा देवरूपिणी।
निर्दिष्टाः भवतां पत्नी कृष्णा पार्षत्यनिन्दिता ॥ १४ ॥

हे भरतकुलभूषणो ! उस कन्याने इन दिनों द्रुपदकुलमें जन्म लिया है। देवता समान अनिन्दनीया कृष्णा नाम्नी वह द्रौपदी तुम्हारी पत्नी बननेकी बाट देख रही है ॥ १४ ॥

पाञ्चालनगरं तस्मात्प्रविशध्वं महाबलाः ।
सुखिनस्तामनुप्राप्य भविष्यथ न संशयः ॥ १५ ॥

अतः अब तुम पाञ्चाल नगरमें जाकर वहां टिके रहो । महाबली पाण्डवो ! तुम निःसंदेह उस कृष्णाको पाकर सुख पाओगे ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा महाभागः पाण्डवानां पितामहः ।
पार्थानामन्त्र्य कुन्तीं च प्रातिष्ठत महातपाः ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥ ५३४३ ॥

पाण्डवोंके दादा महातपस्वी, महाभाग व्यासदेव पृथा और पार्थोंसे यह कह कर और उन्हें सलाह देकर चले गये ॥ १६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ सत्तावनवां अध्याय समाप्त ॥ १५७ ॥ ५३४३ ॥

: १५८ :

वैशम्पायन उवाच

ते प्रतस्थुः पुरस्कृत्य मातरं पुरुषर्षभाः ।
समैरुदङ्मुखैर्मार्गैर्यथोद्दिष्टं परंतपाः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– पुरुषश्रेष्ठ शत्रुनाशी पाण्डवगण माताको आगे करके वे अपने उद्देशके अनुसार सीधे उत्तरकी ओर चले ॥ १ ॥

ते गच्छन्तस्त्वहोरात्रं तीर्थं सोमश्रवायणम् ।
आसेदुः पुरुषव्याघ्रा गङ्गायां पाण्डुनन्दनाः ॥ २ ॥

वे दिनरात चलकर उस सोमश्रवायण नामक तीर्थमें जा पहुंचे और वहां पहुंचकर वे पुरुषोंमें सिंहरूप पाण्डव गंगा किनारे जाकर पहुंच गए ॥ २ ॥

उल्मुकं तु समुद्यम्य तेषामग्रे धनञ्जयः ।
प्रकाशार्थं ययौ तत्र रक्षार्थं च महायशाः ॥ ३ ॥

वहां दिन बीतने पर महायशस्वी धनञ्जय पथ दिखाने और रक्षाके लिये एक जलती हुई लकडी उठाकर आगे आगे चले ॥ ३ ॥

तत्र गङ्गाजले रम्ये विविक्ते क्रीडयन्स्त्रियः ।
ईर्ष्युर्गन्धर्वराजः स्म जलक्रीडामुपागतः ॥ ४ ॥

वहां ईर्षासे भरा हुआ एक गंधर्वराज जलक्रीडाके लिये आकर सुंदर भागीरथी जलमें स्त्रियोंके संग एकान्तमें खेल रहा था ॥ ४ ॥

शब्दं तेषां स शुश्राव नदीं समुपसर्पताम्।
तेन शब्देन चाविष्टश्चुक्रोध बलवद्बली ॥ ५॥

पाण्डवगण उस नदीमें उतर रहे थे, कि उस महाबली गन्धर्वराजको उनका शब्द सुनाई दिया और वह क्रोधसे जल उठे ॥ ५ ॥

स दृष्ट्वा पाण्डवांस्तत्र सह मात्रा परन्तपान्।
विस्फारयन्धनुर्घोरमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६॥

तब शत्रुनाशी पाण्डवोंको माताके साथ आते देखकर कठोर शरासनको फैलाकर यह वचन बोले ॥ ६ ॥

सन्ध्या संरज्यते घोरा पूर्वरात्रागमेषु या।
अशीतिभिस्त्रुटैर्हीनं तं मुहूर्तं प्रचक्षते ॥ ७॥

रात्रि आनेके पहिले जो घोर लाल सन्ध्याकाल होता है उसके अस्सी लवके अतिरिक्त शेष सब मुहूर्त ही कहा जाता है ॥ ७ ॥

विहितं कामचाराणां यक्षगन्धर्वरक्षसाम्।
शेषमन्यन्मनुष्याणां कामचारमिह स्मृतम् ॥ ८॥

वह मुहूर्त कामचारी यक्ष, गन्धर्व और राक्षसोंके विचरनेका काल निर्दिष्ट है; इसके सिवाय शेष संपूर्ण काल मनुष्योंके कर्माचरणके निमित्त निश्चित है ॥ ८ ॥

लोभात्प्रचारं चरतस्तासु वेलासु वै नरान्।
उपक्रान्ता निगृह्णीमो राक्षसैः सह बालिशान् ॥ ९॥

यदि मनुष्यगण लोभवश घूमते घामते हुए हमारे उन निर्दिष्ट कालोंमें आते हैं, तो हम उन मूर्खोंको राक्षसोंके साथ नष्ट कर डालते हैं ॥ ९ ॥

ततो रात्रौ प्राप्नुवतो जलं ब्रह्मविदो जनाः।
गर्हयन्ति नरान्सर्वान्बलस्थान्नृपतीनपि ॥ १०॥

इसलिये जो लोग रात्रिको जलाशयमें जाते हैं, वे भले ही बली भूपाल भी हों, तो भी वेदज्ञ ब्राह्मण उनकी निन्दा करते हैं ॥ १० ॥

आरात्तिष्ठत मा मह्यं समीपमुपसर्पत।
कस्मान्मां नाभिजानीत प्राप्तं भागीरथीजलम् ॥ ११॥

अतएव तुम दूर रहो, मेरे पास मत आओ। भागीरथीके जलमें स्नान करते हुए मुझे क्या तुम नहीं जानते हो? ॥ ११ ॥

अङ्गारपर्णं गन्धर्वं वित्त मां स्वबलाश्रयम् ।
अहं हि मानी चेर्ष्युश्च कुबेरस्य प्रियः सखा ॥ १२ ॥

मैं मानी और कुबेरका मित्र अङ्गारपर्ण नामक गन्धर्व हूं; मैं अपने भुजबलहीसे काम पूरा कर लेता हूं ॥ १२ ॥

अङ्गारपर्णमिति च ख्यातं वनमिदं मम ।
अनु गङ्गां च वाकां च चित्रं यत्र वसाम्यहम् ॥ १३ ॥

किसीको क्षमा नहीं करता हूं; मेरे अधिकारका यह बन अङ्गारपर्ण नामसे प्रसिद्ध है । मैं इस वनके भीतर गंगा नदीमें भांति भांतिकी क्रीडा करता हुआ विचारता हूं ॥ १३ ॥

न कुणपाः शृङ्गिणो वा न देवा च मानुषाः ।
इदं समुपसर्पन्ति तत्किं समुपसर्पथ ॥ १४ ॥

न राक्षस, न शृंगी, न देव और न मनुष्य ही इस जगह पर आ सकते हैं, फिर तुम कैसे चले आ रहे हो ? ॥ १४ ॥

अर्जुन उवाच

समुद्रे हिमवत्पार्श्वे नद्यामस्यां च दुर्मते ।
रात्रावहनि सन्धौ च कस्य क्लृप्तः परिग्रहः ॥ १५ ॥

अर्जुन बोले– हे दुर्मते ! समुद्र, हिमाचलका पार्श्व और गंगा यह सब स्थान, चाहे दिन रात वा सन्ध्या समय हो, किसके लिये रुके रह सकते हैं ? ॥ १५ ॥

वयं च शक्तिसंपन्ना अकाले त्वामधृष्णुमः ।
अशक्ता हि क्षणे क्रूरे युष्मानर्चन्ति मानवाः ॥ १६ ॥

विशेष कुसमयमें तुमको चिढानेसे हमें क्या फायदा हो सकता है ? क्योंकि हममें शक्ति है । जो लोग लडनेमें असमर्थ हैं, वे ही क्रूर युद्धमें तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ १६ ॥

पुरा हिमवतश्चैषा हेमशृङ्गाद्विनिःसृता ।
गङ्गा गत्वा समुद्राम्भः सप्तधा प्रतिपद्यते ॥ १७ ॥

पूर्वकालमें यह गङ्गा हिमाचलकी सुवर्ण चोटीसे निकली है और वहांसे निकलकर सात भागोंमें बंटके समुद्र–जलसे मिल गयी है ॥ १७ ॥

इयं भूत्वा चैकवप्रा शुचिराकाशगा पुनः ।
देवेषु गङ्गा गन्धर्व प्राप्नोत्यलकनन्दताम् ॥ १८ ॥

हे गन्धर्व ! आकाशमें बहनेवाली पवित्र यह गङ्गा आकाशमें जाकर देवलोकमें अलकनन्दाके नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ १८ ॥

तथा पितॄन्वैतरणी दुस्तरा पापकर्मभिः ।
गङ्गा भवति गन्धर्व यथा द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ १९ ॥

यही गंगा पितृलोकमें पापात्माओंको तारनेवाली वैतरणी नामसे प्रसिद्ध हुई है ऐसा कृष्णद्वैपायनने कहा है ॥ १९ ॥

असंबाधा देवनदी स्वर्गसंपादनी शुभा ।
कथमिच्छसि तां रोद्धुं नैष धर्मः सनातनः ॥ २० ॥

स्वर्ग तथा शुभ देनेवाली इस सुरनदीमें जानेकी किसीको मनाही नहीं है; फिर तुम उस विनबाधाकी गंगाको क्या रोकना चाहते हो ? यह सनातन धर्म नहीं है ॥ २० ॥

अनिवार्यमसंबाधं तव वाचा कथं वयम् ।
न स्पृशेम यथाकामं पुण्यं भागीरथीजलम् ॥ २१ ॥

अतएव हम क्यों तुम्हारी बात सुनकर उस बाधारहित बिना मनाहीके पवित्र गंगा जलको यथेच्छ नहीं छूयें ? ॥ २१ ॥

वैशम्पायन उवाच

अङ्गारपर्णस्तच्छ्रुत्वा क्रुद्ध आनम्य कार्मुकम् ।
मुमोच सायकान्दीप्तानहीनाशीविषानिव ॥ २२ ॥

वैशम्पायन बोले– अङ्गारपर्ण यह बात सुनकर क्रोधके मारे शरासन चढाकर अति विषयुक्त सर्पके समान तेज बाणोंको वर्षाने लगा ॥ २२ ॥

उल्मुकं भ्रामयंस्तूर्णं पाण्डवश्चर्म चोत्तमम् ।
व्यपोवाह शरांस्तस्य सर्वानेव धनञ्जयः ॥ २३ ॥

पाण्डुपुत्र धनञ्जयने उस जलती हुई लकडी और उत्तम चर्मको घुमाकर उनके सब बाणोंको व्यर्थ किया और बोले ॥ २३ ॥

अर्जुन उवाच

विभीषिकैषा गन्धर्व नास्त्रज्ञेषु प्रयुज्यते ।
अस्त्रज्ञेषु प्रयुक्तैषा फेनवत्प्रविलीयते ॥ २४ ॥

अर्जुन बोले– हे गन्धर्व ! जो लोग अस्त्रोंके जानकार हैं, उनको विभीषिका दर्शाना उचित नहीं है, क्योंकि उनके निकट वह फेनकी भांति क्षणभरमें लुप्त हो जाती है ॥ २४ ॥

मानुषानति गन्धर्वान्सर्वान्गन्धर्व लक्षये ।
तस्मादस्त्रेण दिव्येन योत्स्येऽहं न तु मायया ॥ २५ ॥

हे गंधर्व ! मैं समझता हूं, कि गंधर्व मनुष्यकी जातिसे पराक्रमी हैं, अत मैं तुमसे दिव्य अस्त्रोंके सहारे लडूंगा, कपटयुक्ति नहीं करूंगा ॥ २५ ॥

पुरास्त्रमिदमाग्नेयं प्रादात्किल बृहस्पतिः ।
भरद्वाजस्य गन्धर्व गुरुपुत्रः शतक्रतोः ॥ २६ ॥

हे गन्धर्व ! पूर्वकालमें देवराजके गुरुपुत्र माननीय बृहस्पतिने यह अग्न्यस्त्र भरद्वाजको दिया था ॥ २६ ॥

भरद्वाजादग्निवेश्यो अग्निवेश्याद्गुरुर्मम ।
स त्विदं मह्यमददाद्द्रोणो ब्राह्मणसत्तमः ॥ २७ ॥

आगे भरद्वाजसे अग्निवेश्यको मिला, अग्निवेश्यसे मेरे गुरु ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ द्रोणको मिला उन्होंने यह सुन्दर अस्त्र मुझको दिया है ॥ २७ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा पाण्डवः क्रुद्धो गन्धर्वाय मुमोच ह ।
प्रदीप्तमस्त्रमाग्नेयं ददाहास्य रथं तु तत् ॥ २८ ॥

वैशम्पायन बोले— पाण्डुनन्दन अर्जुनने यह कहकर क्रोधसे गंधर्व पर उस प्रज्ज्वलित अग्न्यस्त्रको छोडा, उस अस्त्रने अंगारपर्णके प्रसिद्ध रथको भस्म कर दिया ॥ २८ ॥

विरथं विप्लुतं तं तु स गन्धर्वं महाबलम् ।
अस्त्रतेजःप्रमूढं च प्रपतन्तमवाङ्मुखम् ॥ २९ ॥

वह महाबली गन्धर्व अग्न्यस्त्रके प्रभावसे च्युत होकर नीचे मुंहकर धरती पर गिर रहे थे ॥ २९ ॥

शिरोरुहेषु जग्राह माल्यवत्सु धनञ्जयः ।
भ्रातॄन्प्रति चकर्षाथ सोऽस्त्रपातादचेतसम् ॥ ३० ॥

अर्जुनने उनके मालाओंसे सजे सजाये केश पकड लिये; और अस्त्रकी चोटसे अचेत उस गन्धर्वको खींच कर भाइयोंके पास ले आये ॥ ३० ॥

युधिष्ठिरं तस्य भार्या प्रपेदे शरणार्थिनी ।
नाम्ना कुम्भीनसी नाम पतित्राणमभीप्सती ॥ ३१ ॥

अनन्तर उस गन्धर्वकी कुंभीनसी नाम्नी स्त्री पतिकी रक्षाके लिये युधिष्ठिरकी शरण लेकर बोली ॥ ३१ ॥

गन्धर्व्युवाच

त्राहि त्वं मां महाराज पतिं चेमं विमुञ्च मे ।
गन्धर्वीं शरणं प्राप्तां नाम्ना कुम्भीनसीं प्रभो ॥ ३२ ॥

हे महाभाग ! मेरी रक्षा करें, मेरे इस पतिको छोड दें ! हे प्रभो ! मेरा नाम कुम्भीनसी है, मैं गन्धर्वी हूं; आपकी शरण लेती हूं ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

युद्धे जितं यशोहीनं स्त्रीनाथमपराक्रमम् ।
को नु हन्याद्रिपुं त्वादृङ् मुञ्चेमं रिपुसूदन ॥ ३३ ॥

तब युधिष्ठिर अर्जुनसे बोले– हे शत्रुमथनेहारे ! जो शत्रु युद्धमें हारकर पराक्रम और यशसे रहित होकर स्त्रीसे बचाया जाता है, उसको कौन मार सकता है ? अतः तुम इसको छोड दो ॥ ३३ ॥

अर्जुन उवाच

अङ्गेमं प्रतिपद्यस्व गच्छ गन्धर्व मा शुचः ।
प्रदिशत्यभयं तेऽद्य कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥

अनन्तर अर्जुन गन्धर्वीसे बोले– हे रमणी ! लो, तुम पति ले जाओ, हे गन्धर्व ! चले जाओ, शोक मत करो । आज कुरुराज युधिष्ठिरने तुमको बचानेकी आज्ञा दी है ॥ ३४ ॥

गन्धर्व उवाच

जितोऽहं पूर्वकं नाम मुञ्चाम्यङ्गारपर्णताम् ।
न च श्लाघे बलेनाद्य न नाम्ना जनसंसदि ॥ ३५ ॥

गन्धर्व बोले– मेरा पर्ण अर्थात् वाहन प्रज्ज्वलित अङ्गारकी भांति दूसरोंके छूनेके अयोग्य था, इसलिये मैं अङ्गारपर्ण नामसे प्रख्यात था; अब तुमसे हार कर यह अङ्गारपर्ण नाम छोड देता हूं, क्योंकि जब जनसमाजमें बल और वीर्यका मान ही नहीं रहा, तब केवल नामके माननीय बने रहनेसे प्रयोजन ही क्या है ? ॥ ३५ ॥

साध्विमं लब्धवाँल्लाभं योऽहं दिव्यास्त्रधारिणम् ।
गान्धर्व्या मायया योद्धुमिच्छामि वयसा वरम् ॥ ३६ ॥

आज मुझे यह एक परम लाभ हुआ, मुझको दिव्यास्त्र धरनेवाला मित्र मिल गया, आज मुझे मित्र अर्जुनको गान्धर्वी मायाकी विद्या देनेकी इच्छा हो रही है ॥ ३६ ॥

अस्त्राग्निना विचित्रोऽयं दग्धो मे रथ उत्तमः ।
सोऽहं चित्ररथो भूत्वा नाम्ना दग्धरथोऽभवम् ॥ ३७ ॥

मेरा उत्तम विचित्र रथ था, अतः मैं चित्ररथ करके प्रसिद्ध था, अब वह रथ अस्त्राग्निसे जल गया, अतएव चित्ररथ होनेपर भी अब मैं दग्धरथ हो गया ॥ ३७ ॥

संभृता चैव विद्येयं तपसेह पुरा मया ।
निवेदयिष्ये तामद्य प्राणदाय महात्मने ॥ ३८ ॥

हे मित्र ! मैंने पहिले तपस्यासे जो गांधर्वी विद्या लाभ की थी, आज वह विद्या तुमको देता हूं, क्योंकि तुम मेरे प्राणदाता और महात्मा हो ॥ ३८ ॥

संस्तम्भितं हि तरसा जितं शरणमागतम् ।
योऽरिं संयोजयेत्प्राणैः कल्याणं किं न सोऽर्हति ॥ ३९ ॥

जो बलसे शत्रुको हराते मोहित करते और उस हारे हुए मोहित शत्रुके शरण लेनेपर उसका प्राण दे देते हैं, वह कौन कल्याण पानेके योग्य नहीं हैं अर्थात् वह सभी कल्याण पाने योग्य हैं ॥ ३९ ॥

चाक्षुषी नाम विद्येयं यां सोमाय ददौ मनुः ।
ददौ स विश्वावसवे मह्यं विश्वावसुर्ददौ ॥ ४० ॥

उस विद्याका नाम चाक्षुषी है; भगवान् मनुने वह विद्या सोमको दी थी, सोमने विश्वावसुको दी और मुझको विश्वावसुसे मिली ॥ ४० ॥

सेयं कापुरुषं प्राप्य गुरुदत्ता प्रणश्यति ।
आगमोऽस्या मया प्रोक्तो वीर्यं प्रतिनिबोध मे ॥ ४१ ॥

पर वह गुरुकी दी हुई विद्या कायर मनुष्यके हाथमें जाकर नष्ट हो जाती है । इस चाक्षुषी विद्याके गुरुओंका सिलसिलेवार आगम—वृत्तान्त कहा, अब उसके वीर्यकी बात कहता हूं, सुनो ॥ ४१ ॥

यच्चक्षुषा द्रष्टुमिच्छेत्त्रिषु लोकेषु किंचन ।
तत्पश्येद्यादृशं चेच्छेत्तादृशं द्रष्टुमर्हति ॥ ४२ ॥

त्रिलोकभरमें चाहे जिस किसी पदार्थको आंखोंसे देखना चाहोगे, वही दीख पडेगा और उस पदार्थका स्वभाव और दशा जैसी है, वह भी देखना चाहो तो देख लोगे ॥ ४२ ॥

समानपद्ये षण्मासान्स्थितो विद्यां लभेदिमाम् ।
अनुनेष्याम्यहं विद्यां स्वयं तुभ्यं व्रते कृते ॥ ४३ ॥

छः मास एक पांवके बल खडे रह कर तप करनेसे वह विद्या मिलती है, पर तुम्हारे उस व्रतको न किये रहने पर भी मैं उसे तुमको दूंगा ॥ ४३ ॥

विद्यया ह्यनया राजन्वयं नृभ्यो विशेषिताः ।
अविशिष्टाश्च देवानामनुभावप्रवर्तिताः ॥ ४४ ॥

हे महाराज ! हमलोग उस विद्याहीके बलसे अनुभवदर्शी होकर मनुष्योंसे विशिष्ट और देवोंके सदृश हुए हैं ॥ ४४ ॥

गन्धर्वजानामश्वानामहं पुरुषसत्तम ।
भ्रातृभ्यस्तव पञ्चभ्यः पृथग्दाता शतं शतम् ॥ ४५ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! फिर मैं तुम्हारे पांचों भाइयोंमें हरेकको सौ सौ गन्धर्व देशमें उत्पन्न घोडे देता हूं ॥ ४५ ॥

देवगन्धर्ववाहास्ते दिव्यगन्धा मनोगमाः ।
क्षीणाः क्षीणा भवन्त्येते न हीयन्ते च रंहसः ॥ ४६ ॥

सुन्दर गंधवाले और मन समान वेगवान् वे घोडे देवता और गन्धर्वोंके वाहन हैं; उनको युवावस्था वा बुढापा नहीं आता वे कभी वेगरहित नहीं होते ॥ ४६ ॥

पुरा कृतं महेन्द्रस्य वज्रं वृत्रनिबर्हणे ।
दशधा शतधा चैव तच्छीर्णं वृत्रमूर्धनि ॥ ४७ ॥

पूर्वकालमें वृत्रासुरके मारनेके लिये देवराज महेन्द्रका जो वज्र बना था, वह वज्र वृत्रासुरके सिरपर गिरकर सहस्र भागोंमें बंट गया ॥ ४७ ॥

ततो भागीकृतो देवैर्वज्रभाग उपास्यते ।
लोके यत्साधनं किंचित्सा वै वज्रतनुः स्मृता ॥ ४८ ॥

देवगण वज्रके उन अनेक भागोंकी उपासना किया करते हैं । इन तीनों लोकोंमें जो कुछ भी साधन है, वह उस वज्रका एक भाग है ॥ ४८ ॥

वज्रपाणिर्ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रं वज्ररथं स्मृतम् ।
वैश्या वै दानवज्राश्च कर्मवज्रा यवीयसः ॥ ४९ ॥

ब्राह्मण गण जिस हाथसे अग्निमें आहुति चढाते हैं, उनका वह हाथ उस वज्रका एक भाग है; क्षत्रियगण जिस रथपर चढकर लडाईमें देवता और ब्राह्मणोंके शत्रु नष्ट करते हैं, उनका रथ उस वज्रका एक भाग हैं; वैश्यगण देवता और ब्राह्मणोंको जो दान देकर सुखी होते हैं, उनका वह दान भी उस वज्रका एक भाग है; और शूद्रगण ब्राह्मणोंकी जो सेवा कर निज धर्मकी रक्षा करते हैं, उनकी वह सेवा भी उस वज्रका एक भाग है ॥ ४९ ॥

वज्रं क्षत्रस्य वाजिनो अवध्या वाजिनः स्मृताः ।
रथाङ्गं वडवा सूते सूताश्चाश्वेषु ये मताः ॥ ५० ॥
कामवर्णाः कामजवाः कामतः समुपस्थिताः ।
इमे गन्धर्वजाः कामं पूरयिष्यन्ति ते हयाः ॥ ५१ ॥

अतएव घोडे क्षत्रियोंके वज्ररूपी रथके अङ्ग होनेके हेतु मारनेके अयोग्य कहे गये हैं । पर रथके अङ्ग घोडे, घोडियोंसे उपजते हैं, उनमें जो घोडे गन्धर्व लोकमें जन्म लेते हैं, उनका वर्ण इच्छाधीन है, तथा वे मनमाने वेगवान् और इच्छा करनेके साथ ही सामने आकर उपस्थित होनेवाले हैं, इसलिये मेरे उन गन्धर्वज घोडोंसे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा ॥ ५०-५१ ॥

अर्जुन उवाच

यदि प्रीतेन वा दत्तं संशये जीवितस्य वा ।
विद्या वित्तं श्रुतं वापि न तद्गन्धर्व कामये ॥ ५२ ॥

अर्जुन बोले– हे गन्धर्व ! तुम जीवन नष्ट होनेके भयसे बच जाने पर प्रसन्न होकर मुझको विद्या वा घोडे देनेको उद्यत हुए हो, अतः मैं उन्हें नहीं लेना चाहता ॥ ५२ ॥

गन्धर्व उवाच

संयोगो वै प्रीतिकरः संसत्सु प्रतिदृश्यते ।
जीवितस्य प्रदानेन प्रीतो विद्यां ददामि ते ॥ ५३ ॥

गन्धर्व बोले– महानुभाव जनोंसे मिलना ही प्रीतियुक्त होता है, विशेष मैं जीवन पानेसे प्रसन्न भी हुआ हूं, इसलिये तुमको वह विद्या देता हूं ॥ ५३ ॥

त्वत्तो ह्यहं ग्रहीष्यामि अस्त्रमाग्नेयमुत्तमम् ।
तथैव सख्यं बीभत्सो चिराय भरतर्षभ ॥ ५४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ बीभत्सो ! मैं जिस प्रकार तुमको वह विद्या दूंगा, वैसे ही बदलेमें तुमसे सनातन उत्तम अग्न्यस्त्र लूंगा ॥ ५४ ॥

अर्जुन उवाच

त्वत्तोऽस्त्रेण वृणोम्यश्वान्संयोगः शाश्वतोऽस्तु नौ ।
सखे तद्ब्रूहि गन्धर्व युष्मभ्यो यद्भयं त्यजेत् ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥ ५३२८ ॥

अर्जुन बोले– हे गन्धर्व ! मैं अस्त्र देकर तुमसे घोडे मांगता हूं, हमारी मित्रता शाश्वत बनी रहे । हे मित्र गन्धर्व ! बताओ, तुम्हें किसका डर है ताकि उससे तुम्हें मुक्त कर दूं ॥ ५५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ अट्ठावनवां अध्याय समाप्त ॥ १५८ ॥ ५३२८ ॥

: १५९ :

अर्जुन उवाच

कारणं ब्रूहि गन्धर्व किं तद्येन स्म धर्षिताः ।
यान्तो ब्रह्मविदः सन्तः सर्वे रात्रावरिन्दम ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– गन्धर्वकी जातिसे मनुष्यकी जातिको क्यों भय है, और यह भी बताओ कि हम सब शत्रुनाशी साधु और वेदज्ञ होने पर भी रात्रिको चलते हुए क्यों तुमसे लाञ्छित हुए ॥ १ ॥

गन्धर्व उवाच

अनग्नयोऽनाहुतयो न च विप्रपुरस्कृताः ।
यूयं ततो धर्षिताः स्थ मया पाण्डवनन्दन ॥ २ ॥

गन्धर्व बोले– हे पाण्डवो ! तुम गुरुकुलसे लौट आये, पर तो भी विवाह नहीं किया है, अतः विना आश्रम हो, और तुम्हारे सङ्ग ब्राह्मण भी नहीं हैं इसीलिये मैंने तुम पर चढाई की थी ॥ २ ॥

यक्षराक्षसगन्धर्वाः पिशाचोरगदानवाः ।
विस्तरं कुरुवंशस्य श्रीमतः कथयन्ति ते ॥ ३ ॥

यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, पिशाच, उरग और दानव यह सब श्रीमान् हैं, और कुरुवंशकी कथा कहते हैं ॥ ३ ॥

नारदप्रभृतीनां च देवर्षीणां मया श्रुतम् ।
गुणान्कथयतां वीर पूर्वेषां तव धीमताम् ॥ ४ ॥

हे वीर ! मैंने भी नारदादि देवर्षियोंके द्वारा कहे जाते हुए तुम्हारे ज्ञानशील पूर्व पुरुषोंके गुणकी कहानी सुनी है ॥ ४ ॥

स्वयं चापि मया दृष्टश्चरता सागराम्बराम् ।
इमां वसुमतीं कृत्स्नां प्रभावः स्वकुलस्य ते ॥ ५ ॥

और स्वयं मैंने भी इस सागरवेष्टित संपूर्ण धरतीमें घूमते हुए तुम्हारे सुवंशका प्रभाव प्रत्यक्ष देखा है ॥ ५ ॥

वेदे धनुषि चाचार्यमभिजानामि तेऽर्जुन ।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु भारद्वाजं यशस्विनम् ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! वेद और धनुर्विद्यामें त्रिलोक भरमें प्रशंसित यशस्वी तुम्हारे आचार्य यशस्वी भारद्वाजको भी मैं भली प्रकार जानता हूं ॥ ६ ॥

धर्मं वायुं च शक्रं च विजानाम्यश्विनौ तथा ।
पाण्डुं च कुरुशार्दूल षडेतान्कुलवर्धनान् ।
पितॄनेतानहं पार्थ देवमानुषसत्तमान् ॥ ७ ॥

हे कुरुव्याघ्र ! तुम्हारे ज्ञानशील पितृपुरुष कुरुवंश बढानेहारे देवोंमें श्रेष्ठ धर्म, पवन, इन्द्र और दोनों अश्विनीकुमार और मानवोंमें श्रेष्ठ पाण्डु इन छैओंको भी अच्छी तरह जानता हूं ॥ ७ ॥

दिव्यात्मानो महात्मानः सर्वशस्त्रभृतां वराः ।
भवन्तो भ्रातरः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ॥ ८ ॥

तुम पांचों भाई सम्पूर्ण शस्त्र विद्याओंमें दक्ष, अच्छे स्वभावी, महात्मा, सुचरित्रवान् व्रतशील और शूर हो ॥ ८ ॥

उत्तमां च मनोबुद्धिं भवतां भावितात्मनाम् ।
जानन्नपि च वः पार्थ कृतवानिह धर्षणाम् ॥ ९ ॥

तुम्हारे मन और बुद्धि बडी अच्छी और स्वभाव अति शुद्ध हैं । हे पार्थ ! मैंने यह सब जानने पर भी तुमको ललकारा था ॥ ९ ॥

स्त्रीसकाशे च कौरव्य न पुमान्क्षन्तुमर्हति ।
धर्षणामात्मनः पश्यन्बाहुद्रविणमाश्रितः ॥ १० ॥

क्योंकि भुजबलसे युक्त कोई पुरुष स्त्रीके सामने अपने अपमानको देखते हुए सहन नहीं कर सकता ॥ १० ॥

नक्तं च बलमस्माकं भूय एवाभिवर्धते ।
यतस्ततो मां कौन्तेय सादरं मन्युराविशत् ॥ ११ ॥

विशेषकर रात्रिकालमें हमारा बल बहुत बढ जाता है, इसलिये मैं आदर सहित क्रोधके वशमें हो गया था ॥ ११ ॥

सोऽहं त्वयेह विजितः संख्ये तापत्यवर्धन ।
येन तेनेह विधिना कीर्त्यमानं निबोध मे ॥ १२ ॥

हे तापत्यवंशवर्द्धन ! मैं विधिके अनुसार तुमसे युद्धमें परास्त होगया हूं, वह कहता हूं, सुनो ॥ १२ ॥

ब्रह्मचर्यं परो धर्मः स चापि नियतस्त्वयि ।
यस्मात्तस्मादहं पार्थ रणेऽस्मिन्विजितस्त्वया ॥ १३ ॥

हे पार्थ ! ब्रह्मचर्य परमधर्म है; तुम उस धर्मका अवलम्बन किये हुए हो, इसलिये मैं युद्धमें तुमसे हार गया ॥ १३ ॥

यस्तु स्यात्क्षत्रियः कश्चित्कामवृत्तः परन्तप।
नक्तं च युधि युध्येत न स जीवेत्कथंचन ॥ १४ ॥

हे शत्रुनाशी! यदि कोई कामके वशमें हुआ हुआ क्षत्रिय रात्रिकालमें हम लोगोंसे लडे, तो वह किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकता ॥ १४ ॥

यस्तु स्यात्कामवृत्तोऽपि राजा तापत्य संगरे।
जयेन्नक्तंचरान्सर्वान्स पुरोहितधूर्गतः ॥ १५ ॥

हे तपतिवंशोत्पन्न अर्जुन! विवाह कर लेनेपर भी जो क्षत्रिय पुरोहित पर सब कार्योंका भार सौंप देता है, वह युद्धमें निशाचरोंको परास्त कर सकता है ॥ १५ ॥

तस्मात्तापत्य यत्किंचिन्नृणां श्रेय इहेप्सितम्।
तस्मिन्कर्मणि योक्तव्या दान्तात्मानः पुरोहिताः ॥ १६ ॥

हे तापत्य! इसलिये मनुष्य यदि यहां इस संसारमें अपना कल्याण चाहता है, तो उसे चाहिए कि वह हर शुभ कर्ममें दमगुणयुक्त पुरोहितको नियुक्त करे ॥ १६ ॥

वेदे षडङ्गे निरताः शुचयः सत्यवादिनः।
धर्मात्मानः कृतात्मानः स्युर्नृपाणां पुरोहिताः ॥ १७ ॥

हे मित्र! जो वेद और शिक्षादि षडङ्गोंमें पण्डित, पवित्र-वंशी, सत्यवादी, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय हैं, वही राजपुरोहित होनेके योग्य हैं ॥ १७ ॥

जयश्च नियतो राज्ञः स्वर्गश्च स्यादनन्तरम्।
यस्य स्याद्धर्मविद्वाग्मी पुरोधाः शीलवाञ्शुचिः ॥ १८ ॥

जिस राजाके धर्मज्ञ वाक्निपुण सुशील सुवंशी पुरोहित रहते हैं, उनको इस लोकमें सदा जय और परलोकमें स्वर्गप्राप्ति होती है ॥ १८ ॥

लाभं लब्धुमलब्धं हि लब्धं च परिरक्षितुम्।
पुरोहितं प्रकुर्वीत राजा गुणसमन्वितम् ॥ १९ ॥

राजाको चाहिए कि वह अप्राप्त पदार्थके मिलने और प्राप्त हुए पदार्थकी रक्षाके लिये गुणवान् पुरोहितकी नियुक्ति करे ॥ १९ ॥

पुरोहितमते तिष्ठेद्य इच्छेत्पृथिवीं नृपः।
प्राप्तुं मेरुवरोत्तंसां सर्वशः सागराम्बराम् ॥ २० ॥

जो राजा सागर और मेरुसहित संपूर्ण धरतीको प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, उसे चाहिए कि वह सब प्रकारसे पुरोहितके मतानुसार कार्य करे ॥ २० ॥

न हि केवलशौर्येण तापत्याभिजनेन च ।
जयेदब्राह्मणः कश्चिद्भूमिं भूमिपतिः क्वचित् ॥ २१ ॥

हे तापत्य ! कोई राजा ब्राह्मणसे रहित होकर केवल शूरतासे वा अच्छे कुलमें जन्म लेकर धरतीको जीत नहीं सकता ? ॥ २१ ॥

तस्मादेवं विजानीहि कुरूणां वंशवर्धन ।
ब्राह्मणप्रमुखं राज्यं शक्यं पालयितुं चिरम् ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥ ५४२० ॥

अतएव हे कुरुओंके वंशको बढानेवाले अर्जुन ! तुम निश्चय जानो कि जिस राज्यमें ब्राह्मणकी प्रधानता रहती है, उस राज्यकी सदा रक्षा होती है ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ उनसठवां अध्याय समाप्त ॥ १५९ ॥ ५४२० ॥

: १६० :

अर्जुन उवाच

तापत्य इति यद्वाक्यमुक्तवानसि मामिह ।
तदहं ज्ञातुमिच्छामि तापत्यार्थविनिश्चयम् ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– हे मित्र ! तुमने मुझको जो तापत्य कहकर पुकारा है, अतः मैं जानना चाहता हूं, कि तापत्य शब्दका अर्थ क्या है ? ॥ १ ॥

तपती नाम का चैषा तापत्या यत्कृते वयम् ।
कौन्तेया हि वयं साधो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ॥ २ ॥

हे साधो ! हम कुन्तीकी सन्तान हैं, इस हेतु कौन्तेयके नामसे प्रख्यात हैं, पर यह तपती किसका नाम है, कि जिसके कारण तुमने हमें तापत्य कहा है । इसका सच्चा तत्त्व जानना चाहता हूँ ॥ २ ॥

वैशंपायन उवाच

एवमुक्तः स गन्धर्वः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ।
विश्रुतां त्रिषु लोकेषु श्रावयामास वै कथाम् ॥ ३ ॥

वैशम्पायन बोले– गन्धर्वराज कुन्तीपुत्र धनञ्जयकी वह बात सुनकर उस तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध कथाको कहने लगे ॥ ३ ॥

गन्धर्व उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि कथामेतां मनोरमाम् ।
यथावदखिलां पार्थ धर्म्यां धर्मभृतां वर ॥ ४ ॥

गन्धर्व बोले– हे धार्मिक श्रेष्ठ ! मैं यह मनोहर तथा धार्मिक कथा तुमसे आद्योपान्त सब कहता हूं ॥ ४ ॥

उक्तवानस्मि येन त्वां तापत्य इति यद्वचः ।
तत्तेऽहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमना मम ॥ ५ ॥

जिस कारण तुमको तापत्य कहकर पुकारा, उसकी कथा विस्तृत रूपसे कहता हूं, ध्यान लगाकर सुनो ॥ ५ ॥

य एष दिवि धिष्ण्येन नाकं व्याप्नोति तेजसा ।
एतस्य तपती नाम बभूवासदृशी सुता ॥ ६ ॥

इस देवताकी, जिसने अपने तेजसे आकाशमण्डलको भर दिया है, तपती नामकी एक अद्वितीय पुत्री पैदा हुई ॥ ६ ॥

विवस्वतो वै कौन्तेय सावित्र्यवरजा विभो ।
विश्रुता त्रिषु लोकेषु तपती तपसा युता ॥ ७ ॥

हे कुन्तीपुत्र विभो अर्जुन ! वह विवस्वान् अर्थात् सूर्यकी पुत्री तथा तपसे युक्त एवं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध वह तपती सावित्रीकी छोटी बहन थी ॥ ७ ॥

न देवी नासुरी चैव न यक्षी न च राक्षसी ।
नाप्सरा न च गन्धर्वी तथा रूपेण काचन ॥ ८ ॥

उसके रूपके समान न कोई देवी थी, न कोई असुरी, न कोई यक्षी, न कोई राक्षसी, न कोई अप्सरा और न कोई गन्धर्वी ही थी ॥ ८ ॥

सुविभक्तानवद्याङ्गी स्वसितायतलोचना ।
स्वाचारा चैव साध्वी च सुवेषा चैव भामिनी ॥ ९ ॥

उस बालाकी दोनों आंखें अच्छी काली और बडी थीं और सब अंग यथायोग्य बंटे बंटाये और निन्दाके अयोग्य थे । वह शुद्ध आचारवाली, साध्वी, उत्तम वेषवाली और सुन्दरी थी ॥ ९ ॥

न तस्याः सदृशं कंचित्त्रिषु लोकेषु भारत ।
भर्तारं सविता मेने रूपशीलकुलश्रुतैः ॥ १० ॥

हे भारत ! उसके पिता सविताने समझ लिया कि उसके सदृश रूपकुलशील और विद्यासे युक्त योग्य वर तीनों लोकोंमें नहीं है, ॥ १० ॥

संप्राप्तयौवनां पश्यन्देयां दुहितरं तु ताम् ।
नोपलेभे ततः शान्तिं संप्रदानं विचिन्तयन् ॥ ११ ॥

तदनन्तर यथाकालमें कन्याको युवती होते देखकर सम्प्रदान करनेके लिये योग्य वरकी चिन्ता करने लगे और उसके विवाहकी चिन्ता करनेके कारण उन्हें शांति नहीं मिली ॥११॥

अथर्क्षपुत्रः कौन्तेय कुरूणामृषभो बली ।
सूर्यमाराधयामास नृपः संवरणः तदा ॥ १२ ॥

हे कौन्तेय ! उन दिनों ऋक्षपुत्र कुरुश्रेष्ठ बलवान् राजा संवरण सूर्यकी उपासना किया करते थे ॥ १२ ॥

अर्घ्यमाल्योपहारैश्च शश्वच्च नृपतिर्यतः ।
नियमैरुपवासैश्च तपोभिर्विविधैरपि ॥ १३ ॥
शुश्रूषुरनहंवादी शुचिः पौरवनन्दनः ।
अंशुमन्तं समुद्यन्तं पूजयामास भक्तिमान् ॥ १४ ॥

नियमयुक्त और शुद्ध चित्तसे भक्तिपूर्वक नाना तपस्या, उपवास और नियम, तथा अर्घ्य, माला, गन्ध और दूसरे उपहार देकर वह सेवाशील, निरहंकारी पवित्र भक्तिमान् पुरुनन्दन संवरण उदय होते हुए सूर्यकी रोज उपासना करते थे ॥ १३–१४ ॥

ततः कृतज्ञं धर्मज्ञं रूपेणासदृशं भुवि ।
तपत्याः सदृशं मेने सूर्यः संवरणं पतिम् ॥ १५ ॥

सूर्यदेवने कृतज्ञ, धर्मज्ञ और पृथिवी पर अप्रतिम रूपवान् जानकर संवरणको तपतीके योग्य पति समझा ॥ १५ ॥

दातुमैच्छत्ततः कन्यां तस्मै संवरणाय ताम् ।
नृपोत्तमाय कौरव्य विश्रुताभिजनाय वै ॥ १६ ॥

हे कौरव्य ! उसके अनन्तर उन्होंने उस प्रख्यात वंशमें जन्म लेनेवाले नृपोत्तम संवरणहीको, कन्या सम्प्रदान करनेकी इच्छा की ॥ १६ ॥

यथा हि दिवि दीप्तांशुः प्रभासयति तेजसा ।
तथा भुवि महीपालो दीप्त्या संवरणोऽभवत् ॥ १७ ॥

हे पार्थ ! जिस प्रकार प्रकाशित किरण युक्त दिवाकर अपने प्रकाशसे आकाशमण्डलको प्रकाशित करते हैं, वैसे ही राजा संवरणने अपने तेजसे महीमण्डलको उज्ज्वल किया था ॥ १७ ॥

×

यथार्चयन्ति चादित्यमुद्यन्तं ब्रह्मवादिनः ।
तथा संवरणं पार्थ ब्राह्मणावरजाः प्रजाः ॥ १८ ॥

और जिस प्रकार सूर्यके उगने पर ब्राह्मणगण उसकी उपासना करते हैं, वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि प्रजायें भूपाल संवरणकी पूजा किया करती थीं ॥ १८ ॥

स सोममति कान्तत्वादादित्यमति तेजसा ।
बभूव नृपतिः श्रीमान्सुहृदां दुर्हृदामपि ॥ १९ ॥

वही श्रीमान् राजा मित्रपर कोमल होकर सोमसे और शत्रु पर तेजवान् होकर आदित्यसे भी वढ चढकर निकले ॥ १९ ॥

एवंगुणस्य नृपतेस्तथावृत्तस्य कौरव ।
तस्मै दातुं मनश्चक्रे तपतीं तपनः स्वयम् ॥ २० ॥

हे कौरव ! ऐसे गुणशील और चरित्रवान् उस भूपालको सूर्यदेवने स्वयं तपती नामकी अपनी कन्याको देनेका निश्चय किया ॥ २० ॥

स कदाचिदथो राजा श्रीमानुरुयशा भुवि ।
चचार मृगयां पार्थ पर्वतोपवने किल ॥ २१ ॥

हे पार्थ ! एक समय अति यशस्वी श्रीमान् भूपाल संवरण मृगयाके लिये पर्वतके निकटके वनमें घूम रहे थे ॥ २१ ॥

चरतो मृगयां तस्य क्षुत्पिपासाश्रमान्वितः ।
ममार राज्ञः कौन्तेय गिरावप्रतिमो हयः ॥ २२ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! मृगयाके लिए भटकते हुए उस राजाका अनुपम अश्व भूख प्यासके मारे कातर होकर वहीं पहाड पर मर गया ॥ २२ ॥

स मृताश्वश्चरन्पार्थ पद्भ्यामेव गिरौ नृपः ।
ददर्शासदृशीं लोके कन्यामायतलोचनाम् ॥ २३ ॥

तब घोडेके मर जानेपर वाहनके विना पैदल ही पर्वत पर चलते हुए उन्होंने दीर्घनेत्रोंवाली अनुपम रूपवती एक कन्या देखी ॥ २३ ॥

स एक एकामासाद्य कन्यां तामरिमर्दनः ।
तस्थौ नृपतिशार्दूलः पश्यन्नविचलेक्षणः ॥ २४ ॥

शत्रुबलको मथनेवाले वे अकेले भूपश्रेष्ठ उस अकेली कन्याको देखकर उस पर टकटकी लगाये खडे रहे ॥ २४ ॥

स हि तां तर्कयामास रूपतो नृपतिः श्रियम् ।
पुनः संतर्कयामास रवेर्भ्रष्टामिव प्रभाम् ॥ २५ ॥

उसकी सुन्दरता देखकर राजाने समझा, कि वह हरिकी प्यारी लक्ष्मी होगी, फिर उसने विचार किया कि यह सूर्यकी प्रभा ही भ्रष्ट होकर पृथ्वी पर उस कन्याके स्वरूपमें आ गई होगी ॥ २५ ॥

गिरिप्रस्थे तु सा यस्मिन्स्थिता स्वसितलोचना ।
स सवृक्षक्षुपलतो हिरण्मय इवाभवत् ॥ २६ ॥

वह काली आंखोंवाली लडकी जिस पर्वत पर खडी थी, तरु लता और गुल्मादि सहित वह पर्वत उस कन्याकी अनुपम शोभासे सुवर्णका प्रतीत होने लगा ॥ २६ ॥

अवमेने च तां दृष्ट्वा सर्वप्राणभृतां वपुः ।
अवाप्तं चात्मनो मेने स राजा चक्षुषः फलम् ॥ २७ ॥

राजा उसको देखकर मन ही मनमें सब प्राणियोंके शरीरोंका अनादर करने लगे, और उन्होंने अपनी आंखोंके होनेका फल प्राप्त हुआ समझ लिया ॥ २७ ॥

जन्मप्रभृति यत्किंचिद्दृष्टवान्स महीपतिः ।
रूपं न सदृशं तस्यास्तर्कयामास किंचन ॥ २८ ॥

उन्होंने विचार कर देखा, कि जन्मके पश्चात् जो सब सुन्दर पदार्थ देखे थे, उनमेंसे एक भी इस कन्याके समान रूपयुक्त नहीं है ॥ २८ ॥

तया बद्धमनश्चक्षुः पाशैर्गुणमयैस्तदा ।
न चचाल ततो देशाद्बुबुधे न च किंचन ॥ २९ ॥

उस सुन्दरीको देखते ही उसके गुण जालमें महीपालके चित्त और नेत्र फंस गये और उनमें वहांसे टलनेका सामर्थ्य भी नहीं रहा और वे कुछ समझ भी नहीं सके ॥ २९ ॥

अस्या नूनं विशालाक्ष्याः सदेवासुरमानुषम् ।
लोकं निर्मथ्य धात्रेदं रूपमाविष्कृतं कृतम् ॥ ३० ॥

फिर यह सोचने लगे कि निश्चयसे विधाताने सुर, असुर और मनुष्य, सबोंको मंथन करके इस विशालाक्षीके रूपका आविष्कार किया होगा ॥ ३० ॥

एवं स तर्कयामास रूपद्रविणसंपदा ।
कन्यामसदृशीं लोके नृपः संवरणस्तदा ॥ ३१ ॥

तब उस राजा संवरणने उस कन्याको रूपधनकी सम्पत्तिमें संसारमें अद्वितीय समझा ॥ ३१ ॥

तां च दृष्ट्वैव कल्याणीं कल्याणाभिजनो नृपः।
जगाम मनसा चिन्तां काममार्गणपीडितः ॥ ३२ ॥

उस कल्याणीको देखते ही सुकुलीन राजा मदन बाणसे घायल होकर मनमें चिन्ताको प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥

दह्यमानः स तीव्रेण नृपतिर्मन्मथाग्निना।
अप्रगल्भां प्रगल्भः स तामुवाच यशस्विनीम् ॥ ३३ ॥

वह वीर राजा तीव्र कामाग्निसे जलते हुए अत्यन्त सुन्दर उस यशस्विनी कन्यासे बोले ॥ ३३ ॥

कासि कस्यासि रम्भोरु किमर्थं चेह तिष्ठसि।
कथं च निर्जनेऽरण्ये चरस्येका शुचिस्मिते ॥ ३४ ॥

हे रम्भा अथवा केलेके समान जांघोंवाली ! तुम कौन हो ? किसकी बेटी हो ? यहां क्यों खडी हो ? हे मीठी मुस्कराहटोंवाली ! तुम इस निर्जन वनमें अकेली ही क्यों विचर रही हो ? ॥ ३४ ॥

त्वं हि सर्वानवद्याङ्गी सर्वाभरणभूषिता।
विभूषणमिवैतेषां भूषणानामभीप्सितम् ॥ ३५ ॥

तुम सर्वाङ्ग सुन्दरी और सब आभूषणोंसे बनीठनी हो। हे सुन्दरि ! तुम्हीं इन सब आभूषणोंको योग्य रीतिसे सुशोभित करनेवाली आभूषणोंकी भांति हो ॥ ३५ ॥

न देवीं नासुरीं चैव न यक्षीं न च राक्षसीम्।
न च भोगवतीं मन्ये न गन्धर्वीं न मानुषीम् ॥ ३६ ॥

मैं न तुम्हें देवोंकी कन्या मानता हूँ, न असुरोंकी, न यक्षोंकी, न राक्षसोंकी, न नागोंकी न गन्धर्वोंकी और न मनुष्योंकी ॥ ३६ ॥

या हि दृष्टा मया काश्चिच्छ्रुता वापि वराङ्गनाः।
न तासां सदृशीं मन्ये त्वामहं मत्तकाशिनि ॥ ३७ ॥

हे मदगर्विते ! मैंने जितनी सुन्दर स्त्रियां देखीं वा जिनकी कथा सुनी है, उनमेंसे कोई भी तुम्हारे सदृश मुझे जान नहीं पडती ॥ ३७ ॥

एवं तां स महीपालो बभाषे न तु सा तदा।
कामार्तं निर्जनेऽरण्ये प्रत्यभाषत किंचन ॥ ३८ ॥

महीपाल निर्जन वनमें उस बालासे इस प्रकार बोले, पर उस कामसे पीडित राजाको उस कन्याने कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥ ३८ ॥

ततो लालप्यमानस्य पार्थिवस्यायतेक्षणा ।
सौदामिनीव साभ्रेषु तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३९ ॥

पृथ्वीनाथके बार बार उस प्रकार कहनेपर वह दीर्घ नयनोंवाली वह बाला वहीं पर उसी प्रकार छिप गई, कि जिस प्रकार बिजली मेघके भीतर छिप जाती है ॥ ३९ ॥

तामन्विच्छन्स नृपतिः परिचक्राम तत्तदा ।
वनं वनजपत्राक्षीं भ्रमन्नुन्मत्तवत्तदा ॥ ४० ॥

भूपाल उस पद्मकी पंखुडीके समान सुन्दर आंखोंवाली उस बालाको ढूंढते हुए उन्मत्तकी भांति उस वनके चारों ओर घूमने लगे ॥ ४० ॥

अपश्यमानः स तु तां बहु तत्र विलप्य च ।
निश्चेष्टः कौरवश्रेष्ठो मुहूर्तं स व्यतिष्ठत ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥ ५४६१ ॥

इसके बाद उसको न देखकर अनेक प्रकारसे विलाप करनेके बाद वह कुरुश्रेष्ठ क्षणभर निश्चेष्ट हो गए ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ साठवां अध्याय समाप्त ॥ १६० ॥ ५४६१ ॥

: १६१ :

गन्धर्व उवाच

अथ तस्यामदृश्यायां नृपतिः काममोहितः ।
पातनः शत्रुसङ्घानां पपात धरणीतले ॥ १ ॥

गंधर्व बोले– तब उस बालाके अदृश्य होनेपर शत्रुओंके समूहको नष्ट करनेवाले वे भूपाल कामसे मोहित होकर धरती पर गिर पडे ॥ १ ॥

तस्मिन्निपतिते भूमावथ सा चारुहासिनी ।
पुनः पीनायतश्रोणी दर्शयामास तं नृपम् ॥ २ ॥

तब उस राजाके भूमिपर गिर जानेपर सुंदर हंसनेवाली मोटे और बडे बडे नितम्बोंवाली तपती नामकी वह कन्या फिर उन राजाको दिखाई दी ॥ २ ॥

अथाबभाषे कल्याणी वाचा मधुरया नृपम् ।
तं कुरूणां कुलकरं कामाभिहतचेतसम् ॥ ३ ॥

वह कल्याणी बाला, जिनका चित्त कामसे पीडित है ऐसे कुरुओंके कुलको बढानेवाले श्रेष्ठ भूपालसे मीठी बातोंमें बोली ॥ ३ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते न त्वमर्हस्यरिन्दम ।
मोहं नृपतिशार्दूल गन्तुमाविष्कृतः क्षितौ ॥ ४ ॥

हे शत्रुओंके नाशक राजश्रेष्ठ ! उठो, उठो, तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम भूमण्डल भरमें प्रसिद्ध प्रधान राजा हो, तुमको मोहवश होना नहीं चाहिये ॥ ४ ॥

एवमुक्तोऽथ नृपतिर्वाचा मधुरया तदा ।
ददर्श विपुलश्रोणीं तामेवाभिमुखे स्थिताम् ॥ ५ ॥

तब मीठी वाणीसे इस प्रकार कहे जानेपर उस राजाने उस विशाल नितम्बोंवाली सुन्दरीको सामने ही खडा देखा ॥ ५ ॥

अथ तामसितापाङ्गीमाबभाषे नराधिपः ।
मन्मथाग्निपरीतात्मा संदिग्धाक्षरया गिरा ॥ ६ ॥

तब मदनकी ज्वालासे जले हुए चित्तवाले वह राजा काली आंखोंवाली उस कामिनीसे टूट-फूटे अक्षरोंमें बोले ॥ ६ ॥

साधु मामसितापाङ्गे कामार्तं मत्तकाशिनि ।
भजस्व भजमानं मां प्राणा हि प्रजहन्ति माम् ॥ ७ ॥

हे काली भोर आंखोंवाली तथा मस्त बनानेवाली ! मैं कामवश होकर तुम्हारा ध्यान कर रहा हूं, तुम साधुभावसे मेरा सेवन करो, मेरे प्राण मुझे छोड रहे हैं ॥ ७ ॥

त्वदर्थं हि विशालाक्षि मामयं निशितैः शरैः ।
कामः कमलगर्भाभे प्रतिविध्यन्न शाम्यति ॥ ८ ॥

हे कमल गर्भके समान कांतिवाली विशालाक्षि ! मदन मुझको तुम्हारे लिये ही तेज पांच बाणोंसे विद्ध कर रहा है और किसी प्रकार शान्त नहीं हो रहा है ॥ ८ ॥

ग्रस्तमेवमनाक्रन्दे भद्रे काममहाहिना ।
सा त्वं पीनायतश्रोणि पर्याप्नुहि शुभानने ॥ ९ ॥

हे भद्रे ! प्रफुल्लचित्तवाली अनङ्गरूपी घोर भुजङ्ग मुझको काट रहा है । हे सुन्दर मुखवाली तथा मोटी और विशाल जांघोंवाली ! तुम उस कठोर सर्प विषसे मेरी रक्षा करो ॥९॥

त्वय्यधीना हि मे प्राणा किंनरोद्गीतभाषिणि ।
चारुसर्वानवद्याङ्गि पद्मेन्दुसदृशानने ॥ १० ॥

हे किन्नरोंके गानके समान बोलनेवाली, सुन्दर एवं अनिन्दित अंगोंवाली तथा कमल और चन्द्रके समान मुखवाली ! अब मेरा जीवन तुम्हारे हाथमें है ॥ १० ॥

न ह्यहं त्वदृते भीरु शक्ष्ये जीवितुमात्मना ।
तस्मात्कुरु विशालाक्षि मय्यनुक्रोशमङ्गने ॥ ११ ॥

हे भीरु ! तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकूंगा । हे विशालाक्षि सुन्दरी ! अतः मुझपर कृपा करो ॥ ११ ॥

भक्तं मामसितापाङ्गे न परित्यक्तुमर्हसि ।
त्वं हि मां प्रीतियोगेन त्रातुमर्हसि भामिनि ॥ १२ ॥

हे काली आंखोंवाली सुन्दरी ! मैं तुम्हारा भक्त हूं, अतः मुझको त्याग देना तुम्हारे लिए उचित नहीं; हे भामिनि ! प्रीति योगसे तुम मेरी रक्षा कर सकती हो ॥ १२ ॥

गान्धर्वेण च मां भीरु विवाहेनैहि सुंदरि ।
विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठ उच्यते ॥ १३ ॥

हे सुन्दरी भीरु ! गन्धर्व विधिके अनुसार मुझसे विवाह करके मुझसे संयुक्त होओ । हे रंभोरु ! कहा है, कि सब विवाहोंसे गान्धर्व विवाह ही श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥

तपत्युवाच

नाहमीशात्मनो राजन्कन्या पितृमती ह्यहम् ।
मयि चेदस्ति ते प्रीतिर्याचस्व पितरं मम ॥ १४ ॥

तपती बोली– हे महाराज ! मैं अपने आपकी स्वामिनी नहीं हूँ क्योंकि मैं पितासे युक्त कन्या हूँ अर्थात् मेरे पिता जीवित हैं । अतः यदि मुझपर तुम्हारी प्रीति हो, तो मेरे पितासे प्रार्थना करो ॥ १४ ॥

यथा हि ते मया प्राणाः संगृहीता नरेश्वर ।
दर्शनादेव भूयस्त्वं तथा प्राणान्ममाहरः ॥ १५ ॥

हे नरनाथ ! मैंने जिस प्रकार तुम्हारा चित्त चुरा लिया है, तुमने भी पहिली ही दृष्टिमें वैसे ही मेरा हृदय भी चुरा लिया है ॥ १५ ॥

न चाहमीशा देहस्य तस्मान्नृपतिसत्तम ।
समीपं नोपगच्छामि न स्वतन्त्रा हि योषितः ॥ १६ ॥

हे नृपश्रेष्ठ ! स्त्री स्वाधीन नहीं है, अतः अपनी देहपर अपना अधिकार न रहनेसे मैं तुम्हारे पास नहीं आ सकती ॥ १६ ॥

का हि सर्वेषु लोकेषु विश्रुताभिजनं नृपम् ।
कन्या नाभिलषेन्नाथं भर्तारं भक्तवत्सलम् ॥ १७ ॥

अन्यथा जिनकी कुलीनता सब लोकोंमें प्रसिद्ध है, उन भक्तोंसे प्रेम करनेवाले लोकोंके स्वामी भूपालकी कौन कन्या पतिके रूपमें प्राप्त करना न चाहेगी ? ॥ १७ ॥

तस्मादेवंगते काले याचस्व पितरं मम ।
आदित्यं प्रणिपातेन तपसा नियमेन च ॥ १८ ॥

अतएव तुम योग्य समय आनेपर मेरे पिता आदित्यको प्रणाम कर और उनकी नियम पूर्वक उपासना करके उनसे मुझे मांगना ॥ १८ ॥

स चेत्कामयते दातुं तव मामरिमर्दन ।
भविष्याम्यथ ते राजन्सततं वशवर्तिनी ॥ १९ ॥

हे शत्रुनाशी महाराज ! यदि पिता मुझको तुम्हें दान करनेके लिए सम्मत हो जायेंगे, तो मैं सदा तुम्हारे वशमें रहनेवाली बनी रहूंगी ॥ १९ ॥

अहं हि तपती नाम सावित्र्यवरजा सुता ।
अस्य लोकप्रदीपस्य सवितुः क्षत्रियर्षभ ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥ ५४८१ ॥

हे क्षत्रियवर ! मेरा नाम तपती है। मैं इन लोकोंके प्रकाशक आदित्यकी कन्या और सावित्रीकी छोटी बहिन हूं ॥ २० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ इकसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६१ ॥ ५४८१ ॥

: १६२ :

गन्धर्व उवाच

एवमुक्त्वा ततस्तूर्णं जगामोर्ध्वमनिन्दिता ।
स तु राजा पुनर्भूमौ तत्रैव निपपात ह ॥ १ ॥

गन्धर्व बोले– अनिन्दितरूपवती तपती यह कहकर उसी क्षण ऊपर चली गई। वह राजा फिर वहीं भूमिपर गिर पडे ॥ १ ॥

अमात्यः सानुयात्रस्तु तं ददर्श महावने ।
क्षितौ निपतितं काले शक्रध्वजमिवोच्छ्रितम् ॥ २ ॥

इधर मंत्री और उसके अनुयायियोंने राजाको उस बडे वनके भीतर टूटे हुए इंद्रध्वजकी भांति धरतीपर पडे पाया ॥ २ ॥

तं हि दृष्ट्वा महेष्वासं निरश्वं पतितं क्षितौ ।
बभूव सोऽस्य सचिवः संप्रदीप्त इवाग्निना ॥ ३ ॥

उस बडे धनुर्धारी भूपालको विना घोडेके भूतलपर पडे हुए देखकर उसका मंत्री भी अग्निसे जले हुएके समान हो गया ॥ ३ ॥

त्वरया चोपसंगम्य स्नेहादागतसंभ्रमः ।
तं समुत्थापयामास नृपतिं काममोहितम् ॥ ४ ॥

तब इसके बाद किंकर्तव्य विमूढ हुए उस मंत्रीने वेगसे प्यारसे निकट जाकर कामसे मोहित भूपाल-श्रेष्ठको उठा लिया ॥ ४ ॥

भूतलाद्भूमिपालेशं पितेव पतितं सुतम् ।
प्रज्ञया वयसा चैव वृद्धः कीर्त्या दमेन च ॥ ५ ॥

प्रज्ञा, अवस्था, कीर्ति और दममें वृद्ध उन मंत्रीने उन राजाको भूमिपरसे उसी प्रकार उठाया, जिस प्रकार एक पिता भूमिपर पडे हुए अपने पुत्रको उठाता है ॥ ५ ॥

अमात्यस्तं समुत्थाप्य बभूव विगतज्वरः ।
उवाच चैनं कल्याण्या वाचा मधुरयोत्थितम् ।
मा भैर्मनुजशार्दूल भद्रं चास्तु तवानघ ॥ ६ ॥

मंत्री उनको उठाकर चिन्तारहित हुए और उस उठे हुए पृथ्वीनाथसे कल्याणयुक्त मीठी बातोंमें बोले– हे अनघ, मनुजशार्दूल ! आपका मंगल होवे, आप भय न करे ॥ ६ ॥

क्षुत्पिपासापरिश्रान्तं तर्कयामास तं नृपम् ।
पतितं पातनं संख्ये शात्रवाणां महीतले ॥ ७ ॥

उन भूपालको, जो रणभूमिमें शत्रुओंको गिराते हैं, थके मादे होने और भूख प्यासके कारण भूमिपर गिरा हुआ समझा ॥ ७ ॥

वारिणाथ सुशीतेन शिरस्तस्याभ्यषेचयत् ।
अस्पृशन्मुकुटं राज्ञः पुण्डरीकसुगन्धिना ॥ ८ ॥

और उन्होंने पद्मगन्धसे युक्त ठण्डे जलसे उन राजाके सिरको गीला किया और मुकुटको भी धोया ॥ ८ ॥

ततः प्रत्यागतप्राणस्तद्बलं बलवान्नृपः ।
सर्वं विसर्जयामास तमेकं सचिवं विना ॥ ९ ॥

तब प्राणसे युक्त होकर उन बलिष्ठ राजाने एक उन मंत्रीके सिवाय सब दूसरे सैनिकोंको विदा कर दिया ॥ ९ ॥

ततस्तस्याज्ञया राज्ञो विप्रतस्थे महद्बलम् ।
स तु राजा गिरिप्रस्थे तस्मिन्पुनरुपाविशत् ॥ १० ॥

इसके बाद सब सेनाओंके राजाकी आज्ञासे चले जाने पर वह राजा फिर उस पर्वत पर बैठे ॥ १० ॥

×

ततस्तस्मिन्गिरिवरे शुचिर्भूत्वा कृताञ्जलिः ।
आरिराधयिषुः सूर्यं तस्थावूर्ध्वभुजः क्षितौ ॥ ११ ॥

इसके बाद वह शत्रुदमन महाराज उस पर्वतपर शुद्ध होकर सूर्यकी उपासना करनेके लिये दोनों हाथ जोडके हाथ ऊंचा कर जमीन पर खडे हो गए ॥ ११ ॥

जगाम मनसा चैव वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
पुरोहितममित्रघ्नस्तदा संवरणो नृपः ॥ १२ ॥

और तब वह शत्रुनाशी संवरण राजा मन ही मनमें ऋषिश्रेष्ठ पुरोहित वसिष्ठको स्मरण करने लगे ॥ १२ ॥

नक्तंदिनमथैकस्थे स्थिते तस्मिञ्जनाधिपे ।
अथाजगाम विप्रर्षिस्तदा द्वादशमेऽहनि ॥ १३ ॥

हे नराधिप ! तब इस प्रकार इस जनाधिप राजाके एकाग्र मनसे दिनरात खडे रहने पर बारहवें दिन विप्रर्षि वसिष्ठ वहां आये ॥ १३ ॥

स विदित्वैव नृपतिं तपत्या हृतमानसम् ।
दिव्येन विधिना ज्ञात्वा भावितात्मा महानृषिः ॥ १४ ॥

धर्मशील महर्षिने योगबलसे उन संयतचित्त भूपालका चित्त तपतीसे हरा गया जान कर ॥ १४ ॥

तथा तु नियतात्मानं स तं नृपतिसत्तमम् ।
आबभाषे स धर्मात्मा तस्यैवार्थचिकीर्षया ॥ १५ ॥

वह धर्मात्मा वसिष्ठ जितेन्द्रिय और राजाओंमें श्रेष्ठ राजा संवरणसे उनका कार्य पूरा करनेकी इच्छासे बोले ॥ १५ ॥

स तस्य मनुजेन्द्रस्य पश्यतो भगवानृषिः ।
ऊर्ध्वमाचक्रमे द्रष्टुं भास्करं भास्करद्युतिः ॥ १६ ॥

तदनन्तर सूर्यके समान तेजस्वी भगवान् ऋषि वसिष्ठ सूर्यसे मिलनेके लिये भूपालके देखते देखते ऊपर चढ गये ॥ १६ ॥

सहस्रांशुं ततो विप्रः कृताञ्जलिरुपस्थितः ।
वसिष्ठोऽहमिति प्रीत्या स चात्मानं न्यवेदयत् ॥ १७ ॥

और वे ब्राह्मण दोनों हाथ जोडकर सहस्रांशुके निकट पहुंच कर बह कहके प्रेमसे अपना परिचय दिया, कि मैं वसिष्ठ हूं ॥ १७ ॥

तमुवाच महातेजा विवस्वान्मुनिसत्तमम् ।
महर्षे स्वागतं तेऽस्तु कथयस्व यथेच्छसि ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥ ५४९९ ॥

अति तेजस्वी विवस्वान् मुनिवरसे बोले— हे महर्षे ! तुम्हारा आना शुभ होवे, कहो, क्या चाहते हो ॥ १८ ॥

महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ बासठवां अध्याय समाप्त ॥ १६२ ॥ ५४९९ ॥

: १६३ :

वसिष्ठ उवाच

येषा ते तपती नाम सावित्र्यवरजा सुता ।
तां त्वां संवरणस्यार्थे वरयामि विभावसो ॥ १ ॥

वसिष्ठ बोले— हे विभावसो ! सावित्रीसे छोटी आपकी जो तपती नामकी कन्या है, मैं उसको राजा संवरणके निमित्त मांगता हूं ॥ १ ॥

स हि राजा बृहत्कीर्तिर्धर्मार्थविदुदारधीः ।
युक्तः संवरणो भर्ता दुहितुस्ते विहङ्गम ॥ २ ॥

हे आकाशमें विचरनेवाले ! वह राजा बहुत कीर्तिशाली धर्मार्थ तत्त्वोंके जानकार और उदार-बुद्धि हैं, अतः वह आपकी पुत्रीके पति होनेके योग्य वर हैं ॥ २ ॥

गन्धर्व उवाच

इत्युक्तः सविता तेन ददानीत्येव निश्चितः ।
प्रत्यभाषत तं विप्रं प्रतिनन्द्य दिवाकरः ॥ ३ ॥

गन्धर्व बोला— ऋषिकी यह बात सुनकर सूर्य कन्या देनेका निश्चय कर उनका आदर कर उस विप्रसे बोले ॥ ३ ॥

वरः संवरणो राज्ञां त्वमृषीणां वरो मुने ।
तपती योषितां श्रेष्ठा किमन्यत्रापवर्जनात् ॥ ४ ॥

हे मुने ! राजा संवरण भूपोंमें श्रेष्ठ हैं, तुम मुनियोंमें हो और तपती भी नारियोंमें श्रेष्ठा है, अतएव सम्प्रदानके सिवाय और क्या विचार हो सकता है ? ॥ ४ ॥

ततः सर्वानवद्याङ्गीं तपतीं तपनः स्वयम् ।
ददौ संवरणस्यार्थे वसिष्ठाय महात्मने ।
प्रतिजग्राह तां कन्यां महर्षिस्तपतीं तदा ॥ ५ ॥

अनन्तर सूर्यदेवने स्वयं ही संवरणके निमित्त महात्मा वसिष्ठको सर्वाङ्गसुन्दरी तपतीको दे दिया, तब महर्षि वसिष्ठने उस तपतीको ले लिया ॥ ५ ॥

वसिष्ठोऽथ विसृष्टश्च पुनरेवाजगाम ह ।
यत्र विख्यातकीर्तिः स कुरूणामृषभोऽभवत् ॥ ६ ॥

वसिष्ठ सूर्यसे विदा होकर उस स्थानको लौट गये, जहां प्रख्यात कीर्तिशाली कुरुश्रेष्ठ संवरण थे ॥ ६ ॥

स राजा मन्मथाविष्टस्तद्गतेनान्तरात्मना ।
दृष्ट्वा च देवकन्यां तां तपतीं चारुहासिनीम् ।
वसिष्ठेन सहायान्तीं संहृष्टोऽभ्यधिकं बभौ ॥ ७ ॥

वह काममें प्रविष्ट होनेके कारण तपतीमें मन लगाए हुए राजा उस सुन्दरहासिनी देवबाला तपतीको वसिष्ठके संग आते देखकर अति प्रसन्न होकर शोभा पाने लगे ॥ ७ ॥

कृच्छ्रे द्वादशरात्रे तु तस्य राज्ञः समापिते ।
आजगाम विशुद्धात्मा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ ८ ॥

राजाके बारह रात्रियोंको कठिनतासे समाप्त करनेपर विशुद्धात्मा भगवान् ऋषि वसिष्ठ वहां आये ॥ ८ ॥

तपसाराध्य वरदं देवं गोपतिमीश्वरम् ।
लेभे संवरणो भार्यां वसिष्ठस्यैव तेजसा ॥ ९ ॥

भूपाल संवरणने इस प्रकार तपस्यासे वरदाता ईश्वर किरणोंके स्वामी सूर्यदेवकी उपासना कर महर्षि वसिष्ठके तेजोबलसे तपनपुत्री तपतीको अपनी पत्नीके रूपमें प्राप्त किया ॥९॥

ततस्तस्मिन्गिरिश्रेष्ठे देवगन्धर्वसेविते ।
जग्राह विधिवत्पाणिं तपत्याः स नरर्षभः ॥ १० ॥

तदनन्तर उन नरसिंहने देवों और गन्धर्वोंसे सेवित उस श्रेष्ठ पर्वत ही पर तपतीसे विधिपूर्वक बिवाह किया ॥ १० ॥

वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञातस्तस्मिन्नेव धराधरे ।
सोऽकामयत राजर्षिर्विहर्तुं सह भार्यया ॥ ११ ॥

इसके बाद वसिष्ठकी आज्ञासे उस पहाड पर ही उस राजर्षिने अपनी पत्नीके साथ विहार करनेकी अभिलाषा की ॥ ११ ॥

ततः पुरे च राष्ट्रे च वाहनेषु बलेषु च ।
आदिदेश महीपालस्तमेव सचिवं तदा ॥ १२ ॥

और मन्त्रीको नगर, राज्य, वाहन और सेना आदिकी रक्षा करनेकी आज्ञा की ॥ १२ ॥

नृपतिं त्वभ्यनुज्ञाय वसिष्ठोऽथापचक्रमे ।
सोऽपि राजा गिरौ तस्मिन्विजहारामरोपमः ॥ १३ ॥
अनन्तर वसिष्ठ राजासे अनुमति ले करके अपने स्थानको पधारे । इधर राजा संवरण देवोंकी भांति उस पर्वतपर विहार करने लगे ॥ १३ ॥

ततो द्वादश वर्षाणि काननेषु जलेषु च ।
रेमे तस्मिन्गिरौ राजा तथैव सह भार्यया ॥ १४ ॥
उन्होंने बारह वर्षतक उस पर्वतके वन और जलयुक्त सरोवरोंमें भार्याके साथ विहार किया ॥ १४ ॥

तस्य राज्ञः पुरे तस्मिन्समा द्वादश सर्वशः ।
न ववर्ष सहस्राक्षो राष्ट्रे चैवास्य सर्वशः ॥ १५ ॥
सहस्रनेत्र इन्द्रने उन राजाकी उस राजधानी और राज्यमें बारह वर्षतक वर्षा नहीं की ॥ १५ ॥

ततक्षुधार्तैर्निरानन्दैः शवभूतैस्तदा नरैः ।
अभवत्प्रेतराजस्य पुरं प्रेतैरिवावृतम् ॥ १६ ॥
वह देश भूखे तथा आनन्द रहित हुए हुए जनोंसे भर जानेके कारण ऐसा दिखाई देने लगा कि मानों वह मुर्दोंसे भरा हुआ यमराजका नगर हो ॥ १६ ॥

ततस्तत्तादृशं दृष्ट्वा स एव भगवानृषिः ।
अभ्यपद्यत धर्मात्मा वसिष्ठो राजसत्तमम् ॥ १७ ॥
हे राजन् ! ऋषि धर्मात्मा भगवान् वसिष्ठ उनके राज्यकी वह दशा देखकर उस राजश्रेष्ठके पास पहुंचे ॥ १७ ॥

तं च पार्थिवशार्दूलमानयामास तत्पुरम् ।
तपत्या सहितं राजन्नुषितं द्वादशीः समाः ॥ १८ ॥
और, हे राजन् ! बारह वर्षोंतक तपतीके साथ अन्यत्र रहते हुए उस राजाओंमें श्रेष्ठ संवरणको राजधानीमें लिवा लाये ॥ १८ ॥

ततः प्रवृष्टस्तत्रासीद्यथापूर्वं सुरारिहा ।
तस्मिन्नृपतिशार्दूले प्रविष्टे नगरं पुनः ॥ १९ ॥
तब उस नृपशार्दूलके पुरमें प्रविष्ट होते ही असुरनाशी प्रभु इन्द्रने पहलेके समान ही उस राज्यमें पानी बरसाया ॥ १९ ॥

ततः सराष्ट्रं मुमुदे तत्पुरं परया मुदा ।
तेन पार्थिवमुख्येन भावितं भावितात्मना ॥ २० ॥
जितेन्द्रिय भूपश्रेष्ठके राज्यकी मङ्गलचिन्तामें नियुक्त होनेपर सम्पूर्ण राष्ट्र प्रसन्न हुआ और वह नगर भी अति प्रसन्न हुआ ॥ २० ॥

ततो द्वादश वर्षाणि पुनरीजे नराधिपः ।
पत्न्या तपत्या सहितो यथा शक्रो मरुत्पतिः ॥ २१ ॥

तदनन्तर नरपति संवरणने अपनी पत्नीके साथ बारह वर्षतक ऐसा यज्ञ किया, कि जैसा मरुत्पति इन्द्रने किया था ॥ २१ ॥

एवमासीन्महाभागा तपती नाम पौर्विकी ।
तव वैवस्वती पार्थ तापत्यस्त्वं यथा मतः ॥ २२ ॥

हे पार्थ ! इस प्रकार महाभाग्यशाली तपती नामकी सूर्य कन्या तेरी पूर्वजा हुई है, उसीके कारण तुम्हें तापत्य कहा जाता है ॥ २२ ॥

तस्यां संजनयामास कुरुं संवरणो नृपः ।
तपत्यां तपतां श्रेष्ठ तापत्यस्त्वं ततोऽर्जुन ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥ ५५२२ ॥

हे शत्रुसंतापनोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! राजा संवरणने उस तपतीसे कुरु नामक पुत्रको जन्म दिया था । उस कुरुवंशमें तुम्हारे जन्म लेनेके कारण तुम तापत्य कहे जाते हो ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ त्रेसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६३ ॥ ५५२२ ॥

: १६४ :

वैशम्पायन उवाच

स गन्धर्ववचः श्रुत्वा तत्तदा भरतर्षभ ।
अर्जुनः परया प्रीत्या पूर्णचन्द्र इवाबभौ ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ जनमेजय ! तब अर्जुन गन्धर्वसे वह कथा सुनकर परम प्रीतिपूर्वक पूर्ण चन्द्रमाकी भांति शोभा पाने लगे ॥ १ ॥

उवाच च महेष्वासो गन्धर्वं कुरुसत्तमः ।
जातकौतूहलोऽतीव वसिष्ठस्य तपोबलात् ॥ २ ॥

महा धनुर्धारी कुरुश्रेष्ठ, अर्जुन वसिष्ठके तपोबलसे विस्मित होकर गन्धर्वसे बोले ॥ २ ॥

वसिष्ठ इति यस्यैतदृषेर्नाम त्वयेरितम् ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं यथावत्तद्वदस्व मे ॥ ३ ॥

हे मित्र ! तुमने जिन ऋषिका नाम वसिष्ठ कहा है, मैं उनका वृत्तान्त सुनना चाहता हूं, तुम आद्योपान्त सुनाओ ॥ ३ ॥

य एष गन्धर्वपते पूर्वेषां नः पुरोहितः ।
आसीदेतन्ममाचक्ष्व क एष भगवानृषिः ॥ ४ ॥

हे गन्धर्वराज ! वह भगवान् ऋषि, जो हमारे पूर्व पुरुषोंके पुरोहित थे, कौन थे वह सब वृत्तान्त मुझे सुनाओ ॥ ४ ॥

गन्धर्व उवाच

तपसा निर्जितौ शश्वदजेयावमरैरपि ।
कामक्रोधावुभौ यस्य चरणौ संववाहतुः ॥ ५ ॥

गन्धर्व बोले– जिस काम और क्रोधपर देव भी जय नहीं पा सके वे दोनों जिनकी तपस्यासे परास्त हो सदा पांव दबाते थे ॥ ५ ॥

यस्तु नोच्छेदनं चक्रे कुशिकानामुदारधीः ।
विश्वामित्रापराधेन धारयन्मन्युमुत्तमम् ॥ ६ ॥

विश्वामित्रके अपराधके कारण अति क्रोधित होने पर भी जिन उदार चित्त महर्षिने कुशिक वंशका उच्छेद नहीं किया ॥ ६ ॥

पुत्रव्यसनसंतप्तः शक्तिमानपि यः प्रभुः ।
विश्वामित्रविनाशाय न मेने कर्म दारुणम् ॥ ७ ॥

पुत्रोंके नाशके कारण दुःखी होनेपर भी तथा जिन्होंने शक्तिमान् और सर्व समर्थ होनेपर भी विश्वामित्रके विनाश करने रूप भयंकर कर्मको स्वीकार नहीं किया ॥ ७ ॥

मृतांश्च पुनराहर्तुं यः स पुत्रान्यमक्षयात् ।
कृतान्तं नातिचक्राम वेलामिव महोदधिः ॥ ८ ॥

समर्थ होकर भी जिन्होंने यमालयसे अपने मृतपुत्रोंको न लौटा लाकर यमराजके मर्यादा की उसी प्रकार रक्षा की थी, कि जैसे समुद्र अपने तटके मर्यादाकी रक्षा करता है ॥ ८ ॥

यं प्राप्य विजितात्मानं महात्मानं नराधिपाः ।
इक्ष्वाकवो महीपाला लेभिरे पृथिवीमिमाम् ॥ ९ ॥

इक्ष्वाकुवंशके भूपालोंने जिन जितेन्द्रिय महात्माको प्राप्त कर इस पूरी धरती पर अधिकार प्राप्त किया था ॥ ९ ॥

पुरोहितवरं प्राप्य वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
ईजिरे क्रतुभिश्चापि नृपास्ते कुरुनन्दन ॥ १० ॥

हे कुरुनन्दन ! उन सब राजाओंने उन ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठको श्रेष्ठ पुरोहितके रूपमें पा करके ही नाना यज्ञ किये थे ॥ १० ॥

स हि तान्याजयामास सर्वान्नृपतिसत्तमान्।
ब्रह्मर्षिः पाण्डवश्रेष्ठ बृहस्पतिरिवामरान् ॥ ११ ॥

हे पाण्डवश्रेष्ठ ! उन ब्रह्मर्षिने भी उन सभी श्रेष्ठ राजाओंसे उसी प्रकार यज्ञ करवाये कि जिस प्रकार बृहस्पति देवोंका यज्ञ कराते हैं ॥ ११ ॥

तस्माद्धर्मप्रधानात्मा वेदधर्मविदीप्सितः।
ब्राह्मणो गुणवान्कश्चित्पुरोधाः प्रविमृश्यताम् ॥ १२ ॥

अतएव तुम भी धार्मिक कृत्योंको करानेवालोंमें तथा वेदधर्मको जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ किसी गुणवान् ब्राह्मणको पुरोहितके रूपमें वरण करो ॥ १२ ॥

क्षत्रियेण हि जातेन पृथिवीं जेतुमिच्छता।
पूर्वं पुरोहितः कार्यः पार्थ राज्याभिवृद्धये ॥ १३ ॥

हे पार्थ ! पृथ्वी जीतनेकी इच्छा रखनेवाले क्षत्रियको राज्यवृद्धिके लिये पाहिले पुरोहित नियुक्त करना चाहिये ॥ १३ ॥

महीं जिगीषता राज्ञा ब्रह्म कार्यं पुरःसरम्।
तस्मात्पुरोहितः कश्चिद्गुणवानस्तु वो द्विजः ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥ ५५३६ ॥

क्योंकि पृथ्वीको जीतनेकी इच्छा करनेवाले राजाको चाहिए कि वह हमेशा ब्राह्मणको सामने रखे अत एव गुणवान् कोई ब्राह्मण तुम्हारे पुरोहित होवें ॥ १४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ चौसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६४ ॥ ५५३६ ॥

: १६५ :

अर्जुन उवाच

किंनिमित्तमभूद्वैरं विश्वामित्रवसिष्ठयोः।
वसतोराश्रमे पुण्ये शंस नः सर्वमेव तत् ॥ १ ॥

अर्जुन बोले— पुण्य आश्रमोंमें रहनेवाले विश्वामित्र और वसिष्ठमें आपसमें किस कारण शत्रुता उत्पन्न हुई, वह सब हमसे कहो ॥ १ ॥

गन्धर्व उवाच

इदं वासिष्ठमाख्यानं पुराणं परिचक्षते।
पार्थ सर्वेषु लोकेषु यथावत्तन्निबोध मे ॥ २ ॥

गन्धर्व बोले— हे पार्थ ! यह वसिष्ठकी कथा सब लोकोंमें पुराणके नामसे कही जाती है, मैं यथार्थ रीतिसे कहता हूं, सुनो ॥ २ ॥

कन्यकुब्जे महानासीत्पार्थिवो भरतर्षभ ।
गाधीति विश्रुतो लोके सत्यधर्मपरायणः ॥ ३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! कन्यकुब्ज (वर्तमान कन्नौज) देशमें सत्यधर्ममें परायण गाधिके नामसे संसारमें प्रख्यात एक महान् राजा थे ॥ ३ ॥

तस्य धर्मात्मनः पुत्रः समृद्धबलवाहनः ।
विश्वामित्र इति ख्यातो बभूव रिपुमर्दनः ॥ ४ ॥

उन धर्मात्माके सेना और वाहनोंसे समृद्ध तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला विश्वामित्रके नामसे प्रसिद्ध एक पुत्र हुआ ॥ ४ ॥

स चचार सहामात्यो मृगयां गहने वने ।
मृगान्विध्यन्वराहांश्च रम्येषु मरुधन्वसु ॥ ५ ॥

वह एक समय मन्त्रीके साथ घने वनमें और सुंदर रेगिस्तानकी भूमिपर मृग और वराह मारते हुए मृगया करते हुए फिरने लगे ॥ ५ ॥

व्यायामकर्शितः सोऽथ मृगलिप्सुः पिपासितः ।
आजगाम नरश्रेष्ठ वसिष्ठस्याश्रमं प्रति ॥ ६ ॥

हे नृपश्रेष्ठ ! वह मृग पानेकी इच्छा करनेवाले वे विश्वामित्र भागदौडसे थककर और प्यासे होकर वसिष्ठके आश्रममें जा पहुंचे ॥ ६ ॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः ।
विश्वामित्रं नरश्रेष्ठं प्रतिजग्राह पूजया ॥ ७ ॥

ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठने उन नरश्रेष्ठ विश्वामित्रको आते देखकर पूजासे उनका स्वागत किया ॥७॥

पाद्यार्घ्याचमनीयेन स्वागतेन च भारत ।
तथैव परिजग्राह वन्येन हविषा तथा ॥ ८ ॥

हे भारत ! उन ऋषिने कुशलक्षेम पूछ करके पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, वनके फल फूल आदि पवित्र भोजनकी सामग्री देकर उनका आतिथ्य सत्कार किया ॥ ८ ॥

तस्याथ कामधुग्धेनुर्वसिष्ठस्य महात्मनः ।
उक्ता कामान्प्रयच्छेति सा कामान्दुदुहे ततः ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! महात्मा वसिष्ठकी कामदुघा एक गौ थी; ऋषि जब उस गौको कुछ कामनाकी वस्तु देनेको कहकर दुहते थे, उसी क्षण उसे पाते थे ॥ ९ ॥

ग्राम्यारण्या औषधीश्च दुदुहे पय एव च ।
षड्रसं चामृतरसं रसायनमनुत्तमम् ॥ १० ॥

उसी समय वसिष्ठको कामनाके अनुसार कामधेनुको दोहनेपर ग्राम तथा वनकी औषधि, दुग्ध, अमृतके समान छओं रस, उत्तम रसायन ॥ १० ॥

भोजनीयानि पेयानि भक्ष्याणि विविधानि च ।
लेह्यान्यमृतकल्पानि चोष्याणि च तथार्जुन ॥ ११ ॥

उसी प्रकार, हे अर्जुन ! अमृतके समान सुमिष्ट बहुविध भोजनकी, पीनेकी, चबानेकी, चाटनेकी, चूसनेकी सामग्री मिल जाती थी ॥ ११ ॥

तैः कामैः सर्वसंपूर्णैः पूजितः स महीपतिः ।
सामात्यः सबलश्चैव तुतोष स भृशं नृपः ॥ १२ ॥

मन्त्री और सेनाके साथ भूपालने उन सब सम्पूर्ण काम्य वस्तुओंसे सत्कृत होकर महान् सन्तोष प्राप्त किया ॥ १२ ॥

षडायतां सुपार्श्वोरुं त्रिपृथुं पञ्चसंवृताम् ।
मण्डूकनेत्रां स्वाकारां पीनोधसमनिन्दिताम् ॥ १३ ॥
सुवालधिं शङ्कुकर्णां चारुशृङ्गां मनोरमाम् ।
पुष्टायतशिरोग्रीवां विस्मितः सोऽभिवीक्ष्य ताम् ॥ १४ ॥

वहां पुष्ट सिर, गर्दन, जघनभाग, पिंडलियां, पूंछ और स्तनवाली, तीन विशाल अवयवों-वाली तथा पांच पुष्ट अवयवोंवाली, मेढकके समान उठावदार आंखोंवाली, उत्तम आकार-वाली, बडे बडे थनोंवाली तथा अनिन्दित अंगोंवाली, सुन्दर सींगोंवाली, मनको आनन्द देनेवाली, पुष्ट और मोटे शिर और गर्दनवाली गायको देखकर वह विश्वामित्र आश्चर्यचकित रह गए ॥ १३–१४ ॥

अभिनन्दति तां नन्दीं वसिष्ठस्य पयस्विनीम् ।
अब्रवीच्च भृशं तुष्टो विश्वामित्रो मुनिं तदा ॥ १५ ॥

हे राजन् ! वसिष्ठकी ऐसी पयस्विनी नन्दिनी नामकी उस कामधेनुकी बिश्वामित्रने प्रशंसा की और अति सन्तुष्ट चित्तसे विश्वामित्र मुनि वसिष्ठसे बोले ॥ १५ ॥

अर्बुदेन गवां ब्रह्मन्मम राज्येन वा पुनः ।
नन्दिनीं संप्रयच्छस्व भुङ्क्ष्व राज्यं महामुने ॥ १६ ॥

हे ब्रह्मन् ! तुम मुझसे दस करोड गौ लेकर या राज्य लेकर मुझको यह नन्दिनी दे दो; और, हे महामुने ! तुम नन्दिनीको दे करके मेरे राज्यका उपभोग करो ॥ १६ ॥

वसिष्ठ उवाच

देवतातिथिपित्रर्थमाज्यार्थं च पयस्विनी ।
अदेया नन्दिनीयं मे राज्येनापि तवानघ ॥ १७ ॥

वसिष्ठ बोले– हे अनघ ! यह दुधारु नन्दिनी देवता, अतिथि, पितर और यज्ञके लिये रखी गयी है, अतः तुम्हारे राज्यको ले करके भी मैं इसको नहीं दे सकता ॥ १७ ॥

विश्वामित्र उवाच

क्षत्रियोऽहं भवान्विप्रस्तपःस्वाध्यायसाधनः ।
ब्राह्मणेषु कुतो वीर्यं प्रशान्तेषु धृतात्मसु ॥ १८ ॥

विश्वामित्र बोले– मैं क्षत्रिय हूँ और तुम तपस्वी और वेद पढनेवाले ब्राह्मण हो, प्रशान्त-चित्त तथा संयत आत्मावाले ब्राह्मणमें शक्ति कहां ? ॥ १८ ॥

अर्बुदेन गवां यस्त्वं न ददासि ममेप्सिताम् ।
स्वधर्मं न प्रहास्यामि नयिष्ये ते बलेन गाम् ॥ १९ ॥

अतएव यदि तुम दस करोड गौ लेकर मेरे द्वारा अभिलषित गौ नहीं दोगे, तो मैं भी अपना धर्म नहीं छोडूंगा, बलसे गाय छीन ले जाऊंगा ॥ १९ ॥

वसिष्ठ उवाच

बलस्थश्चासि राजा च बाहुवीर्यश्च क्षत्रियः ।
यथेच्छसि तथा क्षिप्रं कुरु त्वं मा विचारय ॥ २० ॥

वसिष्ठ बोले– तुम बलिष्ठ क्षत्रिय राजा और भुजवीर्यसे युक्त हो, अत एव तुम जैसा चाहो वैसाही करो, अधिक विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ २० ॥

गन्धर्व उवाच

एवमुक्तस्तदा पार्थ विश्वामित्रो बलादिव ।
हंसचन्द्रप्रतीकाशां नन्दिनीं तां जहार गाम् ॥ २१ ॥

गन्धर्वराज बोले– हे पार्थ ! ऋषि वसिष्ठसे इस प्रकार कहे जाकर सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशमती उस नन्दिनीको विश्वामित्रने जबर्दस्ती हर लिया ॥ २१ ॥

कशादण्डप्रतिहता काल्यमाना ततस्ततः ।
हम्भायमाना कल्याणी वसिष्ठस्याथ नन्दिनी ॥ २२ ॥
आगम्याभिमुखी पार्थ तस्थौ भगवदुन्मुखी ।
भृशं च ताडयमानापि न जगामाश्रमात्ततः ॥ २३ ॥

कोडोंकी मारसे कातर हुई और इधर उधरसे बांधकर बलसे हर कर ले जाई जाती हुई वसिष्ठकी कल्याणी नन्दिनी हम्बा शब्द करती हुई भगवान् ऋषि वसिष्ठके सामने आकर ऊंचे मुंह करके खडी हो गई और, हे पार्थ ! बहुत मारी जानेपर भी वह उस आश्रमसे नहीं गयी ॥ २२–२३ ॥

वसिष्ठ उवाच

गृणोमि ते रवं भद्रे विनदन्त्याः पुनः पुनः ।
बलाद्ध्रियसि मे नन्दि क्षमावान्ब्राह्मणो ह्यहम् ॥ २४ ॥

तब वसिष्ठ बोले– हे भद्रे नन्दिनि ! तुम बार बार जो चिल्लाती हो, वह मैं सुन रहा हूं, पर, हे भद्रे ! राजा विश्वामित्रके द्वारा तुम जबर्दस्ती हरी जा रही हो अर्थात् विश्वामित्र जबर्दस्ती तुम्हारा हरण कर रहे हैं । और मैं एक क्षमाशील ब्राह्मण हूं ॥ २४ ॥

गन्धर्व उवाच

सा तु तेषां बलान्नन्दी बलानां भरतर्षभ ।
विश्वामित्रभयोद्विग्ना वसिष्ठं समुपागमत् ॥ २५ ॥

गन्धर्वराज बोले– हे भरतश्रेष्ठ ! नन्दिनी विश्वामित्र और उनकी सेनाओं तथा उनकी जबर्दस्तीके भयसे घबराकर वसिष्ठके बहुत निकट आयी ॥ २५ ॥

गौरुवाच

पाषाणदण्डाभिहतां क्रन्दन्तीं माममनाथवत् ।
विश्वामित्रबलैर्घोरैर्भगवन्किमुपेक्षसे ॥ २६ ॥

और वह गाय बोली– हे भगवन् ! विश्वामित्रकी भयानक सेनाओंके पत्थरों और दण्डोंकी मारसे घायल होकर अनाथके समान चिल्लानेवाली मेरी आप क्यों उपेक्षा कर रहे हैं ? ॥२६॥

गन्धर्व उवाच

एवं तस्यां तदा पार्थ धर्षितायां महामुनिः ।
न चुक्षुभे न धैर्याच्च विचचाल धृतव्रतः ॥ २७ ॥

गन्धर्वराज बोले– हे पार्थ ! नन्दिनी कातर होकर इस प्रकार पीडित होने लगी, पर नियमशील महामुनि उस पर भी क्षुब्ध वा अधीर नहीं हुए और न अपने धैर्यसे ही विचलित हुए ॥ २७ ॥

वसिष्ठ उवाच

क्षत्रियाणां बलं तेजो ब्राह्मणानां क्षमा बलम् ।
क्षमा मां भजते यस्माद्गम्यतां यदि रोचते ॥ २८ ॥

वसिष्ठ बोले– क्षत्रियका बल तेज है और ब्राह्मणका बल क्षमा है, अतः क्षमाका गुण मुझमें है यदि तुम चाहो, तो जाओ ॥ २८ ॥

गौरुवाच

किं नु त्यक्तास्मि भगवन्यदेवं मां प्रभाषसे ।
अत्यक्ताहं त्वया ब्रह्मन्न शक्या नयितुं बलात् ॥ २९ ॥

नन्दिनी बोली– हे भगवन् ! क्या आपने मुझको त्याग दिया, जो मुझसे ऐसा कह रहे हैं ? हे ब्रह्मन् ! आपके द्वारा न त्यागे जाने पर मुझको कोई बलपूर्वक नहीं ले जा सकता ॥ २९ ॥

वसिष्ठ उवाच

न त्वां त्यजामि कल्याणि स्थीयतां यदि शक्यते ।
दृढेन दाम्ना बद्ध्वैष वत्सस्ते ह्रियते बलात् ॥ ३० ॥

वसिष्ठ बोले– हे कल्याणि ! मैं तुमको त्याग नहीं रहा हूं, यदि तुम रह सको तो रह जाओ, यह तुम्हारा बछडा कठिन रस्सीसे बांधकर जबर्दस्ती ले जाया जा रहा है ॥ ३० ॥

गन्धर्व उवाच

स्थीयतामिति तच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्य पयस्विनी ।
ऊर्ध्वाञ्चितशिरोग्रीवा प्रबभौ घोरदर्शना ॥ ३१ ॥

गन्धर्व बोले– दुधारु नन्दिनी तब वसिष्ठकी ' रह जाओ ' यह बात सुनते ही सिर और गला ऊपर उठा कर भयानक मूर्ति धरकर शोभित होने लगी ॥ ३१ ॥

क्रोधरक्तेक्षणा सा गौर्हम्भारवघनस्वना ।
विश्वामित्रस्य तत्सैन्यं व्यद्रावयत सर्वशः ॥ ३२ ॥

क्रोधके मारे नेत्र लालकर बार बार हम्भारवकी भयंकर ध्वनि करती हुई वह विश्वामित्रकी सेनाओंको चारों ओर खदेडने लगी ॥ ३२ ॥

कशाग्रदण्डाभिहता काल्यमाना ततस्ततः ।
क्रोधदीप्तेक्षणा क्रोधं भूय एव समादधे ॥ ३३ ॥

तब फिर सेनाओंके कोडोंकी मारसे घायल होकर और चारों ओरसे बांधी जाकर अति क्रोधसे जलती आंखोंवाली होकर और ज्यादा क्रोधित होगई ॥ ३३ ॥

आदित्य इव मध्याह्ने क्रोधदीप्तवपुर्बभौ ।
अङ्गारवर्षं मुञ्चन्ती मुहुर्वालधितो महत् ॥ ३४ ॥

क्रोधसे उसकी देह दुपहरके सूर्यकी भांति तेजस्वी हो गई और पूंछसे बार बार बडे बडे अङ्गारोंकी वृष्टि करने लगी ॥ ३४ ॥

अस्रृजत्पह्लवान्पुच्छाच्छकृतः शबराञ्शकान्
मूत्रतश्चासृजच्चापि यवनान्क्रोधमूर्छिता ॥ ३५ ॥
बादमें क्रोधसे मूर्छित हुई उस गायने पूंछसे पह्लवगणों, गोबरसे शबरों और शकोंको, मूत्रसे भी यवनोंको पैदा किया ॥ ३५ ॥

पुण्ड्रान्किरातान्द्रमिडान्सिंहलान्बर्बरांस्तथा ।
तथैव दरदान्म्लेच्छान्फेनतः सा ससर्ज ह ॥ ३६ ॥
फेनसे पौण्ड्र, किरात, द्रमिड, सिंहल, बर्बर, दरद और म्लेच्छोंको उस गायने पैदा किया ॥ ३६ ॥

तैर्विसृष्टैर्महत्सैन्यं नानाम्लेच्छगणैस्तदा ।
नानावरणसंछन्नैर्नानायुधधरैस्तथा ।
अवाकीर्यत संरब्धैर्विश्वामित्रस्य पश्यतः ॥ ३७ ॥
नाना वेष पहिने और नाना अस्त्र धरे हुई म्लेच्छोंकी सेनाने उसी क्षण उत्साहित होकर उस महान् सैन्यको विश्वामित्रके देखते इधर उधर भगा दिया ॥ ३७ ॥

एकैकश्च तदा योधः पंञ्चाभिः सप्तभिर्वृतः
अस्त्रवर्षेण महता काल्यमानं बलं ततः ।
प्रभग्नं सर्वतस्त्रस्तं विश्वामित्रस्य पश्यतः ॥ ३८ ॥
और उनमेंसे पांच पांच वा सात सातने विश्वामित्रके एक एक योद्धाको घेर लिया ! तथा विश्वामित्रके देखते ही देखते उनकी सेना लोगोंकी भयंकर अस्त्रवृष्टिसे घायल होकर और हर तरहसे भयभीत होकर इधर उधर भागने लगी ॥ ३८ ॥

न च प्राणैर्वियुज्यन्त केचित्ते सैनिकास्तदा ।
विश्वामित्रस्य संक्रुद्धैर्वासिष्ठैर्भरतर्षभ ॥ ३९ ॥
हे भरतश्रेष्ठ ! वसिष्ठकी सेनाने युद्धमें पूर्ण क्रोधित होने पर भी विश्वामित्रकी सेनामें किसीके प्राण नष्ट नहीं किये ॥ ३९ ॥

विश्वामित्रस्य सैन्यं तु काल्यमानं त्रियोजनम्
क्रोशमानं भयोद्विग्नं त्रातारं नाध्यगच्छत ॥ ४० ॥
वह सेना तीन योजन दूर तक भगायी जाकर घबराहटके मारे चिल्लाने लगी और ऐसा किसीको भी नहीं देखा, कि जो उनकी रक्षा करे ॥ ४० ॥

दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यं ब्रह्मतेजोभवं तदा ।
विश्वामित्रः क्षत्रभावान्निर्विण्णो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४१ ॥
तब विश्वामित्रने ब्रह्मतेजसे उत्पन्न उस बडी आश्चर्यलीलाको देख कर क्षत्रियधर्मसे विरक्त होकर यह कहा ॥ ४१ ॥

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम् ।
बलाबलं विनिश्चित्य तप एव परं बलम् ॥ ४२ ॥

क्षत्रिय-बलपर धिक्कार है, ब्रह्मतेजका बल ही बल है, बलाबलका निश्चय करना हो तो तपस्या ही उत्कृष्ट कही जायगी ॥ ४२ ॥

स राज्यं स्फीतमुत्सृज्य तां च दीप्तां नृपश्रियम् ।
भोगांश्च पृष्ठतः कृत्वा तपस्येव मनो दधे ॥ ४३ ॥

अनन्तर उन्होंने बडे भारी राज्य और प्रज्ज्वलित राज्यलक्ष्मीको छोड करके भोगसे विरक्त होकर तपमें मन लगाया ॥ ४३ ॥

स गत्वा तपसा सिद्धिं लोकान्विष्टभ्य तेजसा ।
तताप सर्वान्दीप्तौजा ब्राह्मणत्वमवाप च ।
अपिबच्च सुतं सोममिन्द्रेण सह कौशिकः ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥ ५५८० ॥

तपमें सिद्ध और प्रदीप्त तेजस्वी होकर अपने तेजसे तीनों लोकोंको प्रभावित कर सम्पूर्ण लोकोंको संतापित करके उन्होंने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया । और उन कुशिकनंदनने इन्द्रके साथ सोमरस पान भी किया ॥ ४४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें पैंसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६५ ॥ ५५८० ॥

: १६६ :

गन्धर्व उवाच

कल्माषपाद इत्यस्मिँल्लोके राजा बभूव ह ।
इक्ष्वाकुवंशजः पार्थ तेजसासदृशो भुवि ॥ १ ॥

गन्धर्वराज बोले- हे पार्थ ! इस लोकमें कल्माषपाद नामक अनुपम तेजोपूर्ण इक्ष्वाकुवंशी एक राजा हुए ॥ १ ॥

स कदाचिद्वनं राजा मृगयां निर्ययौ पुरात् ।
मृगान्विध्यन्वराहांश्च चचार रिपुमर्दनः ॥ २ ॥

एक समय वह मृगयाके निमित्त नगरसे वनको गये । शत्रुओंको मथनेवाले भूपाल मृग और वराहोंको मारते हुए उस बनमें घूमने लगे ॥ २ ॥

स तु राजा महात्मानं वासिष्ठमृषिसत्तमम्।
तृषार्तश्च क्षुधार्तश्च एकायनगतः पथि ॥ ३ ॥
अपश्यदजितः संख्ये मुनिं प्रतिमुखागतम्।
शक्तिं नाम महाभागं वसिष्ठकुलनन्दनम्।
ज्येष्ठं पुत्रशतात्पुत्रं वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ४ ॥

संग्रामोंमें अजेय, प्यास और भूखसे व्याकुल उस राजा कल्माषपादने एक ही आदमीके चलनेके योग्य रास्तेमें सामनेसे आते हुए वसिष्ठ कुलको बढानेवाले, ऋषियोंमें श्रेष्ठ, महात्मा, महात्मा वसिष्ठके सौ पुत्रोंमें सबसे बडे, वासिष्ठ महाभाग शक्तिको देखा ॥ ३–४ ॥

अपगच्छ पथोऽस्माकमित्येवं पार्थिवोऽब्रवीत्।
तथा ऋषिरुवाचैनं सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥ ५ ॥

राजा उनसे बोले– तुम मेरे पथसे हट जाओ। तब ऋषिने मीठी बातोंमें उनको समझाया ॥५॥

ऋषिस्तु नापचक्राम तस्मिन्धर्मपथे स्थितः।
नापि राजा मुनेर्मानात्क्रोधाच्चापि जगाम ह ॥ ६ ॥

ऋषि धर्मके मार्गमें स्थित होनेके कारण पथसे नहीं हटे, राजाने भी मान और क्रोधके वश मुनिको रास्ता नहीं दिया ॥ ६ ॥

अमुञ्चन्तं तु पन्थानं तमृषिं नृपसत्तमः।
जघान कशया मोहात्तदा राक्षसवन्मुनिम् ॥ ७ ॥

अनन्तर ऋषिके रास्ता न देने पर उस नृपश्रेष्ठ राजाने मोहसे राक्षसकी भांति मुनिके कोडे मारे ॥ ७ ॥

कशाप्रहाराभिहतस्ततः स मुनिसत्तमः।
तं शशाप नृपश्रेष्ठं वासिष्ठः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ८ ॥

तब मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठपुत्रने कोडोंकी चोटसे घायल और क्रोधसे अचेत होकर उन भूपालको शाप दिया ॥ ८ ॥

हंसि राक्षसवद्यस्माद्राजापसद तापसम्।
तस्मात्त्वमद्य प्रभृति पुरुषादो भविष्यसि ॥ ९ ॥

हे राजाओंमें अधम ! क्योंकि मुझ तपस्वीको तूने राक्षसके समान मारा, अतः तू आजसे पुरुषको खानेवाला राक्षस होगा ॥ ९ ॥

मनुष्यपिशिते सक्तश्चरिष्यसि महीमिमाम्।
गच्छ राजाधमेत्युक्तः शक्तिना वीर्यशक्तिना ॥ १० ॥

तू नरमांस पर आसक्त होकर इस पृथ्वी पर विचरण करेगा; रे क्षत्रियाधम ! अब जा। तपोबलयुक्त शक्तिने यह कहकर पथ छोड दिया ॥ १० ॥

ततो याज्यनिमित्तं तु विश्वामित्रवसिष्ठयोः ।
वैरमासीत्तदा तं तु विश्वामित्रोऽन्वपद्यत ॥ ११ ॥

इससे पहिले उस कल्माषपाद राजाकी याजन क्रियाके विषयमें विश्वामित्र और वसिष्ठमें आपसकी शत्रुता हो गयी थी; तब विश्वामित्र राजाके निकट गये ॥ ११ ॥

तयोर्विवदतोरेवं समीपमुपचक्रमे ।
ऋषिरुग्रतपाः पार्थ विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥ १२ ॥

हे पार्थ ! राजा और शक्ति उस प्रकार झगड रहे थे, कि ऐसे समय कठोर तपस्वी प्रतापी विश्वामित्र उनके समीप जा पहुंचे ॥ १२ ॥

ततः स बुबुधे पश्चात्तमृषिं नृपसत्तमः ।
ऋषेः पुत्रं वसिष्ठस्य वसिष्ठमिव तेजसा ॥ १३ ॥

तब बादमें नृपश्रेष्ठ कल्माषपादने वसिष्ठके समान तेजस्वी ऋषि शक्तिको वसिष्ठपुत्र जाना ॥ १३ ॥

अन्तर्धाय तदात्मानं विश्वामित्रोऽपि भारत ।
तावुभावुपचक्राम चिकीर्षन्नात्मनः प्रियम् ॥ १४ ॥

हे भारत ! तब विश्वामित्र अपनी प्रिय इच्छाको सिद्ध करनेके लिये अपना भेष बदल करके उन दोनोंके पास गये ॥ १४ ॥

स तु शप्तस्तदा तेन शक्तिना वै नृपोत्तमः ।
जगाम शरणं शक्तिं प्रसादयितुमर्हयन् ॥ १५ ॥

नृपोत्तम कल्माषपादने शक्तिके शापसे ग्रसित होकर शक्तिको प्रसन्न करनेके लिये उपासना करके उन विश्वामित्रकी शरण ली ॥ १५ ॥

तस्य भावं विदित्वा स नृपतेः कुरुनन्दन ।
विश्वामित्रस्ततो रक्ष आदिदेश नृपं प्रति ॥ १६ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! विश्वामित्रने उन राजाके भावको समझकर राक्षसको उन राजाके शरीरमें घुसनेकी आज्ञा दी ॥ १६ ॥

स शापात्तस्य विप्रर्षेर्विश्वामित्रस्य चाज्ञया ।
राक्षसः किंकरो नाम विवेश नृपतिं तदा ॥ १७ ॥

किङ्कर नामक राक्षस उन विप्रर्षिके शाप और विश्वामित्रकी आज्ञासे राजाके शरीरमें जा घुसा ॥ १७ ॥

रक्षसा तु गृहीतं तं विदित्वा स मुनिस्तदा ।
विश्वामित्रोऽप्यपक्रामत्तस्माद्देशादरिन्दम ॥ १८ ॥

हे शत्रुदमन ! तब मुनि विश्वामित्र भी राजाको राक्षससे प्रभावित जानकर वहांसे चले गये॥ १८॥

ततः स नृपतिर्विद्वान्रक्षन्नात्मानमात्मना ।
बलवत्पीडयमानोऽपि रक्षसान्तर्गतेन ह ॥ १९ ॥

तब वह राजा शरीरमें स्थित उस राक्षससे अपनी रक्षा करते हुए भी उससे अत्यन्त पीडित होकरके कुछ समझ नहीं सके ॥ १९ ॥

ददर्श तं द्विजः कश्चिद्राजानं प्रस्थितं पुनः ।
ययाचे क्षुधितश्चैनं समांसं भोजनं तदा ॥ २० ॥

अनन्तर वह वापस लौटे जा रहे थे, कि ऐसे समयमें भूखे एक ब्राह्मणने उनको देखकर उनसे मांसयुक्त भोजनकी सामग्री मांगी ॥ २० ॥

तमुवाचाथ राजर्षिर्द्विजं मित्रसहस्तदा ।
आस्स्व ब्रह्मंस्त्वमत्रैव मुहूर्तमिति सान्त्वयन् ॥ २१ ॥

मित्रका पालन करनेवाले राजर्षि उस ब्राह्मणको समझाते हुए बोले— हे ब्रह्मन् ! मुहूर्त भर यहां ठहर कर मेरे लौटनेकी प्रतीक्षा करो ॥ २१ ॥

निवृत्तः प्रतिदास्यामि भोजनं ते यथेप्सितम् ।
इत्युक्त्वा प्रययौ राजा तस्थौ च द्विजसत्तमः ॥ २२ ॥

मैं लौटकर आपकी इच्छानुरूप भोजन दे दूंगा । राजा यह कहकर चले गये और ब्राह्मण राजाकी प्रतीक्षामें वहीं रुका रहा ॥ २२ ॥

अन्तर्गतं तु तद्राज्ञस्तदा ब्राह्मणभाषितम् ।
सोऽन्तःपुरं प्रविश्याथ संविवेश नराधिपः ॥ २३ ॥

हे पार्थ ! महानुभाव महाराज ब्राह्मणको दिया हुआ वचन भूल गए और अन्तःपुरमें जाकर वे सो गए ॥ २३ ॥

ततोऽर्धरात्र उत्थाय सूदमानाय्य सत्वरम् ।
उवाच राजा संस्मृत्य ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुतम् ॥ २४ ॥

बादमें वह आधी रातको उठकर ब्राह्मणसे किये गए वायदेको स्मरण कर उसी क्षण रसोइयेको बुलवाकर बोले ॥ २४ ॥

गच्छामुष्मिन्नसौ देशे ब्राह्मणो मां प्रतीक्षते ।
अन्नार्थी त्वं तमन्नेन समांसेनोपपादय ॥ २५ ॥

अमुक प्रदेशमें जाओ, एक ब्राह्मण भोजनकी इच्छासे मेरी बाट देख रहा होगा, तुम वहां जाकर उसको मांस सहित अन्न दे आओ ॥ २५ ॥

एवमुक्तस्तदा सूदः सोऽनासाद्यामिषं क्वचित् ।
निवेदयामास तदा तस्मै राज्ञे व्यथान्वितः ॥ २६ ॥

रसोइयेने राजाकी आज्ञाको सुनकर कहीं मांस न पाकरके पीडितचित्त होके उन राजासे वह बात कह दी ॥ २६ ॥

राजा तु रक्षसाविष्टः सूदमाह गतव्यथः ।
अप्येनं नरमांसेन भोजयेति पुनः पुनः ॥ २७ ॥

राक्षसभावसे प्रभावित राजाने बिना सोच समझके बार बार कहा, कि तुम नरमांस लाकर उस ब्राह्मणको खिलाओ ॥ २७ ॥

तथेत्युक्त्वा ततः सूदः संस्थानं वध्यघातिनाम् ।
गत्वा जहार त्वरितो नरमांसमपेतभीः ॥ २८ ॥

रसोइया "तथास्तु" कहकर वेगसे बिना भयके वध्यघातियोंके घरमें जाकर नरमांस ले आया ॥ २८ ॥

स तत्संस्कृत्य विधिवदन्नोपहितमाशु वै ।
तस्मै प्रादाद्ब्राह्मणाय क्षुधिताय तपस्विने ॥ २९ ॥

और अन्नके साथ उस नरमांसको विधिपूर्वक पका कर बिना विलंब ले जाकर उन भूखे तपस्वी ब्राह्मणको दे दिया ॥ २९ ॥

स सिद्धचक्षुषा दृष्ट्वा तदन्नं द्विजसत्तमः ।
अभोज्यमिदमित्याह क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ ३० ॥

उस ब्राह्मणश्रेष्ठने सिद्ध नेत्रोंसे उस अन्नको देखकर और क्रोधसे भरी हुई आंखोंवाले होकर कहा, कि यह अन्न खानेके योग्य नहीं है ॥ ३० ॥

यस्मादभोज्यमन्नं मे ददाति स नराधिपः ।
तस्मात्तस्यैव मूढस्य भविष्यत्यत्र लोलुपा ॥ ३१ ॥

जिस कारण राजाने मुझको भोजनके अयोग्य अन्न दिया है, अतः उस मूर्खमें भी नरमांस खानेकी लालसा उत्पन्न होगी ॥ ३१ ॥

सक्तो मानुषमांसेषु यथोक्तः शक्तिना पुरा ।
उद्वेजनीयो भूतानां चरिष्यति महीमिमाम् ॥ ३२ ॥

पहिले ऋषि शक्तिने जैसा कहा था, वैसा ही होगा । यह राजा नरमांसपर आसक्त होकर जीवोंमें घबराहट फैलाता हुआ इस पृथ्वीपर घूमा करेगा ॥ ३२ ॥

द्विरनुव्याहृते राज्ञः स शापो बलवानभूत् ।
रक्षोबलसमाविष्टो विसंज्ञश्चाभवत्तदा ॥ ३३ ॥

इस प्रकार राजा पर दूसरी बार शाप लगनेसे वह शाप और बलयुक्त हो गया; उस कारण राजाने शरीरमें घुसे हुए राक्षसके बलसे प्रभावित होकर अपनी चेतना खो दी ॥ ३३ ॥

ततः स नृपतिश्रेष्ठो रक्षसोपहतेन्द्रियः।
उवाच शक्तिं तं दृष्ट्वा नचिरादिव भारत ॥ ३४ ॥

हे भारत ! अनन्तर राक्षसके द्वारा इन्द्रियोंके हर लिए जानेपर नृपश्रेष्ठ कुछ कालके बाद शक्तिको देखकर बोले ॥ ३४ ॥

यस्मादसदृशः शापः प्रयुक्तोऽयं त्वया मयि।
तस्मात्त्वत्तः प्रवर्तिष्ये खादितुं मानुषानहम् ॥ ३५ ॥

जिस कारण तुम्हारे द्वारा मुझपर अनुचित शापका प्रयोग हुआ है, अतः मैं पहिले तुम्हींसे आरम्भ कर मनुष्य खानेमें प्रवृत्त होऊंगा ॥ ३५ ॥

एवमुक्त्वा ततः सद्यस्तं प्राणैर्विप्रयुज्य सः।
शक्तिनं भक्षयामास व्याघ्रः पशुमिवेप्सितम् ॥ ३६ ॥

राजा यह कहकर उसी क्षण उनके प्राण नष्ट कर शक्तिको इस प्रकार खा गये, कि जैसे व्याघ्र अपने अभिलषित पशुको खा लेता है ॥ ३६ ॥

शक्तिनं तु हतं दृष्ट्वा विश्वामित्रस्ततः पुनः।
वसिष्ठस्यैव पुत्रेषु तद्रक्षः संदिदेश ह ॥ ३७ ॥

विश्वामित्र वसिष्ठ-पुत्र शक्तिको मरा हुआ देखकर बार बार राक्षसको वसिष्ठ हीके पुत्रोंको खानेके लिए कहने लगे ॥ ३७ ॥

स ताञ्शतावरान्पुत्रान्वसिष्ठस्य महात्मनः।
भक्षयामास संक्रुद्धः सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ३८ ॥

वह राक्षसयुक्त राजा क्रोधित होकर महात्मा वसिष्ठके सौ पुत्रोंको क्रमसे इस प्रकार खा गये, कि जैसे सिंह छोटे मृगोंको खा जाता है ॥ ३८ ॥

वसिष्ठो घातिताञ्श्रुत्वा विश्वामित्रेण तान्सुतान्।
धारयामास तं शोकं महाद्रिरिव मेदिनीम् ॥ ३९ ॥

वसिष्ठने विश्वामित्रके द्वारा उन पुत्रोंके मारे डाले जानेकी बात सुनकर भी पुत्र-वियोगके कठोर शोकको उसी प्रकारसे सहन किया, कि जैसे महान् पर्वतका भार धरती सहन करती है ॥ ३९ ॥

चक्रे चात्मविनाशाय बुद्धिं स मुनिसत्तमः।
न त्वेव कुशिकोच्छेदं मेने मतिमतां वरः ॥ ४० ॥

उन महामति मुनिश्रेष्ठने आत्मघात करनेका निश्चय किया, पर तो भी कौशिक वंशके उखाडनेका विचार तक भी नहीं किया ॥ ४० ॥

स मेरुकूटादात्मानं मुमोच भगवानृषिः ।
शिरस्तस्य शिलायां च तूलराशाविवापतत् ॥ ४१ ॥

उन भगवान् ऋषिने सुमेरुकी चोटी परसे अपनेको गिराया, पर उनका सिर उस पहाडके पत्थर पर रुईके ढेरकी भांति ही गिरा ॥ ४१ ॥

न ममार च पातेन स यदा तेन पाण्डव ।
तदाग्निमिद्ध्वा भगवान्संविवेश महावने ॥ ४२ ॥

हे पाण्डव ! वह भगवान् महर्षि पहाडकी चोटी परसे गिरकर भी जब न मरे तो महावनमें आग जला कर उसमें जा घुसे ॥ ४२ ॥

तं तदा सुसमिद्धोऽपि न ददाह हुताशनः ।
दीप्यमानोऽप्यमित्रघ्न शीतोऽग्निरभवत्ततः ॥ ४३ ॥

परन्तु तब जलती हुई आगने तेजसे जलने पर भी उनको नहीं जलाया । हे शत्रुनाशी ! उनके लिए वह आग ठण्डी हो गई ॥ ४३ ॥

स समुद्रमभिप्रेत्य शोकाविष्टो महामुनिः ।
बद्ध्वा कण्ठे शिलां गुर्वीं निपपात तदम्भसि ॥ ४४ ॥

तदनन्तर पुत्रशोकसे विकल महामुनि समुद्रके पास जाकर अपने गलेमें बडा भारी पत्थर बांध करके उसके जलमें जा गिरे ॥ ४४ ॥

स समुद्रोर्मिवेगेन स्थले न्यस्तो महामुनिः
जगाम स ततः खिन्नः पुनरेवाश्रमं प्रति ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥ ५६२५ ॥

उसपर भी न डूब कर समुद्रकी लहरके द्वारा वे तट पर उठाकर रख दिए गये । तब वह दुःखी चित्तसे फिर आश्रमको लौट गये ॥ ४५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ छियासठवां अध्याय समाप्त ॥ १६६ ॥ ५६२५ ॥

: १६७ :

गन्धर्व उवाच

ततो दृष्ट्वाश्रमपदं रहितं तैः सुतैर्मुनिः ।
निर्जगाम सुदुःखार्तः पुनरेवाश्रमात्ततः ॥ १ ॥

गन्धर्व बोले– इसके बाद भगवान् मुनि अपने आश्रमको उन पुत्रोंसे खाली देख कर दुःखसे व्याकुल होकर फिर आश्रमसे निकल गए ॥ १ ॥

सोऽपश्यत्सरितं पूर्णां प्रावृट्काले नवाम्भसा ।
वृक्षान्बहुविधान्पार्थ वहन्तीं तीरजान्बहून् ॥ २ ॥

हे पार्थ ! उन ऋषिने वर्षाकालमें नये जलसे भरी हुई एक बहती हुई नदीको तट परके नाना प्रकारके बहुतसे वृक्षोंको बहाते हुए देखा ॥ २ ॥

अथ चिन्तां समापेदे पुनः पौरवनन्दन ।
अम्भस्यस्या निमज्जेयमिति दुःखसमन्वितः ॥ ३ ॥

और, हे पौरवनन्दन ! उसे देखकर अत्यन्त दुःखी वे फिर चिन्तित हो गए और उन्होंने विचार किया कि मैं इस जलमें डूबकर प्राण दे दूं ॥ ३ ॥

ततः पाशैस्तदात्मानं गाढं बद्ध्वा महामुनिः ।
तस्या जले महानद्या निममज्ज सुदुःखितः ॥ ४ ॥

और तब दुःखी होकर उन महान् मुनिने रस्सीसे अपनेको दृढरूपसे बांधकर उस बडी नदीके जलमें डुबा दिया ॥ ४ ॥

अथ छित्त्वा नदी पाशांस्तस्यारिबलमर्दन ।
समस्थं तमृषिं कृत्वा विपाशं समवासृजत् ॥ ५ ॥

हे शत्रुसेनाको मथनेहारे ! तब उस नदीने उनके बंधनोंको काटकर उन ऋषिको बंधनरहित करके स्थल पर लाकर छोड दिया ॥ ५ ॥

उत्ततार ततः पाशैर्विमुक्तः स महानृषिः ।
विपाशेति च नामास्या नद्याश्चक्रे महानृषिः ॥ ६ ॥

इससे बन्धनसे मुक्त होकर वे महान् ऋषि उस नदीसे पार हो गए और उठ कर उस नदीका नाम उन्होंने (पाशोंसे विमुक्त होनेके कारण) " विपाशा " रख दिया ॥ ६ ॥

शोके बुद्धिं ततश्चक्रे न चैकत्र व्यतिष्ठत ।
सोऽगच्छत्पर्वतांश्चैव सरितश्च सरांसि च ॥ ७ ॥

अनन्तर वह शोकसे विकल बुद्धिवाले होकर एक स्थानपर रह नहीं सके; और वे पर्वत, नदी और तालाबमें घूमने फिरने लगे ॥ ७ ॥

ततः स पुनरेवार्षिर्नदीं हैमवतीं तदा ।
चण्डग्राहवतीं दृष्ट्वा तस्याः स्रोतस्यवापतत् ॥ ८ ॥

एक बार वे ऋषि हैमवती नामकी नदीको हिंसक जलजन्तुओंसे भरी हुई और भयंकर देख-कर उसके सोतेमें कूद पडे ॥ ८ ॥

सा तमग्निसमं विप्रमनुचिन्त्य सरिद्वरा ।
शतधा विद्रुता यस्माच्छतद्रुरिति विश्रुता ॥ ९ ॥

पर श्रेष्ठ नदी विप्रवरको अग्निके समान तेजस्वी जान कर सैंकडों भागोंमें होकर द्रुतवेगसे बह चली, इसलिये तभीसे उस नदीका नाम (शत अर्थात् सैंकडों धाराओंमें द्रु अर्थात् बहनेके कारण) " शतद्रू " प्रसिद्ध हुआ ॥ ९ ॥

ततः स्थलगतं दृष्ट्वा तत्राप्यात्मानमात्मना ।
मर्तुं न शक्यमित्युक्त्वा पुनरेवाश्रमं ययौ ॥ १० ॥

महर्षि उस भयानक नदीमें गिरनेपर भी अपनेको स्थल पर ही देखकर यह समझ करके कि " इच्छानुसार प्राणत्याग करना भी संभव नहीं है " आश्रमकी ओर चल पडे ॥१०॥

वध्वाऽदृश्यन्त्यानुगत आश्रमाभिमुखो व्रजन् ।
अथ शुश्राव संगत्या वेदाध्ययननिःस्वनम् ।
पृष्ठतः परिपूर्णार्थैः षड्भिरङ्गैरलंकृतम् ॥ ११ ॥

अपनी " अदृश्यन्ती " नामक पुत्रवधूसे अनुगत होकर आश्रमकी तरफ जाते हुए ऋषिने निकट होनेके कारण पीछेसे षडङ्गोंसे अलंकृत पूर्णार्थसे युक्त वेदपठनकी ध्वनि सुनि ॥११॥

अनुव्रजति को न्वेष मामित्येव च सोऽब्रवीत् ।
अहं त्वदृश्यती नाम्ना तं स्नुषा प्रत्यभाषत ।
शक्तेर्भार्या महाभाग तपोयुक्ता तपस्विनी ॥ १२ ॥

और उन्होंने पूछा कि मेरे पीछे यह कौन आ रहा है । तब उनकी पुत्रवधू उनसे बोली– हे महाभाग ! मैं शक्तिकी तपोयुक्ता तपस्विनी स्त्री अदृश्यन्ती आपकी पुत्रवधू हूं ॥ १२ ॥

वसिष्ठ उवाच

पुत्रि कस्यैष साङ्गस्य वेदस्याध्ययनस्वनः ।
पुरा साङ्गस्य वेदस्य शक्तेरिव मया श्रुतः ॥ १३ ॥

वसिष्ठ बोले– पुत्री ! मैंने पहिले शक्तिके मुखसे जिस प्रकार साङ्गवेदकी ध्वनि सुनी थी , अब किसके मुखसे वेद पठनकी वैसी ही ध्वनि मैं सुन रहा हूँ ॥ १३ ॥

अदृश्यन्त्युवाच

अयं कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्य ते।
समा द्वादश तस्येह वेदानभ्यसतो मुने ॥ १४ ॥

अदृश्यन्ती बोली– हे मुने! तुम्हारे पुत्र शक्तिके वीर्यसे मेरे गर्भमें एक सन्तान है; इस प्रकार वेदोंका अध्ययन करते हुए उसके बारह बरस बीत गए हैं (आपने उसीसे वेदकी ध्वनि सुनी है) ॥ १४ ॥

गन्धर्व उवाच

एवमुक्तस्ततो हृष्टो वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः।
अस्ति संतानमित्युक्त्वा मृत्योः पार्थ न्यवर्तत ॥ १५ ॥

गन्धर्व बोले– हे पार्थ! श्रेष्ठ भाग्यवान् ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ अदृश्यन्तीकी उस बातको सुन-कर प्रसन्न होकर यह समझ कर, कि "मेरा वंश शेष है," वे मृत्युकी इच्छासे निवृत्त हुए ॥ १५ ॥

ततः प्रतिनिवृत्तः स तया वध्वा सहानघ।
कल्माषपादमासीनं ददर्श विजने वने ॥ १६ ॥

हे अनघ! वह उस पुत्रवधूके साथ लौट रहे थे, कि उन्होंने निर्जन जंगलमें बैठे हुए कल्माषपादको देखा ॥ १६ ॥

स तु दृष्ट्वैव तं राजा क्रुद्ध उत्थाय भारत।
आविष्टो रक्षसोग्रेण इयेषात्तुं ततः स्म तम् ॥ १७ ॥

हे भारत! उस भयंकर राक्षससे युक्त राजा कल्माषपादने मुनिको देखकर उसी क्षण क्रोधसे उठ करके खा जाना चाहा ॥ १७ ॥

अदृश्यन्ती तु तं दृष्ट्वा क्रूरकर्माणमग्रतः।
भयसंविग्नया वाचा वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥ १८ ॥

अदृश्यन्ती सामने उस कुटिल कर्मवालेको देखकर भयसे व्याकुल वाणीसे वसिष्ठसे यह बोली ॥ १८ ॥

असौ मृत्युरिवोग्रेण दण्डेन भगवन्नितः।
प्रगृहीतेन काष्ठेन राक्षसोऽभ्येति भीषणः ॥ १९ ॥

हे भगवन्! भयंकर दण्डको धारण किए साक्षात् यमराजके समान वह भीषण राक्षस लकड़ी उठाकर इधर ही आ रहा है ॥ १९ ॥

तं निवारयितुं शक्तो नान्योऽस्ति भुवि कश्चन ।
त्वदृतेऽद्य महाभाग सर्ववेदविदां वर ॥ २० ॥

हे सब वेदके विद्वानोंमें श्रेष्ठतम महाभाग ! पृथ्वी भरमें आपके बिना कोई भी दूसरा इसको रोकनेमें समर्थ नहीं है ॥ २० ॥

त्राहि मां भगवन्पापादस्माद्दारुणदर्शनात् ।
रक्षो अत्तुमिह ह्यावां नूनमेतच्चिकीर्षति ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥ ५६४६ ॥

हे भगवन् ! इस कठोर भयावने आकारके पापात्मासे मेरी रक्षा कीजिए ! मुझे निश्चय जान पडता है, कि वह राक्षस हम दोनोंको खा जाना चाहता है ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ सडसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६७ ॥ ५६४६ ॥

: १६८ :

वसिष्ठ उवाच

मा भैः पुत्रि न भेतव्यं राक्षसस्ते कथंचन ।
नैतद्रक्षो भयं यस्मात्पश्यसि त्वमुपस्थितम् ॥ १ ॥

वसिष्ठ बोले– बेटी ! भय मत करो, राक्षससे तुम्हें कोई भय नहीं है। जिसके कारण तुम इस समय भय उपस्थित हुआ हुआ देख रही हो, वह राक्षस नहीं है ॥ १ ॥

राजा कल्माषपादोऽयं वीर्यवान्प्रथितो भुवि ।
स एषोऽस्मिन्वनोद्देशे निवसत्यतिभीषणः ॥ २ ॥

ये वीर्यवान् कल्माषपाद नामक भूमण्डलमें प्रसिद्ध राजा हैं, वही इस वनमें अति भयंकर रूप धारण करके राक्षसके स्वरूपमें वास कर रहे हैं ॥ २ ॥

गन्धर्व उवाच

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य वसिष्ठो भगवानृषिः ।
वारयामास तेजस्वी हुंकारेणैव भारत ॥ ३ ॥

गन्धर्व बोले– हे भारत ! तेजस्वी भगवान् ऋषि वसिष्ठने उनको आते देखकर "हुं" कारसे ही रोक दिया ॥ ३ ॥

×

मन्त्रपूतेन च पुनः स तमभ्युक्ष्य वारिणा ।
मोक्षयामास वै घोराद्राक्षसाद्राजसत्तमम् ॥ ४ ॥

और मन्त्रसे पवित्र किये हुए जलसे उनको नहला कर उस घोर राक्षस रूपसे उस श्रेष्ठ राजाको मुक्त किया ॥ ४ ॥

स हि द्वादश वर्षाणि वसिष्ठस्यैव तेजसा ।
ग्रस्त आसीद्ग्रहेणेव पर्वकाले दिवाकरः ॥ ५ ॥

वह राजा बारह वर्षतक वसिष्ठपुत्र शक्तिके तेजसे उसी प्रकार प्रभावित रहे, कि जिस प्रकार पर्वकालमें सूर्य राहुसे प्रभावित होता है ॥ ५ ॥

रक्षसा विप्रमुक्तोऽथ स नृपस्तद्वनं महत् ।
तेजसा रञ्जयामास सन्ध्याभ्रमिव भास्करः ॥ ६ ॥

अब राक्षससे मुक्त होकर उस राजाने अपने तेजसे उस बडे वनको उसी प्रकार सुशोभित किया, कि जैसे सूर्यदेव सन्ध्याकालके बादलको रंग देते हैं ॥ ६ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञामभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
उवाच नृपतिः काले वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ ७ ॥

तब यथासमय राजा ज्ञान प्राप्त कर प्रणामपूर्वक दोनों हाथ जोडकर ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठसे बोले ॥ ७ ॥

सौदासोऽहं महाभाग याज्यस्ते द्विजसत्तम ।
अस्मिन्काले यदिष्टं ते ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ ८ ॥

हे महाभाग ! मैं सुदासराजाका पुत्र आपका यजमान हूं ! हे द्विजश्रेष्ठ ! कहें इस समय आपकी क्या इच्छा है, मैं आपके लिए क्या करूं ॥ ८ ॥

वसिष्ठ उवाच

वृत्तमेतद्यथाकालं गच्छ राज्यं प्रशाधि तत् ।
ब्राह्मणांश्च मनुष्येन्द्र मावमंस्थाः कदाचन ॥ ९ ॥

वसिष्ठ बोले– हे मानवेन्द्र ! मेरी जो इच्छा थी, वह कालके क्रमसे पूरी हो गयी है, अब तुम राजधानीमें जाकर राज्यशासन करो । पर फिर कभी ब्राह्मणका अनादर मत करना ! ॥ ९ ॥

राजोवाच

नावमंस्याम्यहं ब्रह्मन्कदाचिद्ब्राह्मणर्षभान् ।
त्वन्निदेशे स्थितः शश्वत्पूजयिष्याम्यहं द्विजान् ॥ १० ॥

राजा बोले— हे ब्रह्मन् ! मैं अब कभी भी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका अनादर नहीं करूंगा, आपके आज्ञाके आधीन रहकर मैं ब्राह्मणोंकी हमेशा पूजा किया करूंगा ॥ १० ॥

इक्ष्वाकूणां तु येनाहमनृणः स्यां द्विजोत्तम ।
तत्त्वत्तः प्राप्तुमिच्छामि वरं वेदविदां वर ॥ ११ ॥

हे सर्ववेदज्ञोंमें श्रेष्ठ द्विजोत्तम ! मैं आपसे वह वस्तु पानेकी इच्छा करता हूं, कि जिससे मैं इक्ष्वाकुवंशके ऋणसे छुटकारा पा जाऊं ॥ ११ ॥

अपत्यायेप्सितां मह्यं महिषीं गन्तुमर्हसि ।
शीलरूपगुणोपेतामिक्ष्वाकुकुलवृद्धये ॥ १२ ॥

हे श्रेष्ठ ! आप इक्ष्वाकुवंशके बढानेके लिए शील–रूप और गुणसे युक्त पुत्र पानेकी इच्छा करनेवाले मेरे लिए आप मेरी रानीसे मिल सकते हैं ॥ १२ ॥

गन्धर्व उवाच

ददानीत्येव तं तत्र राजानं प्रत्युवाच ह ।
वसिष्ठः परमेष्वासं सत्यसंधो द्विजोत्तमः ॥ १३ ॥

गन्धर्वराज बोले— सत्यशील द्विजोत्तम वसिष्ठने यह कहकर कि "पुत्र दूंगा" उन बडे धनुर्धारी राजासे प्रतिज्ञा की ॥ १३ ॥

ततः प्रतिययौ काले वसिष्ठः सहितोऽनघ ।
ख्यातं पुरवरं लोकेष्वयोध्यां मनुजेश्वरः ॥ १४ ॥

हे निष्पाप ! तदनन्तर वसिष्ठ यथा समय उन राजाके साथ अयोध्या नामकी प्रसिद्ध नगरीको गये ॥ १४ ॥

तं प्रजाः प्रतिमोदन्त्यः सर्वाः प्रत्युद्ययुस्तदा ।
विपाप्मानं महात्मानं दिवौकस इवेश्वरम् ॥ १५ ॥

प्रसन्न होती हुई उन सब प्रजाओंने पापमुक्त महात्मा राजाको आते देखकर इस प्रकार उनका स्वागत किया, कि जैसे देवगण देवराजको आते देखकर प्रमुदित मनसे उनका स्वागत करते हैं ॥ १५ ॥

अचिरात्स मनुष्येन्द्रो नगरीं पुण्यकर्मणाम् ।
विवेश सहितस्तेन वसिष्ठेन महात्मना ॥ १६ ॥

नरेन्द्रने बहुत जल्दी ही महात्मा वसिष्ठके साथ पुण्य कर्म करनेवालोंसे भरी हुई उस नगरीमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥

दहशुस्तं ततो राजन्नयोध्यावासिनो जनाः ।
पुष्येण सहितं काले दिवाकरमिवोदितम् ॥ १७ ॥

हे राजन् ! तब अयोध्यावासी जनोंने वसिष्ठके साथ उन महीपालको पुष्यके साथ उदय हुए हुए सूर्यकी भांति देखा ॥ १७ ॥

स हि तां पूरयामास लक्ष्म्या लक्ष्मीवतां वरः ।
अयोध्यां व्योम शीतांशुः शरत्काल इवोदितः ॥ १८ ॥

उन लक्ष्मीवानोंमें सर्वश्रेष्ठ भूपतिने अपनी शोभासे अयोध्या नगरीको इस प्रकार भर दिया, कि जैसे शरत्कालमें उगा हुआ चन्द्रमा अपने प्रकाशसे आकाशमण्डलको भर देता है ॥ १८ ॥

संसिक्तमृष्टपन्थानं पताकोच्छ्रयभूषितम् ।
मनः प्रह्लादयामास तस्य तत्पुरमुत्तमम् ॥ १९ ॥

उस समय राजमार्ग जलसे भिगोया गया था और भली प्रकार साफ किया गया था और नगरमें स्थान स्थानपर फहराती हुई ध्वजायें और पताकायें सुशोभित हो रहीं थीं, अतः इस प्रकारसे सुशोभित उस नगरने उस राजाके मनको प्रसन्न कर दिया ॥ १९ ॥

तुष्टपुष्टजनाकीर्णा सा पुरी कुरुनन्दन ।
अशोभत तदा तेन शक्रेणेवामरावती ॥ २० ॥

हे कुरुनन्दन ! तब तुष्ट और पुष्ट जनोंसे भरी हुई वह नगरी राजा कल्माषपादसे उसी प्रकार शोभा पाने लगी, कि जिस प्रकार अमरावती सुशोभित होती है ॥ २० ॥

ततः प्रविष्टे राजेन्द्र तस्मिन्राजनि तां पुरीम् ।
तस्य राज्ञोऽऽज्ञया देवी वसिष्ठमुपचक्रमे ॥ २१ ॥

तदनन्तर सभी राजाओंमें श्रेष्ठ उस राजा कल्मापपादके उस अपूर्व पुरीमें प्रवेश करने पर उन राजाकी आज्ञासे देवी राजरानी वसिष्ठके पास पहुंची ॥ २१ ॥

ऋतावथ महर्षिः स संबभूव तया सह ।
देव्या दिव्येन विधिना वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः ॥ २२ ॥

महर्षिश्रेष्ठ महाभाग वसिष्ठने दिव्य विधिके अनुसार ऋतुकालमें उस रानीसे समागम किया ॥ २२ ॥

अथ तस्यां समुत्पन्ने गर्भे स मुनिसत्तमः ।
राज्ञाभिवादितस्तेन जगाम पुनराश्रमम् ॥ २३ ॥

तब राजरानीके गर्भ स्थिर होने पर वह मुनिश्रेष्ठ राजाके द्वारा पूजित होकर आश्रममें लौट आये ॥ २३ ॥

दीर्घकालधृतं गर्भं सुषाव न तु तं यदा ।
साथ देव्यश्मना कुक्षिं निर्बिभेद तदा स्वकम् ॥ २४ ॥

बादमें बहुत दिनतक गर्भको धारण करने पर भी रानीने जब सन्तान उत्पन्न नहीं की तब उस राजरानीने अश्म अर्थात् पत्थरकी चोटसे अपनी कोखको फाड डाला ॥ २४ ॥

द्वादशेऽथ ततो वर्षे स जज्ञे मनुजर्षभ ।
अश्मको नाम राजर्षिः पोतनं यो न्यवेशयत् ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥ ५६७१ ॥

इसलिये बारह वर्षतक गर्भमें स्थित उन पुरुषश्रेष्ठने अश्मक नामक राजर्षि होकर जन्म लिया, उन्होंने पौतन नामक नगरको बसाया ॥ २५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ अडसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६८ ॥ ५६७१ ॥

: १६९ :

गन्धर्व उवाच

आश्रमस्था ततः पुत्रमदृश्यन्ती व्यजायत ।
शक्तेः कुलकरं राजन्द्वितीयमिव शक्तिनम् ॥ १ ॥

गन्धर्वराज बोले— हे राजन् ! इधर आश्रममें स्थित अदृश्यन्तीने दूसरे शक्तिके समान शक्तिका वंश बढानेवाला पुत्र प्रसूत किया ॥ १ ॥

जातकर्मादिकास्तस्य क्रियाः स मुनिपुंगवः ।
पौत्रस्य भरतश्रेष्ठ चकार भगवान्स्वयम् ॥ २ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! मुनिश्रेष्ठ उन भगवान् वसिष्ठने स्वयं उस पोतेकी जातकर्मादि क्रियायें की ॥२॥

परासुश्च यतस्तेन वसिष्ठः स्थापितस्तदा ।
गर्भस्थेन ततो लोके पराशर इति स्मृतः ॥ ३ ॥

वह पुत्र जब गर्भमें था, तब वसिष्ठने परासु होने अर्थात् जीवन त्याग देनेका निश्चय किया था, अतः वह पराशर नामसे भूमण्डलमें प्रसिद्ध हुए ॥ ३ ॥

अमन्यत स धर्मात्मा वसिष्ठं पितरं तदा ।
जन्मप्रभृति तस्मिंश्च पितरीव व्यवर्तत ॥ ४ ॥

धर्मात्मा पराशर जन्मसे ही मुनि वसिष्ठको पिता जानकर उनके साथ पिताके सदृश व्यवहार किया करते थे ॥ ४ ॥

स तात इति विप्रर्षिं वसिष्ठं प्रत्यभाषत।
मातुः समक्षं कौन्तेय अदृश्यन्त्याः परंतप ॥ ५ ॥

हे शत्रुको मथनेहारे कुन्तीनन्दन अर्जुन! एकदिन उन्होंने माता अदृश्यन्तीके सामने विप्रर्षि वसिष्ठको पिता कह कर पुकारा ॥ ५ ॥

तातेति परिपूर्णार्थं तस्य तन्मधुरं वचः।
अदृश्यन्त्यश्रुपूर्णाक्षी शृण्वन्ती तमुवाच ह ॥ ६ ॥

अदृश्यन्ती उसकी मीठी बोलीसे स्पष्टरूपसे पिता कहते सुन करके आंखोंमें आंसू भरकर बोली ॥ ६ ॥

मा तात तात तातेति न ते तातो महामुनिः।
रक्षसा भक्षितस्तात तव तातो वनान्तरे ॥ ७ ॥

हे तात! तुम इनको पिता कह कर मत पुकारो, ये महामुनि तुम्हारे पिता नहीं हैं। हे पुत्र! वनमें तुम्हारे पिता एक राक्षस द्वारा खा लिए गए हैं ॥ ७ ॥

मन्यसे यं तु तातेति नैष तातस्तवानघ।
आर्यस्त्वेष पिता तस्य पितुस्तव महात्मनः ॥ ८ ॥

हे अनघ! तुम जिनको पिता समझ रहे हो, वह तुम्हारे पिता नहीं हैं, ये आर्य तो तुम्हारे उस महात्मा पिताके पिता हैं ॥ ८ ॥

स एवमुक्तो दुःखार्तः सत्यवागृषिसत्तमः।
सर्वलोकविनाशाय मतिं चक्रे महामनाः ॥ ९ ॥

सत्यवादी, मनस्वी ऋषिश्रेष्ठ पराशरने यह बात सुन करके दुःखी होकर सब लोकोंको नष्ट करनेका निश्चय किया ॥ ९ ॥

तं तथा निश्चितात्मानं महात्मानं महातपाः।
वसिष्ठो वारयामास हेतुना येन तच्छृणु ॥ १० ॥

महातपस्वी, ऋषि वसिष्ठने उन महात्मा पराशरको सब लोकोंको नष्ट करनेका प्रण ठानते देख कर रोका; उन्होंने जिस कारणसे रोका, वह कहता हूं, सुनो ॥ १० ॥

वसिष्ठ उवाच

कृतवीर्य इति ख्यातो बभूव नृपतिः क्षितौ।
याज्यो वेदविदां लोके भृगूणां पार्थिवर्षभः ॥ ११ ॥

वसिष्ठ बोले— पहिले संसारमें कृतवीर्य नामक प्रख्यात भूपालश्रेष्ठ राजा वेदज्ञ भृगुओंके यजमान थे ॥ ११ ॥

स तानग्र्यभुजस्तात धान्येन च धनेन च ।
सोमान्ते तर्पयामास विपुलेन विशां पतिः ॥ १२ ॥

हे तात ! उस पृथ्वीनाथने सोमयज्ञके अन्त होनेपर पूजाके सर्व प्रथम अधिकारी उन भृगुओंको बहुत धनधान्यसे सन्तुष्ट किया ॥ १२ ॥

तस्मिन्नृपतिशार्दूले स्वर्यातेऽथ कदाचन ।
बभूव तत्कुलेयानां द्रव्यकार्यमुपस्थितम् ॥ १३ ॥

तदनन्तर उस नृपशार्दूलके एक दिन स्वर्गको सिधार जानेपर उनके वंशके राजाओंको धनकी आवश्यकता आ पडी ॥ १३ ॥

ते भृगूणां धनं ज्ञात्वा राजानः सर्व एव ह ।
याचिष्णवोऽभिजग्मुस्तांस्तात भार्गवसत्तमान् ॥ १४ ॥

तब वे राजा यह जानकर कि भृगुवंशियोंके पास अपार धन है, याचककी भांति उन भृगुश्रेष्ठोंके पास जा पहुंचे ॥ १४ ॥

भूमौ तु निदधुः केचिद्भृगवो धनमक्षयम् ।
ददुः केचिद्द्विजातिभ्यो ज्ञात्वा क्षत्रियतो भयम् ॥ १५ ॥

भार्गवोंमेंसे किसी किसीने यह सोचकर कि "हमारा धन नष्ट न होने पावे" धनको धरतीमें गाड दिया था, और किसी किसीने क्षत्रियोंसे भय खाकर अपना अपना धन ब्राह्मणोंको दानमें दे दिया था ॥ १५ ॥

भृगवस्तु ददुः केचित्तेषां वित्तं यथेप्सितम् ।
क्षत्रियाणां तदा तात कारणान्तरदर्शनात् ॥ १६ ॥

उनमेंसे किन्हीं किन्हीं भृगुओंने और ही कुछ कारण समझ कर उन क्षत्रियोंको यथेच्छ धन दे दिया ॥ १६ ॥

ततो महीतलं तात क्षत्रियेण यदृच्छया ।
खनताधिगतं वित्तं केनचिद्भृगुवेश्मनि ।
तद्वित्तं ददृशुः सर्वे समेताः क्षत्रियर्षभाः ॥ १७ ॥

हे तात ! तदनन्तर अपनी इच्छासे खोदते हुए किसी क्षत्रियने भार्गवोंके घरमें भूमिमें गडा हुआ बहुतसा धन पाया । उस धनको सब क्षत्रियश्रेष्ठोंने मिलकर देखा ॥ १७ ॥

अवमन्य ततः कोपाद् भृगूंस्ताञ्शरणागतान्।
निजघ्नुस्ते महेष्वासाः सर्वांस्तान्निशितैः शरैः।
आ गर्भादनुकृन्तन्तश्चेरुश्चैव वसुंधराम् ॥ १८ ॥

तब क्रोधसे युक्त होकर उन बडे धनुर्धारी क्षत्रियलोगोंने शरणमें आए हुए भार्गवोंको अनादरपूर्वक तेज बाणोंसे मार डाला; यहां तक कि वे भार्गवोंके स्त्रियोंके गर्भमें स्थित बालकोंको भी नष्ट करते हुए पृथ्वी भरमें घूमने लगे ॥ १८ ॥

तत उच्छिद्यमानेषु भृगुष्वेवं भयात्तदा।
भृगुपत्न्यो गिरिं तात हिमवन्तं प्रपेदिरे ॥ १९ ॥

हे तात ! इस प्रकार भृगुवंशके उखड जानेपर भार्गवोंकी स्त्रियां भयभीत होकर हिमाचल पर भाग गयीं ॥ १९ ॥

तासामन्यतमा गर्भं भयाद्दधार तैजसम्।
ऊरुणैकेन वामोरुर्भर्तुः कुलविवृद्धये।
ददृशुर्ब्राह्मणीं तां ते दीप्यमानां स्वतेजसा ॥ २० ॥

उनमेंसे किसी एक सुन्दरी नारीने पतिकुलकी रक्षाके लिये क्षत्रियके भयसे एक जांघमें अति वीर्यवान् गर्भको धारण किया। सभी क्षत्रियोंने उस गर्भवती ब्राह्मणीको अपने तेजसे जलती हुई देखा ॥ २० ॥

अथ गर्भः स भित्त्वोरुं ब्राह्मण्या निर्जगाम ह।
मुष्णन्दृष्टीः क्षत्रियाणां मध्याह्न इव भास्करः।
ततश्चक्षुर्वियुक्तास्ते गिरिदुर्गेषु बभ्रमुः ॥ २१ ॥

उस समय गर्भमें स्थित बालक ब्राह्मणीकी जांघको भेदकर दुपहरके तेज सूर्यकी भांति क्षत्रियोंकी आंखोंकी शक्तिको नष्ट करते हुए बाहर निकला। राजा लोग दृष्टि चली जानेसे अन्धे होकर पर्वतकी गुफाओंमें घूमने लगे ॥ २१ ॥

ततस्ते मोघसंकल्पा भयार्ताः क्षत्रियर्षभाः।
ब्राह्मणीं शरणं जग्मुर्दृष्ट्यर्थं तामनिन्दिताम् ॥ २२ ॥

तब व्यर्थ संकल्पवाले, भयभीत वे क्षत्रियश्रेष्ठ दृष्टि प्राप्त करनेकी आशासे उस अनिन्दित ब्राह्मणीकी शरणमें गए ॥ २२ ॥

ऊचुश्चैनां महाभागां क्षत्रियास्ते विचेतसः।
ज्योतिःप्रहीणा दुःखार्ताः शान्तार्चिष इवाग्नयः ॥ २३ ॥

उन्होंने बुझी हुई शिखायुक्त अग्निकी भांति ज्योतिसे हीन और अचेत होकर दुःखी चित्तसे इस महाभाग्यवती ब्राह्मणीसे कहा ॥ २३ ॥

भगवत्याः प्रसादेन गच्छेत्क्षत्रं सचक्षुषम् ।
उपारम्य च गच्छेम सहिताः पापकर्मणः ॥ २४ ॥

आपकी कृपासे क्षत्रिय जाति नेत्र प्राप्त करले तो इस पापकर्मसे निवृत्त होकर सब घरको जायें ॥ २४ ॥

सपुत्रा त्वं प्रसादं नः सर्वेषां कर्तुमर्हसि ।
पुनर्दृष्टिप्रदानेन राज्ञः संत्रातुमर्हसि ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥ ५६९६ ॥

पुत्रसहित आप हम सब लोगोंपर प्रसन्न होवें । आप पुनः आंख देकर इन राजाओंकी रक्षा कर सकती हैं ॥ २५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ उन्हत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १६९ ॥ ॥ ५६९६ ॥

: १७० :

ब्राह्मण्युवाच

नाहं गृह्णामि वस्तात दृष्टीर्नास्मि रुषान्विता ।
अयं तु भार्गवो नूनमूरुजः कुपितोऽद्य वः ॥ १ ॥

ब्राह्मणी बोली– हे पुत्र ! मैं क्रोधित नहीं हुई हूं और न मैंने तुम्हारी दृष्टि हरी है; पर सन्देह नहीं है, कि मेरी जांघसे पैदा हुआ यह भृगुवंशी कुमार तुम पर क्रोधित जरूर हुआ है ॥ १ ॥

तेन चक्षूंषि वस्तात नूनं कोपान्महात्मना ।
स्मरता निहतान्बन्धूनादत्तानि न संशयः ॥ २ ॥

हे पुत्रो ! इस महात्मा बालकहीने अपने बन्धुओंके नाशका स्मरण कर क्रोधसे तुम्हारी आंखें हर ली हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २ ॥

गर्भानपि यदा यूयं भृगूणां घ्नत पुत्रकाः ।
तदायमूरुणा गर्भो मया वर्षशतं धृतः ॥ ३ ॥

हे पुत्रो ! जब तुम लोग भार्गवोंके गर्भस्थित बालकोंको भी नष्ट करने लगे, तबसे मैंने सौ वर्ष तक यह गर्भ जांघमें धारण किया था ॥ ३ ॥

×

षडङ्गश्चाखिलो वेद इमं गर्भस्थमेव हि।
विवेश भृगुवंशस्य भूयः प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥

भृगुवंशके फिर हितानुष्ठानके निमित्त छओं अङ्गोंके साथ सम्पूर्ण वेद इस गर्भस्थ बालकमें प्रविष्ट हुए हैं ॥ ४ ॥

सोऽयं पितृवधान्नूनं क्रोधाद्वो हन्तुमिच्छति।
तेजसा यस्य दिव्येन चक्षूंषि मुषितानि वः ॥ ५ ॥

यह बालक पितरोंके वधके कारण निश्चय ही तुम लोगोंको नष्ट करना चाहता है; इसीके दिव्य तेजके बलसे तुम्हारी आंखें नष्ट हुई हैं ॥ ५ ॥

तमिमं तात याचध्वमौर्वं मम सुतोत्तमम्।
अयं वः प्रणिपातेन तुष्टो दृष्टीर्विमोक्ष्यति ॥ ६ ॥

हे पुत्रो! तुम लोग इस मेरी जांघसे पैदा हुए बालकसे प्रार्थना करो; वह तुम्हारे प्रणामसे प्रसन्न होकर आंखें दे सकता है ॥ ६ ॥

गन्धर्व उवाच

एवमुक्तास्ततः सर्वे राजानस्ते तमूरुजम्।
ऊचुः प्रसीदेति तदा प्रसादं च चकार सः ॥ ७ ॥

गन्धर्व बोले– तब सब राजालोग यह बात सुनकर उस जांघसे पैदा हुए बालकसे कहने लगे, कि "प्रसन्न होवें, प्रसन्न होवें", तब उसने प्रसन्न होकर उनको आंखें दीं ॥ ७ ॥

अनेनैव च विख्यातो नाम्ना लोकेषु सत्तमः।
स औरव इति विप्रर्षिरूरुं भित्त्वा व्यजायत ॥ ८ ॥

इन साधुश्रेष्ठ विप्रर्षिने ऊरुको भेदकर जन्म लिया था, इसलिये वह औरव इसी नामसे लोकोंमें प्रसिद्ध हुए ॥ ८ ॥

चक्षूंषि प्रति प्रतिलभ्याथ प्रतिजग्मुस्ततो नृपाः।
भार्गवस्तु मुनिर्मेने सर्वलोकपराभवम् ॥ ९ ॥

जब राजा आंखें पाकर अपने स्थानको चले गए, तब भार्गव और्वने सब लोकोंको परास्त करनेका निश्चय किया ॥ ९ ॥

स चक्रे तात लोकानां विनाशाय महामनाः।
सर्वेषामेव कार्त्स्न्येन मनः प्रवणमात्मनः ॥ १० ॥

हे तात! भृगुवंशके शत्रुओंको नष्ट करनेकी इच्छा करनेवाले महानुभाव भृगुनन्दन और्वने सब लोकोंको नष्ट करनेके लिये कठोर तपस्यामें नियुक्त होकर उसमें अपने मनको संपूर्ण रूपसे लगा दिया ॥ १० ॥

इच्छन्नपचितिं कर्तुं भृगूणां भृगुसत्तमः ।
सर्वलोकविनाशाय तपसा महतैधितः ॥ ११ ॥
तापयामास लोकान्स सदेवासुरमानुषान् ।
तपसोग्रेण महता नन्दयिष्यन्पितामहान् ॥ १२ ॥

भृगुओंको तृप्त करनेकी इच्छा करते हुए तथा सब लोकके विनाशके लिए तपसे वृद्धि प्राप्त हुए भृगुओंमें श्रेष्ठ भृगुपुत्र और्व अपने कठोर तपसे अपने पितामहोंको आनन्दित करते हुए सुर, असुर और नर इन सब लोगोंको संतप्त करने लगे ॥ ११-१२ ॥

ततस्तं पितरस्तात विज्ञाय भृगुसत्तमम् ।
पितृलोकादुपागम्य सर्वे ऊचुरिदं वचः ॥ १३ ॥

हे तात ! तदनन्तर उनके सब पितर लोग यह जानकर पितृलोकोंसे आकरके भृगुश्रेष्ठ और्वसे यह वचन बोले ॥ १३ ॥

और्व दृष्टः प्रभावस्ते तपसोग्रस्य पुत्रक ।
प्रसादं कुरु लोकानां नियच्छ क्रोधमात्मनः ॥ १४ ॥

हे पुत्र और्व ! तुम्हारी कठोर तपस्याका प्रभाव हमने प्रत्यक्ष देख लिया है; अब तुम सम्पूर्ण लोकों पर प्रसन्न होओ । अपने क्रोधको नियंत्रित करो ॥ १४ ॥

नानीशैर्हि तदा तात भृगुभिर्भावितात्मभिः ।
वधोऽभ्युपेक्षितः सर्वैः क्षत्रियाणां विहिंसताम् ॥ १५ ॥

हे तात ! तब सभी जितेन्द्रिय भृगुओंने बदला लेनेमें समर्थ होने पर भी मारनेवाले क्षत्रियोंके द्वारा किये जानेवाले इस वधकी उपेक्षा कर दी थी ॥ १५ ॥

आयुषा हि प्रकृष्टेन यदा नः खेद आविशत् ।
तदास्माभिर्वधस्तात क्षत्रियैरीप्सितः स्वयम् ॥ १६ ॥

उसका कारण यह था कि आयुके बहुत बढ जानेसे जब हमको क्लेश होने लगा, तब हमने स्वयं ही क्षत्रियोंसे मारे जानेकी अभिलाषा की थी ॥ १६ ॥

निखातं तद्धि वै वित्तं केनचिद्भृगुवेश्मनि ।
वैरायैव तदा न्यस्तं क्षत्रियान्कोपयिष्णुभिः ।
किं हि वित्तेन नः कार्यं स्वर्गेप्सूनां द्विजर्षभ ॥ १७ ॥

क्षत्रियोंको क्रोध दिलानेकी इच्छावाले हमने शत्रुताके लिए ही किसी एक भृगुके घरमें धनको खोद कर गाड दिया था । हे द्विजोत्तम ! अन्यथा स्वर्ग चाहनेवाले हमको धनसे क्या प्रयोजन है ? ॥ १७ ॥

यदा तु मृत्युरादातुं न नः शक्नोति सर्वशः।
तदास्माभिरयं दृष्ट उपायस्तात संमतः ॥ १८ ॥

हे तात ! मृत्यु भी किसी प्रकार हमको ले नहीं जा सकी, तब हमने इस उपायको ही अच्छा समझा ॥ १८ ॥

आत्महा च पुमांस्तात न लोकाँल्लभते शुभान्।
ततोऽस्माभिः समीक्ष्यैवं नात्मनात्मा विनाशितः ॥ १९ ॥

हे तात ! आत्मघाती पुरुष शुभलोकोंको नहीं पा सकता, इसकी विवेचना करके ही हमने आत्मघात नहीं किया था ॥ १९ ॥

न चैतन्नः प्रियं तात यदिदं कर्तुमिच्छसि।
नियच्छेदं मनः पापात्सर्वलोकपराभवात् ॥ २० ॥

हे तात ! तुम जो यह कर्म करनेकी इच्छा करते हो, वह काम हमारा प्रिय नहीं है। अतएव तुम सब लोकोंके परास्त करनेकी इच्छारूपी पापकर्मसे मनको निवृत्त करो ॥ २० ॥

न हि नः क्षत्रियाः केचिन्न लोकाः सप्त पुत्रक।
दूषयन्ति तपस्तेजः क्रोधमुत्पतितं जहि ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥ ५७१७ ॥

हे तात ! हमें न क्षत्रिय ही मार सकते हैं और न सातों लोक ही मिलकर मार सकते हैं। अतः तुम तप और तेजको दूषित करनेवाले इस उत्पन्न हुए क्रोधको त्याग दो ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ सत्तरहवां अध्याय समाप्त ॥ १७० ॥ ५७१७ ॥

: १७१ :

और्व उवाच

उक्तवानस्मि यां क्रोधात्प्रतिज्ञां पितरस्तदा।
सर्वलोकविनाशाय न सा मे वितथा भवेत् ॥ १ ॥

और्व बोले– हे पितरो ! मैंने क्रोधित होकर सब लोकोंके विनाशके लिये जो प्रतिज्ञा की है, वह कभी व्यर्थ नहीं होगी; मैं व्यर्थ क्रोध और व्यर्थ प्रतिज्ञा करना नहीं चाहता ॥ १ ॥

वृथारोषप्रतिज्ञो हि नाहं जीवितुमुत्सहे।
अनिस्तीर्णो हि मां रोषो दहेदग्निरिवारणिम् ॥ २ ॥

यदि मैं इस प्रतिज्ञा और क्रोधको पूरा न करूंगा, तो मैं जीवित रहना नहीं चाहता, बिना प्रतिज्ञा पूरी किए मुझे क्रोधकी आग उसी प्रकार जलावेगी, कि जैसे अग्नि वनको जलाती है ॥ २ ॥

यो हि कारणतः क्रोधं संजातं क्षन्तुमर्हति ।
नालं स मनुजः सम्यक्त्रिवर्गं परिरक्षितुम् ॥ ३ ॥

क्रोध किसी कारणसे आजाय, तो जो उसको रोक लेता है वह मनुष्य कभी पूरी रीतिसे धर्म, अर्थ, काम इन तीन वर्गोंका पालन नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

अशिष्टानां नियन्ता हि शिष्टानां परिरक्षिता ।
स्थाने रोषः प्रयुक्तः स्यान्नृपैः सर्वजिगीषुभिः ॥ ४ ॥

और सर्वत्र जय चाहनेवाले राजाके द्वारा योग्य स्थानमें प्रदर्शित किया हुआ क्रोध दुष्टका शासन और सुजनका पालन करता है ॥ ४ ॥

अश्रौषमहमूरुस्थो गर्भशय्यागतस्तदा ।
आरावं मातृवर्गस्य भृगूणां क्षत्रियैर्वधे ॥ ५ ॥

पहिले क्षत्रियोंने जब भार्गवोंको नष्ट किया था, तब मैंने ऊरु अर्थात् जांघके भीतर गर्भ-शय्यामें लेटे रहकर भार्गवोंकी और माताओंकी करुणापूर्ण चिल्लाहट सुनी थी ॥ ५ ॥

सामरैर्हि यदा लोकैर्भृगूणां क्षत्रियाधमैः ।
आगर्भोत्सादनं क्षान्तं तदा मां मन्युराविशत् ॥ ६ ॥

जब क्षत्रिय-कुलपांसु क्षत्रिय लोग गर्भमें स्थित बालक तकके सब भार्गवोंको नष्ट करने लगे, तभी मैं क्रोधित हो गया ॥ ६ ॥

आपूर्णकोशाः किल मे मातरः पितरस्तथा ।
भयात्सर्वेषु लोकेषु नाधिजग्मुः परायणम् ॥ ७ ॥

मेरे पितृगण और पूर्णगर्भवती मातायें जब शोकसे विकल और भयसे कातर हुई थीं, तब तीनों लोकमें किसीने उनकी रक्षा नहीं की थी ॥ ७ ॥

तान्भृगूणां यदा दारान्कश्चिन्नाभ्यवपद्यत ।
यदा तदा दधारेयमूरुणैकेन मां शुभा ॥ ८ ॥

जब किसीने उन भृगुपत्नियोंकी रक्षा नहीं की, तब मेरी शुभ लक्षणयुक्ता इस माताने एक ऊरुसे मुझको धारणकर रखा था ॥ ८ ॥

प्रतिषेद्धा हि पापस्य यदा लोकेषु विद्यते ।
तदा सर्वेषु लोकेषु पापकृन्नोपपद्यते ॥ ९ ॥

जब इस भूमण्डलमें एक भी मनुष्य पाप कर्मको नष्ट करनेवाला हो तो किसी लोकमें कोई भी पापी नहीं पैदा हो सकता ॥ ९ ॥

यदा तु प्रतिषेद्धारं पापो न लभते क्वचित्।
तिष्ठन्ति बहवो लोके तदा पापेषु कर्मसु ॥ १० ॥

जब लोकोंमें कोई पापकर्मके लिए दण्ड देनेवाला नहीं रह जाता, तब लोकमें बहुतसे मनुष्य पापकर्ममें प्रवृत्त होते हैं ॥ १० ॥

जानन्नपि च यः पापं शक्तिमान्न नियच्छति।
ईशः सन्सोऽपि तेनैव कर्मणा संप्रयुज्यते ॥ ११ ॥

जो जन शक्तिमान् और पाप रोकनेमें समर्थ होने पर भी जान बूझकर पापकर्म नहीं रोकता तो वह भी उस पापमें लिप्त हो जाता है ॥ ११ ॥

राजभिश्चेश्वरैश्चैव यदि वै पितरो मम।
शक्तैर्न शकिता त्रातुमिष्टं मत्वेह जीवितम् ॥ १२ ॥

पर राजालोग और सामर्थ्यशाली मनुष्य उस पापकर्मके रोकनेका सामर्थ्य रखने पर भी इस लोकमें अपने जीवनको अभीष्ट जानकर मेरे पितरोंकी रक्षा नहीं कर सके ॥ १२ ॥

अत एषामहं क्रुद्धो लोकानामीश्वरोऽद्य सन्।
भवतां तु वचो नाहमलं समतिवर्तितुम् ॥ १३ ॥

इसी हेतु आज इन लोकोंका स्वामी होकर मैंने क्रोधित होकर उन सब लोगोंको उस पाप-कर्मका दण्ड देनेका निश्चय किया है, अतः आपकी आज्ञा मान नहीं सकता ॥ १३ ॥

मम चापि भवेदेतदीश्वरस्य सतो महत्।
उपेक्षमाणस्य पुनर्लोकानां किल्बिषाद्भयम् ॥ १४ ॥

मैं बदला लेनेके योग्य हो करके भी यदि बदला लेनेका प्रयत्न न करूं, तो इस पापकर्मकी उपेक्षा करनेवाले मुझे लोकोंके संतापके कारण बडा भारी भय प्राप्त हो जाएगा ॥ १४ ॥

यश्चायं मन्युजो मेऽग्निर्लोकानादातुमिच्छति।
दहेदेष च मामेव निगृहीतः स्वतेजसा ॥ १५ ॥

मेरी जो क्रोधसे उत्पन्न अग्नि लोकोंको जलानेकी इच्छा करती है, यदि उसे अपने तेजसे रोक लूं, तो वह अग्नि मुझको ही जला मारेगी ॥ १५ ॥

भवतां च विजानामि सर्वलोकहितेप्सुताम्।
तस्माद्विदध्वं यच्छ्रेयो लोकानां मम चेश्वराः ॥ १६ ॥

हे प्रभुगण ! मैं मानता हूं, कि आप सब लोकोंके हित चाहनेवाले हैं, अतः ऐसा करें, कि जिससे मेरा और सब लोकोंका भी मङ्गल होवे ॥ १६ ॥

पितर ऊचुः

य एष मन्युजस्तेऽग्निर्लोकानादातुमिच्छति ।
अप्सु तं मुञ्च भद्रं ते लोका ह्यप्सु प्रतिष्ठिताः ॥ १७ ॥

पितृगण बोले— तुम्हारे क्रोधसे उत्पन्न जो अग्नि सब लोकोंको खा लेना चाहती है तुम उसको जलमें डाल दो, क्योंकि सभी लोक जलमें प्रतिष्ठित हैं । तभी तुम्हारा मंगल होगा ॥ १७ ॥

आपोमयाः सर्वरसाः सर्वमापोमयं जगत् ।
तस्मादप्सु विमुञ्चेमं क्रोधाग्निं द्विजसत्तम ॥ १८ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! सब रस जलसे पूर्ण हैं और सम्पूर्ण जग भी जलसे पूर्ण हैं, अतः हे द्विज-श्रेष्ठ ! तुम इस क्रोधाग्निको जलमें छोड दो ॥ १८ ॥

अयं तिष्ठतु ते विप्र यदीच्छसि महोदधौ ।
मन्युजोऽग्निर्दहन्नापो लोका ह्यापोमयाः स्मृताः ॥ १९ ॥

हे ब्राह्मण ! यदि तुम चाहते हो तो यह तुम्हारी क्रोधसे उत्पन्न अग्नि जलोंको जलाते हुए समुद्रमें ही रहे । हे विप्र ! सम्पूर्ण लोकोंको जलमय कहा गया है ॥ १९ ॥

एवं प्रतिज्ञा सत्येयं तवानघ भविष्यति ।
न चैव सामरा लोका गमिष्यन्ति पराभवम् ॥ २० ॥

हे अनघ ! ऐसा होनेसे तुम्हारी प्रतिज्ञा भी सच्ची हो जाएगी और देवोंसे युक्त लोक भी नष्ट नहीं होंगे ॥ २० ॥

वसिष्ठ उवाच

ततस्तं क्रोधजं तात और्वोऽग्निं वरुणालये ।
उत्ससर्ज स चैवाप उपयुङ्क्ते महोदधौ ॥ २१ ॥

वसिष्ठ बोले— तब, हे तात ! और्वने अपने क्रोधसे उपजी हुई अग्निको वरुणालय समुद्रमें छोड दिया । वह अग्नि समुद्रमें रहकर जल पीया करती है ॥ २१ ॥

महद्धयशिरो भूत्वा यत्तद्वेदविदो विदुः ।
तमग्निमुद्गिरन्वक्त्रात्पिबत्यापो महोदधौ ॥ २२ ॥

वेदके जानकार ब्राह्मण लोग जिस महान् वडवामुखको जानते हैं, वह अग्नि वडवामुख बनकर उस मुखसे लोकोंमें प्रसिद्ध वाडवाग्नि वमन करती हुई जल पीने लगी ॥ २२ ॥

तस्मात्त्वमपि भद्रं ते न लोकान्हन्तुमर्हसि।
पराशर परान्धर्मान्जानञ्ज्ञानवतां वर ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥ ५७४० ॥

हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पराशर! तुम भी सब धर्मोंको जानते हो, तुम्हारा मंगल होवे, सब लोकोंका विनाश करना तुमको भी उचित नहीं है! ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ इकहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७१ ॥ ५७४० ॥

: १७२ :

गन्धर्व उवाच

एवमुक्तः स विप्रर्षिर्वसिष्ठेन महात्मना।
न्ययच्छदात्मनः कोपं सर्वलोकपराभवात् ॥ १ ॥

गन्धर्व बोले– विप्रर्षि पराशरने महात्मा वसिष्ठके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सब लोकोंको नष्ट करनेवाला अपना क्रोध त्याग दिया ॥ १ ॥

ईजे च स महातेजाः सर्ववेदविदां वरः।
ऋषी राक्षससत्रेण शाक्तेयोऽथ पराशरः ॥ २ ॥

पर वह सब वेदोंके जानकारोंमें श्रेष्ठ बडे तेजस्वी शक्तिपुत्र महर्षि पराशर राक्षसोंको मारनेके लिए राक्षस-यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २ ॥

ततो वृद्धांश्च बालांश्च राक्षसान्स महामुनिः।
ददाह वितते यज्ञे शक्तेर्वधमनुस्मरन् ॥ ३ ॥

तदनन्तर वह मुनि शक्तिका वध स्मरण कर उस महान् यज्ञमें बालकसे लेकर बूढेतक संपूर्ण राक्षसोंको जलाने लगे ॥ ३ ॥

न हि तं वारयामास वसिष्ठो रक्षसां वधात्।
द्वितीयामस्य मा भाङ्क्षं प्रतिज्ञामिति निश्चयात् ॥ ४ ॥

वसिष्ठने यह निश्चय कर कि उनकी दूसरी प्रतिज्ञा भङ्ग करना उचित नहीं है, उनको राक्षस-वध करनेसे नहीं रोका ॥ ४ ॥

त्रयाणां पावकानां स सत्रे तस्मिन्महामुनिः ।
आसीत्पुरस्ताद्दीप्तानां चतुर्थ इव पावकः ॥ ५ ॥

महामुनि पराशर उस राक्षस-यज्ञमें प्रदीप्त तीनों अग्नियोंके सामने चौथी अग्निके समान शोभित होने लगे ॥ ५ ॥

तेन यज्ञेन शुभ्रेण हूयमानेन युक्तितः ।
तद्विदीपितमाकाशं सूर्येणेव घनात्यये ॥ ६ ॥

उन मुनिने उपायसे किये जानेवाले उस हवनयुक्त शुभ यज्ञसे आकाश मण्डलको इस प्रकार प्रदीप्त किया, कि जिस प्रकार सूर्य बादल दूर हो जानेपर आकाश मण्डलको प्रकाशयुक्त करता है ॥ ६ ॥

तं वसिष्ठादयः सर्वे मुनयस्तत्र मेनिरे ।
तेजसा दिवि दीप्यन्तं द्वितीयमिव भास्करम् ॥ ७ ॥

तब वसिष्ठ आदि सम्पूर्ण महर्षि गण अपने तेजसे द्युलोकमें जलते हुए पराशर मुनिको दूसरा सूर्य समझने लगे ॥ ७ ॥

ततः परमदुष्प्रापमन्यैर्ऋषिरुदारधीः ।
समापिपयिषुः सत्रं तमत्रिः समुपागमत् ॥ ८ ॥

तदनन्तर उदार बुद्धियुक्त अत्रि औरोंके द्वारा समाप्त न होनेवाले उस यज्ञको पूरा करनेकी इच्छासे उनके निकट आये ॥ ८ ॥

तथा पुलस्त्यः पुलहः क्रतुश्चैव महाक्रतुम् ।
उपाजग्मुरमित्रघ्न रक्षसां जीवितेप्सया ॥ ९ ॥

हे शत्रुनाशी ! इसके पश्चात् पुलस्त्य, पुलह, क्रतु भी राक्षसोंके प्राण बचानेकी इच्छासे उस महायज्ञके पास आये ॥ ९ ॥

पुलस्त्यस्तु वधात्तेषां रक्षसां भरतर्षभ ।
उवाचेदं वचः पार्थ पराशरमरिन्दमम् ॥ १० ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! उन बहुतसे राक्षसोंके मारे जानेपर पुलस्त्यका शत्रुओंका नाश करनेवाले पराशरसे यह बात बोले ॥ १० ॥

कच्चित्तातापविघ्नं ते कच्चिन्नन्दसि पुत्रक ।
अजानतामदोषाणां सर्वेषां रक्षसां वधात् ॥ ११ ॥

हे तात ! तुम्हारे अग्निहोत्रके कार्यमें विघ्न तो नहीं है ? हे पुत्र ! क्या तुम उन निर्दोष राक्षसोंको भी जो तुम्हारे पिताके वधके विषयमें कुछ नहीं जानते, मारकर आनन्द तो प्राप्त कर रहे हो ? ॥ ११ ॥

प्रजोच्छेदमिमं मह्यं सर्वं सोमपसत्तम।
अधर्मिष्ठं वरिष्ठः सन्कुरुषे त्वं पराशर।
राजा कल्माषपादश्च दिवमारोढुमिच्छति ॥ १२ ॥

हे सोमपान करनेवालोंमें श्रेष्ठ ! जिसके कारण तुम प्रजाओंको इस प्रकार उखाडने रूप अधर्मको श्रेष्ठ होकर भी कर रहे हो। वह राजा कल्पाषपाद तो स्वर्गमें जाकर आनन्द कर रहे हैं ॥ १२ ॥

ये च शक्त्यवराः पुत्रा वसिष्ठस्य महामुनेः।
ते च सर्वे मुदा युक्ता मोदन्ते सहिताः सुरैः।
सर्वमेतद्वसिष्ठस्य विदितं वै महामुने ॥ १३ ॥

और महामुनि वसिष्ठके शक्तिसे छोटे जो सब पुत्र थे, वे भी देवोंके साथ परम आनन्द भोग रहे हैं; हे महामुने ! वसिष्ठ यह सब जानते हैं ॥ १३ ॥

रक्षसां च समुच्छेद एष तात तपस्विनाम्।
निमित्तभूतस्त्वं चात्र क्रतौ वासिष्ठनन्दन।
स सत्रं मुञ्च भद्रं ते समाप्तमिदमस्तु ते ॥ १४ ॥

हे वासिष्ठनन्दन तात ! इस यज्ञमें निर्दोष राक्षसोंका जो नाश हो रहा है, तुम केवल उसके निमित्त ही वन रहे हो; अतएव तुम यह यज्ञ त्याग दो, तुम्हारा मंगल होवे; अब यज्ञ पूरा करो ॥ १४ ॥

एवमुक्तः पुलस्त्येन वसिष्ठेन च धीमता।
तदा समापयामास सत्रं शाक्तिः पराशरः ॥ १५ ॥

बुद्धिमान् पुलस्त्य और वसिष्ठके शक्तिनन्दन पराशरसे ऐसा कहने पर उन्होंने तब उस यज्ञको पूरा किया ॥ १५ ॥

सर्वराक्षससत्राय संभृतं पावकं मुनिः।
उत्तरे हिमवत्पार्श्वे उत्ससर्ज महावने ॥ १६ ॥

और सम्पूर्ण राक्षसोंके नाश यज्ञके लिये जो अग्नि प्रज्ज्वलित की थी उसको मुनिने हिमालयकी उत्तरकी ओर एक बडे वनमें छोड दिया ॥ १६ ॥

स तत्राद्यापि रक्षांसि वृक्षानश्मान एव च।
भक्षयन्दृश्यते वह्निः सदा पर्वणि पर्वणि ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥ ५७५७ ॥

वहां अभीतक वह अग्नि हर त्योहारमें राक्षस, वृक्ष और पत्थरोंको खाती हुई दीख पडती है ॥ १७ ॥

महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ बहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७२ ॥ ५७५७ ॥

: १७३ :

अर्जुन उवाच

राज्ञा कल्माषपादेन गुरौ ब्रह्मविदां वरे ।
कारणं किं पुरस्कृत्य भार्या वै संनियोजिता ॥ १ ॥

अर्जुन बोले— हे मित्र ! राजा कल्माषपादने वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ गुरु वसिष्ठसे स्त्रीको क्यों मिलाया ॥ १ ॥

जानता च परं धर्मं लोक्यं तेन महात्मना ।
अगम्यागमनं कस्माद्वसिष्ठेन महात्मना ।
कृतं तेन पुरा सर्वं वक्तुमर्हसि पृच्छतः ॥ २ ॥

उन महात्मा महर्षि वसिष्ठने धर्मके जानकार होकर भी मिलनेके अयोग्य स्त्रीसे पहले संसर्ग क्यों किया ? इस विषयमें पूछनेवाले मुझे सब बताओ ॥ २ ॥

गन्धर्व उवाच

धनञ्जय निबोधेदं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
वसिष्ठं प्रति दुर्धर्ष तथामित्रसहं नृपम् ॥ ३ ॥

गन्धर्व बोले— हे दुर्द्धर्ष धनञ्जय ! तुमने उस शत्रुनाशी राजा और वसिष्ठके विषयमें जो कुछ पूछा, वह कहता हूं, सुनो ॥ ३ ॥

कथितं ते मया पूर्वं यथा शप्तः स पार्थिवः ।
शक्तिना भरतश्रेष्ठ वासिष्ठेन महात्मना ॥ ४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! वसिष्ठपुत्र महात्मा शक्ति द्वारा जिस प्रकार वह राजा शापयुक्त हुआ था वह सब मैं सुना आया हूँ ॥ ४ ॥

स तु शापवशं प्राप्तः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।
निर्जगाम पुराद्राजा सहदारः परन्तपः ॥ ५ ॥

पहले ही शापग्रस्त होकर क्रोधसे युक्त नेत्रवाले वह शत्रुसन्तापी राजा कल्माषपाद स्त्रीके साथ नगरसे निकले ॥ ५ ॥

अरण्यं निर्जनं गत्वा सदारः परिचक्रमे ।
नानामृगगणाकीर्णं नानासत्त्वसमाकुलम् ॥ ६ ॥

और निर्जन वनमें जाकर स्त्रीके साथ घूमने लगे । अनेक प्रकारके मृगोंसे भरे भांति भांतिके वनके जीवोंसे भरे ॥ ६ ॥

नानागुल्मलताच्छन्नं नानाद्रुमसमावृतम् ।
अरण्यं घोरसंनादं शापग्रस्तः परिभ्रमन् ॥ ७ ॥

नाना गुल्म लताओंसे ढंके हुए और विविध वृक्षोंसे भरे हुए घोर शब्दसे गूंजते हुए उस बडे वनमें घूमते हुए ॥ ७ ॥

स कदाचित्क्षुधाविष्टो मृगयन्भक्ष्यमात्मनः ।
ददर्श सुपरिक्लिष्टः कस्मिंश्चिद्वननिर्झरे ।
ब्राह्मणीं ब्राह्मणं चैव मिथुनायोपसंगतौ ॥ ८ ॥

वे शापग्रस्त भूपाल कभी बहुत भूखे होकर अपने लिए भोजनकी सामग्री ढूंढते हुए थक गये थे, कि ऐसे समयमें उस वनके एक झरनेके स्थानमें एक ब्राह्मण और ब्राह्मणीको मैथुनकर्ममें प्रवृत्त देखा ॥ ८ ॥

तौ समीक्ष्य तु वित्रस्तावकृतार्थौ प्रधावितौ ।
तयोश्च द्रवतोर्विप्रं जग्राह नृपतिर्बलात् ॥ ९ ॥

वे राजाको देखते ही मनोरथ पूरा न होने पर भी अति भयभीत होकर वहांसे भागे तब राजाने भागे जाते हुए उस दम्पतिमेंसे ब्राह्मणको पकड लिया ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा गृहीतं भर्तारमथ ब्राह्मण्यभाषत ।
शृणु राजन्वचो मह्यं यत्त्वां वक्ष्यामि सुव्रत ॥ १० ॥

तब ब्राह्मणी पतिको पकडे जाते देखकर बोली— हे सुव्रत महाराज! मैं जो तुमसे कहती हूं उस मेरी बातको सुनो ॥ १० ॥

आदित्यवंशप्रभवस्त्वं हि लोकपरिश्रुतः ।
अप्रमत्तः स्थितो धर्मे गुरुशुश्रूषणे रतः ॥ ११ ॥

यह सब लोकोंमें प्रसिद्ध है, कि तुमने सूर्यवंशमें जन्म लिया है और प्रमत्त न होकर गुरुकी सेवा भी किया करते हो ॥ ११ ॥

शापं प्राप्तोऽसि दुर्धर्ष न पापं कर्तुमर्हसि ।
ऋतुकाले तु संप्राप्ते भर्त्रास्म्यद्य समागता ॥ १२ ॥

हे दुर्द्धर्ष! अब तुम शापग्रस्त हुए हो, अतः तुमको ऐसा पाप करना नहीं चाहिये; मेरा ऋतुकाल आजाने पर मैं आज पतिसे मिल रही थी ॥ १२ ॥

अकृतार्था ह्यहं भर्त्रा प्रसवार्थश्च मे महान् ।
प्रसीद नृपतिश्रेष्ठ भर्ता मेऽयं विसृज्यताम् ॥ १३ ॥

पर पतिसे पुत्र प्राप्ति रूप मेरा महान् मनोरथ सफल नहीं हुआ है; अतएव, हे भूपश्रेष्ठ! प्रसन्न होओ, मेरे पतिको छोड दो ॥ १३ ॥

एवं विक्रोशमानायास्तस्याः स सुनृशंसकृत् ।
भर्तारं भक्षयामास व्याघ्रो मृगमिवेप्सितम् ॥ १४ ॥

उस ब्राह्मणीके इस प्रकार रोती रहने पर भी राजाने निर्दयी–पनसे उसके पतिको इस प्रकार खा लिया, कि जैसे व्याघ्र मृगको खाता है ॥ १४ ॥

तस्याः क्रोधाभिभूताया यदश्रु न्यपतद्भुवि ।
सोऽग्निः समभवद्दीप्तस्तं च देशं व्यदीपयत् ॥ १५ ॥

तब क्रोधसे संतप्त उस ब्राह्मणीके जो आंसू भूमि पर गिरे, उनसे जलती हुई आग पैदा हो गई और उससे उस स्थानमें उजाला हो गया ॥ १५ ॥

ततः सा शोकसंतप्ता भर्तृव्यसनदुःखिता
कल्माषपादं राजर्षिमशपद्ब्राह्मणी रुषा ॥ १६ ॥

तब पतिके बिछोहसे कातर, शोकसे व्याकुल उस ब्राह्मणीने क्रोधसे राजर्षि कल्माषपादको यह शाप दिया ॥ १६ ॥

यस्मान्ममाकृतार्थायास्त्वया क्षुद्र नृशंसवत् ।
प्रेक्षन्त्या भक्षितो मेऽद्य प्रभुर्भर्ता महायशाः ॥ १७ ॥

हे नीच ! मिलनके सुखसे मेरा मनोरथ सफल न होने पर भी तुमने निष्ठुरके समान मेरे देखते देखते मेरे प्रिय और अति यशस्वी पतिको खा डाला ॥ १७ ॥

तस्मात्त्वमपि दुर्बुद्धे मच्छापपरिविक्षतः
पत्नीमृतावनुप्राप्य सद्यस्त्यक्षसि जीवितम् ॥ १८ ॥

अतः, हे दुर्बुद्धे ! मेरे शापसे ग्रस्त होकर तुम भी ऋतुकालमें स्त्रीसे मिल करके उसीक्षण प्राण छोड दोगे ॥ १८ ॥

यस्य चर्षेर्वसिष्ठस्य त्वया पुत्रा विनाशिताः ।
तेन संगम्य ते भार्या तनयं जनयिष्यति ।
स ते वंशकरः पुत्रो भविष्यति नृपाधम ॥ १९ ॥

और तुमने जिन महर्षि वसिष्ठके पुत्रोंको नष्ट किया है, तुम्हारी स्त्री उन्हींसे मिल कर पुत्र प्रसव करेगी । नृपाधम ! वही पुत्र तेरे वंशका रक्षक होगा ॥ १९ ॥

एवं शप्त्वा तु राजानं सा तमाङ्गिरसी शुभा ।
तस्यैव संनिधौ दीप्तं प्रविवेश हुताशनम् ॥ २० ॥

अङ्गिरा कुलसे उत्पन्न शुभ लक्षणयुक्त वह ब्राह्मणी राजाको यह शाप देकर उनके सामने ही जलती हुई आगमें जा घुसी ॥ २० ॥

वसिष्ठश्च महाभागः सर्वमेतदपश्यत ।
ज्ञानयोगेन महता तपसा च परन्तप ॥ २१ ॥

हे शत्रुमथन करनेवाले अर्जुन ! महाभाग वसिष्ठ अपने महान् तपोबलके कारण ज्ञानचक्षुसे वह सब जान गये ॥ २१ ॥

मुक्तशापश्च राजर्षिः कालेन महता ततः ।
ऋतुकालेऽभिपतितो मदयन्त्या निवारितः ॥ २२ ॥

तदनन्तर बहुत दिनके बाद शापसे मुक्त होकर राजर्षि कल्माषपादके अपनी रानीके ऋतुकालकी रक्षाके लिये उद्यत होने पर मदयन्तीने उनको रोका ॥ २२ ॥

न हि सस्मार नृपतिस्तं शापं काममोहितः ।
देव्याः सोऽथ वचः श्रुत्वा स तस्या नृपसत्तमः ।
तं च शापमनुस्मृत्य पर्यतप्यद्भृशं तदा ॥ २३ ॥

राजा कामसे मोहित होनेके कारण शापकी बातको याद न रख सके थे, पर वह राजश्रेष्ठ उस देवीकी बात सुनकर और उस शापको स्मरण करके बहुत ही दुःखी हुए ॥ २३ ॥

एतस्मात्कारणाद्राजा वसिष्ठं संन्ययोजयत् ।
स्वदारे भरतश्रेष्ठ शापदोषसमन्वितः ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७३॥ समाप्तं चैत्ररथपर्व ॥५७८१॥

हे भरतश्रेष्ठ ! शापग्रस्त राजाने इसी कारण अपनी रानीकी ऋतुरक्षाके लिये वसिष्ठको नियुक्त किया था ॥ २४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ तिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७३॥ चैत्ररथपर्व समाप्त हुआ ॥५७८१॥

: १७४ :

अर्जुन उवाच

अस्माकमनुरूपो वै यः स्याद्गन्धर्व वेदवित् ।
पुरोहितस्तमाचक्ष्व सर्वं हि विदितं तव ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– हे गन्धर्व ! तुम सब जानते हो, अतः जो हमारे अनुरूप और वेद जाननेवाला कोई पुरोहित हो तो उसे बताओ ॥ १ ॥

गन्धर्व उवाच

यवीयान्देवलस्यैष वने भ्राता तपस्यति ।
धौम्य उत्कोचके तीर्थे तं वृणुध्वं यदीच्छथ ॥ २ ॥

गन्धर्व बोले– वनके भीतर उत्कोचक नाम तीर्थमें देवलके छोटे भाई धौम्य नामक ऋषि तप कर रहे हैं, तुम चाहो तो उनको पुरोहित बनाओ ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततोऽर्जुनोऽस्त्रमाग्नेयं प्रददौ तद्यथाविधि ।
गन्धर्वाय तदा प्रीतो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर अर्जुनने प्रसन्न होकर उन गन्धर्वको विधिपूर्वक अग्न्यस्त्र दिया और यह वचन बोले ॥ ३ ॥

त्वय्येव तावत्तिष्ठन्तु हया गन्धर्वसत्तम ।
कर्मकाले ग्रहीष्यामि स्वस्ति तेऽस्त्विति चाब्रवीत् ॥ ४ ॥

ह गन्धर्वोंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारा मंगल होवे, तुम्हारे द्वारा दिये हुए घोडे अभी तुम्हारे ही पास रहें, जब काम पडेगा, तब ले लूंगा, इस प्रकार अर्जुन बोले ॥ ४ ॥

तेऽन्योन्यमभिसंपूज्य गन्धर्वः पाण्डवाश्च ह ।
रम्याद्भागीरथीकच्छाद्यथाकामं प्रतस्थिरे ॥ ५ ॥

तदनन्तर पाण्डवगण और गन्धर्व एक दूसरेका सत्कार करके रमणीय भागीरथी तटसे अपने अपने अभिलषित स्थानोंको चले गए ॥ ५ ॥

तत उत्कोचकं तीर्थं गत्वा धौम्याश्रमं तु ते ।
तं वव्रुः पाण्डवा धौम्यं पौरोहित्याय भारत ॥ ६ ॥

हे भारत ! तदनन्तर पाण्डवोंने उत्कोचक तीर्थमें धौम्यके आश्रममें जाकर पुरोहित पदके लिए उनका वरण किया ॥ ६ ॥

तान्धौम्यः प्रतिजग्राह सर्ववेदविदां वरः ।
पाद्येन फलमूलेन पौरोहित्येन चैव ह ॥ ७ ॥

वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ धौम्यने पाद्य और फलमूलोंसे उनका सत्कार करके उनका पुरोहित होना स्वीकार कर लिया ॥ ७ ॥

ते तदाशंसिरे लब्धां श्रियं राज्यं च पाण्डवाः ।
तं ब्राह्मणं पुरस्कृत्य पाञ्चाल्याश्च स्वयंवरम् ॥ ८ ॥

उन पाण्डवोंने उन ब्राह्मणको गुरुकी भांति पुरस्कृत कर ऐसा समझ लिया, कि उन्हें राज्यलक्ष्मी और स्वयंवर स्थानमें मानों पाञ्चाली मिल ही गयी ॥ ८ ॥

मातृषष्ठास्तु ते तेन गुरुणा संगतास्तदा
नाथवन्तमिवात्मानं मेनिरे भरतर्षभाः ॥ ९ ॥

वे माताके साथ छैओं भरतश्रेष्ठ पाण्डव उन गुरुसे मिलकर अपनेको नाथयुक्त समझने लगे ॥ ९ ॥

स हि वेदार्थतत्त्वज्ञस्तेषां गुरुरुदारधीः ।
तेन धर्मविदा पार्था याज्याः सर्वविदा कृताः ॥ १० ॥

वेदार्थके तत्त्वको जाननेवाले उदार बुद्धियुक्त वह ऋषि उनके गुरु हुए और धर्म जाननेवाले, सब विषयोंके जानकार उन द्विजने भी उन पृथापुत्र पाण्डवोंको अपना यजमान बनाया ॥ १० ॥

वीरांस्तु स हि तान्मेने प्राप्तराज्यान्स्वधर्मतः ।
बुद्धिवीर्यबलोत्साहैर्युक्तान्देवानिवापरान् ॥ ११ ॥

उन धौम्य ऋषिने बुद्धि, वीर्य, बल और उत्साहसे युक्त तथा देवोंके सदृश उन वीरोंको अपने धर्मके अनुसार राज्य पाये हुए समझा ॥ ११ ॥

कृतस्वस्त्ययनास्तेन ततस्ते मनुजाधिपाः ।
मेनिरे सहिता गन्तुं पाञ्चाल्यास्तं स्वयंवरम् ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुःसतत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥ ५७९३ ॥

उन ब्राह्मणके द्वारा स्वस्त्ययन करनेपर मानवश्रेष्ठ पाण्डवोंने एकत्र होकर द्रौपदीके स्वयंवरमें जाना निश्चित किया ॥ १२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ चौहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७४ ॥ ५७९३ ॥

: १७५ :

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते नरशार्दूला भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।
प्रययुर्द्रौपदीं द्रष्टुं तं च देवमहोत्सवम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— तदनन्तर पुरुषश्रेष्ठ पांचों भाई पाण्डव देवमहोत्सव और पाञ्चाली द्रौपदीको देखने चले ॥ १ ॥

ते प्रयाता नरव्याघ्रा मात्रा सह परन्तपाः ।
ब्राह्मणान्ददृशुर्मार्गे गच्छतः सगणान्बहून् ॥ २ ॥

शत्रुको मथनेवाले उन नरव्याघ्र भाइयोंने माताके साथ जाते जाते पथमें अनेक ब्राह्मणोंके गणोंको चलते देखा ॥ २ ॥

तानूचुर्ब्राह्मणा राजन्पाण्डवान्ब्रह्मचारिणः ।
क्व भवन्तो गमिष्यन्ति कुतो वागच्छतेति ह ॥ ३ ॥

हे राजन् ! उन ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंने पाण्डवोंसे पूछा, कि आप कहां जायेंगे ? और कहांसे आते हैं ? ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आगतानेकचक्रायाः सोदर्यान्देवदर्शिनः ।
भवन्तो हि विजानन्तु सहितान्मातृचारिणः ॥ ४ ॥

देवमहोत्सव देखनेकी इच्छावाले युधिष्ठिरने उत्तर दिया– हम पांचों भाई माताके साथ मिलकर घूमा करते हैं; अब एकचक्रा नगरीसे आ रहे हैं ऐसा आप समझें ॥ ४ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः

गच्छताद्यैव पाञ्चालान्द्रुपदस्य निवेशनम् ।
स्वयंवरो महांस्तत्र भविता सुमहाधनः ॥ ५ ॥

ब्राह्मणोंने कहा– आप लोग आज ही पाञ्चाल नगरमें राजा द्रुपदके घरको जायें; वहां बहुत धन खर्च कर एक बडा भारी स्वयंवर होनेवाला है ॥ ५ ॥

एकसार्थं प्रयाताः स्मो वयमप्यत्र गामिनः ।
तत्र ह्यद्भुतसंकाशो भविता सुमहोत्सवः ॥ ६ ॥

हम भी वहां जा रहे हैं, चलो, एक ही साथ चलें। वह महोत्सव आश्चर्यजनक होगा ॥६॥

यज्ञसेनस्य दुहिता द्रुपदस्य महात्मनः ।
वेदिमध्यात्समुत्पन्ना पद्मपत्रनिभेक्षणा ॥ ७ ॥

पांचालराज महात्मा यज्ञसेन राजा द्रुपदकी कमलकी पंखुडीके समान आंखोंवाली उस पुत्रीने वेदिमेंसे जन्म लिया है ॥ ७ ॥

दर्शनीयानवद्याङ्गी सुकुमारी मनस्विनी ।
धृष्टद्युम्नस्य भगिनी द्रोणशत्रोः प्रतापिनः ॥ ८ ॥

वह दर्शनीया, अनिन्दनीय अंगोंवाली, सुकुमारी, मनस्विनी और द्रोणके शत्रु प्रतापी धृष्टद्युम्नकी बहिन है ॥ ८ ॥

यो जातः कवची खड्गी सशरः सशरासनः ।
सुसमिद्धे महाबाहुः पावके पावकप्रभः ॥ ९ ॥

अग्निके समान तेजस्वी और महाबाहु जिस धृष्टद्युम्नने जलती हुई आगसे खड्ग, कवच, शर, शरासन आदिके साथ जन्म लिया है ॥ ९ ॥

स्वसा तस्यानवद्याङ्गी द्रौपदी तनुमध्यमा ।
नीलोत्पलसमो गन्धो यस्याः क्रोशात्प्रवायति ॥ १० ॥

उसकी बहिनका कोई अंग निन्दनीय नहीं है और उसके शरीरसे निकलनेवाली नील पद्मकी गन्ध कोस भरकी दूरीसे भी सूंघी जा सकती है, वह द्रौपदी सुन्दरी है ॥ १० ॥

×

तां यज्ञसेनस्य सुतां स्वयंवरकृतक्षणाम्।
गच्छामहे वयं द्रष्टुं तं च देवमहोत्सवम् ॥ ११ ॥

हम स्वयंवरके लिए निश्चित, यज्ञसेनकी पुत्री उस द्रौपदी और देवमहोत्सवको देखनेको जा रहे हैं ॥ ११ ॥

राजानो राजपुत्राश्च यज्वानो भूरिदक्षिणाः।
स्वाध्यायवन्तः शुचयो महात्मानो यतव्रताः ॥ १२ ॥
तरुणा दर्शनीयाश्च नानादेशसमागताः।
महारथाः कृतास्त्राश्च समुपैष्यन्ति भूमिपाः ॥ १३ ॥

अनेक देशोंसे आए हुए बहुत दक्षिणा देनेवाले, यज्ञशील, स्वाध्यायमें नियुक्त, पवित्र, स्वधर्मनिष्ठ, महात्मा, तरुण अवस्थायुक्त, सुन्दर, अस्त्रविद्यामें पण्डित, महारथी भूमिके पालक राजा एवं राजकुमार उस देवमहोत्सवमें इकट्ठे होंगे ॥ १२–१३ ॥

ते तत्र विविधान्दायान्विजयार्थं नरेश्वराः।
प्रदास्यन्ति धनं गाश्च भक्ष्यं भोज्यं च सर्वशः ॥ १४ ॥

वे राजा उस स्वयंवरके स्थान पर विजयकी आशासे गौ, धन, भक्ष्य, भोज्य आदि दान करने योग्य अनेक सामग्री सब प्रकारसे दान देंगे। ॥ १४ ॥

प्रतिगृह्य च तत्सर्वं दृष्ट्वा चैव स्वयंवरम्।
अनुभूयोत्सवं चैव गमिष्यामो यथेप्सितम् ॥ १५ ॥

हम वह सब यथेच्छ लेकर और स्वयंवर देखकर तथा महोत्सवका आनन्द उठाकर घरको लौट जायेंगे ॥ १५ ॥

नटा वैतालिकाश्चैव नर्तकाः सूतमागधाः।
नियोधकाश्च देशेभ्यः समेष्यन्ति महाबलाः ॥ १६ ॥

स्वयंवर स्थलमें नाना देशोंके नट, भांति भांतिके वेश धरनेवाले, वैतालिक-मंगल गानवाले, सूत–पुराणकी कथा कहनेवाले, मगध–बलकी सूचना देनेवाले, महाबली पहलवान और नाचनेवाले आवेंगे ॥ १६ ॥

एवं कौतूहलं कृत्वा दृष्ट्वा च प्रतिगृह्य च।
सहास्माभिर्महात्मानः पुनः प्रतिनिवर्त्स्यथ ॥ १७ ॥

हे महात्माओ! आप भी दान लेकर, उस आश्चर्यजनक महोत्सवके आनन्दको भोगकर फिर हम लोगोंके संग लौट चलिए ॥ १७ ॥

दर्शनीयांश्च वः सर्वान्देवरूपानवस्थितान् ।
समीक्ष्य कृष्णा वरयेत्संगत्यान्यतमं वरम् ॥ १८ ॥

देवोंकी भांति रूपवाले एवं सुन्दर आप लोगोंको आया हुआ देखकर हो सकता है कि द्रौपदी आप लोगोंमेंसे किसी श्रेष्ठको वरण भी कर ले ॥ १८ ॥

अयं भ्राता तव श्रीमान्दर्शनीयो महाभुजः ।
नियुध्यमानो विजयेत्संगत्या द्रविणं बहु ॥ १९ ॥

आपके ये भाई महाभुज श्रीमान् और दर्शनयोग्य कार्य कुशल दीखते हैं। ये अपने शत्रुओंके साथ युद्ध करते हुए बहुत सा धन भी प्राप्त कर सकते हैं ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

परमं भो गमिष्यामो द्रष्टुं देवमहोत्सवम् ।
भवद्भिः सहिताः सर्वे कन्यायास्तं स्वयंवरम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥ ५८१३ ॥

युधिष्ठिर बोले— अच्छी बात है, हम सब आप लोगोंके साथ उस कन्या द्रौपदीके उस स्वयं-वर एवं देवमहोत्सवको देखने चलेंगे ॥ २० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ पिचहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७५ ॥ ५८१३ ॥

: १७६ :

वैशंपायन उवाच

एवमुक्ताः प्रयातास्ते पाण्डवा जनमेजय ।
राज्ञा दक्षिणपाञ्चालान्द्रुपदेनाभिरक्षितान् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— हे जनमेजय ! पाण्डव लोग ब्राह्मणोंसे वह सब बातें सुनकर राजा द्रुपदके द्वारा शासित दक्षिणी पाञ्चाल देशमें गए ॥ १ ॥

ततस्ते तं महात्मानं शुद्धात्मानमकल्मषम् ।
ददृशुः पाण्डवा राजन्पथि द्वैपायनं तदा ॥ २ ॥

तब उन पाण्डवोंने पथमें पापके स्पर्शसे रहित विशुद्ध आत्मावाले महात्मा मुनि द्वैपायनको देखा ॥ २ ॥

तस्मै यथावत्सत्कारं कृत्वा तेन च सान्त्विताः ।
कथान्ते चाभ्यनुज्ञाताः प्रययुर्द्रुपदक्षयम् ॥ ३ ॥

उन्होंने विधिपूर्वक उनकी पूजा की और वे भी उनसे सांत्वित होकर नाना वार्तालापके बाद उनकी आज्ञासे द्रुपदके भवनकी ओर चले ॥ ३ ॥

पश्यन्तो रमणीयानि वनानि च सरांसि च ।
तत्र तत्र वसन्तश्च शनैर्जग्मुर्महारथाः ॥ ४ ॥

वे महारथी सुन्दर सुन्दर वन और ताल देखते हुए तथा उन स्थानोंमें ठहरते हुए धीरे धीरे चले गये ॥ ४ ॥

स्वाध्यायवन्तः शुचयो मधुराः प्रियवादिनः ।
आनुपूर्व्येण संप्राप्ताः पाञ्चालान्कुरुनन्दनाः ॥ ५ ॥

स्वाध्यायमें नियुक्त, अच्छे, पवित्र, सुन्दर–दर्शन, मीठी वाणी बोलनेवाले, महारथी कुरु-नन्दन इस प्रकार चलते हुए पांचाल देश पहुंचे ॥ ५ ॥

ते तु दृष्ट्वा पुरं तच्च स्कन्धावारं च पाण्डवाः ।
कुम्भकारस्य शालायां निवेशं चक्रिरे तदा ॥ ६ ॥

वे पांडव पाञ्चाल नगर और वहांके सैनिकछावनियों देखकर एक कुम्हारके घरमें रहने लगे ॥ ६ ॥

तत्र भैक्ष्यं समाजह्रुर्ब्राह्मीं वृत्तिं समाश्रिताः ।
तांश्च प्राप्तांस्तदा वीराञ्जज्ञिरे न नराः क्वचित् ॥ ७ ॥

वहां वे ब्राह्मणकी वृत्तिका सहारा लेकर भीख मांग मांग कर टिके रहे; अतः यज्ञमें आये हुए उन वीरोंको किसीने नहीं जाना ॥ ७ ॥

यज्ञसेनस्य कामस्तु पाण्डवाय किरीटिने ।
कृष्णां दद्यामिति सदा न चैतद्विवृणोति सः ॥ ८ ॥

राजा यज्ञसेनकी सदा यह कामना रहती थी, " मैं पाण्डुपुत्र किरीटी अर्जुनको ही कन्याका दान करूं " पर उन्होंने यह बात किसीसे प्रगट नहीं की ॥ ८ ॥

सोऽन्वेषमाणः कौन्तेयान्पाञ्चाल्यो जनमेजय ।
दृढं धनुरनायम्यं कारयामास भारत ॥ ९ ॥

हे जनमेजय ! उन पांचाल देशके राजा द्रुपदने कुन्ती पुत्रोंको ढूंढनेकी इच्छासे ऐसा एक दृढ धनुष बनवाया, कि जिसे अर्जुनके सिवाय कोई दूसरा झुका न सके ॥ ९ ॥

यन्त्रं वैहायसं चापि कारयामास कृत्रिमम् ।
तेन यन्त्रेण सहितं राजा लक्ष्यं च काञ्चनम् ॥ १० ॥

और आकाशमें स्थित एक कृत्रिम यंत्र भी बनवाया उस यंत्रमें एक सोनेका लक्ष्य जुड-वाया ॥ १० ॥

द्रुपद उवाच

इदं सज्यं धनुः कृत्वा सज्येनानेन सायकैः ।
अतीत्य लक्ष्यं यो वेद्धा स लब्धा मत्सुतामिति ॥ ११ ॥

द्रुपद बोले— जो राजा इस धनुष पर डोरी चढाकर बाणोंसे उस लक्ष्यको विद्ध करेंगे वही मेरी कन्याको प्राप्त करेंगे ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच

इति स द्रुपदो राजा सर्वतः समघोषयत् ।
तच्छ्रुत्वा पार्थिवाः सर्वे समीयुस्तत्र भारत ॥ १२ ॥

वैशम्पायन बोले— हे भारत ! राजा द्रुपदने इस प्रकार चारों ओर घोषणा करवायी, सब राजा लोग उसे सुनकर वहां आये ॥ १२ ॥

ऋषयश्च महात्मानः स्वयंवरदिदृक्षया ।
दुर्योधनपुरोगाश्च सकर्णाः कुरवो नृप ॥ १३ ॥

नाना देशोंसे महात्मा महर्षिलोग, कर्ण तथा दुर्योधनादि कौरव स्वयंवरको देखनेकी इच्छासे आ पहुंचे ॥ १३ ॥

ब्राह्मणाश्च महाभागा देशेभ्यः समुपागमन् ।
तेऽभ्यर्चिता राजगणा द्रुपदेन महात्मना ॥ १४ ॥

महात्मा द्रुपदसे पूजित होकर नाना देशोंसे महाभाग ब्राह्मण तथा राजागण आए ॥ १४ ॥

ततः पौरजनाः सर्वे सागरोद्भूतनिःस्वनाः ।
शिशुमारपुरं प्राप्य न्यविशंस्ते च पार्थिवाः ॥ १५ ॥

तदनन्तर पुरवासी तथा राजागण लोग महासमुद्रसे उठती हुई लहरकी भांति बडा कोलाहल मचाते हुए द्रौपदीके स्वयंवरको देखनेकी इच्छासे शिशुमार नगरमें पहुंच गए ॥ १५ ॥

प्रागुत्तरेण नगराद्भूमिभागे समे शुभे ।
समाजवाटः शुशुभे भवनैः सर्वतो वृतः ॥ १६ ॥

नगरके ईशान कोनमें अच्छी समभूमि पर चारों ओर की बाडेसे घिरी हुई स्वयंवरकी सभा शोभा पा रही थी ॥ १६ ॥

प्राकारपरिखोपेतो द्वारतोरणमण्डितः ।
वितानेन विचित्रेण सर्वतः समवस्तृतः ॥ १७ ॥

वह सभा खन्दक और प्राचीरोंसे घिरी, द्वार तोरणसे शोभित, सर्वत्र विचित्र मण्डपोंसे सजी हुई ॥ १७ ॥

तूर्यौघशतसंकीर्णः परार्ध्यागुरुधूपितः।
चन्दनोदकसिक्तश्च माल्यदामैश्च शोभितः ॥ १८ ॥

सैंकडों तूर्योंकी ध्वनिसे गूंजती हुई, अच्छे अगुरुकी गन्धसे सुगन्धित, चन्दनके जलसे अभिषिक्त और फूलके हारोंसे भली प्रकार सुशोभित थी ॥ १८ ॥

कैलासशिखरप्रख्यैर्नभस्तलविलेखिभिः।
सर्वतः संवृतैर्नद्धः प्रासादैः सुकृतोच्छ्रितैः ॥ १९ ॥

कैलासकी चोटीकी भांति आकाशको चूमनेवाले ऊंचे बडे बडे शुभ्र भवनोंसे वह सभास्थल घिरा हुआ था ॥ १९ ॥

सुवर्णजालसंवीतैर्मणिकुट्टिमभूषितैः।
सुखारोहणसोपानैर्महासनपरिच्छदैः ॥ २० ॥

वे भवन सोनेके जालसे सजेधजे, मणिमय फर्शोंसे सुहावने, अच्छे अच्छे आसन और साजोंसे बनेठने, चढनेमें सुखदायी सीढीयुक्त ॥ २० ॥

अग्राम्यसमवच्छन्नैरगुरूत्तमवासितैः।
हंसाच्छवर्णैर्बहुभिरायोजनसुगन्धिभिः ॥ २१ ॥

हंसकीके रंगकी भांति शुभ सुन्दर वस्त्रोंसे आच्छादित, अगरुकी उत्तम सुगन्धिसे सुगंधित सब भवनोंकी सुगन्धी योजन भरकी दूरीसे भी अनुभव की जा सकती थी ॥ २१ ॥

असंबाधशतद्वारैः शयनासनशोभितैः।
बहुधातुपिनद्धाङ्गैर्हिमवच्छिखरैरिव ॥ २२ ॥

शय्या और आसनोंसे सुशोभित, हिमाचलकी चोटिकी भांति धातुओंसे रंगे उन सब भवनोंके सैंकडों द्वार इतने लम्बे चौडे थे, कि एक साथ बहुत लोगोंके जानेसे भी एक दूसरेको बाधा नहीं होती थी ॥ २२ ॥

तत्र नानाप्रकारेषु विमानेषु स्वलंकृताः।
स्पर्धमानास्तदान्योन्यं निषेदुः सर्वपार्थिवाः ॥ २३ ॥

सब राजा अच्छे प्रकारसे अलंकृत होकर और एक दूसरेसे स्पर्धा करते हुए उन सब भांति भांतिके भवनोंमें जा बैठे ॥ २३ ॥

तत्रोपविष्टान्ददृशुर्महासत्त्वपराक्रमान्।
राजसिंहान्महाभागान्कृष्णागुरुविभूषितान् ॥ २४ ॥

लोगोंने वहां बैठे हुए बलशाली, अति पराक्रमी, महान् ऐश्वर्यवाले और कृष्ण अगरुसे विभूषित श्रेष्ठ राजाओंको देखा ॥ २४ ॥

महाप्रसादान्ब्रह्मण्यान्स्वराष्ट्रपरिरक्षिणः ।
प्रियान्सर्वस्य लोकस्य सुकृतैः कर्मभिः शुभैः ॥ २५ ॥

वहां बैठे हुए महा दयालु, ब्राह्मणोंका हित करनेवाले, अपने राष्ट्रोंकी हरतरहसे रक्षा करनेवाले, उत्तम प्रकारसे किए जानेवाले कर्मोंके कारण सभीके लोकप्रिय हुए हुए राजाओंको देखा ॥ २५ ॥

मञ्चेषु च परार्घ्येषु पौरजानपदा जनाः ।
कृष्णादर्शनतुष्ट्यर्थं सर्वतः समुपाविशन् ॥ २६ ॥

वे पुरवासी सभी जन बहुत मूल्यवान् आसनों पर द्रौपदीके दर्शनरूपी आनन्द प्राप्त करनेके लिए बैठ गए ॥ २६ ॥

ब्राह्मणैस्ते च सहिताः पाण्डवाः समुपाविशन् ।
ऋद्धिं पाञ्चालराजस्य पश्यन्तस्तामनुत्तमाम् ॥ २७ ॥

वे पाण्डवलोग भी ब्राह्मणसमाजके साथ एकत्र बैठकर राजा पाञ्चालके अद्वितीय ऐश्वर्यको देखते हुए वहां बैठ गए ॥ २७ ॥

ततः समाजो ववृधे स राजन्दिवसान्बहून् ।
रत्नप्रदानबहुलः शोभितो नटनर्तकैः ॥ २८ ॥

नट और नाचनेवालोंके नाच आदि और दाताओंके अनेक धन रत्नोंके दानसे सुशोभित वह सभा बहुत दिनोंतक इस प्रकारसे बढने लगी ॥ २८ ॥

वर्तमाने समाजे तु रमणीयेऽह्नि षोडशे ।
आप्लुताङ्गी सुवसना सर्वाभरणभूषिता ॥ २९ ॥
वीरकांस्यमुपादाय काञ्चनं समलंकृतम् ।
अवतीर्णा ततो रङ्गं द्रौपदी भरतर्षभ ॥ ३० ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! सोलहवें दिन इस सुन्दर समाजकी उपस्थितिमें नहा धोकर और सर्व आभूषणोंसे बन ठनके सुन्दर वस्त्र पहिने सुशोभित सोनेवाली वरमाला लेकर द्रौपदी उस सुन्दर रंगभूमिपर उपस्थित हुई ॥ २९-३० ॥

पुरोहितः सोमकानां मंत्रविद्ब्राह्मणः शुचिः ।
परिस्तीर्य जुहावाग्निमाज्येन विधिना तदा ॥ ३१ ॥

तब सोमवंशके पुरोहित मन्त्रज्ञ ब्राह्मणने शुद्ध होकर अग्निको फैलाकर यथाविधि अग्निमें घृतकी आहुति दी ॥ ३१ ॥

स तर्पयित्वा ज्वलनं ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च।
वारयामास सर्वाणि वादित्राणि समन्ततः ॥ ३२ ॥

हविसे हविभक्षी अग्निको प्रसन्न कर और ब्राह्मणोंसे स्वस्ति कहलवाकर चारों ओर बजनेवाले बाजोंकी ध्वनिको रोका ॥ ३२ ॥

निःशब्दे तु कृते तस्मिन्धृष्टद्युम्नो विशां पते।
रङ्गमध्यगतस्तत्र मेघगम्भीरया गिरा।
वाक्यमुच्चैर्जगादेदं श्लक्ष्णमर्थवदुत्तमम् ॥ ३३ ॥

हे पृथ्वीनाथ! तदनन्तर सभाके चुप हो जाने पर धृष्टद्युम्नने रंगमंचपर खडे होकरके मेघके समान गंभीर वाणीसे अर्थयुक्त मनोहर यह बात बडे जोरसे कही ॥ ३३ ॥

इदं धनुर्लक्ष्यमिमे च बाणाः शृण्वन्तु मे पार्थिवाः सर्व एव।
यन्त्रच्छिद्रेणाभ्यतिक्रम्य लक्ष्यं समर्पयध्वं खगमैर्दशार्धैः ॥ ३४ ॥

सभी उपस्थित भूपाल सुने, यह शरासन, ये तेज बाण और आकाशमें स्थित लक्ष्य दीख पडता है, यंत्रके छेदमेंसे निकल कर आकाशमें जानेवाले इन दसके आधे अर्थात् पांच बाणोंसे लक्ष्यको विद्ध कीजिए ॥ ३४ ॥

एतत्कर्ता कर्म सुदुष्करं यः कुलेन रूपेण बलेन युक्तः।
तस्याद्य भार्या भगिनी ममेयं कृष्णा भवित्री न मृषा ब्रवीमि ॥ ३५ ॥

रूपवान् बली, कुलीन जो राजा इस महत् कार्यको पूरा करेगा, मेरी बहिन यह कृष्णा आज उसकी भार्या होगी, मैं यह झूठ नहीं कहता ॥ ३५ ॥

तानेवमुक्त्वा द्रुपदस्य पुत्रः पश्चादिदं द्रौपदीमभ्युवाच।
नाम्ना च गोत्रेण च कर्मणा च संकीर्तयंस्तान्नृपतीन्समेतान् ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥ ५८४९ ॥

द्रुपदके कुमार धृष्टद्युम्न आये हुए उन भूपालोंसे यह कर उनके नाम, गोत्र और कर्मको सुना कर बहिन द्रौपदीसे कहने लगे ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ छियहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७६ ॥ ५८४९ ॥

: १७७ :

धृष्टद्युम्न उवाच

दुर्योधनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुष्प्रधर्षणः ।
विविंशतिर्विकर्णश्च सहो दुःशासनः समः ॥ १ ॥

धृष्टद्युम्न बोले— दुर्योधन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुष्प्रधर्षण, विविंशति, विकर्ण, सह, दुःशासन सम ॥ १ ॥

युयुत्सुर्वातवेगश्च भीमवेगधरस्तथा ।
उग्रायुधो बलाकी च कनकायुर्विरोचनः ॥ २ ॥

युयुत्सु और वातवेग तथा भीमवेगधर, उग्रायुध और बलाकी, कनकायु, विरोचन ॥ २ ॥

सुकुण्डलश्चित्रसेनः सुवर्चाः कनकध्वजः ।
नन्दको बाहुशाली च कुण्डजो विकटस्तथा ॥ ३ ॥

सुकुण्डल, चित्रसेन, सुवर्चा, कनकध्वज, नन्दक और बाहुशाली, कुण्डज तथा विकट ॥ ३ ॥

एते चान्ये च बहवो धार्तराष्ट्रा महाबलाः ।
कर्णेन सहिता वीरास्त्वदर्थं समुपागताः ।
शतसंख्या महात्मानः प्रथिताः क्षत्रियर्षभाः ॥ ४ ॥

यह सब और दूसरे भी बहुतसे महाबली और वीर धृतराष्ट्रकुमार कर्णके साथ तुम्हारे लिये आये हुए हैं और सैंकडोंकी संख्यामें क्षत्रियश्रेष्ठ महात्मा राजालोग उपस्थित हुए हैं ॥४॥

शकुनिश्च बलश्चैव वृषकोऽथ बृहद्बलः ।
एते गान्धारराजस्य सुताः सर्वे समागताः ॥ ५ ॥

शकुनि और बल, वृषक और बृहद्बल, यह सब गान्धारराजके पुत्र भी आये हुए हैं ॥ ५ ॥

अश्वत्थामा च भोजश्च सर्वशस्त्रभृतां वरौ ।
समवेतौ महात्मानौ त्वदर्थे समलंकृतौ ॥ ६ ॥

सभी अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महात्मा अश्वत्थामा और भोज अलंकृत होकर तुम्हारे लिये आये हैं ॥ ६ ॥

बृहन्तो मणिमांश्चैव दण्डधारश्च वीर्यवान् ।
सहदेवो जयत्सेनो मेघसन्धिश्च मागधः ॥ ७ ॥

बृहन्त और मणिमान् , वीर्यवान् दण्डधर, सहदेव, जयत्सेन, मेघसन्धि और मगधराज ॥७॥

विराटः सह पुत्राभ्यां शङ्खेनैवोत्तरेण च।
वार्धक्षेमिः सुवर्चाश्च सेनाबिन्दुश्च पार्थिवः ॥ ८ ॥

शंख और उत्तर नामक दो पुत्रोंके साथ विराट्, वार्धक्षेमि और सुवर्चा और राजा सेनाबिन्दु ॥ ८ ॥

अभिभूः सह पुत्रेण सुदाम्ना च सुवर्चसा।
सुमित्रः सुकुमारश्च वृकः सत्यधृतिस्तथा ॥ ९ ॥

सुवर्च और सुदामा नामक दो पुत्रोंके साथ अभिभू, सुमित्र और सुकुमार, वृक और सत्यधृति ॥ ९ ॥

सूर्यध्वजो रोचमानो नीलश्चित्रायुधस्तथा।
अंशुमांश्चेकितानश्च श्रेणिमांश्च महाबलः ॥ १० ॥

सूर्यध्वज, रोचमान, नील और चित्रायुध, अंशुमान् और चेकितान तथा महाबली श्रेणिमान् ॥ १० ॥

समुद्रसेनपुत्रश्च चन्द्रसेनः प्रतापवान्।
जलसन्धः पितापुत्रौ सुदण्डो दण्ड एव च ॥ ११ ॥

समुद्रसेनके पुत्र प्रतापी चन्द्रसेन, जलसन्ध, सुदण्ड और दण्ड यह दो पिता पुत्र ॥ ११ ॥

पौण्ड्रको वासुदेवश्च भगदत्तश्च वीर्यवान्।
कलिङ्गस्ताम्रलिप्तश्च पत्तनाधिपतिस्तथा ॥ १२ ॥

पौण्ड्रक वासुदेव, वीर्यवान् भगदत्त, कलिंग और ताम्रलिप्त तथा पत्तनाधिपति ॥ १२ ॥

मद्रराजस्तथा शल्यः सहपुत्रो महारथः।
रुक्माङ्गदेन वीरेण तथा रुक्मरथेन च ॥ १३ ॥

पुत्रके साथ महारथी मद्रराज शल्य, वीर रुक्माङ्गद और रुक्मरथके साथ ॥ १३ ॥

कौरव्यः सोमदत्तश्च पुत्राश्चास्य महारथाः।
समवेतास्त्रयः शूरा भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥ १४ ॥

और कुरुकुलमें उत्पन्न सोमदत्त, सोमदत्तके पुत्र, महारथी भूरि, भूरिश्रवा और शल इकट्ठे हुए ये तीन वीर ॥ १४ ॥

सुदक्षिणश्च काम्बोजो दृढधन्वा च कौरवः।
बृहद्बलः सुषेणश्च शिविरौशीनरस्तथा ॥ १५ ॥

सुदक्षिण और काम्बोज, कुरुवंशमें उत्पन्न दृढधन्वा, बृहद्बल, सुषेण तथा औशीनर, शिबि ॥ १५ ॥

संकर्षणो वासुदेवो रौक्मिणेयश्च वीर्यवान् ।
साम्बश्च चारुदेष्णश्च सारणोऽथ गदस्तथा ॥ १६ ॥

बलदेव, वसुदेवके पुत्र कृष्ण, रुक्मिणीका वीर्यवान् पुत्र प्रद्युम्न, साम्ब, चारुदेष्ण, सारण और गद ॥ १६ ॥

अक्रूरः सात्यकिश्चैव उद्धवश्च महाबलः ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः पृथुर्विपृथुरेव च ॥ १७ ॥

अक्रूर, सात्यकि और महाबली उद्धव, कृतवर्मा, हार्दिक्य, पृथु और विपृथु ॥ १७ ॥

विडूरथश्च कङ्कश्च समीकः सारमेजयः ।
वीरो वातपतिश्चैव झिल्ली पिण्डारकस्तथा ।
उशीनरश्च विक्रान्तो वृष्णयस्ते प्रकीर्तिताः ॥ १८ ॥

विडूरथ, कंक, समीक, सारमेजय, वीर वातपति और झिल्लि तथा पिण्डारक, विक्रमी उशीनर यह सब वृष्णि कहे जाते हैं ॥ १८ ॥

भगीरथो बृहत्क्षत्रः सैन्धवश्च जयद्रथः ।
बृहद्रथो बाह्लिकश्च श्रुतायुश्च महारथः ॥ १९ ॥

भगीरथ, बृहत्क्षत्र और सिन्धुराज जयद्रथ, बृहद्रथ और बाह्लिक, महारथी श्रुतायु ॥ १९ ॥

उलूकः कैतवो राजा चित्राङ्गदशुभाङ्गदौ ।
वत्सराजश्च धृतिमान्कोसलाधिपतिस्तथा ॥ २० ॥

उलूक, कैतव, चित्राङ्गद, शुभाङ्गद, धृतिमान् वत्सराज तथा कोशलाधिप ॥ २० ॥

एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ।
त्वदर्थमागता भद्रे क्षत्रियाः प्रथिता भुवि ॥ २१ ॥

हे भद्रे ! भूमण्डलमें प्रसिद्ध विक्रमी यह सब राजा और क्षत्रियवंशी नाना नगरोंके स्वामी तुम्हारे लिये आए हैं ॥ २१ ॥

एते वेत्स्यन्ति विक्रान्तास्त्वदर्थं लक्ष्यमुत्तमम् ।
विध्येत य इमं लक्ष्यं वरयेथाः शुभेऽद्य तम् ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥ ५८७१ ॥

य वीर तेरे लिए इस अच्छे उत्तम लक्ष्यका भेद करेंगे । हे शुभे ! जो इस लक्ष्यको विद्ध करें उनको तुम आज वरण करना ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सतहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७७ ॥ ५८७१ ॥

: १७८ :

वैशम्पायन उवाच

तेऽलंकृताः कुण्डलिनो युवानः परस्परं स्पर्धमानाः समेताः ।
अस्त्रं बलं चात्मनि मन्यमानाः सर्वे समुत्पेतुरहंकृतेन ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— तदनन्तर कुण्डलादि अलंकारोंसे सजे हुए युवा नरेन्द्रगण सभी कोई अपनेको अस्त्रविद्यामें पण्डित और बली समझकर एक दूसरेसे स्पर्धा करते हुए अहंकारके साथ अस्त्र ले करके खडे हुए ॥ १ ॥

रूपेण वीर्येण कुलेन चैव धर्मेण चैवापि च यौवनेन ।
समृद्धदर्पा मदवेगभिन्ना मत्ता यथा हैमवता गजेन्द्राः ॥ २ ॥

धर्म तथा यौवन, कुल, शील, रूप और वीर्यके कारण उनका अभिमान मदस्रावके कारण विदीर्ण हुए मस्तकसे युक्त हिमालयके मस्त हाथियोंके समान प्रदीप्त हो गया था ॥ २ ॥

परस्परं स्पर्धया प्रेक्षमाणाः संकल्पजेनापि परिप्लुताङ्गाः ।
कृष्णा ममैषेत्यभिभाषमाणा नृपासनेभ्यः सहसोपतस्थुः ॥ ३ ॥

वे स्पर्धासे एक दूसरेको निहारते हुए, कामदेवसे संतप्त हुए शरीरवाले वे "द्रौपदी मेरी ही होगी" इस प्रकार कहते हुए एकदम राजासनसे उठ कर खडे हो गए ॥ ३ ॥

ते क्षत्रिया रङ्गगताः समेता जिगीषमाणा द्रुपदात्मजां ताम् ।
चकाशिरे पर्वतराजकन्यामुमां यथा देवगणाः समेताः ॥ ४ ॥

रङ्गभूमिमें उतरे हुए क्षत्रिय लोग द्रुपदकन्याको जीतनेकी इच्छासे उसके चारों ओर खडे होकर ऐसे शोभित हुए जैसे देवोंने गिरिराज पुत्री उमाको घेर लिया था ॥ ४ ॥

कन्दर्पबाणाभिनिपीडिताङ्गाः कृष्णागतैस्ते हृदयैर्नरेन्द्राः ।
रङ्गावतीर्णा द्रुपदात्मजार्थं द्वेष्यान्हि चक्रुः सुहृदोऽपि तत्र ॥ ५ ॥

कृष्णाके लिए आये हुए तथा द्रौपदीकी प्राप्तिके लिए रंगमंच पर आए हुए वे राजा कामदेवके बाणोंसे पीडित होकर द्रौपदीके लाभकी आशासे हृदयमें उसीका ध्यान कर प्रिय मित्रोंसे भी द्वेष करने लगे ॥ ५ ॥

अथाययुर्देवगणा विमानै रुद्रादित्या वसवोऽथाश्विनौ च ।
साध्याश्च सर्वे मरुतस्तथैव यमं पुरस्कृत्य धनेश्वरं च ॥ ६ ॥

तदनन्तर रुद्रगण, आदित्यगण, वसुगण, दोनों अश्विनीकुमार, साध्यगण, सभी मरुद्गण, यमराज, कुबेर और संपूर्ण देवगण रथों पर चढकर वहां आये ॥ ६ ॥

दैत्याः सुपर्णाश्च महोरगाश्च देवर्षयो गुह्यकाश्चारणाश्च ।
विश्वावसुर्नारदपर्वतौ च गन्धर्वमुख्याश्च सहाप्सरोभिः ॥ ७ ॥

दैत्यगण, सुपर्णगण, महासर्पगण, देवर्षिगण, गुह्यकगण, चारणगण, विश्वावसु, नारद, ऋषि पर्वत और अप्सराओंके साथ प्रधान प्रधान गन्धर्व भी वहां आ पहुंचे ॥ ७ ॥

हलायुधस्तत्र च केशवश्च वृष्ण्यन्धकाश्चैव यथा प्रधानाः ।
प्रेक्षां स्म चक्रुर्यदुपुङ्गवास्ते स्थिताश्च कृष्णस्य मते बभूवुः ॥ ८ ॥

हलायुध बलराम, कृष्ण और कृष्णके मतको माननेवाले प्रधान प्रधान वृष्णिगण, अन्धकगण और यादवगण वहां खडे होकर इधर उधर देखने लगे ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा हि तान्मत्तगजेन्द्ररूपान्पञ्चाभिपद्मानिव वारणेन्द्रान् ।
भस्मावृताङ्गानिव हव्यवाहान्पार्थान्प्रदध्यौ स यदुप्रवीरः ॥ ९ ॥

यदुवीरोंमें प्रधान कृष्ण पद्मकी ओर दौडते हुए मत्त गजराजकी भांति द्रौपदीकी ओर मुख किये और भस्मसे आच्छादित अग्निके सदृश उन उन्मत्त हस्तीके समान पांच पाण्डवोंको देखकर सोचने लगे ॥ ९ ॥

शशंस रामाय युधिष्ठिरं च भीमं च जिष्णुं च यमौ च वीरौ ।
शनैः शनैस्तांश्च निरीक्ष्य रामो जनार्दनं प्रीतमना ददर्श ॥ १० ॥

और बलदेवसे बोले, कि मुझको जान पडता है, कि यह युधिष्ठिर, यह भीम, यह अर्जुन, यह नकुल और यह सहदेव हैं । बलदेवने भी धीरे धीरे उनको देखकर प्रसन्न हृदयसे जनार्दनकी ओर देखा ॥ १० ॥

अन्ये तु नानानृपपुत्रपौत्राः कृष्णागतैर्नेत्रमनःस्वभावैः ।
व्यायच्छमाना ददृशुर्भ्रमन्तीं संदष्टदन्तच्छदताम्रवक्त्राः ॥ ११ ॥

दूसरे वीर राजपौत्र और राजपुत्र लोग चेहरेको लाल कर, होठोंको काटते हुए द्रौपदीकी ओर मन और नेत्र अर्पण कर द्रौपदीको ही देखने लगे; पाण्डवोंकी ओर उनकी दृष्टि भी नहीं पडी ॥ ११ ॥

तथैव पार्थाः पृथुबाहवस्ते वीरौ यमौ चैव महानुभावौ ।
तां द्रौपदीं प्रेक्ष्य तदा स्म सर्वे कन्दर्पबाणाभिहता बभूवुः ॥ १२ ॥

विशाल भुजाओंवाले पृथापुत्र युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा महानुभाव वीर नकुल और सहदेव यह सब भी उस समय द्रौपदीको देखकर मदनबाणसे घायल हो गए ॥ १२ ॥

देवर्षिगन्धर्वसमाकुलं तत्सुपर्णनागासुरसिद्धजुष्टम् ।
दिव्येन गन्धेन समाकुलं च दिव्यैश्च माल्यैरवकीर्यमाणम् ॥ १३ ॥

तब दिव्य गन्धसे भरे हुए, दिव्य फूलोंसे बिखेरे हुए, सर्वत्र देव, ऋषि, गन्धर्व, सुपर्ण, नाग, असुर और सिद्धोंसे भर जानेके कारण ॥ १३ ॥

महास्वनैर्दुन्दुभिनादितैश्च बभूव तत्संकुलमन्तरिक्षम् ।
विमानसंबाधमभूत्समन्तात्सवेणुवीणापणवानुनादम् ॥ १४ ॥

वेणु, वीणा, पणव आदिकी ध्वानिके संयुक्त और बडे बडे नगाडोंके शब्दसे गूंजते हुए उस स्थानका आकाश बहुत छोटा हो गया और रथोंमें आपसकी रुकावट होने लगी ॥१४॥

ततस्तु ते राजगणाः क्रमेण कृष्णानिमित्तं नृप विक्रमन्तः ।
तत्कार्मुकं संहननोपपन्नं सज्यं न शेकुस्तरसापि कर्तुम् ॥ १५ ॥

इसके बाद ये सब राजा द्रौपदीके लिये क्रमशः विक्रम प्रगट करने लगे। पर वे सब राजा बडे भारी उस धनुषमें डोरी चढानेमें भी समर्थ नहीं हो पाए ॥ १५ ॥

ते विक्रमन्तः स्फुरता दृढेन निष्कृष्यमाणा धनुषा नरेन्द्राः ।
विचेष्टमाना धरणीतलस्था दीना अदृश्यन्त विभग्नचित्ताः ॥ १६ ॥

उन्होंने अपनी शक्तिसे फूलकर ज्यों धनुष नवाने और उसपर गुण चढानेका विक्रम प्रगट किया, त्योंही उसी क्षण धनुषकी नोंकसे फेंके जाकर धरती पर लोटने लगे और बडे दीन दीखने लगे ॥ १६ ॥

हाहाकृतं तद्धनुषा दृढेन निष्पिष्टभग्नाङ्गदकुण्डलं च ।
कृष्णानिमित्तं विनिवृत्तभावं राज्ञां तदा मण्डलमार्तमासीत् ॥ १७ ॥

तब कठिन धनुषके कारण हाहाकार करनेवाले अलंकारोंसे च्युत वे भूपगण द्रौपदीकी आशा छोड कर हाय हाय करने लगे। और तब राजाओंका वह मण्डल बहुत ही दुःखी दिखाई देने लगा ॥ १७ ॥

तस्मिंस्तु सम्भ्रान्तजने समाजे निक्षिप्तवादेषु नराधिपेषु ।
कुन्तीसुतो जिष्णुरियेष कर्तुं सज्यं धनुस्तत्सशरं स वीरः ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥ ५८८९ ॥

इसके बाद सब राजा लोगोंके भ्रांतचित्त होनेपर और सब राजाओंके घमंडकी बातें कम होनेपर उस कुन्तीपुत्र वीर अर्जुनने उस धनुषपर डोरी चढाने और उसमें बाण जोडनेकी इच्छा की ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ अठहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७८ ॥ ॥ ५८८९ ॥

: १७९ :

वैशम्पायन उवाच

यदा निवृत्ता राजानो धनुषः सज्यकर्मणि ।
अथोदतिष्ठद्विप्राणां मध्याज्जिष्णुरुदारधीः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— तदनन्तर जब राजा उस शरासन पर डोरी चढानेके काममें हारकर बैठ गए, तब उदारचित्त जिष्णु अर्जुन ब्राह्मण-समाजके बीचसे उठ खडे हुए ॥ १ ॥

उदक्रोशन्विप्रमुख्या विधुन्वन्तोऽजिनानि च ।
दृष्ट्वा संप्रस्थितं पार्थमिन्द्रकेतुसमप्रभम् ॥ २ ॥

तब प्रधान प्रधान ब्राह्मण लोग इन्द्रकेतुके समान तेजस्वी अर्जुनको जाते देखकर मृगचर्म कंपाते हुए कोलाहल मचाने लगे ॥ २ ॥

केचिदासन्विमनसः केचिदासन्मुदा युताः ।
आहुः परस्परं केचिन्निपुणा बुद्धिजीविनः ॥ ३ ॥

कोई कोई दुःखी हुए और दूसरे हर्षयुक्त हुए । कोई कोई बुद्धिमान् निपुण विप्र आपसमें इस प्रकार कहने लगे ॥ ३ ॥

यत्कर्णशल्यप्रमुखैः पार्थिवैर्लोकविश्रुतैः ।
नानतं बलवद्भिर्हि धनुर्वेदपरायणैः ॥ ४ ॥
तत्कथं त्वकृतास्त्रेण प्राणतो दुर्बलीयसा ।
बटुमात्रेण शक्यं हि सज्यं कर्तुं धनुर्द्विजाः ॥ ५ ॥

हे द्विजगण ! जो धनुष धनुर्वेदमें पण्डित, बलवान्, कर्ण और शल्य आदि लोकोंमें प्रशंसित राजाओंके द्वारा नहीं झुकाया जा सका । अस्त्रविद्याको न जाननेवाले, शक्तिमें दुर्बल एक बटु उस धनुष पर डोरी कैसे चढा सकेगा ॥ ४–५ ॥

अवहास्या भविष्यन्ति ब्राह्मणाः सर्वराजसु ।
कर्मण्यस्मिन्नसंसिद्धे चापलादपरीक्षिते ॥ ६ ॥

इस बटुने चपलतासे जिस अनजाने काममें हाथ डाला है, वह पूरा न होगा, तो सभी ब्राह्मण राजाओंमें हंसीके पात्र बनेंगे ॥ ६ ॥

यद्येष दर्पाद्धर्षाद्वा यदि वा ब्रह्मचापलात् ।
प्रस्थितो धनुरायन्तुं वार्यतां साधु मा गमत् ॥ ७ ॥

हे ब्राह्मणो ! यह ब्राह्मणकुमार अहंकार वा कौतूहल अथवा चपलतासे धनुषको झुकाने जा रहा है, तो इसको रोको, वह न जाये तो अच्छा है ॥ ७ ॥

नावहास्या भविष्यामो न च लाघवमास्थिताः ।
न च विद्विष्टतां लोके गमिष्यामो महीक्षिताम् ॥ ८ ॥

किसी किसी ब्राह्मणने कहा– इससे हमारी लघुता नहीं होगी और न हम राजाओंके द्वेषके पात्र या हंसीके पात्र ही होंगे ॥ ८ ॥

केचिदाहुर्युवा श्रीमान्नागराजकरोपमः ।
पीनस्कन्धोरुबाहुश्च धैर्येण हिमवानिव ॥ ९ ॥

कोई कोई बोले– यह युवा पुरुष श्रीमान्, हाथीके सूंडके समान भुजाओंवाला, बडे बडे और मोटे मोटे कंधोंवाला, छातीवाला तथा भुजाओंवाला और धैर्यमें हिमालयकी तरह है ॥ ९ ॥

संभाव्यमस्मिन्कर्मेदमुत्साहाचानुमीयते ।
शक्तिरस्य महोत्साहा न ह्यशक्तः स्वयं व्रजेत् ॥ १० ॥

इनके उत्साहसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह कार्य इनसे पूरा हो सकता है; यह ब्राह्मण बडे उत्साही और शक्तिमान् हैं; इनकी शक्ति न होती, तो यह स्वयं ही कभी नहीं जाते ॥ १० ॥

न च तद्विद्यते किंचित्कर्म लोकेषु यद्भवेत् ।
ब्राह्मणानामसाध्यं च त्रिषु संस्थानचारिषु ॥ ११ ॥

फिर भी तीनों लोकोंमें ऐसा कोई भी कार्य नहीं है, कि जो इन तीनों लोकोंमें संचार करनेवाले ब्राह्मणोंके लिए असाध्य हो ॥ ११ ॥

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च फलाहारा दृढव्रताः ।
दुर्बला हि बलीयांसो विप्रा हि ब्रह्मतेजसा ॥ १२ ॥

कठोर व्रतसे युक्त द्विजातिगण फलाहार, वायुभक्षण अथवा निराहारके कारण देखनेमें दुर्बल होवें भी, तो ब्रह्मतेजसे बलशाली ही होते हैं ॥ १२ ॥

ब्राह्मणो नावमन्तव्यः सद्वासद्वा समाचरन् ।
सुखं दुःखं महद्ध्रस्वं कर्म यत्समुपागतम् ॥ १३ ॥

ब्राह्मण सुकर्म करें वा बुरा कर्म करें, तो भी सुख वा दुःखदायी और महत् वा क्षुद्र किसी भी उपस्थित कार्यमें उनका अनादर करना नहीं चाहिये ॥ १३ ॥

एवं तेषां विलपतां विप्राणां विविधा गिरः ।
अर्जुनो धनुषोऽभ्याशे तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १४ ॥

ब्राह्मणलोगोंके इस प्रकारकी नाना बातें बोलते बोलते अर्जुन धनुषके निकट जाकर पर्वतकी भांति खडे हो गए ॥ १४ ॥

स तद्धनुः परिक्रम्य प्रदक्षिणमथाकरोत् ।
प्रणम्य शिरसा हृष्टो जगृहे च परंतपः ॥ १५ ॥

तदनन्तर धनुषकी चारों ओर प्रदक्षिणा की और शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले अर्जुनने उसे सिर झुकाकर प्रणाम करके प्रसन्न होकर धनुषको उठा लिया ॥ १५ ॥

सज्यं च चक्रे निमिषान्तरेण शरांश्च जग्राह दशार्धसंङ्ख्यान् ।
विव्याध लक्ष्यं निपपात तच्च छिद्रेण भूमौ सहसातिविद्धम् ॥ १६ ॥

और एक क्षणमें ही उसपर डोरी चढायी और दसके आधे अर्थात् पांच बाण लेकर लक्ष्यको भेद दिया । लक्ष्य बहुत विद्ध होकर उसी क्षण यन्त्रकी छेदसे धरती पर गिर गया ॥ १६ ॥

ततोऽन्तरिक्षे च बभूव नादः समाजमध्ये च महान्निनादः ।
पुष्पाणि दिव्यानि ववर्ष देवः पार्थस्य मूर्ध्नि द्विषतां निहन्तुः ॥ १७ ॥

तब आकाश मण्डलमें बहुत बडा नाद हुआ और समाजमें अति कोलाहलकी ध्वनि होने लगी । देवताओंने शत्रुओंको मारनेवाले अर्जुनके सिरपर दिव्य फूल बरसाये ॥ १७ ॥

चेलावेधांस्ततश्चक्रुर्हाहाकारांश्च सर्वशः ।
न्यपतंश्चात्र नभसः समन्तात्पुष्पवृष्टयः ॥ १८ ॥

सब ब्राह्मण प्रसन्न होकर अपने वल्कलको हिलाने लग गए और जो लोग लक्ष्य नहीं भेद कर सके थे; वे चारों ओर हाय हाय करने लगे । आकाशमण्डलसे चारों ओर फूलकी बरसात पडने लगी ॥ १८ ॥

शताङ्गानि च तूर्याणि वादकाश्चाप्यवादयन् ।
सूतमागधसंघाश्च अस्तुवंस्तत्र सुस्वनाः ॥ १९ ॥

बाजेवाले तूर्य यन्त्रको सौओं अन्य बाजोंसे मिलाकर बजाने लगे; और सूत मागध लोग मीठे स्वरसे स्तुति गाने लगे ॥ १९ ॥

तं दृष्ट्वा द्रुपदः प्रीतो बभूवारिनिषूदनः ।
सहसैन्यश्च पार्थस्य साहाय्यार्थमियेष सः ॥ २० ॥

शत्रुमथन करनेवाले राजा द्रुपद अर्जुनको देखकर प्रसन्न हुए; और सेनाओंके साथ उनकी सहायता करनेकी इच्छा की ॥ २० ॥

तस्मिंस्तु शब्दे महति प्रवृत्ते युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
आवासमेवोपजगाम शीघ्रं सार्धं यमाभ्यां पुरुषोत्तमाभ्याम् ॥ २१ ॥

जब वह भारी कोलाहल आरम्भ हो गया, तब धर्मको धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर वेगसे पुरुष-श्रेष्ठ दोनों यमज भाइयोंको लेकर डेरे पर चले गये ॥ २१ ॥

विद्धं तु लक्ष्यं प्रसमीक्ष्य कृष्णा पार्थं च शक्रप्रतिमं निरीक्ष्य ।
आदाय शुक्लं वरमाल्यदाम जगाम कुन्तीसुतमुत्स्मयन्ती ॥ २२ ॥

द्रौपदी पार्थसे लक्ष्यका विद्ध होना देखकर और उनको इन्द्रके सदृश निहार कर शुभ्र वर-माला लेकर मुस्कराती हुई कुन्तीपुत्रके पास जा पहुंची ॥ २२ ॥

स तामुपादाय विजित्य रङ्गे द्विजातिभिस्तैरभिपूज्यमानः ।
रङ्गान्निरक्रामदचिन्त्यकर्मा पत्न्या तया चाप्यनुगम्यमानः ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥ ५९१२ ॥

चिन्तातीत कर्म करनेवाले अर्जुन रंगभूमिमें द्रौपदीको जीतकर द्विजातियोंसे सत्कृत होकर उस रंगभूमिसे निकले; और उनकी पत्नी द्रौपदी भी उनके पीछे जाने लगी ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ उनासीवां अध्याय समाप्त ॥ १७९ ॥ ५९१२ ॥

: १८० :

वैशम्पायन उवाच

तस्मै दित्सति कन्यां तु ब्राह्मणाय महात्मने ।
कोप आसीन्महीपानामालोक्यान्योन्यमन्तिकात् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर राजाके लक्ष्य भेद करनेवाले उस ब्राह्मणको कन्या दान करने-की इच्छा प्रगट करने पर निकट स्थित भूपाल लोग एक दूसरेको देखकर क्रोधित हो गये और कहने लगे ॥ १ ॥

अस्मानयमतिक्रम्य तृणीकृत्य च संगतान्
दातुमिच्छति विप्राय द्रौपदीं योषितां वराम् ॥ २ ॥

कि यह राजा इन सब उपस्थित नरेशोंको तिनकेके समान समझ कर इनका अपमान कर एक ब्राह्मणको स्त्रियोंमें श्रेष्ठ कन्या देनेकी इच्छा करता है ॥ २ ॥

निहन्मैनं दुरात्मानं योऽयमस्मान्न मन्यते ।
न ह्यर्हत्येष सत्कारं नापि वृद्धक्रमं गुणैः ॥ ३ ॥

जो हम लोगोंको अपमानित कर रहा है, इस दुरात्माको हम मार डालें। यह दुराचारी अपने गुणोंके कारण सन्मानका पात्र नहीं है और न वृद्धोंके योग्य आदरका ही पात्र है ॥३॥

हन्मैनं सह पुत्रेण दुराचारं नृपद्विषम् ।
अयं हि सर्वानाहूय सत्कृत्य च नराधिपान् ।
गुणवद्भोजयित्वा च ततः पश्चाद्विनिन्दति ॥ ४ ॥

अतः राजाओंसे द्वेष करनेवाले इस दुरात्माको पुत्रके साथ हम मारें यह उचित है, यह दुरात्मा सम्पूर्ण भूपालोंको बुलवाकर सम्मानके साथ अपूर्व भोजन आदिसे पूजकर अब हमारा अपमान कर रहा है ॥ ४ ॥

अस्मिन्राजसमावाये देवानामिव संनये ।
किमयं सदृशं कंचिन्नृपतिं नैव दृष्टवान् ॥ ५ ॥

देव समुदायके समान इस उपस्थित राजसमुदायमें क्या इसे कोई भी राजा द्रौपदीके योग्य दिखाई नहीं दिया ॥ ५ ॥

न च विप्रेष्वधीकारो विद्यते वरणं प्रति ।
स्वयंवरः क्षत्रियाणामितीयं प्रथिता श्रुतिः ॥ ६ ॥

यह प्रसिद्ध कहावत है, कि स्वयंवर क्षत्रियोंके लिये ही होता है, इसलिए इस वरणके कार्यमें ब्राह्मणको कोई अधिकार नहीं है ॥ ६ ॥

अथवा यदि कन्येयं नेह कंचिद्बुभूषति ।
अग्नावेनां परिक्षिप्य याम राष्ट्राणि पार्थिवाः ॥ ७ ॥

फिर भी यदि यह कन्या किसी राजाको पति न बनाया चाहे, तो इसको जलती हुई आगमें डालकर हम सब राजा अपने अपने राज्योंमें चले जायेंगे ॥ ७ ॥

ब्राह्मणो यदि वा बाल्याल्लोभाद्वा कृतवानिदम् ।
विप्रियं पार्थिवेन्द्राणां नैष वध्यः कथंचन ॥ ८ ॥

इस ब्राह्मणने यद्यपि चपलतासे या लोभसे राजाओंका यह अप्रिय कार्य किया है, तो भी इसको मार डालना किसी प्रकार उचित नहीं है ॥ ८ ॥

ब्राह्मणार्थं हि नो राज्यं जीवितं च वसूनि च ।
पुत्रपौत्रं च यच्चान्यदस्माकं विद्यते धनम् ॥ ९ ॥

क्योंकि हमारा राज्य, धन, जीवन, पुत्र, पौत्र और दूसरे जो कुछ धन है, वह सब ही ब्राह्मणोंके लिये है ॥ ९ ॥

अवमानभयादेतत्स्वधर्मस्य च रक्षणात् ।
स्वयंवराणां चान्येषां मा भूदेवंविधा गतिः ॥ १० ॥

हम यहां युद्ध करेंगे, तो दूसरे स्वयंवरके स्थानोंमें फिर कभी ऐसा नहीं होगा, सब लोग अपमानके भयसे अपने अपने धर्मकी रक्षा करेंगे ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा राजशार्दूला हृष्टाः परिघबाहवः ।
द्रुपदं संजिघृक्षन्तः सायुधाः समुपाद्रवन् ॥ ११ ॥

परिघके समान भुजवाले, सब राजासिंह ऐसी बात कहकर प्रसन्न चित्तसे अस्त्र लेकरके राजा द्रुपदको मारनेके लिये दौडे ॥ ११ ॥

तान्गृहीतशराचापान्क्रुद्धानापततो नृपान् ।
द्रुपदो वीक्ष्य संत्रासाद्ब्राह्मणाञ्शरणं गतः ॥ १२ ॥

द्रुपदने राजाओंको क्रोधित होकर धनुष लिये आते देखकर भयसे ब्राह्मणोंकी शरण ली ॥ १२ ॥

वेगेनापततस्तांस्तु प्रभिन्नानिव वारणान् ।
पाण्डुपुत्रौ महावीर्यौ प्रतीयतुररिन्दमौ ॥ १३ ॥

बडे धनुर्धारी शत्रुदमन पाण्डुनन्दन भीम और अर्जुन भूपालोंको मदोन्मत्त गजोंकी भांति वेगसे दौड कर आते देखकर उनकी ओर चले ॥ १३ ॥

ततः समुत्पेतुरुदायुधास्ते महीक्षितो बद्धतलाङ्गुलित्राः ।
जिघांसमानाः कुरुराजपुत्रावमर्षयन्तोऽर्जुनभीमसेनौ ॥ १४ ॥

उंगलीरक्षक पहिने हुए वह सब राजा क्रोधके मारे अस्त्रशस्त्र उठाकर कुरुराजपुत्र अर्जुन और भीमसेनको मार डालनेके लिये उन पर चढ दौडे ॥ १४ ॥

ततस्तु भीमोऽद्भुतवीर्यकर्मा महाबलो वज्रसमानवीर्यः ।
उत्पाट्य दोर्भ्यां द्रुममेकवीरो निष्पत्रयामास यथा गजेन्द्रः ॥ १५ ॥

तदनन्तर वज्रके समान वीर्यवान्, महाबली, आश्चर्य पराक्रमके कार्य करनेवाले, अद्वितीय वीर भीमसेनने उन्मत्त गजराजकी भांति हाथोंसे एक वृक्ष उखाड कर पत्तोंसे रहित कर दिया ॥ १५ ॥

तं वृक्षमादाय रिपुप्रमाथी दण्डीव दण्डं पितृराज उग्रम् ।
तस्थौ समीपे पुरुषर्षभस्य पार्थस्य पार्थः पृथुदीर्घबाहुः ॥ १६ ॥

फिर शत्रुमंथन करनेवाले विशाल भुजाओंवाले पृथानन्दन भीमने उसी पत्तोंसे खाली पेडको लेकर पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनके साथ इस प्रकार खडे हो गये, कि जैसे यमराज कठोर दण्ड लेकर खडे होते हैं ॥ १६ ॥

तत्प्रेक्ष्य कर्मातिमनुष्यबुद्धेर्जिष्णोः सहभ्रातुरचिन्त्यकर्मा ।
दामोदरो भ्रातरमुग्रवीर्यं हलायुधं वाक्यमिदं बभाषे ॥ १७ ॥

चिन्तातीत कर्म करनेवाले असामान्य बुद्धिमान् जिष्णु अर्जुनके भाई भीमका अलौकिक कार्य देखकर दामोदर कृष्ण महावीर्यवान् बडे भाई हलायुधसे यह बोले ॥ १७ ॥

य एष मत्तर्षभतुल्यगामी महद्धनुः कर्षति तालमात्रम् ।
एषोऽर्जुनो नात्र विचार्यमस्ति यद्यस्मि संकर्षण वासुदेवः ॥ १८ ॥

हे संकर्षण ! मत्त सांडकी भांति चलनेवाले जो पुरुष पांच हाथसे कुछ कम मापके चापको खींच रहे हैं उनका अर्जुन होना इतना ही निश्चित है, कि जितना मेरा वसुदेव पुत्र कृष्ण होना निश्चित है ॥ १८ ॥

य एष वृक्षं तरसावरुज्य राज्ञां विकारे सहसा निवृत्तः ।
वृकोदरो नान्य इहैतदद्य कर्तुं समर्थो भुवि मर्त्यधर्मा ॥ १९ ॥

जो वेगसे वृक्ष उखाड कर एकाएक भूपालोंका अन्त करनेको प्रवृत्त हुए हैं, वह वृकोदर होंगे । वृकोदरके विना इस भूमण्डल भरमें कोई मनुष्य आज ऐसा कार्य करनेको समर्थ नहीं होगा ॥ १९ ॥

योऽसौ पुरस्तात्कमलायताक्षस्तनुर्महासिंहगतिर्विनीतः ।
गौरः प्रलम्बोज्ज्वलचारुघोणो विनिःसृतः सोऽच्युत धर्मराजः ॥ २० ॥

हे अच्युत ! मुझको जान पडता है, कि इसके पहिले पद्मकी भांति प्रशस्त नेत्रयुक्त, भारी शरीरवाले, सिंहके समान चलनेवाले, नम्र, गोरे, दीर्घ और उज्ज्वल सुन्दर नाकवाले, चार हाथ इतने लम्बे और उसके योग्य स्थूलदेह युक्त, जो पुरुष पधारे हैं, वही धर्म-पुत्र हैं ॥२०॥

यौ तौ कुमाराविव कार्तिकेयौ द्वावश्विनेयाविति मे प्रतर्कः ।
मुक्ता हि तस्माज्जतुवेश्मदाहान्मया श्रुताः पाण्डुसुताः पृथा च ॥ २१ ॥

उनके साथ कार्तिकेयके सदृश जो दो कुमार गये हैं, वे अश्विनीकुमारोंके पुत्र होंगे । मैंने सुना है, कि पाण्डव लोग पृथाके साथ जतुगृहसे जलनेसे बच गए थे ॥ २१ ॥

तमब्रवीन्निर्जलतोयदाभो हलायुधोऽनन्तरजं प्रतीतः ।
प्रीतोऽस्मि दिष्ट्या हि पितृष्वसा नः पृथा विमुक्ता सह कौरवाग्र्यैः ॥२२॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥ ५९३४ ॥

बिना जलके बादलके वर्णवाले अर्थात् गौरवर्णके हलायुध अनिन्दित होकर कनिष्ठ कृष्णसे बलराम बोले– यह सुनकर कृतार्थ हुआ, कि बडे भाग्यसे कुरुवंशोंमें श्रेष्ठ पुत्रोंके साथ फूफी बच गयी हैं ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ अस्सीवां अध्याय समाप्त ॥ १८० ॥ ५९३४ ॥

: १८१ :

वैशम्पायन उवाच

अजिनानि विधुन्वन्तः करकांश्च द्विजर्षभाः।
ऊचुस्तं भीर्न कर्तव्या वयं योत्स्यामहे परान् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर ब्राह्मणलोग मृगचर्म और कमण्डलू कंपाते हुए बोले– मत डरो, हम शत्रुओंसे लडेंगे ॥ १ ॥

तानेवं वदतो विप्रानर्जुनः प्रहसन्निव।
उवाच प्रेक्षका भूत्वा यूयं तिष्ठत पार्श्वतः ॥ २ ॥

इस प्रकार कहते हुए ब्राह्मणोंसे अर्जुन हंसके बोले– आप एक ओर दर्शक बन कर खडे रहें ॥ २ ॥

अहमेनानजिह्माग्रैः शतशो विकिरञ्शरैः।
वारयिष्यामि संक्रुद्धान्मन्त्रैराशीविषानिव ॥ ३ ॥

मैं सैंकडों तेज सीधे अग्रभागवाले बाणोंसे इन सब क्रोधित राजाओंको बिखेर करके उसी प्रकार रोक दूंगा, कि जिस प्रकार मन्त्रके जानकार मन्त्रसे अति विषैले सर्पको तेजसे खाली कर देते हैं ॥ ३ ॥

इति तद्धनुरादय शुल्कावाप्तं महारथः।
भ्रात्रा भीमेन सहितस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ४ ॥

महारथी अर्जुन यह कहकर रणमें जीते हुए धनुषको ले करके भाई भीमसेनके साथ पर्वतकी भांति अचल हो गए ॥ ४ ॥

ततः कर्णमुखान्क्रुद्धान्क्षत्रियांस्तान्रुषोत्थितान्।
संपेततुरभीतौ तौ गजौ प्रतिगजानिव ॥ ५ ॥

इसके बाद भीम और अर्जुन दोनों जैसे हस्ती विपक्षी हस्ती पर चढ जाता है, वैसे ही क्रोधोन्मत्त कर्णादि राजाओंकी तरफ निर्भय होकर दौडे ॥ ५ ॥

ऊचुश्च वाचः परुषास्ते राजानो जिघांसवः।
आहवे हि द्विजस्यापि वधो दृष्टो युयुत्सतः ॥ ६ ॥

तब मारनेकी इच्छा करनेवाले राजालोग कठोरतासे बोले, कि युद्धस्थलमें लडनेकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणोंका भी वध किया जा सकता है ॥ ६ ॥

ततो वैकर्तनः कर्णो जगामार्जुनमोजसा ।
युद्धार्थी वाशिताहेतोर्गजः प्रतिगजं यथा ॥ ७ ॥

तब बडे तेजस्वी कर्ण लडनेके लिये अर्जुनसे इस प्रकार जा भिडे, कि जैसे हाथी हथिनीके लिये दूसरे हाथीसे भीड जाता है ॥ ७ ॥

भीमसेनं ययौ शल्यो मद्राणामीश्वरो बली ।
दुर्योधनादयस्त्वन्ये ब्राह्मणैः सह संगताः ।
मृदुपूर्वमयत्नेन प्रत्ययुध्यंस्तदाहवे ॥ ८ ॥

मद्रोंके राजा महाबलवान् शल्य भीमसेनकी ओर दौडे । दुर्योधन आदि दूसरोंने ब्राह्मण पर चढाई की । वे द्विजोंके साथ बिना बहुत यत्नके सरलतासे लडाई लडने लगे ॥ ८ ॥

ततोऽर्जुनः प्रत्यविध्यदापतन्तं त्रिभिः शरैः ।
कर्णं वैकर्तनं धीमान्विकृष्य बलवद्धनुः ॥ ९ ॥

तदनन्तर बुद्धिमान् अर्जुनने आदित्यके पुत्र कर्णको आते देखकर बडे भारी और शक्तिशाली धनुषको खींचकर तीन बाणोंको मारकर विद्ध किया ॥ ९ ॥

तेषां शराणां वेगेन शितानां तिग्मतेजसाम् ।
विमुह्यमानो राधेयो यत्नात्तमनुधावति ॥ १० ॥

राधाकुमार कर्णने अर्जुनके उन अत्यन्त तेजस्वी और तेज बाणोंके वेगसे मोहित होकर महान् प्रयत्नसे उन पर आक्रमण किया ॥ १० ॥

तावुभावप्यनिर्देश्यौ लाघवाज्जयतां वरौ ।
अयुध्येतां सुसंरब्धावन्योन्यविजयैषिणौ ॥ ११ ॥

जय करनेवालोंमें श्रेष्ठ अर्जुन और कर्ण एक दूसरे पर क्रोधित होकर जयकी आशासे ऐसी फुर्तीसे लडने लगे, कि कोई समझ न पाया, कि उनमें कौन कब बाणोंका आदान संधानादि करते थे ॥ ११ ॥

कृते प्रतिकृतं पश्य पश्य बाहुबलं च मे ।
इति शूरार्थवचनैराभाषेतां परस्परम् ॥ १२ ॥

वे एक दूसरे पर शूरता प्रगट कर यह कहके वार्तालाप करने लगे, कि तुमने जो किया, देखो उसको रोक लेता हूं, मेरा भुजबल देख लो ॥ १२ ॥

ततोऽर्जुनस्य भुजयोर्वीर्यमप्रतिमं भुवि ।
ज्ञात्वा वैकर्तनः कर्णः संरब्धः समयोधयत् ॥ १३ ॥

तब सूर्यकुमार कर्ण अर्जुनका ऐसा भुजवीर्य देखकर, कि जिसकी उपमा संसारभरमें नहीं मिलती, एकचित्तसे लडने लगे ॥ १३ ॥

अर्जुनेन प्रयुक्तांस्तान्बाणान्वेगवतस्तदा ।
प्रतिहत्य ननादोच्चैः सैन्यास्तमभिपूजयन् ॥ १४ ॥

वह अर्जुनके चलाये हुए उन वेगवान् बाणोंको नष्ट करके सिंहकी भांति गरजने लगे; सेना उनके उस कार्यकी प्रशंसा करने लगी ॥ १४ ॥

कर्ण उवाच

तुष्यामि ते विप्रमुख्य भुजवीर्यस्य संयुगे ।
अविषादस्य चैवास्य शस्त्रास्त्रविनयस्य च ॥ १५ ॥

कर्णने अर्जुनसे कहा– हे द्विजातिश्रेष्ठ ! इस युद्ध स्थलमें तुम्हारा न चूकनेवाला भुजवीर्य और विजयी शस्त्र देखकर मैं प्रसन्न हुआ ॥ १५ ॥

किं त्वं साक्षाद्धनुर्वेदो रामो वा विप्रसत्तम ।
अथ साक्षाद्धरिहयः साक्षाद्वा विष्णुरच्युतः ॥ १६ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मुझको जान पडता है, कि तुम साक्षात् धनुर्वेद वा राम अथवा देवराज इन्द्र वा अच्युत विष्णु हो ॥ १६ ॥

आत्मप्रच्छादनार्थं वै बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
विप्ररूपं विधायेदं ततो मां प्रतियुध्यसे ॥ १७ ॥

मेरा विचार है कि तुम अपनेको गुप्त रखनेके लिये ब्राह्मणका स्वरूप लेकर भुजवीर्यका आश्रय करके लड रहे हो ॥ १७ ॥

न हि मामाहवे क्रुद्धमन्यः साक्षाच्छचीपतेः ।
पुमान्योधयितुं शक्तः पाण्डवाद्वा किरीटिनः ॥ १८ ॥

मेरे रणभूमिमें क्रोधित होनेपर साक्षात् इन्द्र अथवा पाण्डुनन्दन किरीटीके बिना कोई भी पुरुष मुझसे लड नहीं सकता ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच

तमेवंवादिनं तत्र फल्गुनः प्रत्यभाषत ।
नास्मि कर्ण धनुर्वेदो नास्मि रामः प्रतापवान् ।
ब्राह्मणोऽस्मि युधां श्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १९ ॥

वैशम्पायन बोले– अर्जुन कर्णकी यह बातें सुन कर बोले– हे कर्ण ! मैं धनुर्वेद वा राम नहीं हूं, मैं सर्व शस्त्रधारियों और योधाओंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हूं ॥ १९ ॥

ब्राह्मे पौरंदरे चास्त्रे निष्ठितो गुरुशासनात् ।
स्थितोऽस्म्यद्य रणे जेतुं त्वां वीराविचलो भव ॥ २० ॥

मैं गुरुकी कृपासे ब्राह्म और इन्द्र अस्त्रोंमें दक्ष हूं । हे वीर ! तुम स्थिर होओ, मैं आज लडाईमें तुम पर जय पानेके लिये खडा हूं ॥ २० ॥

एवमुक्तस्तु राधेयो युद्धात्कर्णो न्यवर्तत ।
ब्राह्मं तेजस्तदाजय्यं मन्यमानो महारथः ॥ २१ ॥

तब राधाकुमार महारथी कर्ण यह बात सुनकर ब्रह्मतेजको जीतनेके अयोग्य समझ कर युद्धसे निवृत्त हो गए ॥ २१ ॥

युद्धं तूपेयतुस्तत्र राजञ्शल्यवृकोदरौ ।
बलिनौ युगपन्मत्तौ स्पर्धया च बलेन च ॥ २२ ॥

दूसरी ओर, राजन् ! मत्त, बलसे बली, शल्य और भीम स्पर्धासे एक ही साथ जा भिडे ॥ २२ ॥

अन्योन्यमाह्वयन्तौ तौ मत्ताविव महागजौ ।
मुष्टिभिर्जानुभिश्चैव निघ्नन्तावितरेतरम् ।
मुहूर्तं तौ तथान्योन्यं समरे पर्यकर्षताम् ॥ २३ ॥

वे दोनों दो मत्त हाथियोंकी तरह एक दूसरेको आव्हान देते हुए मुट्ठी और घुटनोंसे मारते हुए युद्धमें एक दूसरेको कुछ देरतक खींचने लगे ॥ २३ ॥

ततो भीमः समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां शल्यमाहवे ।
न्यवधीद्बलिनां श्रेष्ठो जहसुर्ब्राह्मणास्ततः ॥ २४ ॥

कुछ देर बाद कुरुवंशमें श्रेष्ठ भीमने शल्यको भुजाओंसे ऊपर उठाकर रणभूमिपर पटक दिया । वह देखकर ब्राह्मणलोग हंस पडे ॥ २४ ॥

तत्राश्चर्यं भीमसेनश्चकार पुरुषर्षभः ।
यच्छल्यं पतितं भूमौ नाहनद्बलिनं बली ॥ २५ ॥

पर पुरुषश्रेष्ठ बली भीमसेनने बलशाली शल्यको ऐसे आश्चर्यरूपसे भूमिपर पटका, कि शल्यके जरा भी चोट नहीं लगी ॥ २५ ॥

पातिते भीमसेनेन शल्ये कर्णे च शङ्किते ।
शङ्किताः सर्वराजानः परिवव्रुर्वृकोदरम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर राजा लोग शल्यको भीमसेनसे गिराये जाते हुए और कर्णको शंकायुक्त देखकर भयभीत चित्तसे भीमको घेर कर खडे हो गये ॥ २६ ॥

ऊचुश्च सहितास्तत्र साध्विमे ब्राह्मणर्षभाः ।
विज्ञायन्तां क्वजन्मानः क्वनिवासास्तथैव च ॥ २७ ॥

इकट्ठे होकर सभी ब्राह्मणश्रेष्ठ साधु साधु कहकर यह कहने लगे, कि विशेषरूपसे जान लेना चाहिये, कि वह कहां रहते हैं और उन्होंने कहां जन्म लिया है ॥ २७ ॥

×

को हि राधासुतं कर्णं शक्तो योधयितुं रणे ।
अन्यत्र रामाद्द्रोणाद्वा कृपाद्वापि शरद्वतः ॥ २८ ॥

इस धरती भरमें राम, द्रोण, शरद्वान्के पुत्र कृपके अलावा राधाके पुत्र कर्णसे कौन लड सकता है ॥ २८ ॥

कृष्णाद्वा देवकीपुत्रात्फल्गुनाद्वा परंतपात् ।
को वा दुर्योधनं शक्तः प्रतियोधयितुं रणे ॥ २९ ॥

देवकीके पुत्र कृष्ण अथवा शत्रुनाशी अर्जुनके विना युद्धमें कौन दुर्योधनसे लडनेके लिए समर्थ हो सकता है ? ॥ २९ ॥

तथैव मद्रराजानं शल्यं बलवतां वरम् ।
बलदेवादृते वीरात्पाण्डवाद्वा वृकोदरात् ॥ ३० ॥

उसी प्रकार वीर बलदेव, पाण्डुपुत्र वृकोदरके बिना कौन बलशालियोंमें श्रेष्ठ मद्रराज शल्यसे युद्ध कर सकता है ? ॥ ३० ॥

क्रियतामवहारोऽस्माद्युद्धाद्ब्राह्मणसंयुतात् ।
अथैनानुपलभ्येह पुनर्योत्स्यामहे वयम् ॥ ३१ ॥

अब सब कोई ब्राह्मणसे यह लडाई बन्द कर दो, पहिले इनका परिचय प्राप्त कर पीछे हम इनके साथ लडनेको प्रवृत्त होंगे ॥ ३१ ॥

तत्कर्म भीमस्य समीक्ष्य कृष्णः कुन्तीसुतौ तौ परिशङ्कमानः ।
निवारयामास महीपतींस्तान्धर्मेण लब्धेत्यनुनीय सर्वान् ॥ ३२ ॥

श्रीकृष्णने भीमसेनका वह अलौकिक कार्य देख कर उन दोनोंको कुन्ती पुत्र समझ कर सम्पूर्ण राजाओंको विनयपूर्वक यह कहके युद्धसे निवृत्त किया, कि इस ब्राह्मणने धर्मके अनुसार ही द्रौपदी प्राप्त की है ॥ ३२ ॥

त एवं संनिवृत्तास्तु युद्धाद्युद्धविशारदाः ।
यथावासं ययुः सर्वे विस्मिता राजसत्तमाः ॥ ३३ ॥

अनन्तर वे सब युद्धमें पण्डित श्रेष्ठ राजा लोग युद्ध बन्द कर आश्चर्य चित्तसे अपने अपने भवनोंको चले गए ॥ ३३ ॥

वृत्तो ब्रह्मोत्तरो रङ्गः पाञ्चाली ब्राह्मणैर्वृता ।
इति ब्रुवन्तः प्रययुर्ये तत्रासन्समागताः ॥ ३४ ॥

जो सब लोग दर्शनके लिये एकत्रित हुए थे, वे यह कहते हुए चले गये, कि आज रङ्ग-स्थलमें ब्राह्मण लोग ही प्रधान बने और पाञ्चाली ब्राह्मणोंके द्वारा वरी गई ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणैस्तु प्रतिच्छन्नौ रौरवाजिनवासिभिः ।
कृच्छ्रेण जग्मतुस्तत्र भीमसेनधनञ्जयौ ॥ ३५ ॥

तदनन्तर भीम और अर्जुन मृगचर्म पहिने ब्राह्मणोंसे घिरे हुए अति क्लेशसे पथ पाकर चलने लगे ॥ ३५ ॥

विमुक्तौ जनसंबाधाच्छत्रुभिः परिविक्षतौ ।
कृष्णयानुगतौ तत्र नृवीरौ तौ विरेजतुः ॥ ३६ ॥

शत्रुओंसे घायल नरवीर भीम और अर्जुन पीछे चलती हुई द्रौपदीके साथ जनोंकी भीडसे युक्त होकर सोहने लगे ॥ ३६ ॥

तेषां माता बहुविधं विनाशं पर्यचिन्तयत्
अनागच्छत्सु पुत्रेषु भैक्ष्यकालेऽतिगच्छति ॥ ३७ ॥

इधर उनकी माता कुन्ती उनके भिक्षा लेकर लौटनेके काल बीतने पर उनको न आते देखकर भांति भांतिके अनिष्टकी आशंकासे यह चिन्ता करने लगी ॥ ३७ ॥

धार्तराष्ट्रैर्हता न स्युर्विज्ञाय कुरुपुङ्गवाः ।
मायान्वितैर्वा रक्षोभिः सुघोरैर्दृढवैरिभिः ॥ ३८ ॥

कदाचित् धृतराष्ट्रके पुत्रोंने मेरे बच्चोंको पहिचान कर मार न डाला हो अथवा दृढ शत्रु मायाधारी अति भयानक राक्षसोंने नष्ट न कर दिया हो ॥ ३८ ॥

विपरीतं मतं जातं व्यासस्यापि महात्मनः ।
इत्येवं चिन्तयामास सुतस्नेहान्विता पृथा ॥ ३९ ॥

महात्मा व्यासकी भी कैसी उलटी बुद्धि हुई थी, उन्होंने क्यों हमको इस देशमें आनेको कहा ? कुन्ती पुत्रस्नेहसे इस प्रकार सोच रही थी ॥ ३९ ॥

महत्यथापराह्णे तु घनैः सूर्य इवावृतः ।
ब्राह्मणैः प्राविशत्तत्र जिष्णुर्ब्रह्मपुरस्कृतः ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥ ५९७४ ॥

ऐसे समयमें अर्जुन ब्राह्मणोंसे घिरे हुए ब्राह्मणोंको आगे करके अपराह्णमें बादलसे घिरे सूर्यकी भांति उस घरमें जा घुसे ॥ ४० ॥

महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ इक्यासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८१ ॥ ५९७४ ॥

: १८२ :

वैशम्पायन उवाच

गत्वा तु तां भार्गवकर्मशालां पार्थौ पृथां प्राप्य महानुभावौ ।
तां याज्ञसेनीं परमप्रतीतौ भिक्षेत्यथावेदयतां नराग्र्यौ ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– महानुभाव नरश्रेष्ठ भीम और अर्जुन परम प्रसन्न चित्तसे याज्ञसेनी द्रौपदी-को साथ लेकर कुंभारके घरमें जाकर कुन्तीसे बोले– मा ! आज यह भिक्षा मिली है ॥ १ ॥

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रानुवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे ।
पश्चात्तु कुन्ती प्रसमीक्ष्य कन्यां कष्टं मया भाषितमित्युवाच ॥ २ ॥

कुन्ती तब कुटीके भीतर थी; कुछ न देख करके ही पुत्रोंसे बोली– तुम सब मिलकर भोगो । पीछे कन्याको देखकर बोली– कष्ट है कि मैंने यह अनुचित बात कह दी ॥ २ ॥

साधर्मभीता हि विलज्जमाना तां याज्ञसेनीं परमप्रतीताम् ।
पाणौ गृहीत्वोपजगाम कुन्ती युधिष्ठिरं वाक्यमुवाच चेदम् ॥ ३ ॥

तदनन्तर वह धर्मका भय खाकर अपने कहने पर लजाती हुई अनिन्दिता उस याज्ञसेनी द्रौपदीका हाथ पकडकर कुन्ती युधिष्ठिरके पास जाकर उनसे यह वाक्य बोली ॥ ३ ॥

इयं हि कन्या द्रुपदस्य राज्ञस्तवानुजाभ्यां मयि संनिसृष्टा ।
यथोचितं पुत्र मयापि चोक्तं समेत्य भुङ्क्तेति नृप प्रमादात् ॥ ४ ॥

हे पुत्र ! तुम्हारे दोनों छोटे भाइयोंने जब राजा द्रुपदसे इस पुत्रीको लाकर मेरे पास भिक्षा कहके दिया, तब मैंने असावधानतासे उस कालके योग्य यह बात कह डाली है, कि तुम सब मिल करके भोगो ॥ ४ ॥

कथं मया नानृतमुक्तमद्य भवेत्कुरूणामृषभ ब्रवीहि ।
पाञ्चालराजस्य सुतामधर्मो न चोपवर्तेत नभूतपूर्वः ॥ ५ ॥

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! अब यह कहो, कि मेरी वह बात झूठी भी न हो और अधर्म इस राजा पाञ्चालकी पुत्रीको छू न सके और यह अप्रसन्न न होवे ॥ ५ ॥

मुहूर्तमात्रं त्वनुचिन्त्य राजा युधिष्ठिरो मातरमुत्तमौजाः ।
कुन्तीं समाश्वास्य कुरुप्रवीरो धनञ्जयं वाक्यमिदं बभाषे ॥ ६ ॥

नरवीर मतिमान् कुरुप्रवीर राजा युधिष्ठिर माताकी यह बात सुनकर क्षणभर सोचके उनको समझा कर धनञ्जयसे यह वाक्य बोले ॥ ६ ॥

त्वया जिता पाण्डव याज्ञसेनी त्वया च तोषिष्यति राजपुत्री ।
प्रज्वाल्यतां हूयतां चापि वन्हिर्गृहाण पाणिं विधिवत्त्वमस्याः ॥ ७ ॥
हे पाण्डव अर्जुन ! तुमने इस राजपुत्री याज्ञसेनीको जीता है तुम्हीसे यह सन्तुष्ट होगी, अतः आग जलाकर विधिपूर्वक उसमें आहुति डालो और इसका विधिपूर्वक हाथ पकड लो ॥ ७ ॥

अर्जुन उवाच

मा मां नरेन्द्र त्वमधर्मभाजं कृथा न धर्मो ह्ययमीप्सितोऽन्यैः ।
भवान्निवेश्यः प्रथमं ततोऽयं भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा ॥ ८ ॥
अर्जुन बोले– हे नरेन्द्र ! आप मुझको अधर्ममें न डालें, जैसी आज्ञा करते हैं वह दूसरोंके द्वारा मान्य धर्म नहीं है। पहिले आपका, बादमें चिन्तातीत कर्म करनेवाले महाभुज भीमसेनका स्थान है ॥ ८ ॥

अहं ततो नकुलोऽनन्तरं मे माद्रीसुतः सहदेवो जघन्यः ।
वृकोदरोऽहं च यमौ च राजन्नियं च कन्या भवतः स्म सर्वे ॥ ९ ॥
उनके पीछे मेरा, तब मेरे पीछे जन्मे हुए माद्रीपुत्र नकुलका और अन्तमें कनिष्ठ सहदेवका विवाह होना ही विधिपूर्वक है । भीमसेन, नकुल, सहदेव, यह कन्या और मैं आपकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले हैं ॥ ९ ॥

एवंगते यत्करणीयमत्र धर्म्यं यशस्यं कुरु तत्प्रचिन्त्य ।
पाञ्चालराजस्य च यत्प्रियं स्यात्तद्ब्रूहि सर्वे स्म वशे स्थितास्ते ॥ १० ॥
इससे जो कुछ धर्म और जिससे राजा पाञ्चालका मंगल होवे, उस पर ध्यान करके आज्ञा करें, हम सब लोग आपके आधीन हैं ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच

ते दृष्ट्वा तत्र तिष्ठन्तीं सर्वे कृष्णां यशस्विनीम् ।
संप्रेक्ष्यान्योन्यमासीना हृदयैस्तामधारयन् ॥ ११ ॥
वैशम्पायन बोले– पाण्डुपुत्र बैठी हुई उस यशस्विनी बालाको देख करके एक दूसरेके मुखकी ओर ताकके बैठ गये और सबोंने चित्तमें उसको धारण किया अर्थात् सभीके मन उस कृष्णामें आसक्त थे ॥ ११ ॥

तेषां हि द्रौपदीं दृष्ट्वा सर्वेषाममितौजसाम् ।
संप्रमथ्येन्द्रियग्रामं प्रादुरासीन्मनोभवः ॥ १२ ॥
द्रौपदीको देखकर उन बडे तेजस्वी पाण्डुपुत्रोंके इन्द्रियोंको मथते हुए मदन प्रगट हुआ ॥ १२ ॥

काम्यं रूपं हि पाञ्चाल्या विधात्रा विहितं स्वयम् ।
बभूवाधिकमन्याभ्यः सर्वभूतमनोहरम् ॥ १३ ॥

विधाताने द्रौपदीका इतना सुन्दर रूप स्वयं बनाया था कि वह रूप सबसे बढकर और सब प्राणियोंके मनोंको हरण करनेवाला बना ॥ १३ ॥

तेषामाकारभावज्ञः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
द्वैपायनवचः कृत्स्नं संस्मरन्वै नरर्षभ ॥ १४ ॥

मनुष्यश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर छोटे भाइयोंके आकारोंको देख करके उनके हृदयके भावको समझ गये और उस समय वेदव्यासकी सम्पूर्ण बातें याद हो आईं ॥ १४ ॥

अब्रवीत्स हि तान्भ्रातॄन्मिथोभेदभयान्नृपः ।
सर्वेषां द्रौपदी भार्या भविष्यति हि नः शुभा ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥ ५९८९ ॥

वह राजा युधिष्ठिर भाइयोंमें आपसके बिगाडके अर्थात् इस द्रौपदीके कारण भाईयोंमें शत्रुता पैदा न हो जाए इस भयसे बोले— शुभ लक्षणोंसे युक्त यह द्रौपदी हम सबोंकी भार्या होगी ॥ १५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ बयासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८२ ॥ ५९८९ ॥

: १८३ :

वैशम्पायन उवाच

भ्रातुर्वचस्तत्प्रसमीक्ष्य सर्वे ज्येष्ठस्य पाण्डोस्तनयास्तदानीम् ।
तमेवार्थं ध्यायमाना मनोभिरासांचक्रुरथ तत्रामितौजाः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— पाण्डुके वे तेजस्वी पुत्रगण बडे भाईकी यह बात सुनकर मन ही मनमें उस बातकी चर्चा करते हुए वहीं बैठ गए ॥ १ ॥

वृष्णिप्रवीरस्तु कुरुप्रवीरानाशङ्कमानः सहरौहिणेयः ।
जगाम तां भार्गवकर्मशालां यत्रासते ते पुरुषप्रवीराः ॥ २ ॥

तदनन्तर वृष्णिवंशके प्रधान वीर श्रीकृष्ण उनको कुरुवीर समझ कर, भार्गवकी जिस शालामें वे वीर पुरुष लोग टिके हुए थे, वहां बलदेवके संग जा पहुंचे ॥ २ ॥

तत्रोपविष्टं पृथुदीर्घबाहुं ददर्श कृष्णः सहरौहिणेयः ।
अजातशत्रुं परिवार्य तांश्च उपोपविष्टाञ्ज्वलनप्रकाशान् ॥ ३ ॥

तब रोहिणीपुत्र बलराम और उन्होंने वहां बैठे हुए मोटी और दीर्घभुजाओंवाले अजात-शत्रु युधिष्ठिरको और उनके चारों ओर पास ही में बैठे अग्निके समान जलते हुए छोटे भाइयों-को देखा ॥ ३ ॥

ततोऽब्रवीद्वासुदेवोऽभिगम्य कुन्तीसुतं धर्मभृतां वरिष्ठम् ।
कृष्णोऽहमस्मीति निपीडय पादौ युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ॥ ४ ॥

तब वासुदेव श्रीकृष्ण अजमीढवंशी धार्मिकोंमें श्रेष्ठ कुन्तीकुमार युधिष्ठिरके सामने जाकर उनके पांव छूकर बोले— मैं कृष्ण हूं ॥ ४ ॥

तथैव तस्याप्यनु रौहिणेयस्तौ चापि हृष्टाः कुरवोऽभ्यनन्दन् ।
पितृष्वसुश्चापि यदुप्रवीरावगृह्णतां भारतमुख्य पादौ ॥ ५ ॥

तब बलदेवने भी वैसा किया । पाण्डवगणने राम और कृष्णको देख कर प्रसन्न चित्तसे उनका अभिनन्दन किया । हे भारतश्रेष्ठ ! अनन्तर यदुवीर राम और कृष्णने फूफी पृथाके पांव छूए ॥ ५ ॥

अजातशत्रुश्च कुरुप्रवीरः पप्रच्छ कृष्णं कुशलं निवेद्य ।
कथं वयं वासुदेव त्वयेह गूढा वसन्तो विदिताः स्म सर्वे ॥ ६ ॥

अजातशत्रु कुरुवीर युधिष्ठिरने कृष्णसे अपनी कुशलता बताकर उनका कुशल क्षेम पूछा और वे बोले— हे वासुदेव ! तुमने यह कैसे जान लिया कि हम छिपकर यहां बसे हुए हैं ॥ ६ ॥

तमब्रवीद्वासुदेवः प्रहस्य गूढोऽप्यग्निर्ज्ञायत एव राजन् ।
तं विक्रमं पाण्डवेयानतीत्य कोऽन्यः कर्ता विद्यते मानुषेषु ॥ ७ ॥

कृष्णने उनसे हंसकर कहा— हे महाराज ! अग्नि छिपी रहनेसे भी ज्ञात हो ही जाती है और इस भूमण्डलके मानवोंमें पाण्डवोंको छोडकर कौन ऐसा विक्रम दिखा सकता है ? ॥७॥

दिष्ट्या तस्मात्पावकात्संप्रमुक्ता यूयं सर्वे पाण्डवाः शत्रुसाहाः ।
दिष्ट्या पापो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः सहामात्यो न सकामोऽभविष्यत् ॥ ८ ॥

आप सब पाण्डवगण बडे भाग्यसे शत्रुका वेग सहकर उस अग्निसे बच गए और भाग्य ही के कारण पापात्मा धृतराष्ट्रपुत्र अपने मन्त्रियोंके साथ सफल मनोरथवाला नहीं हुआ ॥८॥

भद्रं वोऽस्तु निहितं यद्गुहायां विवर्धध्वं ज्वलन इवेध्यमानः।
मा वो विद्युः पार्थिवाः केचनेह यास्यावहे शिबिरायैव तावत्।
सोऽनुज्ञातः पाण्डवेनाव्ययश्रीः प्रायाच्छीघ्रं बलदेवेन सार्धम् ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥ ५९९८ ॥

अब आपका मङ्गल होवे; वह मङ्गल इन दिनों औरोंके बिना देखे हुए स्थानमें छिपा हुआ है, आप बढनेवाले अग्निकी भांति बढते रहें। अब आज्ञा करें, कि हम अपने शिबिर-में जायें, कि जिससे कोई राजा आपको न जानने पावे, अक्षय श्रीयुक्त श्रीकृष्ण यह कह-कर युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर बलदेवके साथ शीघ्र वहांसे चले गए ॥ ९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ तिरासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८३ ॥ ५९९८ ॥

: १८४ :

वैशम्पायन उवाच

धृष्टद्युम्नस्तु पाञ्चाल्यः पृष्ठतः कुरुनन्दनौ।
अन्वगच्छत्तदा यान्तौ भार्गवस्य निवेशनम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— कुरुनन्दन भीम और अर्जुन जब भार्गव अर्थात् कुम्हारके घर जा रहे थे; उस समय पाञ्चालकुमार धृष्टद्युम्न उनके पीछे पीछे छिपकर गये ॥ १ ॥

सोऽज्ञायमानः पुरुषानवधाय समन्ततः।
स्वयमारान्निविष्टोऽभूद्भार्गवस्य निवेशने ॥ २ ॥

वह साथियोंको सावधान कर पाण्डवों और दूसरोंके न जानते कुम्हारके घरमें निकट ही किसी एक स्थानमें छिप गए ॥ २ ॥

सायेऽथ भीमस्तु रिपुप्रमाथी जिष्णुर्यमौ चापि महानुभावौ।
भैक्षं चरित्वा तु युधिष्ठिराय निवेदयाञ्चक्रुरदीनसत्त्वाः ॥ ३ ॥

संध्याकालके समय शत्रुओंको मथनेवाले असामान्य सत्त्वयुक्त महाबली भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवने भिक्षासे लौटकर भिक्षाकी सामग्री युधिष्ठिरको दे दी ॥ ३ ॥

ततस्तु कुन्ती द्रुपदात्मजां तामुवाच काले वचनं वदान्या।
अतोऽग्रमादाय कुरुष्व भद्रे बलिं च विप्राय च देहि भिक्षाम् ॥ ४ ॥

तब दानशीला कुन्तीने उस समय उस द्रौपदीसे यह वचन कहा— हे भद्रे ! तुम इस भिक्षाकी सामग्रीसे अगला भाग लेकर देवोंको उपहार और ब्राह्मणोंको भिक्षा दे दो ॥ ४ ॥

ये चान्नमिच्छन्ति ददस्व तेभ्यः परिश्रिता ये परितो मनुष्याः ।
ततश्च शेषं प्रविभज्य शीघ्रमर्धं चतुर्णां मम चात्मनश्च ॥ ५ ॥
और जो सब लोग अतिथि हैं और जो भोजन करना चाहें तथा चारों ओर जो हम पर आश्रित हैं, उन्हें दे दो । बाकी बचेमेंसे दो भाग करो, उनमेंसे एक मेरे और अपने भागमें से चार भाग करो ॥ ५ ॥

अर्धं च भीमाय ददाहि भद्रे य एष मत्तर्षभतुल्यरूपः ।
श्यामो युवा संहननोपपन्न एषो हि वीरो बहुभुक्सदैव ॥ ६ ॥
उन दो भागोंमें एक भाग भीमको दो; क्योंकि मत्त बैलकी भांति बडा भारी श्याम तरुण वीर वृकोदर नित्य बहुत भोजन करता है ॥ ६ ॥

सा हृष्टरूपैव तु राजपुत्री तस्या वचः साध्वविशङ्कमाना ।
यथावदुक्तं प्रचकार साध्वी ते चापि सर्वेऽभ्यवजह्रुरन्नम् ॥ ७ ॥
राजपुत्री सती द्रौपदीने उनकी उस बातका कोई विचार न करके ही आनन्दित चित्तसे उसको जो कहा गया था, वह पूरा किया । इसके बाद सभीने अन्नका भोजन किया ॥७॥

कुशैस्तु भूमौ शयनं चकार माद्रीसुतः सहदेवस्तरस्वी ।
यथात्मीयान्यजिनानि सर्वे संस्तीर्य वीराः सुषुपुर्धरण्याम् ॥ ८ ॥
तदनन्तर बलवान् माद्रीपुत्र सहदेवने भूमिपर कुश बिछाकर सेज बनायी । तब उस पर सब यथोपयुक्त अपना अपना मृग चर्म बिछाकर वे वीर भूमि पर सोगये ॥ ८ ॥

अगस्त्यशास्तामभितो दिशं तु शिरांसि तेषां कुरुसत्तमानाम् ।
कुन्ती पुरस्तात्तु बभूव तेषां कृष्णा तिरश्चैव बभूव पत्तः ॥ ९ ॥
उन कुरुश्रेष्ठोंके सिर अगस्त्यऋषिसे शासित अर्थात् दक्षिण दिशाकी ओर थे । उनके सिर-की ओर कुन्ती और पैतानेकी ओर दौपदी सो गई ॥ ९ ॥

अशेत भूमौ सह पाण्डुपुत्रैः पादोपधानेव कृता कुशेषु ।
न तत्र दुःखं च बभूव तस्या न चावमेने कुरुपुङ्गवांस्तान् ॥ १० ॥
द्रौपदीने भूमि पर कुशों पर लेटकर और सबके पांवके नीचे उपधानकी भांति बनने पर न तो मनमें दुःख माना और न कुरुश्रेष्ठोंकी ओर अनादर प्रगट किया ॥ १० ॥

ते तत्र शूराः कथयांबभूवुः कथा विचित्राः पृतनाधिकाराः ।
अस्त्राणि दिव्यानि रथांश्च नागान्खड्गान्गदाश्चापि परश्वधांश्च ॥ ११ ॥
शूरतायुक्त पाण्डवगण लेट कर रथ, नाग, खड्ग, गदा, परश्वध, दिव्यास्त्र और सेना सम्बन्धी नाना विचित्र कथाओंको कहने लगे ॥ ११ ॥

तेषां कथास्ताः परिकीर्त्यमानाः पाञ्चालराजस्य सुतस्तदानीम् ।
शुश्राव कृष्णां च तथा निषण्णां ते चापि सर्वे ददृशुर्मनुष्याः ॥ १२ ॥
पांचालराजके पुत्र धृष्टद्युम्न पाण्डवोंके द्वारा कही जाती हुई उन सब कथाओंको सुनने लगे और वहांके लोगोंने भी राजकन्या कृष्णाको उस दशामें देखा ॥ १२ ॥

धृष्टद्युम्नो राजपुत्रस्तु सर्वं वृत्तं तेषां कथितं चैव रात्रौ ।
सर्वं राज्ञे द्रुपदायाखिलेन निवेदयिष्यंस्त्वरितो जगाम ॥ १३ ॥
उस रात्रिको पाण्डवोंने जैसी कथा कही थी और वहां जो कुछ हुआ था, वह सब राजा द्रुपदके पास आद्योपान्त कहनेके लिये राजकुमार धृष्टद्युम्न तुरन्त चले गये ॥ १३ ॥

पञ्चालराजस्तु विषण्णरूपस्तान्पाण्डवानप्रतिविन्दमानः ।
धृष्टद्युम्नं पर्यपृच्छन्महात्मा क्व सा गता केन नीता च कृष्णा ॥ १४ ॥
इधर महात्मा राजा पांचाल द्रुपद पाण्डवोंको न प्राप्त करके दुःखी होकर पडे हुए थे। धृष्टद्युम्नके वहां पहुंचने पर उससे उन्होंने पूछा— पुत्र! कृष्णाको कौन ले गया है? कृष्णा कहां गयी है? ॥ १४ ॥

कच्चिन्न शूद्रेण न हीनजेन वैश्येन वा करदेनोपपन्ना ।
कच्चित्पदं मूर्ध्नि न मे निदिग्धं कच्चिन्माला पतिता न श्मशाने ॥ १५ ॥
किसी नीच जाति वा शूद्र अथवा कर देनेवाले वैश्यने मेरी कन्याको ले जाकर मेरे सिर पर लात तो नहीं मारी है? कहीं सुन्दर माला श्मशानमें तो नहीं जा गिरी है? ॥१५॥

कच्चित्सवर्णप्रवरो मनुष्य उद्रिक्तवर्णोऽप्युत वेह कच्चित् ।
कच्चिन्न वामो मम मूर्ध्नि पादः कृष्णाभिमर्शेन कृतोऽद्य पुत्र ॥ १६ ॥
कोई समानवर्णका, श्रेष्ठ अथवा उच्चतर वर्णका व्यक्ति ही उस द्रौपदीको ले गया है न? किसी नीच जनने कृष्णाको जीत कर मेरे सिर पर बांया पांव तो नहीं रखा है? ॥ १६ ॥

कच्चिच्च यक्ष्ये परमप्रतीतः संयुज्य पार्थेन नरर्षभेण ।
ब्रवीहि तत्त्वेन महानुभावः कोऽसौ विजेता दुहितुर्ममाद्य ॥ १७ ॥
नरश्रेष्ठ पृथापुत्र अर्जुनसे सम्बन्ध होनेके कारण मैं आनन्दित होकर यज्ञ तो कर सकूंगा न? हे महानुभाव! मेरी पुत्रीको जीतनेवाला कौन है, यह सब मुझे बताओ ॥ १७ ॥

विचित्रवीर्यस्य तु कच्चिदद्य कुरुप्रवीरस्य धरन्ति पुत्राः ।
कच्चित्तु पार्थेन यवीयसाद्य धनुर्गृहीतं निहितं च लक्ष्यम् ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥ ६०१८ ॥

क्या कुरुवीर विचित्रवीर्यके पुत्र राजा पाण्डुके लडकोंने जीता है? क्या छोटे अर्जुनने धनुष लेकर लक्ष्यभेद किया है? ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ चौरासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८४ ॥ ६०१८ ॥

: १८५ :

वैशंपायन उवाच

ततस्तथोक्तः परिहृष्टरूपः पित्रे शशंसाथ स राजपुत्रः ।
धृष्टद्युम्नः सोमकानां प्रबर्हो वृत्तं यथा येन हृता च कृष्णा ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– सोमवंशमें श्रेष्ठ राजपुत्र धृष्टद्युम्न पिताकी यह सब बातें सुनकर प्रसन्न चित्तसे जिसने द्रौपदीको जीता था और उस विषयमें जो कुछ हुआ था, सब आद्योपान्त पितासे कहने लगे ॥ १ ॥

योऽसौ युवा स्वायतलोहिताक्षः कृष्णाजिनी देवसमानरूपः ।
यः कार्मुकाग्र्यं कृतवानधिज्यं लक्ष्यं च तत्पातितवान्पृथिव्याम् ॥ २ ॥

विशेषरूपसे चौडी और लाल आंखोंसे सुहावने, काला मृगचर्म पहिने, देवके सदृश रूपवान्, जिस युवापुरुषने बडे भारी धनुषमें डोरी चढाकर लक्ष्यभेद करके भूतलमें गिराया था ॥ २ ॥

असज्जमानश्च गतस्तरस्वी वृतो द्विजाग्र्यैरभिपूज्यमानः ।
चक्राम वज्रीव दितेः सुतेषु सर्वैश्च देवैरृषिभिश्च जुष्टः ॥ ३ ॥

वे किसीकी सहायता न लेकर अकेले ही वेगसे आगे बढे । वह ब्राह्मणोंसे घेरे और उनसे पूजे जाकर राजाओंमें इस प्रकार पराक्रम प्रगट करने लगे, कि जैसे संपूर्ण महर्षि और देवोंसे घिरे हुए देवराज दैत्योंमें जा घुसते हैं ॥ ३ ॥

कृष्णा च गृह्याजिनमन्वयात्तं नागं यथा नागवधूः प्रहृष्टा ।
अमृष्यमाणेषु नराधिपेषु क्रुद्धेषु तं तत्र समापतत्सु ॥ ४ ॥
ततोऽपरः पार्थिवराजमध्ये प्रवृद्धमारुज्य महीप्ररोहम् ।
प्रकालयन्नेव स पार्थिवौघान्क्रुद्धोऽन्तकः प्राणभृतो यथैव ॥ ५ ॥

कृष्णा उस पुरुषके काले मृगचर्मको पकडे प्रसन्न मनसे उसी प्रकार पीछे पीछे चली, कि जैसे हथिनी हाथीके पीछे प्रसन्न होकर जाती है । तब सब राजाओंके असह्य और क्रोध-युक्त होकर युद्धके लिये दौडनेपर दूसरे एक वीर उस पार्थिव सेनामें घुसकर, जैसे क्रोधित यमराज दण्ड लेकर प्राणियोंको नष्ट करते हैं उसी प्रकार एक बडे भारी प्राचीन वृक्षको उखाड कर उससे भूपालोंको भगाने लगे ॥ ४–५ ॥

तौ पार्थिवानां मिषतां नरेन्द्र कृष्णामुपादाय गतौ नराग्र्यौ ।
विभ्राजमानाविव चन्द्रसूर्यौ बाह्यां पुराद्भार्गवकर्मशालाम् ॥ ६ ॥

हे नरनाथ ! तब राजालोगोंके देखते देखते वे दोनों वीर नरसिंह चन्द्रमा और सूर्यकी भांति सोहते हुए कृष्णाको लेकरके नगरके बाहर एक कुम्हारके घरमें जा घुसे ॥ ६ ॥

तत्रोपविष्टार्चिरिवानलस्य तेषां जनित्रीति मम प्रतर्कः ।
तथाविधैरेव नरप्रवीरैरुपोपविष्टैस्त्रिभिरग्निकल्पैः ॥ ७ ॥

वहां अग्निकी चिनगारीकी भांति एक बुढिया नारी अग्निके सदृश तीन अन्य वीरोंके साथ बैठी हुई थी; मुझको जान पडा, कि वह उनकी माता होगी ॥ ७ ॥

तस्यास्ततस्तावभिवाद्य पादावुक्त्वा च कृष्णामभिवादयेति ।
स्थितौ च तत्रैव निवेद्य कृष्णां भैक्षप्रचाराय गता नराग्र्याः ॥ ८ ॥

तदनन्तर उन दोनोंके उनके निकट जाकर और उनके पांव छूकर कृष्णाको उन्हें प्रणाम करनेके लिए कहा और कृष्णाको भिक्षा कह कर उनके पास सौंपके वे सब भिक्षाके लिये चले गए ॥ ८ ॥

तेषां तु भैक्ष्यं प्रतिगृह्य कृष्णा कृत्वा बलिं ब्राह्मणसाच्च कृत्वा ।
तां चैव वृद्धां परिविष्य तांश्च नरप्रवीरान्स्वयमप्यभुङ्क्त ॥ ९ ॥

तदनन्तर उनके भीख लेकर लौट आनेपर कृष्णाने उनके भोजनकी सामग्री लेकर उसका कुछ अंश देवोंको अर्पण किया और कुछ ब्राह्मणोंको दिया । अनन्तर शेष भाग बुढिया और पांचों वीरोंको परोस कर अन्तमें उसने भोजन किया ॥ ९ ॥

सुप्तास्तु ते पार्थिव सर्व एव कृष्णा तु तेषां चरणोपधानम् ।
आसीत्पृथिव्यां शयनं च तेषां दर्भाजिनाग्र्यास्तरणोपपन्नम् ॥ १० ॥

हे नरनाथ ! इसके पश्चात् धरती पर कुशका बिछौना बनाकर उनपर मृगचर्म बिछाये जानेके पश्चात् वे उस पर सोये ! कृष्णा उनके पांवके नीचे तकियेकी भांति सो गई ॥१०॥

ते नर्दमाना इव कालमेघाः कथा विचित्राः कथयांबभूवुः ।
न वैश्यशूद्रौपयिकीः कथास्ता न च द्विजातेः कथयन्ति वीराः ॥ ११ ॥

तब वे वीर काले बादलके समान गंभीर स्वरसे आपसमें भांति भांतिकी विचित्र कथा कहने लगे । वे जो सब कथा कह रहे थे, वे कभी ब्राह्मण, वैश्य वा शूद्र जातिकी नहीं हो सकतीं ॥ ११ ॥

निःसंशयं क्षत्रियपुङ्गवास्ते यथा हि युद्धं कथयन्ति राजन् ।
आशा हि नो व्यक्तमियं समृद्धा मुक्तान्हि पार्थाञ्छृणुमोऽग्निदाहात् ॥१२॥

हे महाराज ! वे जैसी युद्ध-सम्बन्धी कथा कहने लगे, उससे वे निःसन्देह क्षत्रिय श्रेष्ठ होंगे ! हे पिता ! इसमें सन्देह नहीं है, कि हमारी आशा पूरी हुई है, क्योंकि सुन चुका हूं, कि पाण्डव अग्निसे जलनेसे बच गए हैं ॥ १२ ॥

यथा हि लक्ष्यं निहितं धनुश्च सज्यं कृतं तेन तथा प्रसह्य ।
यथा च भाषन्ति परस्परं ते छन्ना ध्रुवं ते प्रचरन्ति पार्थाः ॥ १३ ॥

और उस महावीरने जिस प्रकारसे धनुषमें विना विलंब डोरी चढाई, जिस प्रकार सहज हीमें लक्ष्य भेद किया और उनमें आपसकी जैसी कथा सुनी, उससे निश्चय जान पडता है, कि ये ही पञ्च पाण्डव होंगे, इसमें सन्देह नहीं कि, माताके साथ छिपकर घूम रहे हैं ॥ १३ ॥

ततः स राजा द्रुपदः प्रहृष्टः पुरोहितं प्रेषयां तत्र चक्रे ।
विद्याम युष्मानिति भाषमाणो महात्मनः पाण्डुसुताः स्थ कच्चित् ॥ १४ ॥

तदनन्तर राजा द्रुपदने आनन्दपूर्वक पुरोहितको यह कहके पाण्डवोंके पास भेजा, कि उनके निकट जाके तुम यह कहना, कि तुम महात्मा पांडुकी सन्तान हो, कि नहीं, मैं तुम्हारी यह बात जानना चाहता हूं ॥ १४ ॥

गृहीतवाक्यो नृपतेः पुरोधा गत्वा प्रशंसामभिधाय तेषाम् ।
वाक्यं यथावन्नृपतेः समग्रमुवाच तान्स क्रमवित्क्रमेण ॥ १५ ॥

क्रमको जाननेवाले राजपुरोहित राजाज्ञाको सुनकर पाण्डवोंके पास जा, क्रमसे उनमेंसे हरेकका यश गाकर राजाकी कही हुई सब बात कहने लगे ॥ १५ ॥

विज्ञातुमिच्छत्यवनीश्वरो वः पाञ्चालराजो द्रुपदो वरार्हाः ।
लक्ष्यस्य वेद्धारमिमं हि दृष्ट्वा हर्षस्य नान्तं प्रतिपद्यते सः ॥ १६ ॥

हे श्रेष्ठों ! श्रेष्ठ पृथिवीपति पाञ्चाल राजा द्रुपद आपका परिचय जानना चाहते हैं; वह इस वीरको लक्ष्यभेद करते देखकर अपार आनन्दके पारावारमें गोता खा रहे हैं ॥ १६ ॥

तदाचड्ढ्वं ज्ञातिकुलानुपूर्वीं पदं शिरःसु द्विषतां कुरुध्वम् ।
प्रह्लादयध्वं हृदयं ममेयं पाञ्चालराजस्य सहानुगस्य ॥ १७ ॥

आप अपनी, ज्ञातिकी और कुलकी कथा आद्योपान्त सुनाकर राजापाञ्चालके, उनके साथियोंके और मेरे हृदयमें आनन्द भर दें और शत्रुओंके सिर पर पांव रखें ॥ १७ ॥

पाण्डुर्हि राजा द्रुपदस्य राज्ञः प्रियः सखा चात्मसमो बभूव ।
तस्यैष कामो दुहिता ममेयं स्नुषा यदि स्यादिति कौरवस्य ॥ १८ ॥

महाराज पाण्डु राजा द्रुपदके आत्मवत् प्यारे सखा थे, अतः भूपाल द्रुपदकी यह चाह थी, कि उनकी कन्या कृष्णा सखा पाण्डुकी पुत्रवधू बने ॥ १८ ॥

अयं च कामो द्रुपदस्य राज्ञो हृदि स्थितो नित्यमनिन्दिताङ्गाः ।
यदर्जुनो वै पृथुदीर्घबाहुर्धर्मेण विन्देत सुतां ममेति ॥ १९ ॥
हे अनिन्दित रूपवान् वीरो ! राजा द्रुपदके हृदयमें सदा यह कामना रहती थी, कि मोटे मोटे और दीर्घबाहुओंवाले अर्जुन धर्मानुसार मेरी कन्याको प्राप्त करें ॥ १९ ॥

तथोक्तवाक्यं स पुरोहितं तं स्थितं विनीतं समुदीक्ष्य राजा ।
समीपस्थं भीममिदं शशास प्रदीयतां पाद्यमर्घ्यं तथास्मै ॥ २० ॥
पुरोहितके नम्रभावसे यह सब कहके चुप होने पर पाण्डवराजने उनकी ओर देख निकट स्थित भीमसेनको आज्ञा दी, कि इनको पाद्य और अर्घ्य दो ॥ २० ॥

मान्यः पुरोधा द्रुपदस्य राज्ञस्तस्मै प्रयोज्याभ्यधिकैव पूजा ।
भीमस्तथा तत्कृतवान्नरेन्द्र तां चैव पूजां प्रतिसंगृहीत्वा ॥ २१ ॥
यह राजा द्रुपदके पुरोहित, बडे माननीय हैं, भली प्रकार इनको पूजना चाहिये । हे नरनाथ ! भीमसेनने भाईकी आज्ञानुसार भलीभांति उनकी पूजा की ॥ २१ ॥

सुखोपविष्टं तु पुरोहितं तं युधिष्ठिरो ब्राह्मणमित्युवाच ।
पाञ्चालराजेन सुता निसृष्टा स्वधर्मदृष्टेन यथानुकामम् ॥ २२ ॥
पुरोहित ब्राह्मणके पूजा लेकर प्रसन्नचित्तसे सुखपूर्वक बैठने पर युधिष्ठिर उन पुरोहित ब्राह्मणसे बोले– हे ब्राह्मण ! राजा पांचालने धर्मसे ही कन्या दी है, मनमाना कन्यादान नहीं किया है ॥ २२ ॥

प्रदिष्टशुल्का द्रुपदेन राज्ञा सानेन वीरेण तथानुवृत्ता ।
न तत्र वर्णेषु कृता विवक्षा न जीवशिल्पे न कुले न गोत्रे ॥ २३ ॥
उन्होंने अपने धर्मके अनुसार लक्ष्यभेदका प्रण करके कन्यादान करना निश्चय किया था, उससे ही इस वीरने उनकी कन्याकी प्राप्ति की है; उस स्वयंवरमें उन्होंने वर्णसम्बन्धी अपेक्षा नहीं की थी, न शिल्पकी, न कुलकी और न गोत्रकी ही उसमें अपेक्षा की थी ॥२३॥

कृतेन सज्येन हि कार्मुकेण विद्धेन लक्ष्येण च संनिसृष्टा ।
सेयं तथानेन महात्मनेह कृष्णा जिता पार्थिवसङ्घमध्ये ॥ २४ ॥
धनुषमें डोरी चढाकर लक्ष्य भेदने ही पर वह सब पूछनेके अधिकार खो चुके हैं। उन्हींके संकल्पसे यह महात्मा सब राजाओंमेंसे द्रौपदीको जीत कर लाया है ॥ २४ ॥

नैवंगते सौमकिरद्य राजा संतापमर्हत्यसुखाय कर्तुम् ।
कामश्च योऽसौ द्रुपदस्य राज्ञः स चापि संपत्स्यति पार्थिवस्य ॥ २५ ॥
ऐसी दशामें सोमवंशी राजा द्रुपदका इस समय दुःख मानना केवल सुखसे वंचित होना ही है । पर उन द्रुपद राजाकी जो चाह है, वह राजाकी कामना पूरी होगी ॥ २५ ॥

अप्राप्यरूपां हि नरेन्द्रकन्यामिमामहं ब्राह्मण साधु मन्ये ।
न तद्धनुर्मन्दबलेन शक्यं मौर्व्या समायोजयितुं तथा हि ।
न चाकृतास्त्रेण न हीनजेन लक्ष्यं तथा पातयितुं हि शक्यम् ॥ २६ ॥

क्योंकि, हे ब्राह्मण ! इस अति रूपवती राजकुमारीके लक्षण भले दीख पडते हैं । जिसका सामर्थ्य थोडा है, वह कभी उस धनुषमें डोरी नहीं चढा सकता है; और जो नीच जातिका अथवा अस्त्रविद्यामें कुशल नहीं है, वह भी कभी लक्ष्यको भेद कर धरतीपर गिरा नहीं सकता ॥ २६ ॥

तस्मान्न तापं दुहितुर्निमित्तं पाञ्चालराजोऽर्हति कर्तुमद्य ।
न चापि तत्पातनमन्यथेह कर्तुं विषह्यं भुवि मानवेन ॥ २७ ॥

इसके अलावा इस संसारमें किसी भी मनुष्यके द्वारा वह लक्ष्य किसी दूसरे ढंगसे नहीं गिराया जा सकता था, अतः अब कन्याके लिये पांचालराजका दुःख मानना ठीक नहीं ॥ २७ ॥

एवं ब्रुवत्येव युधिष्ठिरे तु पाञ्चालराजस्य समीपतोऽन्यः ।
तत्राजगामाशु नरो द्वितीयो निवेदयिष्यन्निह सिद्धमन्नम् ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥ ६०४६ ॥

युधिष्ठिर ऐसा कह ही रहे थे, कि राजा पांचालके पाससे एक और दूत यह कहनेको वहां आया, कि अन्न तैय्यार हो गया है ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ पिचासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८५ ॥ ६०४६ ॥

: १८६ :

दूत उवाच

जन्यार्थमन्नं द्रुपदेन राज्ञा विवाहहेतोरुपसंस्कृतं च ।
तदाप्नुवध्वं कृतसर्वकार्याः कृष्णा च तत्रैव चिरं न कार्यम् ॥ १ ॥

दूत बोला— महाराज द्रुपदने विवाहके कारणसे बराती लोगोंके लिये अच्छा अन्न बनवाया है । आप सभी नित्यकृत्य पूरा कर शीघ्र वहां आकर उनका उपभोग करें; वहीं कृष्णाका विवाह होगा, विलम्ब न करें ॥ १ ॥

इमे रथाः काञ्चनपद्मचित्राः सदश्वयुक्ता वसुधाधिपार्हाः ।
एतान्समारुह्य परैत सर्वे पाञ्चालराजस्य निवेशनं तत् ॥ २ ॥

सोनेके पद्मसे चित्रित, अच्छे घोडोंवाले तथा राजाओंके योग्य सब रथ खडे हैं, आप सब इनपर चढकर पांचालराजके भवनमें गमन करें ॥ २ ॥

वैशंपायन उवाच

ततः प्रयाताः कुरुपुङ्गवास्ते पुरोहितं तं प्रथमं प्रयाप्य ।
आस्थाय यानानि महान्ति तानि कुन्ती च कृष्णा च सहैव याते ॥ ३ ॥
वैशंपायन बोले— तब कुरुश्रेष्ठ पाण्डव पुरोहितको प्रथम विदा कर उन बडे बडे यानोंमेंसे एकपर कुन्ती और कृष्णाको बैठाकर स्वयं भी रथोंपर सवार होकर चले ॥ ३ ॥

श्रुत्वा तु वाक्यानि पुरोहितस्य यान्युक्तवान्भारत धर्मराजः ।
जिज्ञासयैवाथ कुरूत्तमानां द्रव्याण्यनेकान्युपसंजहार ॥ ४ ॥
हे भारत ! इधर राजा पांचालने पुरोहितसे धर्मराज युधिष्ठिरके द्वारा कहे गए बचनोंको सुन कर उन कुरुश्रेष्ठोंको जाननेकी इच्छासे अनेक तरहके धन भेजे ॥ ४ ॥

फलानि माल्यानि सुसंस्कृतानि चर्माणि वर्माणि तथासनानि ।
गाश्चैव राजन्नथ चैव रज्जूर्द्रव्याणि चान्यानि कृषीनिमित्तम् ॥ ५ ॥
हे राजन् ! उपहारके लिये फल, सुन्दर सुन्दर माला, चर्म, कवच, आसन, गौ, रस्सी, द्रव्य, खेतीके दूसरे सब पदार्थ ॥ ५ ॥

अन्येषु शिल्पेषु च यान्यपि स्युः सर्वाणि क्लृप्तान्यखिलेन तत्र ।
क्रीडानिमित्तानि च यानि तानि सर्वाणि तत्रोपजहार राजा ॥ ६ ॥
शिल्पके योग्य और दूसरे जो यन्त्र थे और जो क्रीडाकी वस्तुएं थीं, उन सब द्रव्योंको राजाने भेजा ॥ ६ ॥

रथाश्ववर्माणि च भानुमन्ति खड्गा महान्तोऽश्वरथाश्च चित्राः ।
धनूंषि चाग्र्याणि शराश्च मुख्याः शक्त्यृष्टयः काञ्चनभूषिताश्च ॥ ७ ॥
और रथ, अश्व, वर्म और ऋष्टि, सुन्दर खड्ग, बडे बडे घोडे, अनेक तरहके अच्छे धनुष, भांति भांतिके बाण, सुवर्णसे सजी शक्ति ॥ ७ ॥

प्रासा भुशुण्डयश्च परश्वधाश्च सांग्रामिकं चैव तथैव सर्वम् ।
शय्यासनान्युत्तमसंस्कृतानि तथैव चासन्विविधानि तत्र ॥ ८ ॥
प्रास, बन्दूक और कुठार, युद्धके योग्य भांति भांतिकी दूसरी वस्तुयें और अच्छी तरह सजे सजाए पलंग और आसन आदि अनेक प्रकारकी सामग्री भेजी ॥ ८ ॥

कुन्ती तु कृष्णां परिगृह्य साध्वीमन्तःपुरं द्रुपदस्याविवेश ।
स्त्रियश्च तां कौरवराजपत्नीं प्रत्यर्चयांचक्रुरदीनसत्त्वाः ॥ ९ ॥
अनन्तर कौरवराजपत्नी कुन्ती सती द्रौपदीको लेकर राजा द्रुपदके अन्तःपुरमें गयी। शक्तिसे युक्त राजस्त्रियोंने प्रसन्न चित्तसे उनका स्वागत कर उन्हें सम्मानित किया ॥९॥

तान्सिंहविक्रान्तगतीनवेक्ष्य महर्षभाक्षानजिनोत्तरीयान् ।
गूढोत्तरांसान्भुजगेन्द्रभोगप्रलम्बबाहून्पुरुषप्रवीरान् ॥ १० ॥

उसके बाद मृगचर्मका दुपट्टा लिये हुए, सिंहके समान विक्रमी चालवाले, बडे बैलसदृश आंखोंवाले, सर्पराजकी देहकी भांति लम्बी लम्बी भुजाओंवाले और बडे स्कन्धोंवाले उन पाण्डवोंको देखकर ॥ १० ॥

राजा च राज्ञः सचिवाश्च सर्वे पुत्राश्च राज्ञः सुहृदस्तथैव ।
प्रेष्याश्च सर्वे निखिलेन राजन्हर्षं समापेतुरतीव तत्र ॥ ११ ॥

हे राजन् ! राजा पांचाल तथा उनके मन्त्री, पुत्र, मित्र, सेवक और राजपरिवारके दूसरे लोग अत्यधिक आनन्दित हुए ॥ ११ ॥

ते तत्र वीराः परमासनेषु सपादपीठेष्वविशङ्कमानाः ।
यथानुपूर्व्या विविशुर्नराग्र्यास्तदा महार्हेषु न विस्मयन्तः ॥ १२ ॥

वे नरश्रेष्ठ वीरगण विना आश्चर्य और निडर चित्तसे अलग अलग पादपीठयुक्त अति सुन्दर मूल्यवान् आसनों पर बडे छोटेके क्रमसे बैठ गये ॥ १२ ॥

उच्चावचं पार्थिवभोजनीयं पात्रीषु जाम्बूनदराजतीषु ।
दासाश्च दास्यश्च सुमृष्टवेषाः भोजापकाश्चाप्युपजन्हुरन्नम् ॥ १३ ॥

तदनन्तर अच्छे लिबास और गहनोंसे बने ठने सेवक, स्त्रियें और खिलाने पिलानेवालोंने यथायोग्य सुवर्ण और चांदीके बर्तनोंमें परम स्वादिष्ट राजाके भोजनयोग्य अन्नपानादिकी भांति भांतिकी सामग्री लाकर रखी ॥ १३ ॥

ते तत्र भुक्त्वा पुरुषप्रवीरा यथानुकामं सुभृशं प्रतीताः ।
उत्क्रम्य सर्वाणि वसूनि तत्र साङ्ग्रामिकान्याविविशुर्नृवीराः ॥ १४ ॥

हे महाराज ! पुरुषोंमें वीर पाण्डव मनमाना भोजन कर तृप्त हुए और उपहारकी वस्तुओंमेंसे दूसरी सब चीजें छोडकर केवल लडाईके योग्य पदार्थोंको देखने लगे ॥ १४ ॥

तल्लक्षयित्वा द्रुपदस्य पुत्रो राजा च सर्वैः सह मन्त्रिमुख्यैः ।
समर्चयामासुरुपेत्य हृष्टाः कुन्तीसुतान्पार्थिवपुत्रपौत्रान् ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥ ६०६१ ॥

तब राजा द्रुपद और उनके पुत्र और प्रधान मन्त्री यह देख कुन्तीकुमारोंको राजाओंके पुत्र और पौत्र जान कर अत्यधिक आनन्दित हुए ॥ १५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ छियासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८६ ॥ ६०६१ ॥

: १८७ :

वैशम्पायन उवाच

तत आहूय पाञ्चाल्यो राजपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
परिग्रहेण ब्राह्मेण परिगृह्य महाद्युतिः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— तदनन्तर अति द्युतिमान् पाञ्चाल्य द्रुपदने बडे तेजस्वी राजपुत्र युधिष्ठिरको बुलाकर ब्राह्मणके योग्य सम्मानोंसे सम्मानित कर ॥ १ ॥

पर्यपृच्छददीनात्मा कुन्तीपुत्रं सुवर्चसम् ।
कथं जानीम भवतः क्षत्रियान्ब्राह्मणानुत ॥ २ ॥
वैश्यान्वा गुणसंपन्नानुत वा शूद्रयोनिजान् ।
मायामास्थाय वा सिद्धांश्चरतः सर्वतोदिशम् ॥ ३ ॥

उस अदीनात्मा राजाने अत्यन्त तेजस्वी कुन्ती पुत्रसे पूछा— मैं तुमको ब्राह्मण, क्षत्रिय, अथवा गुणवान् वैश्य वा शूद्र इनमेंसे कौनसी जातिका समझूं ! अथवा तुमको चारों दिशाओंमें मायाका रूप धरकर विचरनेवाले सिद्ध समझूँ ॥ २–३ ॥

कृष्णाहेतोरनुप्राप्तान्दिवः सन्दर्शनार्थिनः ।
ब्रवीतु नो भवान्सत्यं संदेहो ह्यत्र नो महान् ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मणोंके स्वरूपमें विचरते हुए कृष्णाके निमित्त यहां आए हुए तुम्हें देव समझूं ! तुम हमसे सच कहो इस विषयमें हमें महान् शंका है ॥ ४ ॥

अपि नः संशयस्यान्ते मनस्तुष्टिरिहाविशेत् ।
अपि नो भागधेयानि शुभानि स्युः परंतप ॥ ५ ॥

हे शत्रुमंथन ! क्या इस शङ्काके दूर होनेसे हमारे हृदयमें आनन्द होगा ? हे परन्तप ! क्या हमारे भाग्य उत्तम होंगे ? ॥ ५ ॥

कामया ब्रूहि सत्यं त्वं सत्यं राजसु शोभते ।
इष्टापूर्तेन च तथा वक्तव्यमनृतं न तु ॥ ६ ॥

अपनी इच्छासे सत्यवचन बोलो, राजाके द्वारा सच कहना ही शोभादायक है, इष्टापूर्त अर्थात् यज्ञादि क्रिया और वापी प्रतिष्ठा आदि पुण्यदायी कर्मकी दृष्टिसे भी असत्य नहीं बोलना चाहिए ॥ ६ ॥

श्रुत्वा ह्यमरसंकाश तव वाक्यमरिंदम ।
ध्रुवं विवाहकरणमास्थास्यामि विधानतः ॥ ७ ॥

हे देवतुल्य तथा शत्रुको मथनेहारे ! मैं तुम्हारा वचन सुनकर यथारीति तुम्हारी जातिके योग्यानुसार विवाह करनेका उद्योग करूंगा ॥ ७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

मा राजन्विमना भूस्त्वं पाञ्चाल्य प्रीतिरस्तु ते ।
ईप्सितस्ते ध्रुवः कामः संवृत्तोऽयमसंशयम् ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पाञ्चालराज ! आप दुःख न मानें, आप प्रसन्न हों, निःसन्देह आपका मनोरथ सफल हुआ है ॥ ८ ॥

वयं हि क्षत्रिया राजन्पाण्डोः पुत्रा महात्मनः ।
ज्येष्ठं मां विद्धि कौन्तेयं भीमसेनार्जुनाविमौ ।
याभ्यां तव सुता राजन्निर्जिता राजसंसदि ॥ ९ ॥

महाराज ! हम क्षत्रियवंशी महात्मा राजा पाण्डुके पुत्र हैं । मुझे कुन्तीका ज्येष्ठ पुत्र समझो, यह दो भीम और अर्जुन हैं, जिन्होंने, हे राजन् ! राजसभामें आपकी कन्या जीती है ॥ ९ ॥

यमौ तु तत्र राजेन्द्र यत्र कृष्णा प्रतिष्ठिता ।
व्येतु ते मानसं दुःखं क्षत्रियाः स्मो नरर्षभ ।
पद्मिनीव सुतेयं ते ह्रदादन्यं ह्रदं गता ॥ १० ॥

हे राजेन्द्र ! जहां कृष्णा है, वहीं यमज भ्राता नकुल सहदेव बैठे हुए हैं, अतः, हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजन् ! आपका मानसिक दुःख दूर हो, हम क्षत्रिय ही हैं, पद्मिनीके समान आपकी यह कन्या एक तालाबसे दूसरे तालाबमें गयी है ॥ १० ॥

इति तथ्यं महाराज सर्वमेतद्ब्रवीमि ते ।
भवान्हि गुरुरस्माकं परमं च परायणम् ॥ ११ ॥

हे महाराज ! मैं यह सब तथ्य आपसे कह रहा हूँ आप ही हमारे गुरु और परम गति हैं ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः स द्रुपदो राजा हर्षव्याकुललोचनः ।
प्रतिवक्तुं तदा युक्तं नाशकत्तं युधिष्ठिरम् ॥ १२ ॥

वैशम्पायन बोले— तब राजा द्रुपद पाण्डवोंका परिचय पाकर परम हर्षसे व्याकुल नेत्रों-वाले होकर उस युधिष्ठिरको योग्य उत्तर न दे सके ॥ १२ ॥

यत्नेन तु स तं हर्षं संनिगृह्य परंतपः
अनुरूपं तदा राजा प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ १३ ॥

तब बडे प्रयत्नसे परन्तप राजा अपने हर्षको नियंत्रित करके धर्मराज युधिष्ठिरसे कालके योग्य वचन बोले ॥ १३ ॥

पप्रच्छ चैनं धर्मात्मा यथा ते प्रद्रुताः पुरा ।
स तस्मै सर्वमाचख्यावानुपूर्व्येण पाण्डवः ॥ १४ ॥

और धर्मात्मा द्रुपदने इनसे पूछा, कि वे वारणावत नगरसे कैसे भागे ? उस पाण्डुपुत्रने उन्हें आद्योपान्त वह सब कथा कह सुनायी ॥ १४ ॥

तच्छ्रुत्वा द्रुपदो राजा कुन्तीपुत्रस्य भाषितम् ।
विगर्हयामास तदा धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ १५ ॥

तब राजा द्रुपद कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी बात सुनकर नरराज धृतराष्ट्रकी निन्दा करने लगे ॥ १५ ॥

आश्वासयामास च तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
प्रतिजज्ञे च राज्याय द्रुपदो वदतां वरः ॥ १६ ॥

और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको ढाढस दिया और बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ द्रुपदने राज्यपर बैठानेकी प्रतिज्ञा की ॥ १६ ॥

ततः कुन्ती च कृष्णा च भीमसेनार्जुनावपि ।
यमौ च राज्ञा संदिष्टौ विविशुर्भवनं महत् ॥ १७ ॥

तदनन्तर कुन्ती, द्रौपदी, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव राजाकी आज्ञासे एक बडे भवनमें गये ॥ १७ ॥

तत्र ते न्यवसन्राजन्यज्ञसेनेन पूजिताः ।
प्रत्याश्वस्तांस्ततो राजा सह पुत्रैरुवाच तान् ॥ १८ ॥

हे महाराज ! वे राजा यज्ञसेनसे सन्मान पाकर उस भवनमें रहने लगे । तदनन्तर राजा पुत्रोंके साथ उन आश्वस्त हुए हुए पाण्डवोंसे बोले ॥ १८ ॥

गृह्णातु विधिवत्पाणिमद्यैव कुरुनन्दनः ।
पुण्येऽहनि महाबाहुरर्जुनः कुरुतां क्षणम् ॥ १९ ॥

आजके शुभ दिनमें कुरुनन्दन महाबाहु अर्जुन विवाहके कर्मोंको करके कृष्णाका पाणिग्रहण करें ॥ १९ ॥

ततस्तमब्रवीद्राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
ममापि दारसम्बन्धः कार्यस्तावद्विशां पते ॥ २० ॥

हे महाराज ! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर उनसे बोले– हे नरनाथ ! मुझे भी विवाह करना है ॥२०॥

द्रुपद उवाच

भवान्वा विधिवत्पाणिं गृह्णातु दुहितुर्मम ।
यस्य वा मन्यसे वीर तस्य कृष्णामुपादिश ॥ २१ ॥

द्रुपदने कहा– हे वीर ! तुम ही विधिपूर्वक मेरी बेटीका पाणिग्रहण करो, अथवा तुम जिससे कृष्णाका विवाह कराना चाहो उसीसे विवाह कराओ ॥ २१ ॥

युधिष्ठिर उवाच

सर्वेषां द्रौपदी राजन्महिषी नो भविष्यति ।
एवं हि व्याहृतं पूर्वं मम मात्रा विशां पते ॥ २२ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे प्रजापालक राजन् ! द्रौपदी हम सबोंकी रानी बनेगी, क्योंकि पहिले मेरी माताने ऐसी ही आज्ञा दी है ॥ २२ ॥

अहं चाप्यनिविष्टो वै भीमसेनश्च पाण्डवः ।
पार्थेन विजिता चैषा रत्नभूता च ते सुता ॥ २३ ॥

विशेष मेरा और पाण्डुपुत्र भीमसेनका अभी विवाह नहीं हुआ है; अर्जुनने तुम्हारी रत्न-सदृश कन्याको जीता है ॥ २३ ॥

एष नः समयो राजन्रत्नस्य सहभोजनम् ।
न च तं हातुमिच्छामः समयं राजसत्तम ॥ २४ ॥

पर, हे राजेन्द्र ! हम भाइयोंमें एक प्रतिज्ञा है कि किसी भी रत्नका हम सब एकत्र होकर भोग करेंगे । हम उस नियमके विरुद्ध चलना नहीं चाहते ॥ २४ ॥

सर्वेषां धर्मतः कृष्णा महिषी नो भविष्यति ।
आनुपूर्व्येण सर्वेषां गृह्णातु ज्वलने करम् ॥ २५ ॥

अतः धर्मानुसार द्रौपदी हम सबकी रानी होगी; वह अग्निके सामने बडे छोटेके क्रमसे हम सबका हाथ पकडे ॥ २५ ॥

द्रुपद उवाच

एकस्य बह्व्यो विहिता महिष्यः कुरुनन्दन ।
नैकस्या बहवः पुंसो विधीयन्ते कदाचन ॥ २६ ॥

द्रुपद बोले– हे कुरुनन्दन ! शास्त्रकी विधिसे एक पुरुषकी अनेक स्त्रियां हो सकती हैं, पर एक स्त्रीके अनेक पति कभी नहीं होते ॥ २६ ॥

लोकवेदविरुद्धं त्वं नाधर्मं धार्मिकः शुचिः ।
कर्तुमर्हसि कौन्तेय कस्मात्ते बुद्धिरीदृशी ॥ २७ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! तुम पवित्र और धर्मके जानकार होनेके कारण लोक और वेदके विरोधी कर्म नहीं कर सकते । यह तुम्हारी ऐसी बुद्धि क्यों हुई ? ॥ २७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

सूक्ष्मो धर्मो महाराज नास्य विद्मो वयं गतिम् ।
पूर्वेषामानुपूर्व्येण यातं वर्त्मानुयामहे ॥ २८ ॥

युधिष्ठिर बोले– महाराज ! धर्मका मार्ग सूक्ष्म है, उसकी गति हम जान नहीं सकते । पर प्रचेता आदि पहिलेके महात्मा जिस पथसे गये, हम उसी पथसे चलेंगे ॥ २८ ॥

न मे वागनृतं प्राह नाधर्मे धीयते मतिः ।
एवं चैव वदत्यम्बा मम चैव मनोगतम् ॥ २९ ॥

हे राजन् ! मेरी माताने वैसी आज्ञा दी है और वह मेरा मन भी इसका समर्थन करता है; मेरे वागिन्द्रियसे कभी झूठी बात नहीं निकलती, मेरा मन भी कभी अधर्मकी ओर नहीं चलता ॥ २९ ॥

एष धर्मो ध्रुवो राजंश्चरैनमविचारयन् ।
मा च तेऽत्र विशङ्का भूत्कथंचिदपि पार्थिव ॥ ३० ॥

अतः, हे राजन् ! यह निश्चयसे धर्म है, अतः बिना कुछ सोच विचारके इसका आचरण करें; हे पृथ्वीनाथ ! इस विषयमें आप किसी भी प्रकारकी शङ्का न करें ॥ ३० ॥

द्रुपद उवाच

त्वं च कुन्ती च कौन्तेय धृष्टद्युम्नश्च मे सुतः ।
कथयन्त्वितिकर्तव्यं श्वः काले करवामहे ॥ ३१ ॥

द्रुपद बोले– हे कुन्तीपुत्र ! तुम, कुन्ती और मेरा पुत्र धृष्टद्युम्न यह तीनों मिलके विचार कर क्या करना है, वह निश्चय करो, जो करना होगा, मैं कल करूंगा ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच

ते समेत्य ततः सर्वे कथयन्ति स्म भारत ।
अथ द्वैपायनो राजन्नभ्यागच्छद्यदृच्छया ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥ ६०९३ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत ! तब कुन्ती, युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्न यह तीनों एकत्र होकर उस विषयमें विचार कर रहे थे कि ऐसे ही समयमें भगवान् द्वैपायन स्वयं अपनी इच्छासे वहां आ पहुंचे ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ सतासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८७ ॥ ६०९३ ॥

: १८८ :

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते पाण्डवाः सर्वे पाञ्चाल्यश्च महायशाः ।
प्रत्युत्थाय महात्मानं कृष्णं दृष्ट्वाभ्यपूजयन् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तब सब पाण्डवों, बडे यशस्वी राजा पाञ्चाल और वहांके दूसरे लोगोंने उठकर महात्मा कृष्णद्वैपायनको देखकर उनका स्वागत किया ॥ १ ॥

प्रतिनन्द्य स तान्सर्वान्पृष्ट्वा कुशलमन्ततः ।
आसने काञ्चने शुभ्रे निषसाद महामनाः ॥ २ ॥

महानुभाव महर्षि उनका प्रणाम स्वीकार कर और कुशलक्षेम पूछकर सुन्दर सुवर्णके आसन पर बैठ गए ॥ २ ॥

अनुज्ञातास्तु ते सर्वे कृष्णेनामिततेजसा ।
आसनेषु महार्हेषु निषेदुर्द्रुपदो वराः ॥ ३ ॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ पाण्डव आदि सब अति तेजस्वी कृष्णद्वैपायनकी आज्ञासे महामूल्य आसन पर बैठे ॥ ३ ॥

ततो मुहूर्तान्मधुरां वाणीमुच्चार्य पार्षतः ।
पप्रच्छ तं महात्मानं द्रौपद्यर्थे विशां पतिः । ॥ ४ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! पृषतराजपुत्र राजा पाञ्चालने क्षणभर बाद मधुर वचन कहकर महात्मा ऋषिसे द्रौपदीके विषयमें प्रश्न किया ॥ ४ ॥

कथमेका बहूनां स्यान्न च स्याद्धर्मसंकरः ।
एतन्नो भगवान्सर्वं प्रब्रवीतु यथातथम् ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! एक स्त्रीके बहुतसे पति हों, फिर भी धर्मसंकर न हो, यह सब आप याथातथ्य रूपसे हमें बतायें ॥ ५ ॥

व्यास उवाच

अस्मिन्धर्मे विप्रलब्धे लोकवेदविरोधके ।
यस्य यस्य मतं यद्यच्छ्रोतुमिच्छामि तस्य तत् ॥ ६ ॥

व्यास बोले– वेद और लोकाचारके विरुद्ध होनेसे यह धर्म लुप्त हो गया है, पर इस विषयमें तुम लोगोंमेंसे किसका क्या मत है, सुनना चाहता हूं ॥ ६ ॥

द्रुपद उवाच

अधर्मोऽयं मम मतो विरुद्धो लोकवेदयोः ।
न ह्येका विद्यते पत्नी बहूनां द्विजसत्तम ॥ ७ ॥

द्रुपद बोले– हे द्विजश्रेष्ठ ! कहीं भी अनेक पुरुषोंकी एक स्त्री नहीं हुई है; अतः मेरे विचारमें यह कर्म लोकाचार और वेदके विरोधी होनेके कारण अधर्मयुक्त है ॥ ७ ॥

न चाप्याचरितः पूर्वैरयं धर्मो महात्मभिः ।
न च धर्मोऽप्यनेकस्थश्चरितव्यः सनातनः ॥ ८ ॥

इसके अलावा पहिलेके महात्माओंने भी ऐसा कार्य नहीं किया। और कोई धर्म भी अनेकों द्वारा किया गया भी हो, तो भी उसे नहीं करना चाहिए ॥ ८ ॥

न मे वागनृतं प्राह नाधर्मे धीयते मतिः ।
एवं चैव वदत्यम्बा मम चैव मनोगतम् ॥ २९ ॥

हे राजन् ! मेरी माताने वैसी आज्ञा दी है और वह मेरा मन भी इसका समर्थन करता है; मेरे वागिन्द्रियसे कभी झूठी बात नहीं निकलती, मेरा मन भी कभी अधर्मकी ओर नहीं चलता ॥ २९ ॥

एष धर्मो ध्रुवो राजंश्चरैनमविचारयन् ।
मा च तेऽत्र विशङ्का भूत्कथंचिदपि पार्थिव ॥ ३० ॥

अतः, हे राजन् ! यह निश्चयसे धर्म है, अतः विना कुछ सोच विचारके इसका आचरण करें; हे पृथ्वीनाथ ! इस विषयमें आप किसी भी प्रकारकी शङ्का न करें ॥ ३० ॥

द्रुपद उवाच

त्वं च कुन्ती च कौन्तेय धृष्टद्युम्नश्च मे सुतः ।
कथयन्त्वितिकर्तव्यं श्वः काले करवामहे ॥ ३१ ॥

द्रुपद बोले– हे कुन्तीपुत्र ! तुम, कुन्ती और मेरा पुत्र धृष्टद्युम्न यह तीनों मिलके विचार कर क्या करना है, वह निश्चय करो, जो करना होगा, मैं कल करूंगा ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच

ते समेत्य ततः सर्वे कथयन्ति स्म भारत ।
अथ द्वैपायनो राजन्नभ्यागच्छद्यदृच्छया ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥ ६०९३ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत ! तब कुन्ती, युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्न यह तीनों एकत्र होकर उस विषयमें विचार कर रहे थे कि ऐसे ही समयमें भगवान् द्वैपायन स्वयं अपनी इच्छासे वहां आ पहुंचे ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ सतासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८७ ॥ ६०९३ ॥

: १८८ :

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते पाण्डवाः सर्वे पाञ्चाल्यश्च महायशाः ।
प्रत्युत्थाय महात्मानं कृष्णं दृष्ट्वाभ्यपूजयन् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तब सब पाण्डवों, बडे यशस्वी राजा पाञ्चाल और वहांके दूसरे लोगोंने उठकर महात्मा कृष्णद्वैपायनको देखकर उनका स्वागत किया ॥ १ ॥

प्रतिनन्द्य स तान्सर्वान्पृष्ट्वा कुशलमन्ततः ।
आसने काञ्चने शुभ्रे निषसाद महामनाः ॥ २ ॥

महानुभाव महर्षि उनका प्रणाम स्वीकार कर और कुशलक्षेम पूछकर सुन्दर सुवर्णके आसन पर बैठ गए ॥ २ ॥

अनुज्ञातास्तु ते सर्वे कृष्णेनामिततेजसा ।
आसनेषु महार्हेषु निषेदुर्द्विपदां वराः ॥ ३ ॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ पाण्डव आदि सब अति तेजस्वी कृष्णद्वैपायनकी आज्ञासे महामूल्य आसन पर बैठे ॥ ३ ॥

ततो मुहूर्तान्मधुरां वाणीमुच्चार्य पार्षतः ।
पप्रच्छ तं महात्मानं द्रौपद्यर्थे विशां पतिः । ॥ ४ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! पृषतराजपुत्र राजा पाञ्चालने क्षणभर बाद मधुर वचन कहकर महात्मा ऋषिसे द्रौपदीके विषयमें प्रश्न किया ॥ ४ ॥

कथमेका बहूनां स्यान्न च स्याद्धर्मसंकरः ।
एतन्नो भगवान्सर्वं प्रब्रवीतु यथातथम् ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! एक स्त्रीके बहुतसे पति हों, फिर भी धर्मसंकर न हो, यह सब आप याथातथ्य रूपसे हमें बतायें ॥ ५ ॥

व्यास उवाच

अस्मिन्धर्मे विप्रलब्धे लोकवेदविरोधके ।
यस्य यस्य मतं यद्यच्छ्रोतुमिच्छामि तस्य तत् ॥ ६ ॥

व्यास बोले– वेद और लोकाचारके विरुद्ध होनेसे यह धर्म लुप्त हो गया है, पर इस विषयमें तुम लोगोंमेंसे किसका क्या मत है, सुनना चाहता हूं ॥ ६ ॥

द्रुपद उवाच

अधर्मोऽयं मम मतो विरुद्धो लोकवेदयोः ।
न ह्येका विद्यते पत्नी बहूनां द्विजसत्तम ॥ ७ ॥

द्रुपद बोले– हे द्विजश्रेष्ठ ! कहीं भी अनेक पुरुषोंकी एक स्त्री नहीं हुई है; अतः मेरे विचारमें यह कर्म लोकाचार और वेदके विरोधी होनेके कारण अधर्मयुक्त है ॥ ७ ॥

न चाप्याचरितः पूर्वैरयं धर्मो महात्मभिः ।
न च धर्मोऽप्यनेकस्थश्चारितव्यः सनातनः ॥ ८ ॥

इसके अलावा पहिलेके महात्माओंने भी ऐसा कार्य नहीं किया। और कोई धर्म भी अनेकों द्वारा किया गया भी हो, तो भी उसे नहीं करना चाहिए ॥ ८ ॥

अतो नाहं करोम्येवं व्यवसायं क्रियां प्रति ।
धर्मसंदेहसंदिग्धं प्रतिभाति हि मामिदम् ॥ ९ ॥

अतः इसका आचरण करनेमें मैं निश्चय नहीं कर सकता, क्योंकि यह धर्म मुझको सदा सन्देहसे भरा हुआ प्रतीत हो रहा है ॥ ९ ॥

धृष्टद्युम्न उवाच

यवीयसः कथं भार्यां ज्येष्ठो भ्राता द्विजर्षभ ।
ब्रह्मन्समभिवर्तेत सद्वृत्तः संस्तपोधन ॥ १० ॥

धृष्टद्युम्न बोले– द्विजश्रेष्ठ तपोधन ब्रह्मन् ! उत्तम चरित्रवान् बडा भाई छोटे भाईकी स्त्रीसे कैसे मिल सकता है ? ॥ १० ॥

न तु धर्मस्य सूक्ष्मत्वाद्गतिं विद्मः कथंचन ।
अधर्मो धर्म इति वा व्यवसायो न शक्यते ॥ ११ ॥

धर्म बहुत सूक्ष्म है, अतः उसकी गति हम नहीं जान सकते और कौनसा विषय धर्मयुक्त और कौन अधर्म युक्त है, इसका भी निश्चय नहीं कर सकते ॥ ११ ॥

कर्तुमस्मद्विधैर्ब्रह्मंस्ततो न व्यवसाम्यहम् ।
पञ्चानां महिषी कृष्णा भवत्विति कथंचन ॥ १२ ॥

हम जैसों द्वारा धर्माधर्मका निश्चय नहीं हो सकता, इसीसे मैं यह भी निश्चय नहीं कर सका कि द्रौपदी पांच पुरुषोंकी स्त्री बने ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

न मे वागनृतं प्राह नाधर्मे धीयते मतिः ।
वर्तते हि मनो मेऽत्र नैषोऽधर्मः कथंचन ॥ १३ ॥

युधिष्ठिर बोले– मेरी बाणी कभी असत्य बात नहीं बोलती, मन भी कभी अधर्म पर नहीं झुकता, इस विषयमें मेरा मन भी समर्थन कर रहा है; अतः यह किसी प्रकार भी धर्मके विरुद्ध नहीं जान पडता ॥ १३ ॥

श्रूयते हि पुराणेऽपि जटिला नाम गौतमी ।
ऋषीनध्यासितवती सप्त धर्मभृतां वर ॥ १४ ॥

हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ ! पुराणोंमें भी सुना जाता है, कि जटिला नामकी गौतम गोत्रकी एक कन्याने सात ऋषियोंसे विवाह किया था ॥ १४ ॥

गुरोश्च वचनं प्राहुर्धर्मं धर्मज्ञसत्तम ।
गुरूणां चैव सर्वेषां जनित्री परमो गुरुः ॥ १५ ॥

हे धर्मके जानकारोंमें श्रेष्ठ ! कहा है, कि गुरुकी आज्ञा धर्मयुक्त होती है; और सब गुरुओंमें माता ही परम गुरु है ॥ १५ ॥

सा चाप्युक्तवती वाचं भैक्षवद्‌भुज्यतामिति ।
तस्मादेतदहं मन्ये धर्मं द्विजवरोत्तम ॥ १६ ॥

उन परमगुरु माताने हमको आज्ञा दी है, कि द्रौपदीको भीखकी सामग्रीके समान सब मिलकर भोगो । अतः, हे द्विजोत्तम ! मैं इसलिये इस कर्मको धर्म ही मानता हूँ ॥ १६ ॥

कुन्त्युवाच

एवमेतद्यथाहायं धर्मचारी युधिष्ठिरः ।
अनृतान्मे भयं तीव्रं मुच्येयमनृतात्कथम् ॥ १७ ॥

कुन्ती बोली— धर्मका आचरण करनेवाले युधिष्ठिरने जैसा कहा है, वह ठीक ही है; असत्यसे मुझे बडा डर लगता है, अतः इस अनृतसे मैं कैसे मुक्त होऊं ? ॥ १७ ॥

व्यास उवाच

अनृतान्मोक्षसे भद्रे धर्मश्चैष सनातनः ।
न तु वक्ष्यामि सर्वेषां पाञ्चाल शृणु मे स्वयम् ॥ १८ ॥
यथायं विहितो धर्मो यतश्चायं सनातनः ।
यथा च प्राह कौन्तेयस्तथा धर्मो न संशयः ॥ १९ ॥

व्यास बोले— भद्रे ! तुम अनृतसे मुक्त हो । तुमने जो कहा है, वह सनातन धर्म है । जिस कारण यह धर्म निश्चित हुआ है और जिस कारण यह सनातन है वह बात मैं सबसे नहीं कहूंगा, अतः केवल तुम्हीं मेरी बात सुनो । हे पांचाल ! युधिष्ठिरने जो कहा है वही धर्म-युक्त है; इसमें कोई शंका नहीं है ॥ १८-१९ ॥

वैशम्पायन उवाच

तत उत्थाय भगवान्व्यासो द्वैपायनः प्रभुः ।
करे गृहीत्वा राजानं राजवेश्म समाविशत् ॥ २० ॥

वैशम्पायन बोले— इसके बाद प्रभु द्वैपायन भगवान् व्यास वहांसे उठकर राजाका हाथ पकड कर राजमन्दिरमें गये ॥ २० ॥

पाण्डवाश्चापि कुन्ती च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
विचेतसस्ते तत्रैव प्रतीक्षन्ते स्म तावुभौ ॥ २१ ॥

कुन्ती, पाण्डव और पृषत्‌राजपुत्र धृष्टद्युम्न उन दोनोंकी प्रतीक्षा करते हुए वहीं बैठ रहे ॥ २१ ॥

×

ततो द्वैपायनस्तस्मै नरेन्द्राय महात्मने ।
आचख्यौ तद्यथा धर्मो बहूनामेकपत्निता ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥ ६११५ ॥

तब महर्षि द्वैपायन महात्मा द्रुपदसे यह कथा कहने लगे, कि अनेक पुरुषोंके बीचमें एक स्त्रीका होना धर्मके विरुद्ध नहीं है ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ अट्ठासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८८ ॥ ॥ ६११५ ॥

: १८९ :

व्यास उवाच

पुरा वै नैमिषारण्ये देवाः सत्रमुपासते ।
तत्र वैवस्वतो राजञ्शामित्रमकरोत्तदा ॥ १ ॥

व्यास बोले– महाराज ! पहिले नैमिषारण्यमें देवोंने महायज्ञ आरम्भ किया था। उस महायज्ञमें वैवस्वत यम शामित्र यज्ञ अर्थात् पशुमेध करने लगे ॥ १ ॥

ततो यमो दीक्षितस्तत्र राजन्नामारयत्किंचिदपि प्रजाभ्यः ।
ततः प्रजास्ता बहुला बभूवुः कालातिपातान्मरणात्प्रहीणाः ॥ २ ॥

वह यम उस काममें दीक्षित होनेके कारण किसी प्रजाको नहीं मारते थे, इससे मनुष्योंके मृत्युसे बचने पर उनकी भीड दिनोंदिन बढने लगी ॥ २ ॥

ततस्तु शक्रो वरुणः कुबेरः साध्या रुद्रा वसवश्चाश्विनौ च ।
प्रणेतारं भुवनस्य प्रजापतिं समाजग्मुस्तत्र देवास्तथान्ये ॥ ३ ॥

तब इन्द्र, वरुण, कुबेर, दोनों अश्विनीकुमार, साध्यगण, रुद्रगण और दूसरे देवगण भुवन रचनेहारे प्रजापतिके निकट जा पहुंचे ॥ ३ ॥

ततोऽब्रुवँल्लोकगुरुं समेता भयं नस्तीव्रं मानुषाणां विवृद्ध्या ।
तस्माद्भयादुद्विजन्तः सुखेप्सवः प्रयाम सर्वे शरणं भवन्तम् ॥ ४ ॥

और सब मिलकर मनुष्योंकी संख्या वृद्धि होनेके कारण भीतचित्तसे उन लोकोंके गुरु ब्रह्मासे बोले, मनुष्योंकी संख्या बढनेसे हम बडे भयसे उदास हो गए हैं और सुखकी आशासे आपकी शरणमें आए हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

किं वो भयं मानुषेभ्यो यूयं सर्वे यदामराः ।
मा वो मर्त्यसकाशाद्वै भयं भवितु कर्हिचित् ॥ ५ ॥

पितामह बोले— जब तुम सब अमर हो, तो फिर मनुष्योंसे तुम्हें क्या भय है, अतः मर्त्योंसे तुमको भय नहीं होना चाहिये ॥ ५ ॥

देवा ऊचुः

मर्त्या ह्यमर्त्याः संवृत्ता न विशेषोऽस्ति कश्चन ।
अविशेषादुद्विजन्तो विशेषार्थमिहागताः ॥ ६ ॥

देवगण बोले— अब मर्त्यगण अमर्त्य हो गए हैं, अतः उनमें और हम लोगोंमें कोई विशेषता नहीं रही, इस समानताको देखकर हम उदास हो मर्त्योंसे अपना अन्तर बनाये रखनेकी इच्छासे यहां आये हैं ॥ ६ ॥

ब्रह्मो उवाच

वैवस्वतो व्यापृतः सत्रहेतोस्तेन त्विमे न म्रियन्ते मनुष्याः ।
तस्मिन्नेकाग्रे कृतसर्वकार्ये तत एषां भवितैवान्तकालः ॥ ७ ॥

ब्रह्मा बोले— सूर्यपुत्र यम इस समय यज्ञमें लगे हुए हैं, अतः नरोंकी मृत्यु नहीं हो रही है, पर उनके यज्ञसे सम्पूर्ण कार्य हो जाने पर मानवोंका अन्तकाल आ पहुंचेगा ॥ ७ ॥

वैवस्वतस्यापि तनुर्विभूता वीर्येण युष्माकमुत प्रयुक्ता ।
सैषामन्तो भविता ह्यन्तकाले तनुर्हि वीर्यं भविता नरेषु ॥ ८ ॥

तब यमराजका शरीर तुम्हारे ही प्रभावसे यज्ञसे अलग होकर जीवनाशी बन जायगा । मनुष्योंमें कुछ वीर्य नहीं रहेगा । इस प्रकार उनका अन्त हो जाएगा ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

ततस्तु ते पूर्वजदेववाक्यं श्रुत्वा देवा यत्र देवा यजन्ते ।
समासीनास्ते समेता महाबला भागीरथ्यां ददृशुः पुण्डरीकम् ॥ ९ ॥

व्यास बोले— तब महाबली देवगण पितामहका वचन सुनकर नैमिषारण्यमें वहां गए जहां देव यज्ञ कर रहे थे। एक दिन किनारे पर बैठे हुए उन बलशाली देवोंने भागीरथीके जलमें एक पद्म बहते हुए देखा ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा च तद्विस्मितास्ते बभूवुस्तेषामिन्द्रस्तत्र शूरो जगाम ।
सोऽपश्यद्योषामथ पावकप्रभां यत्र गङ्गा सततं संप्रसूता ॥ १० ॥

उसको देखते ही वे अचंभेमें पड गए, तब ढूंढनेके लिये, कि वह कमल कहांसे उपजा है, उनमेंसे शूरतासे युक्त इन्द्र वहांसे चले जहांसे गङ्गा निकलती है, वहां पहुंचकर उन्होंने अग्निकी शोभाके समान एक कन्या देखी ॥ १० ॥

सा तत्र योषा रुदती जलार्थिनी गङ्गां देवीं व्यवगाह्यावतिष्ठत्।
तस्याश्रुबिन्दुः पतितो जले वै तत्पद्ममासीदथ तत्र काञ्चनम् ॥ ११ ॥
वह नारी रोती हुई जलकी इच्छासे गंगामें देह डुबा रही थी। उसकी आंसूकी बूंदें गंगा-जलमें गिरके सुवर्ण कमल बन जाती थीं ॥ ११ ॥

तदद्भुतं प्रेक्ष्य वज्री तदानीमपृच्छत्तां योषितमन्तिकाद्वै।
का त्वं कथं रोदिषि कस्य हेतोर्वाक्यं तथ्यं कामयेह ब्रवीहि ॥ १२ ॥
देवराज वैसी अद्भुत लीला देखकर उसके पास जाकर बोले— भद्रे ! तुम कौन हो ? क्यों रो रही हो ? मैं इसका कारण जानना चाहता हूं बताओ ॥ १२ ॥

स्त्र्युवाच

त्वं वेत्स्यसे मामिह यास्मि शक्र यदर्थं चाहं रोदिमि मन्दभाग्या।
आगच्छ राजन्पुरतोऽहं गमिष्ये द्रष्टासि तद्रोदिमि यत्कृतेऽहम् ॥ १३ ॥
बाला बोली— देवराज ! मैं बडी अभागी हूं, तुम मेरे संग चलो, तो जान सकोगे कि मैं कौन और क्यों रो रही हूं ? हे महाराज ! तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारे आगे चलती हूं; तुम जान जाओगे कि किस कारण मैं रो रही हूँ ॥ १३ ॥

व्यास उवाच

तां गच्छन्तीमन्वगच्छत्तदानीं सोऽपश्यदाराात्तरुणं दर्शनीयम्।
सिंहासनस्थं युवतीसहायं क्रीडन्तमक्षैर्गिरिराजमूर्ध्नि ॥ १४ ॥
व्यास बोले— देवराज तब नारीकी यह बात सुनके उसके पीछे पीछे चलने लगे। कुछ दूर जाकर पास ही हिमाचलकी चोटी पर देखा, कि एक परम सुन्दर युवा पुरुष युवतीके साथ सिंहासन पर बैठकर चोपड खेल रहा है॥ १४ ॥

तमब्रवीद्देवराजो ममेदं त्वं विद्धि विश्वं भुवनं वशे स्थितम्।
ईशोऽहमस्मीति समन्युरब्रवीद्दृष्ट्वा तमक्षैः सुभृशं प्रमत्तम् ॥ १५ ॥
देवराज इन्द्र उनको चोपडमें बडे मग्न देखकर बोले— यह तीनों भुवन मेरे ही वशमें हैं। इस पर पुरुषके कोई उत्तर न देने पर इन्द्रने क्रोधके मारे फिर कहा कि मैं भूमण्डल भरका अधीश हूं ॥ १५ ॥

क्रुद्धं तु शक्रं प्रसमीक्ष्य देवो जहास शक्रं च शनैरुदैक्षत।
संस्तम्भितोऽभूदथ देवराजस्तेनेक्षितः स्थाणुरिवावतस्थे ॥ १६ ॥
तब वह खेलता हुआ पुरुष देवराजको क्रोधित देख हंसा और उसने एकबार उनकी ओर आंखें फेरीं। देवराज उनकी आंखोंके सामने पडते ही खंभेके समान जड बन गये ॥१६॥

यदा तु पर्याप्तमिहास्य क्रीडया तदा देवीं रुदतीं तामुवाच ।
आनीयतामेष यतोऽहमारान्मैनं दर्पः पुनरप्याविशेत ॥ १७ ॥

तब वह पुरुष इच्छानुसार चोपड खेल लेनेके बाद उस रोती हुई बालासे बोला कि तुम इस इन्द्रको मेरे पास लाओ, उसको दण्ड दूंगा, ताकि वह मेरे सामने फिर अहंकार न प्रगट करे ॥ १७ ॥

ततः शक्रः स्पृष्टमात्रस्तया तु स्रस्तैरङ्गैः पतितोऽभूद्धरण्याम् ।
तमब्रवीद्भगवानुग्रतेजा मैवं पुनः शक्र कृथाः कथंचित् ॥ १८ ॥

तब उस नारीके छूते ही देवराजके अंग शिथिल हो गए और वह धरती पर गिर पडे। तब उन अत्यन्त तेजस्वी भगवान् महादेवने उनसे कहा– इन्द्र ! फिर कभी ऐसा काम न करना ॥ १८ ॥

विवर्तयैनं च महाद्रिराजं बलं च वीर्यं च तवाप्रमेयम् ।
विवृत्य चैवाविश मध्यमस्य यत्रासते त्वद्विधाः सूर्यभासः ॥ १९ ॥

तुम्हारा बलवीर्य बहुत अधिक है, अतः तुम इस बडे पर्वतको खोल दो और खोल कर बिलके भीतर जा घुसो; तुम वहां देखोगे कि तुम्हारे समान सूर्यवत् प्रकाशमान बहुत इन्द्र हैं ॥ १९ ॥

स तद्विवृत्य शिखरं महागिरेस्तुल्यद्युतींश्चतुरोऽन्यान्ददर्श ।
स तानभिप्रेक्ष्य बभूव दुःखितः कच्चिन्नाहं भविता वै यथेमे ॥ २० ॥

तब देवराजने पर्वतराजके उस बिलके द्वारको खोलके उसमें अपने ऐसे दूसरे चार इन्द्रोंको देखा। वह उनको देखते ही दुःख करने लगे, कि " मुझको भी कहीं ऐसी दशामें रहना न पडे " ॥ २० ॥

ततो देवो गिरिशो वज्रपाणिं विवृत्य नेत्रे कुपितोऽभ्युवाच ।
दरीमेतां प्रविश त्वं शतक्रतो यन्मां बाल्यादवमंस्थाः पुरस्तात् ॥ २१ ॥

तब देव महेश्वर क्रोधसे नेत्र खोलकर वज्रपाणि इन्द्रसे बोले– इन्द्र ! तू बिलमें जा घुस, क्योंकि पहिले तूने अज्ञानतासे मेरा अनादर किया है ॥ २१ ॥

उक्तस्त्वेवं विभुना देवराजः प्रवेपमानो भृशमेवाभिषङ्गात् ।
स्रस्तैरङ्गैरनिलेनेव नुन्नमश्वत्थपत्रं गिरिराजमूर्ध्नि ॥ २२ ॥

इन्द्र विभुके क्रोधित वचनसे अति कातर होकर शिथिल अंगोंसे उसी प्रकार वेगसे कांपने लगे, कि जैसे पहाड परके पीपलके पत्ते हवासे कांपते हैं ॥ २२ ॥

स प्राञ्जलिर्विनतेनाननेन प्रवेपमानः सहसैवमुक्तः ।
उवाच चेदं बहुरूपमुग्रं द्रष्टा शेषस्य भगवंस्त्वं भवाद्य ॥ २३ ॥

वह महादेवसे एकाएक ऐसी बात सुनके थरथर कांपते हुए दोनों हाथ जोडकर सिर झुकाकर अनेक रूप लेनेवाले उन कठोर देवसे बोले— हे आदिनाथ ! हे भव ! तुम चराचर सहित सम्पूर्ण विश्वके देखनेवाले हो, तुम सब कुछ जान लेते हो ॥ २३ ॥

तमब्रवीदुग्रधन्वा प्रहस्य नैवंशीलाः शेषमिहाप्नुवन्ति ।
एतेऽप्येवं भवितारः पुरस्तात्तस्मादेतां दरीमाविश्य शेध्वम् ॥ २४ ॥

भयंकर धनुषवाले महादेव हंसकर बोले— इस प्रकारके अहंकारी कभी भगवान्‌को नहीं प्राप्त करते । देखो, पहिले यह सब इन्द्र ऐसा ही कर्म कर इस बिलमें जा गिरे हैं, अतः तुम भी उसमें जाकर लेटे रहो ॥ २४ ॥

शेषोऽप्येवं भविता वो न संशयो योनिं सर्वे मानुषीमाविशध्वम् ।
तत्र यूयं कर्म कृत्वाविषह्यं बहूनन्यान्निधनं प्रापयित्वा ॥ २५ ॥
आगन्तारः पुनरेवेन्द्रलोकं स्वकर्मणा पूर्वजितं महार्हम् ।
सर्वं मया भाषितमेतदेवं कर्तव्यमन्यद्विविधार्थवच्च ॥ २६ ॥

सन्देह नहीं है, कि तुम सबोंका यही हाल होगा, कि तुम पांचोंको मनुष्य जन्म लेकर मर्त्यलोकमें अनेक भांतिके कठोर कर्म करने पडेंगे, अनेक जीवोंको मार कर अपने कर्मसे पहिलेके जीते हुए अति मूल्यवान् इन्द्रलोकमें आओगे; तुम्हारे लिये मैंने ऐसा ही निश्चय किया है, यह सब तुम करो ॥ २५–२६ ॥

पूर्वेन्द्रा ऊचुः

गमिष्यामो मानुषं देवलोकाद्दुराधरो विहितो यत्र मोक्षः ।
देवास्त्वस्मानादधीरञ्जनन्यां धर्मो वायुर्मघवानश्विनौ च ॥ २७ ॥

पहिलेके इन्द्र बोले— हम पांचों इन्द्र देवलोकसे मर्त्यलोकको शीघ्र जायेंगे कि जहां मोक्षका मिलना कठिन है, पर हमारी प्रार्थना यह है, कि उस स्त्रीमें, कि जो हमारी माता होगी, धर्म, वायु, मघवान् और दोनों अश्विनीकुमार हमारे लिये गर्भाधान करें ॥ २७ ॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा वज्रपाणिर्वचस्तु देवश्रेष्ठं पुनरेवेदमाह ।
वीर्येणाहं पुरुषं कार्यहेतोर्दद्यामेषां पञ्चमं मत्प्रसूतम् ॥ २८ ॥

व्यास बोले— वज्र हाथमें धारण करनेवाले इन्द्र यह बात सुनकर फिर देवसे बोले— मैं स्वयं न जाकर कार्य पूरा करनेके लिये निज वीर्यसे एक पुरुष उपजा दूंगा ॥ २८ ॥

तेषां कामं भगवानुग्रधन्वा प्रादादिष्टं सन्निसर्गाद्यथोक्तम् ।
तां चाप्येषां योषितं लोककान्तां श्रियं भार्यां व्यदधान्मानुषेषु ॥ २९ ॥
अनन्तर उग्र धनुषधारी भगवान् शिवने अपने दयालु स्वभावके कारणसे विश्व प्रतापी पांच इन्द्रोंकी प्रार्थना मान ली । और लोकोंके मन हरनेवाली स्वर्गकी श्री, उस बालाको मर्त्य लोकमें उनकी पत्नी बनानेका विधान कर दिया ॥ २९ ॥

तैरेव सार्धं तु ततः स देवो जगाम नारायणमप्रमेयम् ।
स चापि तद्व्यदधात्सर्वमेव ततः सर्वे संबभूवुर्धरण्याम् ॥ ३० ॥
इसके बाद वह देव उनको साथ लेकर अप्रमेय नारायणके पास गये । भगवान् नारायणने वह सब जान कर उस विषयमें अपनी संमति दी, तब वे सब भूमण्डलमें जन्मे ॥ ३० ॥

स चापि केशौ हरिरुद्बबर्ह शुक्लमेकमपरं चापि कृष्णम् ।
तौ चापि केशौ विशतां यदूनां कुले स्त्रियौ रोहिणीं देवकीं च ।
तयोरेको बलदेवो बभूव कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव ॥ ३१ ॥
भगवान् हरिने अपनी शक्तिरूपी कृष्ण और शुक्ल इन दो रङ्गके दो केश उखाड दिये । वे केश यदुवंशमें रोहिणी और देवकीके गर्भमें जाकर प्रविष्ट हुए । उनमेंसे एक बलदेवके स्वरूपमें और दूसरा काला केश कृष्ण बन कर उपजा ॥ ३१ ॥

ये ते पूर्वं शक्ररूपा निरुद्धास्तस्यां दर्यां पर्वतस्योत्तरस्य ।
इहैव ते पाण्डवा वीर्यवन्तः शक्रस्यांशः पाण्डवः सव्यसाची ॥ ३२ ॥
इन्द्ररूपी जो पहिले चार पुरुष उस श्रेष्ठ पर्वतकी कन्दरामें बंद हो गए थे, उन्होंने इस मर्त्य लोकमें पराक्रमी पाण्डवके स्वरूपमें जन्म लिया है । पाण्डव सव्यसाची इन्द्रके अंशसे उपजे हैं ॥ ३२ ॥

एवमेते पाण्डवाः संबभूवुर्ये ते राजन्पूर्वमिन्द्रा बभूवुः ।
लक्ष्मीश्चैषां पूर्वमेवोपदिष्टा भार्या यैषा द्रौपदी दिव्यरूपा ॥ ३३ ॥
हे महाराज ! जो पहिले इन्द्र थे, वे इस प्रकारसे पाण्डवोंके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं । और जिस दिव्यरूपिणी स्वर्गकी लक्ष्मीकी बात कही गयी है, वही यह द्रौपदी है । यह पहिले ही निश्चय हुआ है, कि यह इन सबोंकी पत्नी बनेगी ॥ ३३ ॥

कथं हि स्त्री कर्मणोऽन्ते महीतलात्समुत्तिष्ठेदन्यतो दैवयोगात् ।
यस्या रूपं सोमसूर्यप्रकाशं गन्धश्चाग्र्यः क्रोशमात्रात्प्रवाति ॥ ३४ ॥
जिसका रूप चन्द्रमा और सूर्यकी भांति है और जिसकी सुगन्ध कोसभरतक पहुंचती है, वह स्त्री दैवसंयोगके बिना यज्ञ कार्यके आखिरमें धरतीसे कैसे उत्पन्न हो सकती है ? ॥३४॥

इदं चान्यत्प्रीतिपूर्वं नरेन्द्र ददामि ते वरमत्यद्भुतं च ।
दिव्यं चक्षुः पश्य कुन्तीसुतांस्त्वं पुण्यैर्दिव्यैः पूर्वदेहैरुपेतान् ॥ ३५ ॥

हे नरनाथ ! मैं प्रीतिपूर्वक तुमको अति आश्चर्ययुक्त दिव्य नेत्रोंका वर देता हूं, उससे तुम कुन्तीपुत्रोंको दिव्य और पवित्र पहिलेकी देहमें देखो ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो व्यासः परमोदारकर्मा शुचिर्विप्रस्तपसा तस्य राज्ञः ।
चक्षुर्दिव्यं प्रददौ तान्स सर्वान्राजापश्यत्पूर्वदेहैर्यथावत् ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन बोले– तब परम उदार कर्म करनेवाले पवित्र विप्रवर व्यासके तपोबलसे उस राजाको दिव्यनेत्र देने पर राजाने सब पाण्डवोंको यथावत् पूर्वदेहमें देखा ॥ ३६ ॥

ततो दिव्यान्हेमकिरीटमालिनः शुक्रप्रख्यान्पावकादित्यवर्णान् ।
बद्धापीडांश्चारुरूपांश्च यूनो व्यूढोरस्कांस्तालमात्रान्ददर्श ॥ ३७ ॥

उनको सुवर्ण किरीटधारी, माला पहिने, अग्नि और सूर्यके समान उज्ज्वलवर्ण, उपयुक्त अलंकारोंसे मनोहर, तरुण, विशाल छातीवाले, तालवृक्षके समान ऊंचे देखा ॥ ३७ ॥

दिव्यैर्वस्त्रैररजोभिः सुवर्णैर्माल्यैश्चाग्र्यैः शोभमानानतीव ।
साक्षात्त्र्यक्षान्वसवो वाथ दिव्यानादित्यान्वा सर्वगुणोपपन्नान् ।
तान्पूर्वेन्द्रानेवमीक्ष्याभिरूपान्प्रीतो राजा द्रुपदो विस्मितश्च ॥ ३८ ॥

सब गुणयुक्त, निर्मल दिव्य वस्त्र पहिने और अच्छी मालासे सजे पहिलेके इन्द्रोंकी भांति उन पाण्डवोंको साक्षात् त्रिलोचन वा वसुगण, रुद्रगण अथवा आदित्यगणके समान देखा। उन रूपवान् पूर्व इन्द्रोंको देखकर राजा द्रुपद अतीव आश्चर्यान्वित और प्रसन्न हुए ॥३८॥

दिव्यां मायां तामवाप्याप्रमेयां तां चैवाग्र्यां श्रियमिव रूपिणीं च ।
योग्यां तेषां रूपतेजोयशोभिः पत्नीमृद्धां दृष्टवान्पार्थिवेन्द्रः ॥ ३९ ॥

तब उस अप्रमेय दिव्य मायाको तथा लक्ष्मीके सदृश परम रूपवती, श्रेष्ठतमा उस स्वर्ग-कन्याको उसके रूप, तेज और यशके द्वारा उन पाण्डवोंकी भार्या होनेके योग्य समझा ॥३९॥

स तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यरूपं जग्राह पादौ सत्यवत्याः सुतस्य ।
नैतच्चित्रं परमर्षे त्वयीति प्रसन्नचेताः स उवाच चैनम् ॥ ४० ॥

राजा द्रुपद उस अति आश्चर्यमयी लीलाको देखकर सत्यवतीके पुत्र द्वैपायनके पांव छूकर बोले –हे परमर्षे ! मुझको दिव्य नेत्र देकर इन सब आश्चर्य रूपोंका दिखाना आपके लिये कोई बडी बात नहीं है । अनन्तर द्वैपायन प्रसन्नचित्तसे फिर इस राजासे बोले ॥ ४० ॥

व्यास उवाच

आसीत्तपोवने काचिदृषेः कन्या महात्मनः ।
नाध्यगच्छत्पतिं सा तु कन्या रूपवती सती ॥ ४१ ॥

एक तपोवनमें किसी महात्मा ऋषिकी एक कन्या थी; वह कन्या रूपवती और सती होने पर भी पति पा नहीं सकी ॥ ४१ ॥

तोषयामास तपसा सा किलोग्रेण शङ्करम् ।
तामुवाचेश्वरः प्रीतो वृणु काममिति स्वयम् ॥ ४२ ॥

अतः कठोर तप करके उसने शङ्करको प्रसन्न किया । स्वयं वरदाता देवोंके ईश्वर प्रसन्न होकर बोले— अपना मनमाना वर मांगो ॥ ४२ ॥

सैवमुक्ताब्रवीत्कन्या देवं वरदमीश्वरम् ।
पतिं सर्वगुणोपेतमिच्छामीति पुनः पुनः ॥ ४३ ॥

कन्या वह सुनकर वरदाता ईश्वरसे बार बार बोली— मैं सर्वगुणशील पति चाहती हूं ॥ ४३ ॥

ददौ तस्यै स देवेशस्तं वरं प्रीतिमांस्तदा ।
पञ्च ते पतयः भद्रे भविष्यन्तीति शंकरः ॥ ४४ ॥

देवेश शंकरने प्रसन्नमनसे यह कहके वर दिया— भद्रे ! तुम्हारे पांच पति होंगे ॥ ४४ ॥

सा प्रसादयती देवमिदं भूयोऽभ्यभाषत ।
एकं पतिं गुणोपेतं त्वत्तोऽर्हामीति वै तदा ।
तां देवदेवः प्रीतात्मा पुनः प्राह शुभं वचः ॥ ४५ ॥

शिवको प्रसन्न करती हुई वह बाला वरदाता देवसे फिर बोली— मैं आपसे गुणवान् एक ही पतिकी प्रार्थना करती हूं । प्रसन्नात्मा देवोंके देव भगवान् शंकरने उससे फिर यह शुभ वचन कहा ॥ ४५ ॥

पञ्चकृत्वस्त्वया उक्तः पतिं देहीत्यहं पुनः ।
तत्तथा भविता भद्रे तव तद्भद्रमस्तु ते ।
देहमन्यं गतायास्ते यथोक्तं तद्भविष्यति ॥ ४६ ॥

भद्रे ! तुमने पति दो, यह कहकर मुझसे पांच बार प्रार्थना की है, अतः तुम्हारे पांच पति होंगे, तुम्हारा मंगल होवे, दूसरे शरीरमें जानेपर तुम्हारे पांच पति होंगे ॥ ४६ ॥

द्रुपदैषा हि सा जज्ञे सुता ते देवरूपिणी ।
पञ्चानां विहिता पत्नी कृष्णा पार्षत्यनिन्दिता ॥ ४७ ॥

हे द्रुपद ! वह देवीरूपिणी तुम्हारी पुत्रीके रूपमें पैदा हुई है, अनिन्दिता वह तुम्हारी कन्या पांच मनुष्योंकी पत्नी होनेके लिये निश्चित की गयी है ॥ ४७ ॥

×

स्वर्गश्रीः पाण्डवार्थाय समुत्पन्ना महामखे।
सेह तप्त्वा तपो घोरं दुहितृत्वं तवागता ॥ ४८ ॥

स्वर्गकी श्री यह बाला कठोर तप करके पाण्डवोंके लिये महायज्ञसे उपज कर तुम्हारी कन्या हुई है ॥ ४८ ॥

सैषा देवी रुचिरा देवजुष्टा पञ्चानामेका स्वकृतेन कर्मणा।
सृष्टा स्वयं देवपत्नी स्वयंभुवा श्रुत्वा राजन्द्रुपदेष्टं कुरुष्व ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥
॥ समाप्तं द्रौपदीस्वयंवरपर्व ॥ ६१६४ ॥

देवोंसे सेवी जाती हुई सुन्दरी यह देवी स्वकृत कर्मसे अकेली पांच मनुष्योंकी स्त्री होगी, इस अभिप्रायसे इस देवोंकी पत्नीको विधाताने स्वयं रचा है। हे महाराज द्रुपद! तुमने सब कथा सुन ली, अब जो चाहो सो करो ॥ ४९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ नवासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८९ ॥ द्रौपदीस्वयंवरपर्व समाप्त ॥ ६१६४ ॥

: १९० :

द्रुपद उवाच

अश्रुत्वैवं वचनं ते महर्षे मया पूर्वं यतितं कार्यमेतत्।
न वै शक्यं विहितस्यापयातुं तदेवेदमुपपन्नं विधानम् ॥ १ ॥

द्रुपद बोले– महर्षे! मैंने पहिले आपसे यह न सुने रहनेके कारण वैसा विधान करनेका प्रयत्न किया था, अब विशेष ज्ञात हुआ; देवताके द्वारा निश्चित किए हुए विषयकी कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती है, अतएव पहिलेके निश्चित किए हुए विधानके अनुसार ही कर्तव्य निश्चय करना है ॥ १ ॥

दिष्टस्य ग्रन्थिरनिवर्तनीयः स्वकर्मणा विहितं नेह किंचित्।
कृतं निमित्तं हि वरैकहेतोस्तदेवेदमुपपन्नं बहूनाम् ॥ २ ॥

भाग्यकी गांठ तोडी नहीं जा सकती; निजकर्मसे कुछ होता नहीं; एक वरकी प्राप्तिके लिये लक्ष्य रचा गया था, वही अब पांचके लिये हो गया ॥ २ ॥

तथैव कृष्णोक्तवती पुरस्तान्नैकान्पतीन्मे भगवान्ददातु।
स चाप्येवं वरमित्यब्रवीत्तां देवो हि वेत्ता परमं यदत्र ॥ ३ ॥

इसी प्रकार कृष्णाने पहिले जन्ममें जिस प्रकार पांच बार कहा था, कि मुझको पतिका वर दें, उसी प्रकार भगवान्ने भी कहा था, कि तुमको पांच पति मिलेंगे; अतः इस बातकी भलाई बुराई वही जानते हैं ॥ ३ ॥

यदि वायं विहितः शंकरेण धर्मोऽधर्मो वा नात्र ममापराधः ।
गृह्णन्त्विमे विधिवत्पाणिमस्या यथोपजोषं विहितैषां हि कृष्णा ॥ ४ ॥
जब भगवान् शङ्करने ही ऐसा विधान बनाया है और इन्हींके लिये कृष्णा बनायी गयी है, तब यह चाहे धर्म हो वा अधर्म, मुझे कोई दोष नहीं लग सकता । यह लोग विधि-विधानसे सुखपूर्वक द्रौपदीसे विवाह करें ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततोऽब्रवीद्भगवान्धर्मराजमद्य पुण्याहमुत पाण्डवेय ।
अद्य पौष्यं योगमुपैति चन्द्रमाः पाणिं कृष्णायास्त्वं गृहाणाद्य पूर्वम् ॥५॥
वैशम्पायन बोले– तदनन्तर भगवान् महर्षि धर्मराजसे बोले– हे पाण्डुपुत्र ! आज शुभ दिन है, चन्द्रमा पुष्यनक्षत्रसे योग प्राप्त करेगा, अतः पहिले तुम आज द्रौपदीका हाथ पकडो ॥ ५ ॥

ततो राजा यज्ञसेनः सपुत्रो जन्यार्थमुक्तं बहु तत्तदग्र्यम् ।
समानयामास सुतां च कृष्णामाप्लाव्य रत्नैर्बहुभिर्विभूष्य ॥ ६ ॥
भगवान् द्वैपायनके ऐसा कहने पर पुत्रसहित राजा यज्ञसेन कन्याके विवाहका प्रबन्ध करने लगे । वह दानके लिये यथायोग्य अनेक अच्छी अच्छी सामग्री बटोरकर और द्रौपदीको भांति भांतिके रत्न अलंकारोंसे सजाकर लाये ॥ ६ ॥

ततः सर्वे सुहृदस्तत्र तस्य समाजग्मुः सचिवा मन्त्रिणश्च ।
द्रष्टुं विवाहं परमप्रतीता द्विजाश्च पौराश्च यथाप्रधानाः ॥ ७ ॥
तब राजाके मित्र और मन्त्री तथा ब्राह्मण और दूसरे पुरवासी सब विवाहको देखनेके लिये प्रसन्नचित्तसे अपनी अपनी प्रधानताके अनुसार आने लगे ॥ ७ ॥

तत्तस्य वेश्मार्थिजनोपशोभितं विकीर्णपद्मोत्पलभूषिताजिरम् ।
महार्हरत्नौघविचित्रमाबभौ दिवं यथा निर्मलतारकाचितम् ॥ ८ ॥
राजभवनका आंगन पद्म आदि जलसे उपजे हुए अनेक फूलोंकी बडी बडी मालासे सजा था; सम्मानित जनोंके शुभागमनसे उसकी अपूर्व शोभा थी। वह राजभवन भांति भांतिके मूल्यवान् रत्नोंसे ऐसी सुन्दर शोभा पाने लगा, कि जैसे आकाशमण्डल निर्मल नक्षत्रोंसे सुशोभित होता है ॥ ८ ॥

ततस्तु ते कौरवराजपुत्रा विभूषिताः कुण्डलिनो युवानः ।
महार्हवस्त्रा वरचन्दनोक्षिताः कृताभिषेकाः कृतमङ्गलक्रियाः ॥ ९ ॥
तब कुण्डलोंको पहने हुए मूल्यवान् वस्त्रोंसे युक्त, उत्तम चन्दन लगाये हुए, स्नान–अभिषेक किए हुए तथा मंगल क्रियाओंको किए हुए वे विभूषित, तरुण कौरवराजके पुत्र पाण्डव ॥ ९ ॥

पुरोहितेनाग्निसमानवर्चसा सहैव धौम्येन यथाविधि प्रभो ।
क्रमेण सर्वे विविशुश्च तत्सदो महर्षभा गोष्ठमिवाभिनन्दिनः ॥१०॥

अग्निके समान वर्चस्वी अपने पुरोहित धौम्यऋषिके साथ, हे प्रभो ! क्रमसे विधिपूर्वक उस भवनमें इस प्रकार प्रविष्ट हुए, जिस प्रकार प्रशंसनीय वृषभ गौशालामें प्रविष्ट होते हैं ॥१०॥

ततः समाधाय स वेदपारगो जुहाव मन्त्रैर्ज्वलितं हुताशनम् ।
युधिष्ठिरं चाप्युपनीय मन्त्रविन्नियोजयामास सहैव कृष्णया ॥ ११ ॥

तदनन्तर मन्त्रके जानकार वेदज्ञ धौम्यने अग्निकी स्थापना कर जलती हुई आगमें यथा-विधि मन्त्र पढकर आहुति चढाई और युधिष्ठिरको लाकर उस मन्त्रज्ञने द्रौपदीसे संयुक्त कर दिया ॥ ११ ॥

प्रदक्षिणं तौ प्रगृहीतपाणी समानयामास स वेदपारगः ।
ततोऽभ्यनुज्ञाय तमाजिशोभिनं पुरोहितो राजगृहाद्विनिर्ययौ ॥ १२ ॥

इसके बाद उन वेदज्ञने एक दूसरेके हाथ पकडे हुए उन दोनोंको अग्निके चारों ओर घुमाया तथा पुरोहित उनकी विवाह–क्रिया पूरी कर युद्धमें पण्डित युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर राज-भवनसे चले गए ॥ १२ ॥

क्रमेण चानेन नराधिपात्मजा वरस्त्रियास्ते जगृहुस्तदा करम् ।
अहन्यहन्युत्तमरूपधारिणो महारथाः कौरववंशवर्धनाः ॥ १३ ॥

इस प्रकार महारथी कौरववंशके बढानेवाले राज–पुत्रगणने सबसे अच्छे अच्छे लिवास गहनोंसे सजकर क्रमसे एक एक दिनमें उस सुन्दरीका पाणिग्रहण किया ॥ १३ ॥

इदं च तत्राद्भुतरूपमुत्तमं जगाद विप्रर्षिरतीतमानुषम् ।
महानुभावा किल सा सुमध्यमा बभूव कन्यैव गते गतेऽहनि ॥ १४ ॥

हे महाराज ! महर्षि व्यासने इस विषयमें मुझको आश्चर्यसे युक्त एक अलौकिक कथा सुनाई थी; कि वह महाभाग्यशालिनी पतली कमरवाली सुन्दरी प्रतिदिन विवाह करके भी अगले दिन कन्या ही हो जाती थी ॥ १४ ॥

कृते विवाहे द्रुपदो धनं ददौ महारथेभ्यो बहुरूपमुत्तमम् ।
शतं रथानां वरहेमभूषिणां चतुर्युजां हेमखलीनमालिनाम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार विवाह हो जानेपर महानुभाव सौमिक राजा द्रुपदने महारथी पाण्डवोंको नाना प्रकारके उत्तम धन दिये । उन्होंने सुवर्णके आभूषणोंसे युक्त चार घोडोंके साथ सुवर्णसे सजे हुए सौ रथ ॥ १५ ॥

शतं गजानामभिपद्मिनां तथा शतं गिरीणामिव हेमशृङ्गिणाम् ।
तथैव दासीशतमग्र्ययौवनं महार्हवेषाभरणाम्बरस्रजम् ॥ १६ ॥
सुवर्णकी चोटीवाले पहाडके समान और बिन्दुजालसे सुशोभित सौ गज, नवयौवनसे मद-माती, मूल्यवान् वस्त्र, गहने और मालादिकोंसे बनीठनी सौ दासियां ॥ १६ ॥

पृथक्पृथक् चैव दशायुतान्वितं धनं ददौ सौमकिरग्निसाक्षिकम् ।
तथैव वस्त्राणि च भूषणानि प्रभावयुक्तानि महाधनानि ॥ १७ ॥
अनेक भांतिके मूल्यवान् गहने तथा उनमेंसे हरेकको अलग अलग एक एक लाख सुवर्ण मुद्रा तथा कपडे और अत्यन्त प्रभावयुक्त धन द्रुपदने अग्निके सामने उन्हें दिए ॥ १७ ॥

कृते विवाहे च ततः स्म पाण्डवाः प्रभूतरत्नामुपलभ्य तां श्रियम् ।
विजह्रुरिन्द्रप्रतिमा महाबलाः पुरे तु पाञ्चालनृपस्य तस्य ह ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥ ६१८२ ॥

तदनन्तर विवाह हो जानेपर इन्द्रके समान महाबली पाण्डव बहुत रत्नके साथ उस रत्न-रूपी स्त्रीको प्राप्त कर उस राजा पाञ्चालकी पुरीमें विहार करने लगे ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ नब्बेवां अध्याय समाप्त ॥ १९० ॥ ६१८२ ॥

: १९१ :

वैशम्पायन उवाच

पाण्डवैः सह संयोगं गतस्य द्रुपदस्य तु ।
न बभूव भयं किंचिद्देवेभ्योऽपि कथंचन ॥ १ ॥
वैशम्पायन बोले– पाण्डवोंसे राजा द्रुपदकी मित्रता हो जानेपर उन्हें देवोंसे भी किसी प्रकारका कोई भय न रहा ॥ १ ॥

कुन्तीमासाद्य ता नार्यो द्रुपदस्य महात्मनः ।
नाम संकीर्तयन्त्यस्ताः पादौ जग्मुः स्वमूर्धभिः ॥ २ ॥
महात्मा द्रुपदकी स्त्रियोंने कुन्तीके पास आकर अपना अपना नाम कहकर उनके पांवपर सिर झुकाया ॥ २ ॥

कृष्णा च क्षौमसंवीता कृतकौतुकमङ्गला ।
कृताभिवादना श्वश्र्वास्तस्थौ प्रह्वा कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥
मांगलिक सूत्रादि धारण किए रेशमी वस्त्र पहिने हुई द्रौपदी सासको प्रणाम कर दोनों हाथ जोडकर विनम्रतासे खडी हो गई ॥ ३ ॥

रूपलक्षणसंपन्नां शीलाचारसमन्विताम्।
द्रौपदीमवदत्प्रेम्णा पृथाशीर्वचनं स्नुषाम् ॥ ४ ॥

कुन्तीने रूपलक्षणोंसे सजी हुई, सुशीला, शुभ आचारवाली, पुत्रवधू द्रौपदीको प्यारसे यह अशीस दिया ॥ ४ ॥

यथेन्द्राणी हरिहये स्वाहा चैव विभावसौ।
रोहिणी च यथा सोमे दमयन्ती यथा नले ॥ ५ ॥

हे कल्याणि ! जिस प्रकार इन्द्राणी महेन्द्रकी, स्वाहा विभावसुकी, रोहिणी चन्द्रमाकी, दमयन्ती नलकी ॥ ५ ॥

यथा वैश्रवणे भद्रा वसिष्ठे चाप्यरुन्धती।
यथा नारायणे लक्ष्मीस्तथा त्वं भव भर्तृषु ॥ ६ ॥

भद्रा कुबेरकी, अरुन्धती वसिष्ठकी और लक्ष्मी नारायणकी प्यारी है, वैसे ही तुम पति-योंकी प्यारी बनो ॥ ६ ॥

जीवसूर्वीरसूर्भद्रे बहुसौख्यसमन्विता।
सुभगा भोगसंपन्ना यज्ञपत्नी स्वनुव्रता ॥ ७ ॥

हे भद्रे ! तुम दीर्घजीवनवाले वीरपुत्र प्रसव करो; बहुत सुख भोग कर सौभाग्य प्राप्त कर यश भोग करो, पतियोंकी अनुव्रता हो, यज्ञमें दीक्षित पतियोंकी सदा साथी बनी रहो ॥७॥

अतिथीनागतान्साधून्बालान्वृद्धान्गुरूंस्तथा।
पूजयन्त्या यथान्यायं शश्वद्गच्छन्तु ते समाः ॥ ८ ॥

आए हुए अतिथि, बाल, वृद्ध और गुरुओंकी सदा विधिपूर्वक सेवा करते हुए तुम्हारा काल बीते ॥ ८ ॥

कुरुजाङ्गलमुख्येषु राष्ट्रेषु नगरेषु च।
अनु त्वमभिषिच्यस्व नृपतिं धर्मवत्सलम् ॥ ९ ॥

तुम कुरुजाङ्गलके राज्य और नगरमें धर्मसे प्यार करनेवाले राजाके साथ गद्दी पर बैठो ॥ ९ ॥

पतिभिर्निर्जितामुर्वीं विक्रमेण महाबलैः।
कुरु ब्राह्मणसात्सर्वामश्वमेधे महाक्रतौ ॥ १० ॥

अतः महाबली पतियोंके पराक्रमसे जीती गई इस पृथ्वीको अश्वमेध महायज्ञमें तुम ब्राह्मणोंको सौंप दो ॥ १० ॥

पृथिव्यां यानि रत्नानि गुणवन्ति गुणान्विते ।
तान्याप्नुहि त्वं कल्याणि सुखिनी शरदां शतम् ॥ ११ ॥

हे गुणशीले ! पृथ्वीभरमें जो सब गुणयुक्त रत्न हैं, हे कल्याणि ! उन्हें तुम प्राप्त करो और परमसुखसे सौ वर्षतक जीवित रहो ॥ ११ ॥

यथा च त्वाभिनन्दामि वध्वद्य क्षौमसंवृताम् ।
तथा भूयोऽभिनन्दिष्ये सूतपुत्रां गुणान्विताम् ॥ १२ ॥

हे गुणवती वधू ! आज तुमको रेशमी वस्त्र पहिने देखकर जैसा आनन्द प्रकट करती हूं, तुम्हारे पुत्र होने पर फिर गुणोंसे युक्त तुम्हारा अभिनन्दन करूंगी ॥ १२ ॥

ततस्तु कृतदारेभ्यः पाण्डुभ्यः प्राहिणोद्धरिः ।
मुक्तावैडूर्यचित्राणि हैमान्याभरणानि च ॥ १३ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्णने विवाह किए हुए पाण्डवोंके लिये मोती और वैडूर्यमणिसे चित्रित सुवर्ण अलङ्कार भेजे ॥ १३ ॥

वासांसि च महार्हाणि नानादेश्यानि माधवः ।
कम्बलाजिनरत्नानि स्पर्शवन्ति शुभानि च ॥ १४ ॥

उसी प्रकार नाना देशोंके दुर्लभ वस्त्र, सुन्दर कोमल अच्छे अच्छे कम्बल तथा मृगछाल माधवने भेजे ॥ १४ ॥

शयनासनयानानि विविधानि महान्ति च ।
वैडूर्यवज्रचित्राणि शतशो भाजनानि च ॥ १५ ॥

भांति भांतिकी अच्छेसे अच्छे सेज, आसन और यान, वैडूर्यसे झलकते और हीरेसे खचित सैंकडों बर्तन ॥ १५ ॥

रूपयौवनदाक्षिण्यैरुपेताश्च स्वलंकृताः ।
प्रेष्याः संप्रददौ कृष्णो नानादेश्याः सहस्रशः ॥ १६ ॥

रूप, यौवन, कुशलतासे युक्त, सजी सजायीं अनेक देशकी हजारों दासियां कृष्णने दीं ॥ १६ ॥

गजान्विनीतान्भद्रांश्च सदश्वांश्च स्वलंकृतान् ।
रथांश्च दान्तान्सौवर्णैः शुभ्रैः पट्टैरलंकृतान् ॥ १७ ॥

भली प्रकार सिखाये पढाये सुन्दर लक्षणवाले हाथी, गहनोंसे सजे हुए अच्छे अच्छे घोडे, सुन्दर वर्ण ऊंचे ऊंचे अच्छे और कुशल घोडोंसे जुते हुए रथ ॥ १७ ॥

कोटिशश्च सुवर्णं स तेषामकृतकं तथा।
वीतीकृतममेयात्मा प्राहिणोन्मधुसूदनः ॥ १८ ॥

और खानसे निकला हुआ शुद्ध सुवर्ण, ये सब वस्तुएं बहुत अधिक और करोडों सुवर्णके टुकडे आत्मवान् मधुसूदनने भेजे ॥ १८ ॥

तत्सर्वं प्रतिजग्राह धर्मराजो युधिष्ठिरः।
मुदा परमया युक्तो गोविन्दप्रियकाम्यया ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९१॥ समाप्तं वैवाहिकपर्व ॥६२०१॥

धर्मराज युधिष्ठिरने गोविन्दका प्रिय करनेके लिये परम प्रसन्नचित्तसे वह सब सामग्री ले ली ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ इक्यानवेवां अध्याय समाप्त ॥१९१॥ वैवाहिकपर्व समाप्त ॥६२०१॥

: १९२ :

वैशम्पायन उवाच

ततो राज्ञां चरैराप्तैश्चारः समुपनीयत।
पाण्डवैरुपसंपन्ना द्रौपदी पतिभिः शुभा ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद भूपालोंको अपने अपने दूतोंसे इस बातका पता लग गया कि अच्छे लक्षणवाली द्रौपदी पाण्डवोंको पतिके रूपमें पा गयी है ॥ १ ॥

येन तद्धनुरायम्य लक्ष्यं विद्धं महात्मना।
सोऽर्जुनो जयतां श्रेष्ठो महाबाणधनुर्धरः ॥ २ ॥

जिन महात्माने धनुषको नवाकर लक्ष्यको विद्ध किया था, वही महा धनुषबाणधारी जयशीलोंमें श्रेष्ठ अर्जुन हैं ॥ २ ॥

यः शल्यं मद्रराजानमुत्क्षिप्याभ्रामयद्बली।
त्रासयंश्चापि संक्रुद्धो वृक्षेण पुरुषान्रणे ॥ ३ ॥

और जिन बली पुरुषने मद्रनाथ शल्यको उठाकर चारों ओर घुमाया था, जिन्होंने क्रोधके मारे युद्धस्थलमें खडे होकर वृक्षसे सबोंको डराया था ॥ ३ ॥

न चापि संभ्रमः कश्चिदासीत्तत्र महात्मनः।
स भीमो भीमसंस्पर्शः शत्रुसेनाङ्गपातनः ॥ ४ ॥

उस कालमें जिन महात्माके मनमें किसी प्रकारका भी भय दीख नहीं पडता था, जिनका स्पर्श भी शत्रुओंको भयानक जान पडा था, वही शत्रुसेनाके अंगोंको काट गिरानेवाले भीमसेन हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्मरूपधराञ्श्रुत्वा पाण्डुराजसुतांस्तदा ।
कौन्तेयान्मनुजेन्द्राणां विस्मयः समजायत ॥ ५ ॥

हे महाराज ! ब्राह्मणोंका रूप धारण किए हुए कुन्तीपुत्र पाण्डवोंकी बात सुनकर वे राजा अचंभेमें पड गये ॥ ५ ॥

सपुत्रा हि पुरा कुन्ती दग्धा जतुगृहे श्रुता ।
पुनर्जातानिति स्मैतान्मन्यन्ते सर्वपार्थिवाः ॥ ६ ॥

उन्होंने सुना था कि पहले अपने पुत्रोंसहित कुन्ती जल मरी थी, अतः राजाओंने समझा कि पाण्डव फिर नया जन्म लेकर आये हैं ॥ ६ ॥

धिक्कुर्वन्तस्तदा भीष्मं धृतराष्ट्रं च कौरवम् ।
कर्मणा सुनृशंसेन पुरोचनकृतेन वै ॥ ७ ॥

तब वे पुरोचनका किया बडा निष्ठुर कर्मका स्मरण कर कौरव धृतराष्ट्र और भीष्मको धिक्कारने लगे ॥ ७ ॥

वृत्ते स्वयंवरे चैव राजानः सर्व एव ते ।
यथागतं विप्रजग्मुर्विदित्वा पाण्डवान्वृतान् ॥ ८ ॥

तदनन्तर स्वयंवरका कार्य पूरा होनेपर द्रौपदीके द्वारा पाण्डवोंसे वरे जानेकी बात सुनकर वे सब भूपाल अपनी अपनी राजधानीको चले गए ॥ ८ ॥

अथ दुर्योधनो राजा विमना भ्रातृभिः सह ।
अश्वत्थाम्ना मातुलेन कर्णेन च कृपेण च ॥ ९ ॥

राजा दुर्योधन (यह जानकर कि द्रौपदीने अर्जुनसे विवाह किया है) अश्वत्थामा, शकुनि, कर्ण, कृप और भाईयोंके साथ उदास लौटे ॥ ९ ॥

विनिवृत्तो वृतं दृष्ट्वा द्रौपद्या श्वेतवाहनम् ।
तं तु दुःशासनो व्रीडन्मन्दं मन्दमिवाब्रवीत् ॥ १० ॥

द्रोपदीके द्वारा अर्जुनको पतिरूपमें वरा हुआ देखकर लौटते हुए दुःशासन लज्जित मुखसे मन्द मन्द वचनोंमें उनसे बोला ॥ १० ॥

यद्यसौ ब्राह्मणो न स्याद्विन्देत द्रौपदीं न सः ।
न हि तं तत्त्वतो राजन्वेद कश्चिद्धनञ्जयम् ॥ ११ ॥

महाराज ! धनञ्जय यदि ब्राह्मणके वेशमें न होता, तो कभी द्रौपदीको प्राप्त नहीं कर सकता था; लोग उसको वास्तवमें नहीं समझ सके थे ॥ ११ ॥

दैवं तु परमं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ।
धिगस्मत्पौरुषं तात यद्धरन्तीह पाण्डवाः ॥ १२ ॥

हे तात ! पाण्डवोंको नष्ट करनेके लिए हमारे बडे प्रयत्न करने पर भी वे जीते जागते हैं, अतएव हमारी पुरुषताको धिक्कार है; अतः मैं यह मानता हूँ कि दैव परम साधन है और पुरुषार्थ निरर्थक है ॥ १२ ॥

एवं संभाषमाणास्ते निन्दन्तश्च पुरोचनम् ।
विविशुर्हास्तिनपुरं दीना विगतचेतसः ॥ १३ ॥

दुःशासन आदि सब ऐसी बातें करते और पुरोचनकी निन्दा करते हुए दीन और दुःखी चित्तसे हस्तिनापुरमें आ पहुंचे ॥ १३ ॥

त्रस्ता विगतसंकल्पा दृष्ट्वा पार्थान्महौजसः ।
मुक्तान्हव्यवहाच्चैनान्संयुक्तान्द्रुपदेन च ॥ १४ ॥

और अत्यन्त तेजस्वी पाण्डवोंको अति बलवान् अग्निसे बचे और द्रुपदसे मिले हुए देखकर वे संकल्पहीन होकर भयभीत हो गए ॥ १४ ॥

धृष्टद्युम्नं तु संचिन्त्य तथैव च शिखण्डिनम् ।
द्रुपदस्यात्मजांश्चान्यान्सर्वयुद्धविशारदान् ॥ १५ ॥

तथा धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा सर्व प्रकारसे युद्धमें दक्ष द्रुपदके दूसरे पुत्रोंको स्मरण कर भयभीत हो गए ॥ १५ ॥

विदुरस्त्वथ ताञ्छ्रुत्वा द्रौपद्या पाण्डवान्वृतान् ।
व्रीडितान्धार्तराष्ट्रांश्च भग्नदर्पानुपागतान् ॥ १६ ॥
ततः प्रीतमनाः क्षत्ता धृतराष्ट्रं विशां पते ।
उवाच दिष्ट्या कुरवो वर्धन्त इति विस्मितः ॥ १७ ॥

हे मनुष्यनाथ ! यह सुनकर कि पाण्डवोंने द्रौपदीको प्राप्त किया और धृतराष्ट्रके पुत्रगण लज्जित और टूटे अहंकारके साथ लौटे हैं, विदुर प्रसन्नमनसे धृतराष्ट्रसे बोले– हमारे सौभाग्यसे कौरवगण बढ रहे हैं ॥ १६-१७ ॥

वैचित्रवीर्यस्तु नृपो निशम्य विदुरस्य तत् ।
अब्रवीत्परमप्रीतो दिष्ट्या दिष्टयेति भारत ॥ १८ ॥

राजा विचित्रवीर्यके पुत्र धृतराष्ट्र विदुरका यह वचन सुन करके आश्चर्यान्वित होकर बडी प्रसन्नतासे कहने लगे, कि हमारा कैसा सौभाग्य है ! कैसा सौभाग्य है ॥ १८ ॥

मन्यते हि वृतं पुत्रं ज्येष्ठं द्रुपदकन्यया ।
दुर्योधनमविज्ञानात्प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरः ॥ १९ ॥

हे भारत ! प्रज्ञानेत्र भूपालने अज्ञानसे समझा, कि द्रुपदपुत्रीने उनके ज्येष्ठपुत्र दुर्योधनसे विवाह कर लिया है ॥ १९ ॥

अथ त्वाज्ञापयामास द्रौपद्या भूषणं बहु ।
आनीयतां वै कृष्णेति पुत्रं दुर्योधनं तदा ॥ २० ॥

अतएव उन्होंने उसी क्षण पुत्रवधू द्रौपदीको भांति भांतिके गहने पहन कर उसे लिवा लानेके लिये पुत्र दुर्योधनको आज्ञा की ॥ २० ॥

अथास्य पश्चाद्विदुर आचख्यौ पाण्डवान्वृतान् ।
सर्वान्कुशलिनो वीरान्पूजितान्द्रुपदेन च ।
तेषां संबन्धिनश्चान्यान्बहून्बलसमन्वितान् ॥ २१ ॥

तब विदुरने उनसे कहा– सब पाण्डव कुशलसे हैं, द्रौपदीने उन्हीं वीरोंसे विवाह किया है, द्रुपदने उनका बडा सन्मान किया है और उनके सम्बन्धी, बन्धु आदि दूसरे बहुतसे बलवान् उनसे जा मिले हैं ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

यथैव पाण्डोः पुत्रास्ते तथैवाभ्यधिका मम ।
सेयमभ्यधिका प्रीतिर्वृद्धिर्विदुर मे मता
यत्ते कुशलिनो वीरा मित्रवन्तश्च पाण्डवाः ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे क्षत्त ! वे पाण्डव जिस प्रकार पाण्डुके स्नेहपात्र हैं, उससे भी अधिक मेरे स्नेहके पात्र हैं । इससे उन पर मेरी और भी प्रीति हो रही है, वे वीरपुरुष कुशलसे बच कर मित्रोंसे मिल गए हैं ॥ २२ ॥

को हि द्रुपदमासाद्य मित्रं क्षत्तः सबान्धवम् ।
न बुभूषेद्भवेनार्थी गतश्रीरपि पार्थिवः ॥ २३ ॥

विशेष कर ऐसा कौन राजा होगा कि जो श्री रहित होकर भी बन्धुसहित राजा द्रुपदको मित्र पाकर ऐश्वर्ययुक्त होनेकी इच्छा नहीं करेगा ? ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

तं तथा भाषमाणं तु विदुरः प्रत्यभाषत ।
नित्यं भवतु ते बुद्धिरेषा राजञ्शतं समाः ॥ २४ ॥

वैशम्पायन बोले– भूपालकी यह बात सुनकर विदुरने उत्तर दिया– महाराज ! आपकी सैंकडों वर्षोंतक सदा ऐसी ही बुद्धि बनी रहे ॥ २४ ॥

ततो दुर्योधनश्चैव राधेयश्च विशां पते ।
धृतराष्ट्रमुपागम्य वचोऽब्रूतामिदं तदा ॥ २५ ॥

हे नरनाथ ! तदनन्तर दुर्योधन और राधापुत्र कर्ण धृतराष्ट्रके निकट आकर यह बात बोले ॥ २५ ॥

संनिधौ विदुरस्य त्वां वक्तुं नृप न शक्नुवः ।
विविक्तमिति वक्ष्यावः किं तवेदं चिकीर्षितम् ॥ २६ ॥

हम विदुरके सामने आपसे कुछ कह नहीं सके । अब एकान्त पाकर आपको बताते हैं कि आपका क्या कर्तव्य है, अतः उसे सुनिए ॥ २६ ॥

सपत्नवृद्धिं यत्तात मन्यसे वृद्धिमात्मनः ।
अभिष्टौषि च यत्क्षत्तुः समीपे द्विपदां वर ॥ २७ ॥

हे पिता ! आप शत्रुओंकी बढतीको अपनी बढती समझ रहे हैं ? हे नरवर ! आप विदुरसे विपक्षियोंकी प्रशंसा करते हैं ॥ २७ ॥

अन्यस्मिन्नृप कर्तव्ये त्वमन्यत्कुरुषेऽनघ ।
तेषां बलविघातो हि कर्तव्यस्तात नित्यशः ॥ २८ ॥

हे अनघ ! जहां जैसा काम करना चाहिये, आप उसका उलटा करते हैं ! हे पिता ! अब सदा ऐसी यह चेष्टा करनी चाहिये, कि उनका बल घटे ॥ २८ ॥

ते वयं प्राप्तकालस्य चिकीर्षां मन्त्रयामहे ।
यथा नो न ग्रसेयुस्ते सपुत्रबलबान्धवान् ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥ ६२३० ॥

हालमें जैसा समय आ पडा है, अब उसके अनुसार हमें ऐसी युक्ति सोचनी चाहिये, कि वे लोग हमको और हमारे पुत्र, बन्धु तथा सेनाओंको नष्ट न कर सकें ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ बयानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९२ ॥ ६२३० ॥

: १९३ :

धृतराष्ट्र उवाच

अहमप्येवमेवैतच्चिन्तयामि यथा युवाम् ।
विवेक्तुं नाहमिच्छामि त्वाकारं विदुरं प्रति ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– तुम्हारी जैसी इच्छा है, मैं भी वही सोचता हूं; पर विदुरसे कोई अभिप्राय प्रगट नहीं करना चाहता ॥ १ ॥

अतस्तेषां गुणानेव कीर्तयामि विशेषतः ।
नावबुध्येत विदुरो ममाभिप्रायमिङ्गितैः ॥ २ ॥

इसलिये विदुर इशारेसे भी मेरा अभिप्राय समझ न पावे इसीलिए मैं पाण्डवोंके गुणोंका कीर्तन करता हूँ ॥ २ ॥

यच्च त्वं मन्यसे प्राप्तं तद्‌ब्रूहि त्वं सुयोधन ।
राधेय मन्यसे त्वं च यत्प्राप्तं तद्‌ब्रवीहि मे ॥ ३ ॥

हे सुयोधन ! अब जो करना उचित समझो; और, हे राधानन्दन ! तुमने भी जैसा समझा है, वह सब कहनेका अब समय है, अतः कहो ॥ ३ ॥

दुर्योधन उवाच

अद्य तान्कुशलैर्विप्रैः सुकृतैराप्तकारिभिः ।
कुन्तीपुत्रान्भेदयामो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ४ ॥

दुर्योधन बोले– अब हमारे विश्वासी और ब्राह्मणगण बहुत छिप करके जायें और कुन्तीपुत्र और माद्रीपुत्रोंमें आपसमें वैमनस्यता पैदा कर दें ॥ ४ ॥

अथवा द्रुपदो राजा महद्भिर्वित्तसंचयैः ।
पुत्राश्चास्य प्रलोभ्यन्ताममात्याश्चैव सर्वशः ॥ ५ ॥

अथवा राजा द्रुपद और उनके पुत्र तथा सम्पूर्ण मन्त्रियोंको बहुत धन देकर लालच दिलायी जाय और कहा जाए ॥ ५ ॥

परित्यजध्वं राजानं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अथ तत्रैव वा तेषां निवासं रोचयन्तु ते ॥ ६ ॥

तुम कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको त्याग दो अथवा उन पाण्डवोंका निवास वे पांचालराजके यहां ही करवा दें ॥ ६ ॥

इहैषां दोषवद्वासं वर्णयन्तु पृथक्पृथक् ।
ते भिद्यमानास्तत्रैव मनः कुर्वन्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥

अथवा हमारे भेजे हुए लोग हरेक अलग अलग पाण्डवोंके इस स्थानमें रहनेका दोष बतावें। ऐसा करनेसे ही वे हमसे दूर होकर वहीं रहनेकी इच्छा करेंगे ॥ ७ ॥

अथवा कुशलाः केचिदुपायनिपुणा नराः ।
इतरेतरतः पार्थान्भेदयन्त्वनुरागतः ॥ ८ ॥

अथवा कुछ उपायोंके जानकार दक्ष जन ऐसा करें कि पाण्डवोंमें बिगाड हो और उनमें आपसमें प्रेम न रहे ॥ ८ ॥

व्युत्थापयन्तु वा कृष्णां बहुत्वात्सुकरं हि तत्।
अथवा पाण्डवांस्तस्यां भेदयन्तु ततश्च तान् ॥ ९ ॥

अथवा कृष्णा द्रौपदीको ही ऐसा उभाडें कि, उसका पतियोंसे मन टल जाय। उसके बहुत पति हैं, अतः यह करना कठिन नहीं होगा। अथवा ऐसा करें कि पाण्डवोंका द्रौपदी पर प्रेम न रहे; ऐसा होनेसे द्रौपदी उन पर चिढ जायगी ॥ ९ ॥

भीमसेनस्य वा राजन्नुपायकुशलैर्नरैः।
मृत्युर्विधीयतां छन्नैः स हि तेषां बलाधिकः ॥ १० ॥

अथवा अच्छे उपाय निकालनेवाले वहां जाकर छिपकर ऐसा कोई उपाय करें, कि भीमकी मृत्यु हो, क्योंकि उनमें भीम ही बडा बली है ॥ १० ॥

तस्मिंस्तु निहते राजन्हतोत्साहा हतौजसः।
यतिष्यन्ते न राज्याय स हि तेषां व्यपाश्रयः ॥ ११ ॥

हे महाराज! उस भीमके मारे जाने पर वे तेज और उत्साहसे रहित होकर फिर राज्य पानेका प्रयत्न नहीं करेंगे क्योंकि वही उनका आश्रय है ॥ ११ ॥

अजेयो ह्यर्जुनः सङ्ख्ये पृष्ठगोपे वृकोदरे।
तमृते फल्गुनो युद्धे राधेयस्य न पादभाक् ॥ १२ ॥

युद्धस्थलमें वृकोदरके पृष्ठरक्षक होने पर अर्जुन पर कोई भी जय नहीं पा सकता; युद्धस्थलमें वृकोदरके न रहनेसे अर्जुन कर्णका चौथा अंश भी नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

ते जानमाना दौर्बल्यं भीमसेनमृते महत्।
अस्मान्बलवतो ज्ञात्वा नशिष्यन्त्यबलीयसः ॥ १३ ॥

भीमसेनके विना दुर्बल पाण्डव अपनेको बल-वर्जित और हमको अधिक बलवान् जानकर राज्य पानेका प्रयत्न नहीं करेंगे ॥ १३ ॥

इहागतेषु पार्थेषु निदेशवशवर्तिषु।
प्रवर्तिष्यामहे राजन्यथाश्रद्धं निबर्हणे ॥ १४ ॥

पर यदि वे यहां आकर हमारे अधीन और आज्ञानुसारी होवें, तो हम उनके साथ यथा-योग्य श्रद्धापूर्वक व्यवहार करेंगे ॥ १४ ॥

अथवा दर्शनीयाभिः प्रमदाभिर्विलोभ्यताम्।
एकैकस्तत्र कौन्तेयस्ततः कृष्णा विरज्यताम् ॥ १५ ॥

अथवा परम रूपवती युवतियोंसे उनमें एक एकको लुभाना चाहिये; ऐसा करनेसे द्रौपदीका प्रेम उन पर कम हो जायगा ॥ १५ ॥

प्रेष्यतां वापि राधेयस्तेषामागमनाय वै ।
ते लोप्त्रहारैः संधाय वध्यन्तामाप्तकारिभिः ॥ १६ ॥

अथवा उनको लिवा लानेके लिये राधानन्दन कर्णको भेजा जाये, उनके एकत्र मिलकर आनेसे पहिले ही उपायसे वे नष्ट किये जा सकेंगे ॥ १६ ॥

एतेषामभ्युपायानां यस्ते निर्दोषवान्मतः ।
तस्य प्रयोगमातिष्ठ पुरा कालोऽतिवर्तते ॥ १७ ॥

हे पिता ! इन सब उपायोंमेंसे आपकी समझमें जो दोषरहित जान पडे, वही करें, काल बीत रहा है, अधिक विलम्ब करना उचित नहीं है ॥ १७ ॥

यावच्चाकृतविश्वासा द्रुपदे पार्थिवर्षभे ।
तावदेवाद्य ते शक्या न शक्यास्तु ततः परम् ॥ १८ ॥

जबतक पृथ्वीनाथ द्रुपद पर उसका विश्वास न जमे, उसके पहिले योग्य उपाय करना चाहिये; राजा द्रुपद पर उनका विश्वास हो जानेसे उन पर फिर कोई उपाय न चलेगा ॥ १८ ॥

एषा मम मतिस्तात निग्रहाय प्रवर्तते ।
साधु वा यदि वासाधु किं वा राधेय मन्यसे ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥ ६२४९ ॥

हे पिता ! उनको वशमें लानेके लिये मैंने यह उपाय निश्चित किये हैं। यह भले हैं वा बुरे, आप समझ लें। अथवा, कर्ण ! तुम क्या समझते हो ? ॥ १९ ॥

महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ तिरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९३ ॥ ६२४९ ॥

: १९४ :

कर्ण उवाच

दुर्योधन तव प्रज्ञा न सम्यगिति मे मतिः ।
न ह्युपायेन ते शक्याः पाण्डवाः कुरुनन्दन ॥ १ ॥

कर्ण बोले– हे दुर्योधन ! मेरा विचार है कि तुमने जो सोचा है, वह ठीक नहीं है। हे कुरुनन्दन ! इसमेंसे किसी भी उपायसे पाण्डवोंको वशमें लाना संभव नहीं है ॥ १ ॥

पूर्वमेव हि ते सूक्ष्मैरुपायैर्यतितास्त्वया ।
निग्रहीतुं यदा वीर शकिता न तदा त्वया ॥ २ ॥

हे वीर ! तुमने पहिले भी सूक्ष्म उपायोंसे उनको वशमें लानेका प्रयत्न किया था, पर वे तुम्हारे द्वारा वशमें नहीं किए जा सके ॥ २ ॥

इहैव वर्तमानास्ते समीपे तव पार्थिव ।
अजातपक्षाः शिशवः शकिता नैव बाधितुम् ॥ ३ ॥

हे राजन् ! उस समय वे अल्प अवस्थावाले निःसहाय और तुम्हारे निकट थे, उस पर भी उनकी कोई हानि तुम नहीं कर सके ॥ ३ ॥

जातपक्षा विदेशस्था विवृद्धाः सर्वशोऽद्य ते ।
नोपायसाध्याः कौन्तेया ममैषा मतिरच्युत ॥ ४ ॥

हे पुरुषार्थशील ! अब वे दूसरे देशमें स्थित, सहायसहित और सब प्रकारसे बढ गये हैं, अतः मेरा यह विचार है, कि इस समय इन उपायोंसे उनकी कोई हानि नहीं की जा सकेगी ॥ ४ ॥

न च ते व्यसनैर्योक्तुं शक्या दिष्टकृता हि ते ।
शङ्किताश्चेप्सवश्चैव पितृपैतामहं पदम् ॥ ५ ॥

और उनपर संकट लाना भी संभव नहीं है क्योंकि उनमें दैवीशक्ति भरी पडी है और वे बाप दादोंके राज्यको प्राप्त करना चाहते हैं ॥ ५ ॥

परस्परेण भेदश्च नाधातुं तेषु शक्यते ।
एकस्यां ये रताः पत्न्यां न भिद्यन्ते परस्परम् ॥ ६ ॥

उन भाइयोंमें आपसका बिगाड करा देना भी शक्तिके बाहर है; क्योंकि जो पांचों भाई एक स्त्रीपर प्रेम करते हैं, उनमें कभी आपसमें फूट पडना सम्भव नहीं है ॥ ६ ॥

न चापि कृष्णा शक्येत तेभ्यो भेदयितुं परैः ।
परिद्यूनान्वृतवती किमुताद्य मृजावतः ॥ ७ ॥

किसी उपायसे कृष्णाके चित्तको भी पाण्डवोंसे हटाना कठिन है; क्योंकि उनकी दीन दशाके दिनोंमें ही उसने उनसे विवाह किया था; अब तो वे अस्त्र और गहनोंसे सम्पन्न हैं (अतः अब वह उन्हें कैसे छोड सकती है ?) ॥ ७ ॥

ईप्सितश्च गुणः स्त्रीणामेकस्या बहुभर्तृता ।
तं च प्राप्तवती कृष्णा न सा भेदयितुं सुखम् ॥ ८ ॥

इसके अलावा स्त्रियोंके लिये बहुत पतियोंका मिलना प्रसन्नताकी बात है, कृष्णाने वह प्राप्त कर लिए हैं; अतः पतियोंसे उसका मन हटाना असंभव है ॥ ८ ॥

आर्यवृत्तश्च पाञ्चाल्यो न स राजा धनप्रियः ।
न संत्यक्ष्यति कौन्तेयान्राज्यदानैरपि ध्रुवम् ॥ ९ ॥

राजा पाञ्चाल श्रेष्ठ चरित्रवाले हैं, वह धनके लोभी नहीं हैं, अतः इसमें सन्देह नहीं, कि उनको सब राज्य देने पर भी वे पाण्डवोंको नहीं छोडेंगे ॥ ९ ॥

तथास्य पुत्रो गुणवाननुरक्तश्च पाण्डवान् ।
तस्मान्नोपायसाध्यांस्तानहं मन्ये कथंचन ॥ १० ॥

उन राजाका पुत्र गुणवान् और पाण्डवोंका प्रेमी है, अतः लुभा करके वे वशमें नहीं लाये जा सकेंगे ऐसा मेरा विचार है ॥ १० ॥

इदं त्वद्य क्षमं कर्तुमस्माकं पुरुषर्षभ ।
यावन्न कृतमूलास्ते पाण्डवेया विशां पते ।
तावत्प्रहरणीयास्ते रोचतां तव विक्रमः ॥ ११ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज ! इस समय तो हमारा यही कर्तव्य है, कि जबतक पाण्डव दृढमूल न हो जायें, तबतक उनको मारते रहें । हे पिता ! इस विषयमें आपका विक्रम प्रकट हो ॥ ११ ॥

अस्मत्पक्षो महान्यावद्यावत्पाञ्चालको लघुः ।
तावत्प्रहरणं तेषां क्रियतां मा विचारय ॥ १२ ॥

जबतक हमारा पक्ष महान् और पांचालका पक्ष लघु है, तबतक युद्ध प्रारम्भ कर उनको मारना आरम्भ करें । इसमें आप विचार न करें ॥ १२ ॥

वाहनानि प्रभूतानि मित्राणि बहुलानि च ।
यावन्न तेषां गान्धारे तावदेवाशु विक्रम ॥ १३ ॥

हे महाराज गान्धारीनंदन ! जबतक उनके मित्र और बन्धु तथा बहुत वाहन न एकत्रित हों, उसके पहिले ही उन पर विक्रम प्रगट करके उनपर आक्रमण कर दो ॥ १३ ॥

यावच्च राजा पाञ्चाल्यो नोद्यमे कुरुते मनः ।
सह पुत्रैर्महावीर्यैस्तावदेवाशु विक्रम ॥ १४ ॥

जबतक राजा पाञ्चाल अति वीर्यवान् पुत्रोंके साथ लडाईके उद्योगमें अपना मन न लगायें उससे पहिले ही शीघ्र विक्रम दिखाओ ॥ १४ ॥

यावन्नायाति वार्ष्णेयः कर्षन्यादववाहिनीम् ।
राज्यार्थे पाण्डवेयानां तावदेवाशु विक्रम ॥ १५ ॥

जबतक श्रीकृष्ण पाण्डवोंके राज्यके लिये यादवी सेना लेकर न आवें, उससे पहिले ही शीघ्र विक्रम प्रगट करो ॥ १५ ॥

वसूनि विविधान्भोगान्राज्यमेव च केवलम् ।
नात्याज्यमस्ति कृष्णस्य पाण्डवार्थे महीपते ॥ १६ ॥

हे राजन् ! पाण्डवोंके उपकारके लिये भांति भांतिके भोग धन और राज्य भी कृष्णके लिये अत्याज्य नहीं है । (अर्थात् पाण्डवोंकी रक्षाके लिए वे सभी कुछ छोड सकते हैं) ॥ १६ ॥

इहैव वर्तमानास्ते समीपे तव पार्थिव ।
अजातपक्षाः शिशवः शकिता नैव बाधितुम् ॥ ३ ॥

हे राजन् ! उस समय वे अल्प अवस्थावाले निःसहाय और तुम्हारे निकट थे, उस पर भी उनकी कोई हानि तुम नहीं कर सके ॥ ३ ॥

जातपक्षा विदेशस्था विवृद्धाः सर्वशोऽद्य ते ।
नोपायसाध्याः कौन्तेया ममैषा मतिरच्युत ॥ ४ ॥

हे पुरुषार्थशील ! अब वे दूसरे देशमें स्थित, सहायसहित और सब प्रकारसे बढ गये हैं, अतः मेरा यह विचार है, कि इस समय इन उपायोंसे उनकी कोई हानि नहीं की जा सकेगी ॥ ४ ॥

न च ते व्यसनैर्योक्तुं शक्या दिष्टकृता हि ते ।
शङ्किताश्चेप्सवश्चैव पितृपैतामहं पदम् ॥ ५ ॥

और उनपर संकट लाना भी संभव नहीं है क्योंकि उनमें दैवीशक्ति भरी पडी है और वे बाप दादोंके राज्यको प्राप्त करना चाहते हैं ॥ ५ ॥

परस्परेण भेदश्च नाधातुं तेषु शक्यते ।
एकस्यां ये रताः पत्न्यां न भिद्यन्ते परस्परम् ॥ ६ ॥

उन भाइयोंमें आपसका बिगाड करा देना भी शक्तिके बाहर है; क्योंकि जो पांचों भाई एक स्त्रीपर प्रेम करते हैं, उनमें कभी आपसमें फूट पडना सम्भव नहीं है ॥ ६ ॥

न चापि कृष्णा शक्येत तेभ्यो भेदयितुं परैः ।
परिद्यूनान्वृतवती किमुताद्य मृजावतः ॥ ७ ॥

किसी उपायसे कृष्णाके चित्तको भी पाण्डवोंसे हटाना कठिन है; क्योंकि उनकी दीन दशाके दिनोंमें ही उसने उनसे विवाह किया था; अब तो वे अन्न और गहनोंसे सम्पन्न हैं (अतः अब वह उन्हें कैसे छोड सकती है ?) ॥ ७ ॥

ईप्सितश्च गुणः स्त्रीणामेकस्या बहुभर्तृता ।
तं च प्राप्तवती कृष्णा न सा भेदयितुं सुखम् ॥ ८ ॥

इसके अलावा स्त्रियोंके लिये बहुत पतियोंका मिलना प्रसन्नताकी बात है, कृष्णाने वह प्राप्त कर लिए हैं; अतः पतियोंसे उसका मन हटाना असंभव है ॥ ८ ॥

आर्यवृत्तश्च पाञ्चाल्यो न स राजा धनप्रियः ।
न संत्यक्ष्यति कौन्तेयान्राज्यदानैरपि ध्रुवम् ॥ ९ ॥

राजा पाञ्चाल श्रेष्ठ चरित्रवाले हैं, वह धनके लोभी नहीं हैं, अतः इसमें सन्देह नहीं, कि उनको सब राज्य देने पर भी वे पाण्डवोंको नहीं छोडेंगे ॥ ९ ॥

तथास्य पुत्रो गुणवाननुरक्तश्च पाण्डवान् ।
तस्मान्नोपायसाध्यांस्तानहं मन्ये कथंचन ॥ १० ॥

उन राजाका पुत्र गुणवान् और पाण्डवोंका प्रेमी है, अतः लुभा करके वे वशमें नहीं लाये जा सकेंगे ऐसा मेरा विचार है ॥ १० ॥

इदं त्वद्य क्षमं कर्तुमस्माकं पुरुषर्षभ ।
यावन्न कृतमूलास्ते पाण्डवेया विशां पते ।
तावत्प्रहरणीयास्ते रोचतां तव विक्रमः ॥ ११ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज ! इस समय तो हमारा यही कर्तव्य है, कि जबतक पाण्डव दृढमूल न हो जायें, तबतक उनको मारते रहें । हे पिता ! इस विषयमें आपका विक्रम प्रकट हो ॥ ११ ॥

अस्मत्पक्षो महान्यावद्यावत्पाञ्चालको लघुः ।
तावत्प्रहरणं तेषां क्रियतां मा विचारय ॥ १२ ॥

जबतक हमारा पक्ष महान् और पांचालका पक्ष लघु है, तबतक युद्ध प्रारम्भ कर उनको मारना आरम्भ करें । इसमें आप विचार न करें ॥ १२ ॥

वाहनानि प्रभूतानि मित्राणि बहुलानि च ।
यावन्न तेषां गान्धारे तावदेवाशु विक्रम ॥ १३ ॥

हे महाराज गान्धारीनंदन ! जबतक उनके मित्र और बन्धु तथा बहुत वाहन न एकत्रित हों, उसके पहिले ही उन पर विक्रम प्रगट करके उनपर आक्रमण कर दो ॥ १३ ॥

यावच्च राजा पाञ्चाल्यो नोद्यमे कुरुते मनः ।
सह पुत्रैर्महावीर्यैस्तावदेवाशु विक्रम ॥ १४ ॥

जबतक राजा पाञ्चाल अति वीर्यवान् पुत्रोंके साथ लडाईके उद्योगमें अपना मन न लगायें उससे पहिले ही शीघ्र विक्रम दिखाओ ॥ १४ ॥

यावन्नायाति वार्ष्णेयः कर्षन्यादववाहिनीम् ।
राज्यार्थे पाण्डवेयानां तावदेवाशु विक्रम ॥ १५ ॥

जबतक श्रीकृष्ण पाण्डवोंके राज्यके लिये यादवी सेना लेकर न आवें, उससे पहिले ही शीघ्र विक्रम प्रगट करो ॥ १५ ॥

वसूनि विविधान्भोगान्राज्यमेव च केवलम् ।
नात्याज्यमस्ति कृष्णस्य पाण्डवार्थे महीपते ॥ १६ ॥

हे राजन् ! पाण्डवोंके उपकारके लिये भांति भांतिके भोग धन और राज्य भी कृष्णके लिये अत्याज्य नहीं है । (अर्थात् पाण्डवोंकी रक्षाके लिए वे सभी कुछ छोड सकते हैं) ॥ १६ ॥

विक्रमेण मही प्राप्ता भरतेन महात्मना।
विक्रमेण च लोकांस्त्रीञ्जितवान्पाकशासनः ॥ १७ ॥

हे भूनाथ! महात्मा भरतने विक्रम हीसे पृथ्वी जीती थी और इन्द्रने अपने विक्रम हीके द्वारा तीनों लोक जीते थे ॥ १७ ॥

विक्रमं च प्रशंसन्ति क्षत्रियस्य विशां पते।
स्वको हि धर्मः शूराणां विक्रमः पार्थिवर्षभ ॥ १८ ॥

हे राजेन्द्र! क्षत्रियोंके विक्रमकी ही प्रशंसा होती है। हे राजाओंमें श्रेष्ठ! विक्रम ही शूरोंका धर्म है ॥ १८ ॥

ते बलेन वयं राजन्महता चतुरङ्गिणा।
प्रमथ्य द्रुपदं शीघ्रमानयामेह पाण्डवान् ॥ १९ ॥

अतएव हम बडी भारी चतुराङ्गिणी सेनासे विना विलम्ब राजा द्रुपदको हरा करके पाण्डवों-को यहां लेते आवें ॥ १९ ॥

न हि साम्ना न दानेन न भेदेन च पाण्डवाः।
शक्याः साधयितुं तस्माद्विक्रमेणैव ताञ्जहि ॥ २० ॥

साम, दान वा भेद द्वारा पाण्डवोंको वशमें नहीं किया जा सकता, अतः विक्रम हीसे उनका नाश करो ॥ २० ॥

तान्विक्रमेण जित्वेमामखिलां भुङ्क्ष्व मेदिनीम्।
नान्यमत्र प्रपश्यामि कार्योपायं जनाधिप ॥ २१ ॥

विक्रमसे उनको जीतकर इस संपूर्ण धरतीका उपभोग करो, हे जनाधिप! मैं इसके सिवाय कार्य पूरा करनेका कोई दूसरा उपाय नहीं देखता ॥ २१ ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा तु राधेयवचो धृतराष्ट्रः प्रतापवान्।
अभिपूज्य ततः पश्चादिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥

वैशम्पायन बोले– प्रतापी धृतराष्ट्र राधानन्दनकी बात सुनकर उनकी प्रशंसा कर बादमें यह वचन बोले ॥ २२ ॥

उपपन्नं महाप्राज्ञे कृतास्त्रे सूतनन्दने।
त्वयि विक्रमसंपन्नमिदं वचनमीदृशम् ॥ २३ ॥

हे सूतपुत्र! तुम बडे बुद्धिमान् और अस्त्रविद्यामें पण्डित हो अतः ऐसा विक्रमयुक्त वचन बोलना तुम्हारे योग्य ही है ॥ २३ ॥

भूय एव तु भीष्मश्च द्रोणो विदुर एव च ।
युवां न कुरुतां बुद्धिं भवेद्या नः सुखोदया ॥ २४ ॥

पर भीष्म, द्रोण, विदुर और तुम दोनों फिर युक्ति करके यह निश्चय करो, कि जिससे हमारा मंगल होवे ॥ २४ ॥

तत आनाय्य तान्सर्वान्मन्त्रिणः सुमहायशाः ।
धृतराष्ट्रो महाराज मन्त्रयामास वै तदा ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥ ६२७४ ॥

महाराज ! अतियशस्वी धृतराष्ट्र भीष्मादि संपूर्ण मंत्रियोंको बुलवाकर उपायों पर विचार करने लगे ॥ २५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ चौरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९४ ॥ ६२७४ ॥

: १९५ :

भीष्म उवाच

न रोचते विग्रहो मे पाण्डुपुत्रैः कथंचन ।
यथैव धृतराष्ट्रो मे तथा पाण्डुरसंशयम् ॥ १ ॥

भीष्म बोले— पाण्डवोंके साथ युद्ध करना किसी प्रकार मुझे अच्छा नहीं लगता; क्योंकि मेरे लिये जैसे धृतराष्ट्र हैं पाण्डु भी वैसे ही थे ॥ १ ॥

गान्धार्याश्च यथा पुत्रास्तथा कुन्तीसुता मताः ।
यथा च मम ते रक्ष्या धृतराष्ट्र तथा तव ॥ २ ॥

और गान्धारीके पुत्र जिस प्रकार स्नेहके पात्र हैं; कुंतीके पुत्र भी वैसे ही प्रिय हैं । मुझको जिस प्रकार उनकी रक्षा करनी है, हे धृतराष्ट्र ! उसी प्रकार तुम्हें भी उनकी रक्षा करनी चाहिए ॥ २ ॥

तथा च मम राज्ञश्च तथा दुर्योधनस्य ते ।
तथा कुरूणां सर्वेषामन्येषामपि भारत ॥ ३ ॥

हे पृथ्वीपाल ! वे मेरे जैसे आत्मजन हैं, राजा दुर्योधन आदि सब कौरव भी वैसे ही आत्मजन हैं, इसमें कोई शंका नहीं है ॥ ३ ॥

एवं गते विग्रहं तैर्न रोचये संधाय वीरैर्दीयतामद्य भूमिः।
तेषामपीदं प्रपितामहानां राज्यं पितुश्चैव कुरूत्तमानाम् ॥ ४ ॥

ऐसी दशामें उनसे लडनेकी मेरी संमति नहीं हो सकती। हे महाराज! उन वीरोंसे संधि करके उनको आज राज्य दे दो; क्योंकि यह उन कुरुश्रेष्ठ पाण्डवोंके भी दादा, परदादा और पिताओंका राज्य है ॥ ४ ॥

दुर्योधन यथा राज्यं त्वमिदं तात पश्यसि।
मम पैतृकमित्यैवं तेऽपि पश्यन्ति पाण्डवाः ॥ ५ ॥

तात दुर्योधन! तुम जिस प्रकार इसे अपना पैत्रिक राज्य समझ रहे हो, वैसे ही पाण्डव भी यह समझते हैं कि यह हमारा पैत्रिक राज्य है ॥ ५ ॥

यदि राज्यं न ते प्राप्ताः पाण्डवेयास्तपस्विनः।
कुत एव तवापीदं भारतस्य च कस्यचित् ॥ ६ ॥

यदि वे तपस्वी पाण्डव राज्यके अधिकारी न हों, तो तुम अथवा कोई दूसरा भरतवंशी राज्यका अधिकारी कैसे हो सकता है? ॥ ६ ॥

अथ धर्मेण राज्यं त्वं प्राप्तवान्भरतर्षभ।
तेऽपि राज्यमनुप्राप्ताः पूर्वमेवेति मे मतिः ॥ ७ ॥

हे भरतश्रेष्ठ! यदि तुमने ऐसा समझा है, कि "मैं धर्मानुसार राज्यका अधिकारी बना हूं" तो पहिले धर्मानुसार उन्हींका अधिकार है; यही मेरा मत है ॥ ७ ॥

मधुरेणैव राज्यस्य तेषामर्धं प्रदीयताम्।
एतद्धि पुरुषव्याघ्र हितं सर्वजनस्य च ॥ ८ ॥

अतः प्रसन्नतासे उनको उनका आधा राज्य दो। हे पुरुषव्याघ्र! ऐसा करनेसे सबका मंगल होगा ॥ ८ ॥

अतोऽन्यथा चेत्क्रियते न हितं नो भविष्यति।
तवाप्यकीर्तिः सकला भविष्यति न संशयः ॥ ९ ॥

यदि इसके विरुद्ध करोगे, तो हममेंसे किसीका मंगल नहीं होगा और इसमें सन्देह नहीं, कि तुम्हारी भी बडी अपकीर्ति फैलेगी ॥ ९ ॥

कीर्तिरक्षणमातिष्ठ कीर्तिर्हि परमं बलम्।
नष्टकीर्तेर्मनुष्यस्य जीवितं ह्यफलं स्मृतम् ॥ १० ॥

तुम अपनी कीर्तिकी रक्षा करनेका प्रयत्न करो। क्योंकि इस भूमण्डलमें कीर्ति ही परम बल है और नष्ट हुए कीर्तिवालेका जीवन ही व्यर्थ है ॥ १० ॥

यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य न प्रणश्यति कौरव ।
तावज्जीवति गान्धारे नष्टकीर्तिस्तु नश्यति ॥ ११ ॥

हे कौरव ! जबतक किसीकी कीर्ति नष्ट नहीं होती, उसके परलोक सिधारने पर भी तबतक वह जीवित रहता है; और, हे गान्धारीके पुत्र ! कीर्ति नष्ट होने पर जीवित रहनेसे भी वह मरा कहा जाता है ॥ ११ ॥

तमिमं समुपातिष्ठ धर्मं कुरुकुलोचितम् ।
अनुरूपं महाबाहो पूर्वेषामात्मनः कुरु ॥ १२ ॥

हे महाभुज ! तुम कुरुकुलके योग्य धर्ममें चित्त लगाओ; और अपने पूर्व पुरुषोंकी भांति कार्य करो ॥ १२ ॥

दिष्ट्या धरन्ति ते वीरा दिष्ट्या जीवति सा पृथा ।
दिष्ट्या पुरोचनः पापो नसकामोऽत्ययं गतः ॥ १३ ॥

हमारे सौभाग्य हीसे पाण्डव जीवित है और सौभाग्यसे ही कुन्ती भी जीवित है। यह हमारा ही सौभाग्य है, कि पापात्मा पुरोचनका मनोरथ सफल नहीं हुआ और वह यमराजके घरको जा पहुंचा ॥ १३ ॥

तदा प्रभृति गान्धारे न शक्नोम्यभिवीक्षितुम् ।
लोके प्राणभृतां कंचिच्छ्रुत्वा कुन्तीं तथागताम् ॥ १४ ॥

हे गान्धारीके पुत्र ! जबसे मैंने कुन्तीको उस प्रकार जलमरी सुना, तबसे मैं इस धरती पर किसीको भली प्रकार देख भी नहीं सकता हूं ॥ १४ ॥

न चापि दोषेण तथा लोको वैति पुरोचनम् ।
यथा त्वां पुरुषव्याघ्र लोको दोषेण गच्छति ॥ १५ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! जिस प्रकार लोग तुमको दोषी जानते हैं, पुरोचनको वैसा दोषी नहीं समझते ॥ १५ ॥

तदिदं जीवितं तेषां तव किल्मषनाशनम् ।
संमन्तव्यं महाराज पाण्डवानां च दर्शनम् ॥ १६ ॥

हे महाराज ! पाण्डवोंका जीना और उनको फिर देखना तुमको केवल अपना कलंक नष्ट होनेका कारण ही जानना चाहिये ॥ १६ ॥

न चापि तेषां वीराणां जीवतां कुरुनन्दन ।
पित्र्योंऽशः शक्य आदातुमपि वज्रभृता स्वयम् ॥ १७ ॥

हे कुरुनन्दन ! उन सब वीरोंके जीवित रहते हुए स्वयं वज्रधारी महेन्द्र भी उनके पैत्रिक राज्यको लेनेका सामर्थ्य नहीं रखते ॥ १७ ॥

ते हि सर्वे स्थिता धर्मे सर्वे चैवैकचेतसः।
अधर्मेण निरस्ताश्च तुल्ये राज्ये विशेषतः ॥ १८ ॥

इसके अलावा पाण्डव सब एकमत और धर्मके पथमें चलनेवाले होने पर भी तुल्य अधिकारके राज्यसे अधर्मपूर्वक हटाये जाते हैं ॥ १८ ॥

यदि धर्मस्त्वया कार्यो यदि कार्यं प्रियं च मे।
क्षेमं च यदि कर्तव्यं तेषामर्धं प्रदीयताम् ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥ ६२९३ ॥

अतएव यदि तुमको धर्मकी रक्षा करनी हो, यदि तुमको मेरा प्रिय कार्य करना हो और यदि तुम अपनी भलाई चाहो, तो पाण्डवोंको आधा राज्य दे दो ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ पिच्चानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९५ ॥ ६२९३ ॥

: १९६ :

द्रोण उवाच

मन्त्राय समुपानीतैर्धृतराष्ट्रहितैर्नृप।
धर्म्यं पथ्यं यशस्यं च वाच्यमित्यनुशुश्रुमः ॥ १ ॥

द्रोण बोले— हे महाराज धृतराष्ट्र! हमने सुना है, मंत्रियोंके सलाहके लिये बुलाये जानेपर धर्म, अर्थ और यश देनेवाला वचन कहना ही उनका कर्तव्य है ॥ १ ॥

ममाप्येषा मतिस्तात या भीष्मस्य महात्मनः।
संविभज्यास्तु कौन्तेया धर्म एष सनातनः ॥ २ ॥

हे तात! महात्मा भीष्मने जो कहा है, वही मेरा भी मत है। पाण्डवोंको उनका अंश देना उचित है यही सनातन धर्म है ॥ २ ॥

प्रेष्यतां द्रुपदायाशु नरः कश्चित्प्रियंवदः।
बहुलं रत्नमादाय तेषामर्थाय भारत ॥ ३ ॥

हे भारत! अब प्रिय बोलनेवाले किसी पुरुषको आज्ञा दें कि पाण्डवोंके लिये बहुत धन लेकर द्रुपदके यहां जाय ॥ ३ ॥

मिथःकृत्यं च तस्मै स आदाय बहु गच्छतु।
वृद्धिं च परमां ब्रूयात्तत्संयोगोद्भवां तथा ॥ ४ ॥

वह भेजा हुआ पुरुष वर और वधूके योग्य रत्न और अलङ्कार भी लेकर द्रुपदके सन्मुख जाकर इस संयोगसे होनेवाली उत्तम वृद्धिकी बात कहे ॥ ४ ॥

संप्रीयमाणं त्वां ब्रूयाद्राजन्दुर्योधनं तथा ।
असकृद्द्रुपदे चैव धृष्टद्युम्ने च भारत ॥ ५ ॥

हे भारत ! वह दूत राजा द्रुपद और धृष्टद्युम्नसे बार बार ऐसा कहे– हे महाराज ! आपके साथ सम्बन्ध होनेसे राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधन बहुत कृतार्थ हुए और अपनेको श्रीमान् समझते हैं ॥ ५ ॥

उचितत्वं प्रियत्वं च योगस्यापि च वर्णयेत् ।
पुनः पुनश्च कौन्तेयान्माद्रीपुत्रौ च सान्त्वयन् ॥ ६ ॥

इसी प्रकार वह कुन्ती और माद्रीके पुत्रोंको सान्त्वना देते हुए इस सम्बन्धके उचित और प्रिय होनेकी बात कहे ॥ ६ ॥

हिरण्मयानि शुभ्राणि बहून्याभरणानि च ।
वचनात्तव राजेन्द्र द्रौपद्याः संप्रयच्छतु ॥ ७ ॥

हे महाराज ! अनन्तर वह दूत आपकी आज्ञासे द्रौपदीको शुद्ध सुवर्णके अनेक अलङ्कार देवे ॥ ७ ॥

तथा द्रुपदपुत्राणां सर्वेषां भरतर्षभ ।
पाण्डवानां च सर्वेषां कुन्त्या युक्तानि यानि च ॥ ८ ॥

इसी प्रकार, हे भरतश्रेष्ठ ! राजा पाञ्चालके सब पुत्रों, पाण्डवों और कुन्तीके योग्य वस्त्र गहने देवे ॥ ८ ॥

एवं सान्त्वसमायुक्तं द्रुपदं पाण्डवैः सह ।
उक्त्वाथानन्तरं ब्रूयात्तेषामागमनं प्रति ॥ ९ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार द्रुपद और पाण्डवोंको समझा कर अन्तमें उनसे हस्तिनापुरमें आने की बात कहें ॥ ९ ॥

अनुज्ञातेषु वीरेषु बलं गच्छतु शोभनम् ।
दुःशासनो विकर्णश्च पाण्डवानानयन्त्विह ॥ १० ॥

पाण्डवोंके द्रुपदसे आनेकी अनुमति पाने पर दुःशासन और विकर्ण अच्छी सेनादिके साथ उनको लिवा लावें ॥ १० ॥

ततस्ते पार्थिवश्रेष्ठ पूज्यमानाः सदा त्वया ।
प्रकृतीनामनुमते पदे स्थास्यन्ति पैतृके ॥ ११ ॥

तब पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंके राजधानीमें आजाने पर आपके द्वारा सत्कृत होकर प्रजाओंकी अनुमतिसे पैत्रिक पदपर आरूढ होवें ॥ ११ ॥

एवं तव महाराज तेषु पुत्रेषु चैव ह ।
वृत्तमौपयिकं मन्ये भीष्मेण सह भारत ॥ १२ ॥

महाराज ! मेरा और भीष्मका मत यह है, कि अपने पुत्ररूपी उन पाण्डवोंसे आपको ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये ॥ १२ ॥

कर्ण उवाच

योजितावर्थमानाभ्यां सर्वकार्येष्वनन्तरौ ।
न मन्त्रयेतां त्वच्छ्रेयः किमद्भुततरं ततः ॥ १३ ॥

कर्ण बोले— भीष्म और द्रोण यह आपहीके दिये हुए धन और मानसे बढे हैं, सब कार्योंमें आप इनकी सलाह लेते हैं, अतः इससे बढकर और क्या आश्चर्य होगा, कि यह आपको आपके कल्याणका परामर्श नहीं देते ? ॥ १३ ॥

दुष्टेन मनसा यो वै प्रच्छन्नेनान्तरात्मना ।
ब्रूयान्निःश्रेयसं नाम कथं कुर्यात्सतां मतम् ॥ १४ ॥

महाराज ! जो अपने हृदयमें दुर्भावको छिपाकर दुष्ट मनसे सलाह देता है, वह सज्जनोंके कल्याणकी सलाह कैसे दे सकता है ? ॥ १४ ॥

न मित्राण्यर्थकृच्छ्रेषु श्रेयसे वेतराय वा ।
विधिपूर्वं हि सर्वस्य दुःखं वा यदि वा सुखम् ॥ १५ ॥

पर ऐसा नहीं है, कि विपत्तिके आ पडने पर मित्र ही मङ्गल वा अमङ्गलके कारण बनते हैं, क्योंकि सुख हो या दुःख हो, सबकी जड भाग्य ही है ॥ १५ ॥

कृतप्रज्ञोऽकृतप्रज्ञो बालो वृद्धश्च मानवः ।
ससहायोऽसहायश्च सर्वं सर्वत्र विन्दति ॥ १६ ॥

विद्वान् और मूर्ख, बाल और वृद्ध, सहाय और असहाय, सब प्रकारके लोग सब स्थानोंमें सब वस्तु पाजाते हैं ॥ १६ ॥

श्रूयते हि पुरा कश्चिदम्बुवीच इति श्रुतः ।
आसीद्राजगृहे राजा मागधानां महीक्षिताम् ॥ १७ ॥

सुना है, कि पहिले राजगृह नामक राजधानीमें मगधदेशीय राजाओंके अधीश अम्बुवीच नामक एक पृथ्वीनाथ थे ॥ १७ ॥

स हीनः करणैः सर्वैरुच्छ्वासपरमो नृपः ।
अमात्यसंस्थः कार्येषु सर्वेष्वेवाभवत्तदा ॥ १८ ॥

राजकार्यमें उनकी जरा भी दृष्टि नहीं थी, वह इतना ही काम करते थे, कि श्वास खींचते और छोडते थे; इससे उनका सम्पूर्ण राजकार्य मंत्रियोंके हाथमें चला गया ॥ १८ ॥

तस्यामात्यो महाकार्णिर्बभूवैकेश्वरः पुरा ।
स लब्धबलमात्मानं मन्यमानोऽवमन्यते ॥ १९ ॥

महाकार्णिक नामक उनका मन्त्री पूरा अधिकार पाकर वा अपनेको बलयुक्त जानकर राजाका अनादर करने लगा ॥ १९ ॥

स राज्ञ उपभोग्यानि स्त्रियो रत्नधनानि च ।
आददे सर्वशो मूढ ऐश्वर्यं च स्वयं तदा ॥ २० ॥

उस मूर्ख मन्त्रीने राजाके द्वारा भोगने योग्य स्त्री, रत्न और धन सब ऐश्वर्य स्वयं ले लिया ॥ २० ॥

तदादाय च लुब्धस्य लोभाल्लोभो व्यवर्धत ।
तथा हि सर्वमादाय राज्यमस्य जिहीर्षति ॥ २१ ॥

यह सब लेकर उस लोभीका लोभ बढा; उसने राजाका सब कुछ लेकरके उसका राज्य भी हरना चाहा ॥ २१ ॥

हीनस्य करणैः सर्वैरुच्छ्वासपरमस्य च ।
यतमानोऽपि तद्राज्यं न शशाकेति नः श्रुतम् ॥ २२ ॥

पर हमने सुना है, कि वह मन्त्री अपने पूरे सामर्थ्यसे चेष्टा करने पर भी उस कार्यरहित श्वास मात्र लेते हुए राजाका राज्य नहीं हर सका ॥ २२ ॥

किमन्यद्विहितान्नूनं तस्य सा पुरुषेन्द्रता ।
यदि ते विहितं राज्यं भविष्यति विशां पते ॥ २३ ॥

भाग्यके विना कौनसा पुरुषार्थ था, कि जिससे राज्यकी रक्षा हुई ? हे महाराज ! यदि विधिने यह राज्य आपके लिये निश्चय कर दिया हो, तो आपके पास ही वह रहेगा ॥२३॥

मिषतः सर्वलोकस्य स्थास्यते त्वयि तद्ध्रुवम् ।
अतोऽन्यथा चेद्विहितं यतमानो न लप्स्यसे ॥ २४ ॥

और सब लोगोंके देखते देखते भी यह निश्चितरूपसे आपहींके हाथमें बना रहेगा । यदि भाग्यमें न हो, तो आप चेष्टा भी करें, तो भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे ॥ २४ ॥

एवं विद्वन्नुपादत्स्व मन्त्रिणां साध्वसाधुताम् ।
दुष्टानां चैव बोद्धव्यमदुष्टानां च भाषितम् ॥ २५ ॥

हे विद्वान् महाराज ! मन्त्रियोंमें कौन साधु हैं और कौन असाधु हैं इसका आप ही विचार कर लें और दुष्ट अदुष्ट जनोंके वचनको भी समझ लें ॥ २५ ॥

द्रोण उवाच

विद्म ते भावदोषेण यदर्थमिदमुच्यते ।
दुष्टः पाण्डवहेतोस्त्वं दोषं ख्यापयसे हि नः ॥ २६ ॥

द्रोण बोले– कर्ण ! मैं समझ गया, कि तुम्हारा हृदय दोषसे भरे रहने हीके कारण तुम ऐसा कहते हो, पाण्डवों पर तुम्हारा द्वेष होनेहीके कारण तुमने हम पर दोष लगाया है ॥ २६ ॥

हितं तु परमं कर्ण ब्रवीमि कुलवर्धनम् ।
अथ त्वं मन्यसे दुष्टं ब्रूहि यत्परमं हितम् ॥ २७ ॥

हे कर्ण ! पर मैंने जो कहा वह कुल बढानेवाला और परम हित करनेवाला है; यदि वह तुम्हारी समझमें बुरा जान पडे, तो जिससे परम हित हो सकता है वही कहो ॥ २७ ॥

अतोऽन्यथा चेत्क्रियते यद्ब्रवीमि परं हितम् ।
कुरवो विनशिष्यन्ति नचिरेणेति मे मतिः ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥ ६३२१ ॥

वास्तवमें मुझको निश्चय जान पडता है, कि यदि मेरे द्वारा कहे गए परम हितकारक वचनसे उलटा किया जाएगा, तो विना विलम्ब कौरवगण नष्ट हो जायेंगे ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ छियानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९६ ॥ ६३२१ ॥

: १९७ :

विदुर उवाच

राजन्निःसंशयं श्रेयो वाच्यस्त्वमसि बान्धवैः ।
न त्वशुश्रूषमाणेषु वाक्यं संप्रतितिष्ठति ॥ १ ॥

विदुर बोले– हे महाराज ! आपके बन्धु लोग निःसन्देह आपको हितवचन कह रहे हैं पर आप सुनना नहीं चाहते, अतः उनकी बात ठहर नहीं पाती ॥ १ ॥

हितं हि तव तद्वाक्यमुक्तवान्कुरुसत्तमः ।
भीष्मः शान्तनवो राजन्प्रतिगृह्णासि तन्न च ॥ २ ॥

हे महाराज ! कुरुश्रेष्ठ शान्तनुपुत्र भीष्मने जो प्रिय और हित वचन कहा आप उस पर ध्यान नहीं देते हैं ॥ २ ॥

तथा द्रोणेन बहुधा भाषितं हितमुत्तमम् ।
तच्च राधासुतः कर्णो मन्यते न हितं तव ॥ ३ ॥

आचार्य द्रोणने भी अनेक प्रकारसे हितकी बात कही, राधापुत्र कर्ण उसे आपके लिए हितकारी नहीं मानते ॥ ३ ॥

चिन्तयंश्च न पश्यामि राजंस्तव सुहृत्तमम् ।
आभ्यां पुरुषसिंहाभ्यां यो वा स्यात्प्रज्ञयाधिकः ॥ ४ ॥

हे महाराज ! मैं सोचकर भी नहीं जान पाता, कि भीष्म और द्रोणसे अधिक ज्ञानी और आपका परम मित्र और कौन हो सकता ? ॥ ४ ॥

इमौ हि वृद्धौ वयसा प्रज्ञया च श्रुतेन च ।
समौ च त्वयि राजेन्द्र तेषु पाण्डुसुतेषु च ॥ ५ ॥

वे दोनों बुद्धि, विद्या और अवस्थामें वृद्ध हैं । हे महाराज ! आपपर उनकी जैसी प्रीति है, पाण्डवों पर भी वैसी ही है ॥ ५ ॥

धर्मे चानवमौ राजन्सत्यतायां च भारत ।
रामाद्दाशरथेश्चैव गयाच्चैव न संशयः ॥ ६ ॥

हे भारतराज ! इसमें सन्देह नहीं, कि यह लोग धर्म और सत्यके विषयमें दशरथके पुत्र रामचन्द्र और गयसे भी श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

न चोक्तवन्तावश्रेयः पुरस्तादपि किंचन ।
न चाप्यपकृतं किंचिदनयोर्लक्ष्यते त्वयि ॥ ७ ॥

यह दीख ही नहीं पडता, कि इन्होंने पहिले भी कभी आपके लिए कोई अहित वाक्य कहा हो वा आपकी कोई हानि की हो ॥ ७ ॥

ताविमौ पुरुषव्याघ्रावनागसि नृप त्वयि ।
न मन्त्रयेतां त्वच्छ्रेयः कथं सत्यपराक्रमौ ॥ ८ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! आपने तो इन दोनों सत्य पराक्रमी और पुरुषश्रेष्ठोंका कोई अनिष्ट नहीं किया, तो फिर यह आपके लिये कल्याणदायी परामर्श क्यों न दें ? ॥ ८ ॥

प्रज्ञावन्तौ नरश्रेष्ठावस्मिँल्लोके नराधिप ।
त्वन्निमित्तमतो नेमौ किंचिज्जिह्मं वदिष्यतः ।
इति मे नैष्ठिकी बुद्धिर्वर्तते कुरुनन्दन ॥ ९ ॥

विशेष यह दोनों लोकमें ज्ञानी और पुरुषश्रेष्ठ हैं; अतः, हे राजन् ! यह आपके विषयमें कभी कुछ कुटिल वचन नहीं बोलेंगे । हे कुरुनन्दन ! यह मेरी निश्चित बुद्धि है ॥ ९ ॥

न चार्थहेतोर्धर्मज्ञौ वक्ष्यतः पक्षसंश्रितम् ।
एतद्धि परमं श्रेयो मेनाते तव भारत ॥ १० ॥

यह दो धर्मज्ञ पुरुष धनके लोभसे कभी पक्षपातकी बात नहीं कहेंगे; अतः, हे भारत ! इन्होंने जो कहा है, उसीमें ये दोनों तुम्हारा परमकल्याण मानते हैं ॥ १० ॥

दुर्योधनप्रभृतयः पुत्रा राजन्यथा तव ।
तथैव पाण्डवेयास्ते पुत्रा राजन्न संशयः ॥ ११ ॥

हे महाराज ! आपके लिये जिस प्रकार दुर्योधनादि पुत्र हैं, सन्देह नहीं, कि पाण्डव भी वैसे ही आपके पुत्र हैं ॥ ११ ॥

तेषु चेदहितं किंचिन्मन्त्रयेयुरबुद्धितः ।
मन्त्रिणस्ते न ते श्रेयः प्रपश्यन्ति विशेषतः ॥ १२ ॥

जो सब मन्त्री बुद्धिहीनतासे उन पाण्डवोंके अहितका परामर्श देते हैं, वे आपकी भलाई पर विशेष दृष्टि नहीं देते ॥ १२ ॥

अथ ते हृदये राजन्विशेषस्तेषु वर्तते ।
अन्तरस्थं विवृण्वानाः श्रेयः कुर्युर्न ते ध्रुवम् ॥ १३ ॥

हे राजन् ! यद्यपि आपके हृदयमें अपने पुत्रों पर विशेष प्रेम भी रहे; तो भी जो लोग उस हृदयस्थित भावको प्रकट करेंगे इसमें सन्देह नहीं, कि वे आपका अनिष्ट ही करेंगे ॥ १३ ॥

एतदर्थमिमौ राजन्महात्मानौ महाद्युती ।
नोचतुर्विवृतं किंचिन्न ह्येष तव निश्चयः ॥ १४ ॥

इसलिये इन दो महातेजस्वी महात्माओंने उस प्रकार स्पष्ट परामर्श नहीं दिया क्योंकि (पाण्डवोंके कल्याण करनेका) आपका निश्चय नहीं है ॥ १४ ॥

यच्चाप्यशक्यतां तेषामाहतुः पुरुषर्षभौ ।
तत्तथा पुरुषव्याघ्र तव तद्भद्रमस्तु ते ॥ १५ ॥

हे पुरुषव्याघ्र ! इन दोनोंने आपसे कहा है कि पाण्डव जीते नहीं जा सकेंगे वह झूठ नहीं है, हमारी यही इच्छा है, कि पाण्डवोंसे आपकी भलाई हो ॥ १५ ॥

कथं हि पाण्डवः श्रीमान्सव्यसाची परंतपः ।
शक्यो विजेतुं संग्रामे राजन्मघवता अपि ॥ १६ ॥

हे नरनाथ ! श्रीमान् सव्यसाची पाण्डव शत्रुनाशी अर्जुन युद्धमें इन्द्रसे भी किस प्रकार जीते जा सकते हैं ? ॥ १६ ॥

भीमसेनो महाबाहुर्नागायुतबलो महान् ।
कथं स्म युधि शक्येत विजेतुममरैरपि ॥ १७ ॥

रणभूमिमें दस हजार हाथियोंके बलसे युक्त महान् महाभुज भीमसेन देवगणके द्वारा कैसे जीते जा सकते हैं ? ॥ १७ ॥

तथैव कृतिनौ युद्धे यमौ यमसुताविव ।
कथं विषहितुं शक्यौ रणे जीवितुमिच्छता ॥ १८ ॥
रणस्थलमें किसी भी जीनेकी इच्छावाले मनुष्य द्वारा युद्धमें कुशल यमके पुत्रोंके समान जुडवें नकुल और सहदेव कैसे जीते जा सकते हैं? ॥ १८ ॥

यस्मिन्धृतिरनुक्रोशः क्षमा सत्यं पराक्रमः ।
नित्यानि पाण्डवश्रेष्ठे स जीयेत कथं रणे ॥ १९ ॥
जिस पुरुषमें धीरज, दया, क्षमा, सत्य और पराक्रम यह सब गुण सदा विराजमान हैं, वह पाण्डवोंके ज्येष्ठ युधिष्ठिर युद्धमें कैसे जीते जा सकते हैं? ॥ १९ ॥

येषां पक्षधरो रामो येषां मन्त्री जनार्दनः ।
किं नु तैरजितं संख्ये येषां पक्षे च सात्यकिः ॥ २० ॥
बलराम जिनके पक्षमें हैं, कृष्ण जिनके मन्त्री हैं और सात्यकि जिनके साथ हैं, वे युद्धमें कौनसी चीज नहीं जीत सकते ? ॥ २० ॥

द्रुपदः श्वशुरो येषां येषां श्यालाश्च पार्षताः ।
धृष्टद्युम्नमुखा वीरा भ्रातरो द्रुपदात्मजाः ॥ २१ ॥
राजा द्रुपद जिनके ससुर, द्रुपदके पुत्र वीर धृष्टद्युम्नादि भाई जिनके साले हैं, वे कैसे जीते जा सकते हैं? ॥ २१ ॥

सोऽशक्यतां च विज्ञाय तेषामग्रेण भारत ।
दायाद्यतां च धर्मेण सम्यक्तेषु समाचर ॥ २२ ॥
अतएव, हे भारत ! रणस्थलमें उनकी अजेयता और धर्मानुसार उनकी राज्याधिकारिताकी बातोंको ध्यानमें लाकर पहिले ही उनसे योग्य व्यवहार करें ॥ २२ ॥

इदं निर्दिग्धमयशः पुरोचनकृतं महत् ।
तेषामनुग्रहेणाद्य राजन्प्रक्षालयात्मनः ॥ २३ ॥
हे पृथ्वीपाल ! पुरोचनके द्वारा किया गया जो बडे कुयशका धब्बा आप पर लग गया है, आप आज पाण्डवों पर कृपा दिखाकर उसको धो डालें ॥ २३ ॥

द्रुपदोऽपि महान्राजा कृतवैरश्च नः पुरा ।
तस्य संग्रहणं राजन्स्वपक्षस्य विवर्धनम् ॥ २४ ॥
हे राजन् ! पाञ्चाल देशीय द्रुपद बहुत बडे राजा हैं और पहिलेसे उनसे हमारी शत्रुता है, अतः उनको मिला लेनेसे हमारा पक्ष बहुत बढ जाएगा ॥ २४ ॥

बलवन्तश्च दाशार्हा बहवश्च विशां पते ।
यतः कृष्णस्ततस्ते स्युर्यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ २५ ॥
हे नरनाथ ! दशार्ह देशीयगण बली और बहुत हैं और कृष्ण जिस ओर रहेंगे, वे भी उसी ओर रहेंगे; अतः जिस पक्षमें कृष्ण होंगे उसी पक्षकी जय होगी ॥ २५ ॥

यच्च साम्नैव शक्येत कार्यं साधयितुं नृप ।
को दैवशप्तस्तत्कर्तुं विग्रहेण समाचरेत् ॥ २६ ॥
जो कार्य सामके द्वारा भली प्रकार सिद्ध हो सकता है,दैवसे शप्त होकर कौन उसको युद्ध द्वारा सिद्ध करना चाहेगा ॥ २६ ॥

श्रुत्वा च जीवतः पार्थान्पौरजानपदो जनः ।
बलवद्दर्शने गृध्नुस्तेषां राजन्कुरु प्रियम् ॥ २७ ॥
हे महाराज ! नगर और जनपद्वासी सब जन पाण्डवोंको जीवित सुनकर उनकी भेंटके लिये उत्सुक हैं, अतः अवश्य ही उनका प्रिय करिए ॥ २७ ॥

दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ।
अधर्मयुक्ता दुष्प्रज्ञा बाला मैषां वचः कृथाः ॥ २८ ॥
दुर्योधन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि, यह अधार्मिक, दुष्ट बुद्धिके और बालक हैं, इनकी बात आप मत मानिए ॥ २८ ॥

उक्तमेतन्मया राजन्पुरा गुणवतस्तव ।
दुर्योधनापराधेन प्रजेयं विनशिष्यति ॥ २९ ॥
॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥ ६३५० ॥
हे राजन् ! मैंने पहिले भी गुणोंसे युक्त आपसे कहा था, कि दुर्योधनके दोषसे यह सब प्रजा नष्ट हो जाएगी ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ सत्तानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९७ ॥ ॥ ६३५० ॥

: १९८ :

धृतराष्ट्र उवाच

भीष्मः शान्तनवो विद्वान्द्रोणश्च भगवानृषिः ।
हितं परमकं वाक्यं त्वं च सत्यं ब्रवीषि माम् ॥ १ ॥
धृतराष्ट्र बोले– विद्वान् शान्तनुनन्दन भीष्म और भगवान् ऋषि द्रोणने जो कहा तथा तुम जो कहते हो, वह परमहित और सब सत्य है ॥ १ ॥

यथैव पाण्डोस्ते वीराः कुन्तीपुत्रा महारथाः ।
तथैव धर्मतः सर्वे मम पुत्रा न संशयः ॥ २ ॥

वे सब महारथी वीर कुन्तीनन्दन जिस प्रकार पाण्डुके पुत्र हैं, निःसन्देह वैसे ही धर्मानुसार मेरे भी पुत्र हैं ॥ २ ॥

यथैव मम पुत्राणामिदं राज्यं विधीयते ।
तथैव पाण्डुपुत्राणामिदं राज्यं न संशयः ॥ ३ ॥

मेरे पुत्र जिस प्रकार इस राज्यके अधिकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं, कि पाण्डुपुत्रोंका भी यह राज्य है ॥ ३ ॥

क्षत्तरानय गच्छैतान्सह मात्रा सुसत्कृतान् ।
तया च देवरूपिण्या कृष्णया सह भारत ॥ ४ ॥

हे क्षत्त ! जाओ, मातासहित पाण्डव और देवीरूपिणी कृष्णाको सत्कारके साथ लिवा लाओ ॥ ४ ॥

दिष्ट्या जीवन्ति ते पार्था दिष्ट्या जीवति सा पृथा ।
दिष्ट्या द्रुपदकन्यां च लब्धवन्तो महारथाः ॥ ५ ॥

मेरे सौभाग्यहीसे पाण्डव जीवित हैं, मेरे सौभाग्यहीसे कुन्ती जीवित है, महारथी पाण्डवोंका द्रौपदी लाभ करना भी मेरे सौभाग्यहीका फल है ॥ ५ ॥

दिष्ट्या वर्धामहे सर्वे दिष्ट्या शान्तः पुरोचनः ।
दिष्ट्या मम परं दुःखमपनीतं महाद्युते ॥ ६ ॥

हे महातेजस्वी ! बडे भाग्यहीसे हम सब बढ रहे हैं, सौभाग्यसे ही पुरोचन मर गया, सौभाग्यहीके कारण हमारा परम दुःख दूर हुआ है ॥ ६ ॥

वैशंपायन उवाच

ततो जगाम विदुरो धृतराष्ट्रस्य शासनात् ।
सकाशं यज्ञसेनस्य पाण्डवानां च भारत ॥ ७ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत ! इसके बाद विदुर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे राजा यज्ञसेन, द्रौपदी और पाण्डवोंके निकट गये ॥ ७ ॥

तत्र गत्वा स धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।
द्रुपदं न्यायतो राजन्संयुक्तमुपतस्थिवान् ॥ ८ ॥

हे राजन् ! उन सब शास्त्रोंमें पण्डित, धर्मके जानकार विदुरने यज्ञसेनके पास पहुंचकर यथायोग्य नमस्कार आलिङ्गन आदि किया ॥ ८ ॥

स चापि प्रतिजग्राह धर्मेण विदुरं ततः ।
चक्रतुश्च यथान्यायं कुशलप्रश्नसंविदम् ॥ ९ ॥

राजा यज्ञसेनने धर्मानुसार विदुरको सम्मानित किया । तदनन्तर वे दोनों विधिपूर्वक आपसमें कुशल क्षेम पूछने लगे ॥ ९ ॥

ददर्श पाण्डवांस्तत्र वासुदेवं च भारत ।
स्नेहात्परिष्वज्य स तान्पप्रच्छानामयं ततः ॥ १० ॥

हे भारत ! अति बुद्धिमान् विदुरने उस स्थानमें पाण्डव और वासुदेवको देखकर स्नेहसे हृदयसे लगाकर उनके स्वास्थ्यकी बात पूछी ॥ १० ॥

तैश्चाप्यमितबुद्धिः स पूजितोऽथ यथाक्रमम् ।
वचनाद्धृतराष्ट्रस्य स्नेहयुक्तं पुनः पुनः ॥ ११ ॥
पप्रच्छानामयं राजंस्ततस्तान्पाण्डुनन्दनान् ।
प्रददौ चापि रत्नानि विविधानि वसूनि च ॥ १२ ॥

तदनन्तर अत्यन्त बुद्धिमान् विदुर भी उनसे क्रमके अनुसार सत्कृत होकर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे स्नेहपूर्वक बार बार, हे राजन् ! उन पाण्डुपुत्रोंसे कुशल पूछने लगे और अनेक तरहके रत्न और धन उन्हें दिए ॥ ११-१२ ॥

पाण्डवानां च कुन्त्याश्च द्रौपद्याश्च विशां पते ।
द्रुपदस्य च पुत्राणां यथा दत्तानि कौरवैः ॥ १३ ॥

हे नरनाथ ! उन्होंने पाण्डव, कुन्ती, द्रौपदी और द्रुपदके पुत्रोंको यथोचित कौरवोंका भेजा धन दिया ॥ १३ ॥

प्रोवाच चामितमतिः प्रश्रितं विनयान्वितः ।
द्रुपदं पाण्डुपुत्राणां संनिधौ केशवस्य च ॥ १४ ॥

वह अमितबुद्धि विदुर विनयसे नम्र होकर पाण्डव और केशवके सन्मुख द्रुपदसे कहने लगे ॥ १४ ॥

राजञ्शृणु सहामात्यः सपुत्रश्च वचो मम ।
धृतराष्ट्रः सपुत्रस्त्वां सहामात्यः सबान्धवः ॥ १५ ॥
अब्रवीत्कुशलं राजन्प्रीयमाणः पुनः पुनः ।
प्रीतिमांस्ते दृढं चापि संबन्धेन नराधिप ॥ १६ ॥

हे महाराज ! आप मन्त्री और पुत्रोंके साथ मेरा वचन सुनें । राजा धृतराष्ट्रने मन्त्री, पुत्र और मित्रोंके साथ प्रसन्न होकर, हे राजन् ! बार बार आपका कुशल पूछा है । हे नरनाथ ! आपसे यह सम्बन्ध होनेसे वह बडे प्रसन्न हैं ॥ १५-१६ ॥

तथा भीष्मः शान्तनवः कौरवैः सह सर्वशः ।
कुशलं त्वां महाप्राज्ञः सर्वतः परिपृच्छति ॥ १७ ॥

बडे ज्ञानी शान्तनुनन्दन भीष्मने सम्पूर्ण कौरवोंके सहित सब प्रकारसे आपका स्वास्थ्य पूछा है ॥ १७ ॥

भारद्वाजो महेष्वासो द्रोणः प्रियसखस्तव ।
समाश्लेषमुपेत्य त्वां कुशलं परिपृच्छति ॥ १८ ॥

आपके प्रिय सखा बडे धनुर्धारी भारद्वाज द्रोणने आपको आलिंगन करके आपका कुशल पूछा है ॥ १८ ॥

धृतराष्ट्रश्च पाञ्चाल्य त्वया संबन्धमीयिवान् ।
कृतार्थं मन्यतेऽऽत्मानं तथा सर्वेऽपि कौरवाः ॥ १९ ॥

हे महाराज पाञ्चाल ! धृतराष्ट्र और सब कौरव आपसे सम्बन्ध प्राप्त कर अपनेको कृतार्थ मान रहे हैं ॥ १९ ॥

न तथा राज्यसंप्राप्तिस्तेषां प्रीतिकरी मता ।
यथा संबन्धकं प्राप्य यज्ञसेन त्वया सह ॥ २० ॥

हे यज्ञसेन ! अधिक क्या कहें, आपसे वैवाहिक सम्बन्ध प्राप्त करनेसे उनको जितनी प्रसन्नता हुई है संभवतः राज्य मिलनेसे भी उतनी प्रसन्नता नहीं हुई होगी ॥ २० ॥

एतद्विदित्वा तु भवान्प्रस्थापयतु पाण्डवान् ।
द्रष्टुं हि पाण्डुदायादांस्त्वरन्ते कुरवो भृशम् ॥ २१ ॥

आप यह समझकर पाण्डवोंको वहां भेज देवें ! कौरव लोग पाण्डवोंको देखनेके लिये बहुत व्यग्र हैं ॥ २१ ॥

विप्रोषिता दीर्घकालमिमे चापि नरर्षभाः ।
उत्सुका नगरं द्रष्टुं भविष्यन्ति पृथा तथा ॥ २२ ॥

यह नरश्रेष्ठ पाण्डव और पृथा बहुत कालसे राज्यसे बाहर हैं अतः वे भी नगर देखनेको बहुत उत्सुक होंगे ॥ २२ ॥

कृष्णामपि च पाञ्चालीं सर्वाः कुरुवरस्त्रियः ।
द्रष्टुकामाः प्रतीक्षन्ते पुरं च विषयं च नः ॥ २३ ॥

सब कौरवोंकी स्त्रियां और हमारे नगर तथा जनपदवासी सब पाञ्चाली कृष्णाको देखना चाहते हैं ॥ २३ ॥

स भवान्पाण्डुपुत्राणामाज्ञापयतु माचिरम् ।
गमनं सहदाराणामेतदागमनं मम ॥ २४ ॥

अतः आप पाण्डवोंको पत्नीके साथ वहां जानेकी आज्ञा दें, बिलम्ब न करें। इसी कार्यके लिए मेरा यहां आना हुआ है ॥ २४ ॥

विसृष्टेषु त्वया राजन्पाण्डवेषु महात्मसु ।
ततोऽहं प्रेषयिष्यामि धृतराष्ट्रस्य शीघ्रगान् ।
आगमिष्यन्ति कौन्तेयाः कुन्ती च सह कृष्णया ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥
॥ समाप्तं विदुरागमनपर्व ॥ ६३७५ ॥

हे महाराज! महात्मा पाण्डवोंको आपसे वहां जानेकी आज्ञा मिलेगी, तो मैं शीघ्र जानेवाले दूत द्वारा धृतराष्ट्रको यह समाचार दूंगा कि पाण्डव और कुन्ती कृष्णाको साथ लेके वहां आयेंगे ॥ २५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ अट्ठानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९८ ॥ विदुरागमनपर्व समाप्त ॥ ६३७५ ॥

: १९९ :

द्रुपद उवाच

एवमेतन्महाप्राज्ञ यथात्थ विदुराद्य माम् ।
ममापि परमो हर्षः संबन्धेऽस्मिन्कृते विभो ॥ १ ॥

राजा द्रुपद बोले– महाप्राज्ञ विदुर! आज आपने मुझसे जो कहा, वही ठीक है। हे विभो! इस वैवाहिक सम्बन्धसे मैं भी बडा प्रसन्न हूं ॥ १ ॥

गमनं चापि युक्तं स्याद्गृहमेषां महात्मनाम् ।
न तु तावन्मया युक्तमेतद्वक्तुं स्वयं गिरा ॥ २ ॥

अब इन महात्माओंका घर जाना ही सब प्रकारसे योग्य है; पर स्वयं अपनी वाणीसे उन्हें यह कहना मेरे लिये उचित नहीं है ॥ २ ॥

यदा तु मन्यते वीरः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भीमसेनार्जुनौ चैव यमौ च पुरुषर्षभौ ॥ ३ ॥

यदि वीर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और पुरुषश्रेष्ठ नकुल तथा सहदेव यहांसे जाना चाहें ॥ ३ ॥

रामकृष्णौ च धर्मज्ञौ तदा गच्छन्तु पाण्डवाः ।
एतौ हि पुरुषव्याघ्रावेषां प्रियहिते रतौ ॥ ४ ॥

और धर्मज्ञ राम तथा कृष्ण आज्ञा दें, तो पाण्डव जा सकते हैं; क्योंकि यह पुरुषव्याघ्र राम और कृष्ण सदा इनका प्रिय करने और हित करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

परवन्तो वयं राजंस्त्वयि सर्वे सहानुगाः ।
यथा वक्ष्यसि नः प्रीत्या करिष्यामस्तथा वयम् ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर बोले— महाराज ! अब मैं भाइयोंके साथ आपके अधीन हूं, आप प्रसन्न होकर हमको जो कहेंगे, वही हम करेंगे ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततोऽब्रवीद्वासुदेवो गमनं मम रोचते ।
यथा वा मन्यते राजा द्रुपदः सर्वधर्मवित् ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले— तब वासुदेवने कहा कि अब इन पाण्डवोंका जाना ही मुझे पसन्द है । अथवा सब धर्मोंके जानकार राजा द्रुपदका जो विचार हो, वही उचित है ॥ ६ ॥

द्रुपद उवाच

यथैव मन्यते वीरो दाशार्हः पुरुषोत्तमः ।
प्राप्तकालं महाबाहुः सा बुद्धिर्निश्चिता मम ॥ ७ ॥

द्रुपद बोले— इस कालके अनुसार महाभुज पुरुषोत्तम वीर दशार्हने जैसा विचार किया मेरी समझमें वही ठीक है ॥ ७ ॥

यथैव हि महाभागाः कौन्तेया मम सांप्रतम् ।
तथैव वासुदेवस्य पाण्डुपुत्रा न संशयः ॥ ८ ॥

अब महाभाग पाण्डव जैसे मेरे स्नेहके पात्र हैं, वैसे ही इसमें सन्देह नहीं है, कि पुरुषश्रेष्ठ वासुदेवके भी स्नेहके पात्र हैं ॥ ८ ॥

न तद्ध्यायति कौन्तेयो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यदेषां पुरुषव्याघ्रः श्रेयो ध्यायति केशवः ॥ ९ ॥

केशव जैसे इन पाण्डवोंकी मङ्गलचिन्ता करते हैं, संभवतः कुंतीनन्दन युधिष्ठिर भी वैसी चिन्ता नहीं करते होंगे ॥ ९ ॥

वैशंपायन उवाच

ततस्ते समनुज्ञाता द्रुपदेन महात्मना ।
पाण्डवाश्चैव कृष्णश्च विदुरश्च महामतिः ॥ १० ॥
आदाय द्रौपदीं कृष्णां कुन्तीं चैव यशस्विनीम् ।
सविहारं सुखं जग्मुर्नगरं नागसाह्वयम् ॥ ११ ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर पाण्डव, कृष्ण और महामति विदुर महात्मा द्रुपदकी आज्ञा पाकर परम सुखसे विहार करते हुए यशस्विनी कुन्ती और द्रौपदीको साथमें लेकर हस्तिनापुरको गए ॥ १०–११ ॥

श्रुत्वा चोपस्थितान्वीरान्धृतराष्ट्रोऽपि कौरवः ।
प्रतिग्रहाय पाण्डूनां प्रेषयामास कौरवान् ॥ १२ ॥
विकर्णं च महेष्वासं चित्रसेनं च भारत ।
द्रोणं च परमेष्वासं गौतमं कृपमेव च ॥ १३ ॥

हे भारत ! कुरुवंशी धृतराष्ट्रने वीर पाण्डवोंके शुभागमनका समाचार सुनकर उनको लिवा लानेके लिये बडे धनुर्धारी विकर्ण, चित्रसेन, धनुष धरनेवालोंमें श्रेष्ठ द्रोण और गौतम कृप इन सब कौरव पक्षके लोगोंको भेजा ॥ १२–१३ ॥

तैस्ते परिवृता वीराः शोभमाना महारथाः ।
नगरं हास्तिनपुरं शनैः प्रविविशुस्तदा ॥ १४ ॥

महारथी वीर पाण्डव उनसे घिरे हुए शोभित होते हुए धीरे धीरे हस्तिनापुर नगरमें प्रविष्ट हुए ॥ १४ ॥

कौतूहलेन नगरं दीर्यमाणमिवाभवत् ।
यत्र ते पुरुषव्याघ्राः शोकदुःखविनाशनाः ॥ १५ ॥

तब वह नगर नगरवालोंके कुतूहलसे मानों फटने लगा। और पुरुषव्याघ्र पाण्डवोंने पुरवासियोंके शोक दुःखको दूर किया ॥ १५ ॥

तत उच्चावचा वाचः प्रियाः प्रियचिकीर्षुभिः ।
उदीरिता अशृण्वंस्ते पाण्डवा हृदयंगमाः ॥ १६ ॥

तब उनके प्रिय चाहनेवाले पुरवासियोंके द्वारा कहे जाते हुए भांति भांतिके प्रिय और हृदयको आनन्द देनेवाले वचन पांडवोंने सुने ॥ १६ ॥

अयं स पुरुषव्याघ्रः पुनरायाति धर्मवित् ।
यो नः स्वानिव दायादान्धर्मेण परिरक्षति ॥ १७ ॥

यह वही धर्मज्ञ पुरुषव्याघ्र फिर आ रहे हैं, कि जो अपने परिवारोंकी भांति हमारी रक्षा करते थे ॥ १७ ॥

अद्य पाण्डुर्महाराजो वनादिव वनप्रियः ।
आगतः प्रियमस्माकं चिकीर्षुर्नात्र संशयः ॥ १८ ॥

इसमें कोई संशय नहीं है कि आज सब वनोंके प्यारे महाराज पाण्डु ही हमारे प्रिय करनेकी इच्छासे वनसे लौट आये हैं ॥ १८ ॥

किं नु नाद्य कृतं तावत्सर्वेषां नः परं प्रियम् ।
यन्नः कुन्तीसुता वीरा भर्तारः पुनरागताः ॥ १९ ॥

आज हमारे पोषक वीर कुन्तीपुत्रगण फिर आ गए हैं, इस प्रकार क्या उन्होंने हम सबका प्रिय नहीं किया ? ॥ १९ ॥

यदि दत्तं यदि हुतं विद्यते यदि नस्तपः ।
तेन तिष्ठन्तु नगरे पाण्डवाः शरदां शतम् ॥ २० ॥

यदि हमने दान वा हवन किया हो अथवा यदि हमारा बटोरा हुआ तप हो, तो उसके बलसे पाण्डव लोग इस नगरमें सैंकडों वर्ष रहें ॥ २० ॥

ततस्ते धृतराष्ट्रस्य भीष्मस्य च महात्मनः ।
अन्येषां च तदर्हाणां चक्रुः पादाभिवन्दनम् ॥ २१ ॥

तदनन्तर पाण्डवोंने धृतराष्ट्र, महात्मा भीष्म और दूसरे योग्य गुरुजनोंके पांव छुए ॥२१॥

कृत्वा तु कुशलप्रश्नं सर्वेण नगरेण ते ।
समाविशन्त वेश्मानि धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ २२ ॥

सब नगरवालोंकी कुशल पूछ कर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे वे राज-मन्दिरमें प्रविष्ट हुए ॥ २२ ॥

विश्रान्तास्ते महात्मानः कंचित्कालं महाबलाः ।
आहूता धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च ॥ २३ ॥

महात्मा महाबली पाण्डवोंके कुछ कालतक विश्राम करनेके बाद राजा धृतराष्ट्र और शान्तनु-पुत्र भीष्मने उनको बुलवाया ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

भ्रातृभिः सह कौन्तेय निबोधेदं वचो मम ।
पुनर्वो विग्रहो मा भूत्खाण्डवप्रस्थमाविश ॥ २४ ॥

उनके वहां जानेपर धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे कहा– हे कुन्तीपुत्र ! मैं जो कहूं, भाइयोंके साथ सुनो; तुममें और कौरवोंमें फिर झगडा न हो, इसलिए तुम खाण्डवप्रस्थमें जाकर रहो ॥२४॥

न च वो वसतस्तत्र कश्चिच्छक्तः प्रबाधितुम् ।
संरक्ष्यमाणान्पार्थेन त्रिदशानिव वज्रिणा ।
अर्धं राज्यस्य संप्राप्य खाण्डवप्रस्थमाविश ॥ २५ ॥

इन्द्रसे देवोंके समान अर्जुनसे रक्षित होकर तुम्हारे वहां रहते हुए तुम्हें कोई पीडा नहीं दे सकता, अतः तुम राज्यका आधा भाग लेकर खाण्डवप्रस्थमें रहो ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच

प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं नृपं सर्वे प्रणम्य च ।
प्रतस्थिरे ततो घोरं वनं तन्मनुजर्षभाः ।
अर्धं राज्यस्य संप्राप्य खाण्डवप्रस्थमाविशन् ॥ २६ ॥

वैशम्पायन बोले– मनुष्यश्रेष्ठ पाण्डवोंने राजा धृतराष्ट्रकी बात मानकर राज्यका आधा भाग पाकर उनके पांव छूकर घने वनमें जाकर खाण्डवप्रस्थमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥

ततस्ते पाण्डवास्तत्र गत्वा कृष्णपुरोगमाः ।
मण्डयांचक्रिरे तद्वै पुरं स्वर्गवदच्युताः ॥ २७ ॥

उन अच्युत पुरुषोंने कृष्णके साथ वहां पहुंच कर उस पुरको देवलोककी भांति सजा दिया ॥ २७ ॥

ततः पुण्ये शिवे देशे शान्तिं कृत्वा महारथाः ।
नगरं मापयामासुर्द्वैपायनपुरोगमाः ॥ २८ ॥

महारथी पाण्डवोंने कृष्णद्वैपायनके साथ शुभ पुण्यस्थानमें शान्ति–कार्य करवाकर भली प्रकारसे नगरको नपवाया ॥ २८ ॥

सागरप्रतिरूपाभिः परिखाभिरलंकृतम् ।
प्राकारेण च संपन्नं दिवमावृत्य तिष्ठता ॥ २९ ॥

वह नगर सागरके समान बडी बडी खाइयों और द्युलोकको भी घेरकर खडे हुए परकोटेसे युक्त हो गया ॥ २९ ॥

पाण्डुराभ्रप्रकाशेन हिमराशिनिभेन च ।
शुशुभे तत्पुरश्रेष्ठं नागैर्भोगवती यथा ॥ ३० ॥

और बर्फके समूह तथा सफेद बादलके समान शुभ्र भवनोंकी कतारसे वह नगर ऐसी शोभा पाने लगा, कि जैसे भोगवती नगरी सर्पोंसे सुशोभित होती है ॥ ३० ॥

द्विपक्षगरुडप्रख्यैर्द्वारैर्घोरप्रदर्शनैः ।
गुप्तमभ्रचयप्रख्यैर्गोपुरैर्मन्दरोपमैः ॥ ३१ ॥

दो दो भयंकर किवाडोंके कारण दो पंखोंवाले गरुडके समान दीखनेवाले, बादलोंके समान शुभ्र, मन्दराचलके समान ऊंचे गोपुरों अर्थात् मकानोंसे वह नगर शोभा पाने लगा ॥३१॥

विविधैरतिनिर्विद्धैः शस्त्रोपेतैः सुसंवृतैः ।
शक्तिभिश्चावृतं तद्धि द्विजिह्वैरिव पन्नगैः ।
तल्पैश्चाभ्यासिकैर्युक्तं शुशुभे योधरक्षितम् ॥ ३२ ॥

भली प्रकार संवृत्त, अस्त्रयुक्त, भेदनेके अयोग्य स्थान स्थानमें दो जीभवाले सर्पोंके समान विषैले शक्ति नामक अस्त्रोंसे घिरी, अस्त्र शिक्षाके लिये बडे बडे भवनोंसे सुशोभित, योधाओंसे रक्षित वह नगरी शोभित हुई ॥ ३२ ॥

तीक्ष्णाङ्कुशशतघ्नीभिर्यन्त्रजालैश्च शोभितम् ।
आयसैश्च महाचक्रैः शुशुभे तत्पुरोत्तमम् ॥ ३३ ॥

तेज अङ्कुश, शतघ्नी नामक अस्त्रयुक्त, यन्त्रजाल और लोहेके बडे बडे चक्रोंसे वह उत्तम पुरी सुशोभित हुई ॥ ३३ ॥

सुविभक्तमहारथ्यं देवताबाधवर्जितम् ।
विरोचमानं विविधैः पाण्डुरैर्भवनोत्तमैः ॥ ३४ ॥

उसके पथ चौडे और बडे तथा अच्छी तरह बंटे हुए थे, तथा दैवी बाधाओंके भयसे रहित थे। शुभ रंगके भांति भांतिके अच्छे अच्छे भवनोंकी कतारोंसे वह नगर युक्त था ॥ ३४ ॥

तत्त्रिविष्टपसंकाशमिन्द्रप्रस्थं व्यरोचत ।
मेघवृन्दमिवाकाशे वृद्धं विद्युत्समावृतम् ॥ ३५ ॥

आकाश मण्डलमें चमकती हुई बिजलीसे सम्पन्न बादलके समान सुशोभित वह इन्द्रप्रस्थ अमरोंकी पुरीके समान शोभायमान था ॥ ३५ ॥

तत्र रम्ये शुभे देशे कौरव्यस्य निवेशनम् ।
शुशुभे धनसंपूर्णं धनाध्यक्षक्षयोपमम् ॥ ३६ ॥

ऐसे नगरके सुन्दर शुभ स्थानमें धनसे भरा हुआ पाण्डवोंका महल कुबेरके महलके समान सुशोभित हुआ ॥ ३६ ॥

तत्रागच्छन्द्विजा राजन्सर्ववेदविदां वराः ।
निवासं रोचयन्ति स्म सर्वभाषाविदस्तथा ॥ ३७ ॥

हे महाराज ! तदनन्तर देश देशकी भाषा जाननेवाले और सब वेदोंके जानकार ब्राह्मणोंने आकर उस स्थानमें रहना पसन्द किया ॥ ३७ ॥

वणिजश्चाभ्ययुस्तत्र देशे दिग्भ्यो धनार्थिनः ।
सर्वशिल्पविदश्चैव वासायाभ्यागमंस्तदा ॥ ३८ ॥

वणिक् लोग धनार्जनकी अभिलाषासे नाना दिशाओंसे उस देशमें आने लगे । अनेक प्रकारके शिल्प विज्ञान जाननेवाले भी वहां रहनेके लिए आने लगे ॥ ३८ ॥

उद्यानानि च रम्याणि नगरस्य समन्ततः ।
आम्रैराम्रातकैर्नीपैरशोकैश्चम्पकैस्तथा ॥ ३९ ॥

नगरके चारों ओर सुन्दर सुन्दर बाग, आम, आम्रातक, कदम्ब, अशोक और चम्पा ॥ ३९ ॥

पुंनागैर्नागपुष्पैश्च लकुचैः पनसैस्तथा ।
शालतालकदम्बैश्च बकुलैश्च सकेतकैः ॥ ४० ॥

पुन्नाग, नागकेशर, लकुच और पनस, शाल, ताल, कदम्ब, बकुल, केतक ॥ ४० ॥

मनोहरैः पुष्पितैश्च फलभारावनामितैः ।
प्राचीनामलकैर्लोध्रैरङ्कोलैश्च सुपुष्पितैः ॥ ४१ ॥

मनोहर फूलों और फलके भारसे नम्र प्राचीन आमलक, लोध्र, सुन्दर फूलोंसे युक्त अंकोल ॥ ४१ ॥

जम्बूभिः पाटलाभिश्च कुब्जकैरतिमुक्तकैः ।
करवीरैः पारिजातैरन्यैश्च विविधैर्द्रुमैः ॥ ४२ ॥

जम्बु, पाटल, माधवी-लताकुञ्ज, करवीर और पारिजात तथा दूसरे नाना पौधोंसे युक्त ॥ ४२ ॥

नित्यपुष्पफलोपेतैर्नानाद्विजगणायुतम् ।
मत्तबर्हिणसंघुष्टं कोकिलैश्च सदामदैः ॥ ४३ ॥

और दूसरे नित्य फूल फलवाले भांति भांतिके वृक्षोंसे युक्त ये बाग अनेक प्रकारके पक्षी, उन्मत्त मयूरदल और उमङ्गसे कूकती हुई कोयलसे युक्त थे ॥ ४३ ॥

गृहैरादर्शविमलैर्विविधैश्च लतागृहैः ।
मनोहरैश्चित्रगृहैस्तथा जगतिपर्वतैः ।
वापीभिर्विविधाभिश्च पूर्णाभिः परमाम्भसा ॥ ४४ ॥

और अनेक प्रकारके दर्पणके सदृश निर्मल गृह, भांति भांतिके लतागृह, सुहावने चित्रगृह, क्रीडार्थ मिट्टीके कृत्रिम पहाड, जलसे पूरी तरह भरी हुई अनेक तरहकी बावडियोंसे ॥ ४४ ॥

सरोभिरतिरम्यैश्च पद्मोत्पलसुगन्धिभिः ।
हंसकारण्डवयुतैश्चक्रवाकोपशोभितैः ॥ ४५ ॥

कमलकी पंखुडियोंसे सुगंधित अति सुन्दर तालाब, हंस, कारण्डव और चकवोंसे सुहावने ॥ ४५ ॥

रम्याश्च विविधास्तत्र पुष्करिण्यो वनावृताः ।
तडागानि च रम्याणि बृहन्ति च महान्ति च ॥ ४६ ॥

वनसे घिरे, भांति भांतिके सुन्दर ताल और बडे बडे सुन्दर तडागोंसे वह नगरी सुशोभित थी ॥ ४६ ॥

तेषां पुण्यजनोपेतं राष्ट्रमावसतां महत् ।
पाण्डवानां महाराज शश्वत्प्रीतिरवर्धत ॥ ४७ ॥

महाराज ! उस पुण्यशील जनोंसे पूरित महान् प्रदेशमें जाकर रहनेवाले पाण्डवोंका आनन्द दिन पर दिन बढने लगा ॥ ४७ ॥

तत्र भीष्मेण राज्ञा च धर्मप्रणयने कृते ।
पाण्डवाः समपद्यन्त खाण्डवप्रस्थवासिनः ॥ ४८ ॥

राजा धृतराष्ट्र और भीष्मके पाण्डवोंके लिये उस प्रकार धर्मकी व्यवस्था कर देनेपर पाण्डव खाण्डवप्रस्थमें रहकर आनान्दित हुए ॥ ४८ ॥

पञ्चभिस्तैर्महेष्वासैरिन्द्रकल्पैः समन्वितम् ।
शुशुभे तत्पुरश्रेष्ठं नागैर्भोगवती यथा ॥ ४९ ॥

भोगवती नगरी जिस प्रकार नागोंसे शोभित होती है, वैसे ही वह नगर महाधनुर्धारी, इन्द्रके समान पञ्च पाण्डवोंसे अच्छी शोभा पाने लगा ॥ ४९ ॥

तान्निवेश्य ततो वीरो रामेण सह केशवः ।
ययौ द्वारवतीं राजन्पाण्डवानुमते तदा ॥ ५० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनद्विशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥ समाप्तं राज्यलम्भपर्व ॥६४२५॥

हे महाराज ! बलदेवके साथ वीर श्रीकृष्ण इस प्रकारसे पाण्डवोंको राज्यपर बैठाकर उनकी सम्मतिसे द्वारकाको गये ॥ ५० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ निन्यानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९९ ॥
॥ राज्यप्राप्तिका पर्व समाप्त ॥ ६४२५ ॥

: २०० :

जनमेजय उवाच

एवं संप्राप्य राज्यं तदिन्द्रप्रस्थे तपोधन ।
अत ऊर्ध्वं महात्मानः किमकुर्वन्त पाण्डवाः ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– हे तपोधन ! इसके बाद इस प्रकार उस इन्द्रप्रस्थ राज्यको प्राप्त कर महात्मा पाण्डवोंने क्या किया ? ॥ १ ॥

सर्व एव महात्मानः पूर्वे मम पितामहाः ।
द्रौपदी धर्मपत्नी च कथं तानन्ववर्तत ॥ २ ॥

मेरे परदादे सभी महात्मा थे, अतः उनकी भार्या द्रौपदी उन सबके साथ कैसे रहती थी ? ॥२॥

कथं वा पञ्च कृष्णायामेकस्यां ते नराधिपाः ।
वर्तमाना महाभागा नाभिद्यन्त परस्परम् ॥ ३ ॥

ये महाभाग पांचों भूपति एक द्रौपदीमें कैसे रह रहते थे; फिर उसपर भी उन पांचोंमें आपसका झगडा नहीं होता था, इसका क्या कारण है ? ॥ ३ ॥

श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वं विस्तरेण तपोधन ।
तेषां चेष्टितमन्योन्यं युक्तानां कृष्णया तया ॥ ४ ॥

हे तपोधन ! कृष्णासे मिलते हुए उन महात्माओंने आपसमें कैसा व्यवहार किया था ? यह सब विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूं ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच

धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञाताः कृष्णया सह पाण्डवाः ।
रेमिरे पुरुषव्याघ्राः प्राप्तराज्याः परंतपाः ॥ ५ ॥

वैशम्पायन बोले— शत्रुको मथनेहारे पुरुषसिंह पाण्डव धृतराष्ट्रकी आज्ञासे राज्य प्राप्त कर खाण्डवप्रस्थमें कृष्णाके साथ रमने लगे ॥ ५ ॥

प्राप्य राज्यं महातेजाः सत्यसन्धो युधिष्ठिरः ।
पालयामास धर्मेण पृथिवीं भ्रातृभिः सह ॥ ६ ॥

बडे तेजस्वी सत्यशील युधिष्ठिर राज्य पाकर भाईयोंके साथ धर्मके अनुसार प्रजा पालने लगे ॥ ६ ॥

जितारयो महाप्राज्ञाः सत्यधर्मपरायणाः ।
मुदं परमिकां प्राप्तास्तत्रोषुः पाण्डुनन्दनाः ॥ ७ ॥

शत्रुविनाशी, महाप्राज्ञ, सत्यधर्मशील पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डवगण बडे आनन्दसे उस स्थानमें रहने लगे ॥ ७ ॥

कुर्वाणाः पौरकार्याणि सर्वाणि पुरुषर्षभाः ।
आसांचक्रुर्महार्हेषु पार्थिवेष्वासनेषु च ॥ ८ ॥

वे पुरुषश्रेष्ठ नगरकी सब तरहकी देखभाल करते हुए महामूल्यवान् राज सिंहासनों पर बैठते थे ॥ ८ ॥

अथ तेषूपविष्टेषु सर्वेष्वेव महात्मसु ।
नारदस्त्वथ देवर्षिराजगाम यदृच्छया ।
आसनं रुचिरं तस्मै प्रददौ स्वं युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥

एक दिन वे सब महात्मा बैठे थे, कि ऐसे समयमें देवर्षि नारद अपनी इच्छासे वहां आ पहुंचे । बुद्धिमान् युधिष्ठिरने ऋषिको आते देखकर अपना सुन्दर आसन दे दिया ॥ ९ ॥

देवर्षेरुपविष्टस्य स्वयमर्घ्यं यथाविधि ।
प्रादाद्युधिष्ठिरो धीमान्राज्यं चास्मै न्यवेदयत् ॥ १० ॥

तदनन्तर देवर्षिके बैठने पर युधिष्ठिरने उनको विधिपूर्वक अर्घ देकर सम्पूर्ण राजकार्यकी बातें कह सुनायीं ॥ १० ॥

प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषिः प्रीतमनाभवत् ।
आशीर्भिर्वर्धयित्वा च तमुवाचास्यतामिति ॥ ११ ॥

ऋषि पूजा लेकर प्रसन्न मनवाले हो गए और उनको आशीर्वादोंसे बढाकर बैठनेके लिए कहा ॥ ११ ॥

निषसादाभ्यनुज्ञातस्ततो राजा युधिष्ठिरः ।
प्रेषयामास कृष्णायै भगवन्तमुपस्थितम् ॥ १२ ॥

तब राजा युधिष्ठिर मुनिकी आज्ञासे बैठ गये और कृष्णाके पास देवर्षिके आनेका समाचार भिजवाया ॥ १२ ॥

श्रुत्वैव द्रौपदी चापि शुचिर्भूत्वा समाहिता ।
जगाम तत्र यत्रास्ते नारदः पाण्डवैः सह ॥ १३ ॥

द्रौपदी भी वह बात सुनते ही शुचि और समाहित होकर उस स्थान पर गयी जहां देवर्षि पाण्डवोंके साथ बैठे हुए थे ॥ १३ ॥

तस्याभिवाद्य चरणौ देवर्षेर्धर्मचारिणी ।
कृताञ्जलिः सुसंवीता स्थिताथ द्रुपदात्मजा ॥ १४ ॥

धर्मचारिणी कृष्णा देवर्षिके पांवोंको छूकर हाथ जोडकर तथा शरीरके चारों ओर अच्छी तरहसे वस्त्र लपेट कर खडी हो गई ॥ १४ ॥

तस्याश्चापि स धर्मात्मा सत्यवागृषिसत्तमः ।
आशिषो विविधाः प्रोच्य राजपुत्र्यास्तु नारदः ।
गम्यतामिति होवाच भगवांस्तामनिन्दिताम् ॥ १५ ॥

भगवान् धर्मात्मा सत्यवादी ऋषिश्रेष्ठ नारदने अनिन्दिता उस राजकन्याको अनेक अशीस देकर जानेकी आज्ञा दी ॥ १५ ॥

गतायामथ कृष्णायां युधिष्ठिरपुरोगमान् ।
विविक्ते पाण्डवान्सर्वानुवाच भगवानृषिः ॥ १६ ॥

तदनन्तर द्रौपदीके चले जाने पर भगवान् देवर्षि युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंसे एकान्तमें बोले ॥ १६ ॥

पाञ्चाली भवतामेका धर्मपत्नी यशस्विनी।
यथा वो नात्र भेदः स्यात्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ १७ ॥

यशस्विनी द्रौपदी अकेली तुम सबकी धर्मपत्नी है; ऐसी दशामें तुम भाइयोंमें बिगाड न हो ऐसा कोई नियम करो ॥ १७ ॥

सुन्दोपसुन्दावसुरौ भ्रातरौ सहिताबुभौ।
आस्तामवध्यावन्येषां त्रिषु लोकेषु विश्रुतौ ॥ १८ ॥

पूर्वकालमें सुन्द और उपसुन्द नामक दो भाई एकत्र रहते थे। दूसरोंसे वधके अयोग्य और तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थे ॥ १८ ॥

एकराज्यावेकगृहावेकशय्यासनाशनौ।
तिलोत्तमायास्तौ हेतोरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १९ ॥

उनका एक राज्य, एक गृह, एक सेज, एक भोजनस्थान था। उनमें सदा ऐसी मित्रता बनी रहने पर भी तिलोत्तमाके लिये उन्होंने एक दूसरेको मार डाला ॥ १९ ॥

रक्ष्यतां सौहृदं तस्मादन्योन्यप्रतिभाविकम्।
यथा वो नात्र भेदः स्यात्तत्कुरुष्व युधिष्ठिर ॥ २० ॥

अतः, हे युधिष्ठिर! तुम आपसकी प्रीति बढानेवाले भ्रातृप्रेमको बनाये रखो। यह प्रयत्न करो, कि तुममें भ्रातृभेद न होने पावे ॥ २० ॥

युधिष्ठिर उवाच

सुन्दोपसुन्दावसुरौ कस्य पुत्रौ महामुने।
उत्पन्नश्च कथं भेदः कथं चान्योन्यमघ्नताम् ॥ २१ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे महामुने! सुन्द और उपसुन्द किसके पुत्र थे? उनमें आपसमें क्यों भेद हो गया? और क्यों उन्होंने एक दूसरेको मार डाला? ॥ २१ ॥

अप्सरा देवकन्या वा कस्य चैषा तिलोत्तमा।
यस्याः कामेन संमत्तौ जघ्नतुस्तौ परस्परम् ॥ २२ ॥

और जिस नारीकी इच्छा करते हुए मत्त होकर उन्होंने एक दूसरेको मार डाला, वह तिलोत्तमा किसकी कन्या थी? वह बाला अप्सरा थी या देवकन्या? ॥ २२ ॥

एतत्सर्वं यथावृत्तं विस्तरेण तपोधन।
श्रोतुमिच्छामहे विप्र परं कौतूहलं हि नः ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥ ६४४८ ॥

हे विप्र! यह सब विस्तारपूर्वक आद्योपांत सुनना चाहते हैं। हे तपोधन! यह सुननेकी हमारी बडी इच्छा है ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौवां अध्याय समाप्त ॥ २०० ॥ ६४४८ ॥

: २०१ :

नारद उवाच

श्रृणु मे विस्तरेणेममितिहासं पुरातनम् ।
भ्रातृभिः सहितः पार्थ यथावृत्तं युधिष्ठिर ॥ १ ॥

नारद बोले– हे पृथापुत्र युधिष्ठिर ! भाइयोंके साथ तुम इस प्राचीन इतिहासको ठीक ठीक और विस्तारपूर्वक मुझसे सुनो ॥ १ ॥

महासुरस्यान्ववाये हिरण्यकशिपोः पुरा ।
निकुम्भो नाम दैत्येन्द्रस्तेजस्वी बलवानभूत् ॥ २ ॥

पूर्वकालमें महासुर हिरण्यकशिपुके वंशमें निकुम्भ नामक बली तेजस्वी एक दैत्यवरने जन्म लिया था ॥ २ ॥

तस्य पुत्रौ महावीर्यौ जातौ भीमपराक्रमौ ।
सहोन्योन्येन भुञ्जाते विनान्योन्यं न गच्छतः ॥ ३ ॥

उसके बडे पराक्रमी, बडे वीर्यवान् दो पुत्र पैदा हुए । उनमें इतनी प्रीति थी कि वे एक साथ बैठकर ही भोजन करते थे और एक दूसरेके बिना कहीं आते जाते नहीं थे ॥ ३ ॥

अन्योन्यस्य प्रियकरावन्योन्यस्य प्रियंवदौ ।
एकशीलसमाचारौ द्विधैवैकं यथा कृतौ ॥ ४ ॥

दोनों एक दूसरेसे प्यारी बोली बोलते और एक दूसरेका प्रिय कार्य करते थे; उन दो भाइयोंके स्वभाव और व्यवहारमें भेद न रहनेके कारण जान पडता था, कि मानों एक ही मनुष्य दो भागोंमें बंट गया है ॥ ४ ॥

तौ विवृद्धौ महावीर्यौ कार्येष्वप्येकनिश्चयौ ।
त्रैलोक्यविजयार्थाय समास्थायैकनिश्चयम् ॥ ५ ॥
कृत्वा दीक्षां गतौ विन्ध्यं तत्रोग्रं तेपतुस्तपः ।
तौ तु दीर्घेण कालेन तपोयुक्तौ बभूवतुः ॥ ६ ॥

हर काममें एक बुद्धि रखनेवाले वे दो बडे वीर्यवान् भाई बडे हुए और वे तीनों लोक जीतनेका निश्चय कर विंध्य पर्वत पर जाकर दीक्षित और समाहित होकर कठोर तप करने लगे और दीर्घकालके बाद वे दोनों तपसे युक्त हुए ॥ ५–६ ॥

क्षुत्पिपासापरिश्रान्तौ जटावल्कलधारिणौ ।
मलोपचितसर्वाङ्गौ वायुभक्षौ बभूवतुः ॥ ७ ॥

जटा वल्कल धारण करके और भूखप्याससे थक कर भी सब शरीरमें भस्म लगाकर वायु पीनेवाले हो गये अर्थात् कुछ न खाते हुए केवल वायु पीकर रहने लगे ॥ ७ ॥

पाञ्चाली भवतामेका धर्मपत्नी यशस्विनी।
यथा वो नात्र भेदः स्यात्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ १७ ॥

यशस्विनी द्रौपदी अकेली तुम सबकी धर्मपत्नी है; ऐसी दशामें तुम भाइयोंमें बिगाड न हो ऐसा कोई नियम करो ॥ १७ ॥

सुन्दोपसुन्दावसुरौ भ्रातरौ सहितावुभौ।
आस्तामवध्यावन्येषां त्रिषु लोकेषु विश्रुतौ ॥ १८ ॥

पूर्वकालमें सुन्द और उपसुन्द नामक दो भाई एकत्र रहते थे। दूसरोंसे वधके अयोग्य और तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थे ॥ १८ ॥

एकराज्यावेकगृहावेकशय्यासनाशनौ।
तिलोत्तमायास्तौ हेतोरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १९ ॥

उनका एक राज्य, एक गृह, एक सेज, एक भोजनस्थान था। उनमें सदा ऐसी मित्रता बनी रहने पर भी तिलोत्तमाके लिये उन्होंने एक दूसरेको मार डाला ॥ १९ ॥

रक्ष्यतां सौहृदं तस्मादन्योन्यप्रतिभाविकम्।
यथा वो नात्र भेदः स्यात्तत्कुरुष्व युधिष्ठिर ॥ २० ॥

अतः, हे युधिष्ठिर! तुम आपसकी प्रीति बढानेवाले भ्रातृप्रेमको बनाये रखो। यह प्रयत्न करो, कि तुममें भ्रातृभेद न होने पावे ॥ २० ॥

युधिष्ठिर उवाच

सुन्दोपसुन्दावसुरौ कस्य पुत्रौ महामुने।
उत्पन्नश्च कथं भेदः कथं चान्योन्यमघ्नताम् ॥ २१ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे महामुने! सुन्द और उपसुन्द किसके पुत्र थे? उनमें आपसमें क्यों भेद हो गया? और क्यों उन्होंने एक दूसरेको मार डाला? ॥ २१ ॥

अप्सरा देवकन्या वा कस्य चैषा तिलोत्तमा।
यस्याः कामेन संमत्तौ जघ्नतुस्तौ परस्परम् ॥ २२ ॥

और जिस नारीकी इच्छा करते हुए मत्त होकर उन्होंने एक दूसरेको मार डाला, वह तिलोत्तमा किसकी कन्या थी? वह बाला अप्सरा थी वा देवकन्या? ॥ २२ ॥

एतत्सर्वं यथावृत्तं विस्तरेण तपोधन।
श्रोतुमिच्छामहे विप्र परं कौतूहलं हि नः ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥ ६४४८ ॥

हे विप्र! यह सब विस्तारपूर्वक आद्योपांत सुनना चाहते हैं। हे तपोधन! यह सुननेकी हमारी बडी इच्छा है ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौवां अध्याय समाप्त ॥ २०० ॥ ६४४८ ॥

: २०१ :

नारद उवाच

श्रृणु मे विस्तरेणेममितिहासं पुरातनम् ।
भ्रातृभिः सहितः पार्थ यथावृत्तं युधिष्ठिर ॥ १ ॥

नारद बोले– हे पृथापुत्र युधिष्ठिर ! भाइयोंके साथ तुम इस प्राचीन इतिहासको ठीक ठीक और विस्तारपूर्वक मुझसे सुनो ॥ १ ॥

महासुरस्यान्ववाये हिरण्यकशिपोः पुरा ।
निकुम्भो नाम दैत्येन्द्रस्तेजस्वी बलवानभूत् ॥ २ ॥

पूर्वकालमें महासुर हिरण्यकशिपुके वंशमें निकुम्भ नामक बली तेजस्वी एक दैत्यवरने जन्म लिया था ॥ २ ॥

तस्य पुत्रौ महावीर्यौ जातौ भीमपराक्रमौ ।
सहोन्योन्येन भुञ्जाते विनान्योन्यं न गच्छतः ॥ ३ ॥

उसके बडे पराक्रमी, बडे वीर्यवान् दो पुत्र पैदा हुए । उनमें इतनी प्रीति थी कि वे एक साथ बैठकर ही भोजन करते थे और एक दूसरेके बिना कहीं आते जाते नहीं थे ॥ ३ ॥

अन्योन्यस्य प्रियकरावन्योन्यस्य प्रियंवदौ ।
एकशीलसमाचारौ द्विधैवैकं यथा कृतौ ॥ ४ ॥

दोनों एक दूसरेसे प्यारी बोली बोलते और एक दूसरेका प्रिय कार्य करते थे; उन दो भाइयोंके स्वभाव और व्यवहारमें भेद न रहनेके कारण जान पडता था, कि मानों एक ही मनुष्य दो भागोंमें बंट गया है ॥ ४ ॥

तौ विवृद्धौ महावीर्यौ कार्येष्वप्येकनिश्चयौ ।
त्रैलोक्यविजयार्थाय समास्थायैकनिश्चयम् ॥ ५ ॥
कृत्वा दीक्षां गतौ विन्ध्यं तत्रोग्रं तेपतुस्तपः ।
तौ तु दीर्घेण कालेन तपोयुक्तौ बभूवतुः ॥ ६ ॥

हर काममें एक बुद्धि रखनेवाले वे दो बडे वीर्यवान् भाई बडे हुए और वे तीनों लोक जीतनेका निश्चय कर विंध्य पर्वत पर जाकर दीक्षित और समाहित होकर कठोर तप करने लगे और दीर्घकालके बाद वे दोनों तपसे युक्त हुए ॥ ५–६ ॥

क्षुत्पिपासापरिश्रान्तौ जटावल्कलधारिणौ ।
मलोपचितसर्वाङ्गौ वायुभक्षौ बभूवतुः ॥ ७ ॥

जटा वल्कल धारण करके और भूखप्याससे थक कर भी सब शरीरमें भस्म लगाकर वायु पीनेवाले हो गये अर्थात् कुछ न खाते हुए केवल वायु पीकर रहने लगे ॥ ७ ॥

आत्ममांसानि जुह्वन्तौ पादाङ्गुष्ठाग्रधिष्ठितौ ।
ऊर्ध्वबाहू चानिमिषौ दीर्घकालं धृतव्रतौ ॥ ८ ॥

उन दोनोंने अंगूठोंके बल खडे होकर, हाथ ऊंचे उठाकर, पलक मारना छोड अर्थात् एकटक देखते हुए और व्रत धारण कर बहुत कालतक अपने मांसकी आहुति चढायी ॥८॥

तयोस्तपःप्रभावेण दीर्घकालं प्रतापितः
धूमं प्रमुमुचे विन्ध्यस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥

उस कालमें एक आश्चर्यकारक बात यह हुई, कि विंध्य पर्वतने उनकी दीर्घकालिक तपस्याके प्रभावसे तप कर धुआं छोडना शुरू किया ॥ ९ ॥

ततो देवाभवन्भीता उग्रं दृष्ट्वा तयोस्तपः ।
तपोविघातार्थमथो देवा विघ्नानि चक्रिरे ॥ १० ॥

तब देवगण उनकी कठोर तपस्या देखकर भयभीत हो गए और तब वे देव उनका तप नष्ट करनेके लिये विघ्न डालने लगे ॥ १० ॥

रत्नैः प्रलोभयामासुः स्त्रीभिश्चोभौ पुनः पुनः ।
न च तौ चक्रतुर्भङ्गं व्रतस्य सुमहाव्रतौ ॥ ११ ॥

उन्होंने लुभानेवाले रत्न और नारींसे उन दोनोंको बार बार लुभाया; पर उन दोनों महा व्रत करनेवाले भाइयोंने किसी प्रकार व्रत नहीं छोडा ॥ ११ ॥

अथ मायां पुनर्देवास्तयोश्चक्रुर्महात्मनोः ।
भगिन्यो मातरो भार्यास्तयोः परिजनस्तथा ॥ १२ ॥

तब उन देवोंने फिर उन दो महात्माओंके सामने माया फैलाकर यह एक बडी भारी लीला दिखायी, कि उन दोनों असुरोंकी माता, बहिन, स्त्री और दूसरे स्वजन ॥ १२ ॥

परिपात्यमाना वित्रस्ताः शूलहस्तेन रक्षसा ।
स्रस्ताभरणकेशान्ता एकान्तभ्रष्टवाससः ॥ १३ ॥

अभिधाव्य ततः सर्वास्तौ त्राहीति विचुक्रुशुः ।
न च तौ चक्रतुर्भङ्गं व्रतस्य सुमहाव्रतौ ॥ १४ ॥

ढीले अलंकारों और बालोंवाली होकर तथा वस्त्रोंसे रहित होकर शूलको हाथमें धारण करने-वाले राक्षसके द्वारा गिराई जाती हुईं तथा भयभीत होकर उन दोनोंके सामने आकर "बचाओ बचाओ" कह कर चिल्लाने लगीं, यह देखकर भी महाव्रतधारी सुन्द और उप-सुन्दने व्रत नहीं छोडा ॥ १३–१४ ॥

यदा क्षोभं नोपयाति नार्तिमन्यतरस्तयोः ।
ततः स्त्रियस्ता भूतं च सर्वमन्तरधीयत ॥ १५ ॥

इसके बाद जब दोनोंमेंसे कोई भी उससे क्षुब्ध अथवा दुःखी नहीं हुआ, तब वे स्त्रियां और राक्षस गायब हो गए ॥ १५ ॥

ततः पितामहः साक्षादभिगम्य महासुरौ ।
वरेण छन्दयामास सर्वलोकपितामहः ॥ १६ ॥

उसके पश्चात् सब लोकोंके पितामहने उन दोनों महावीरोंके सामने आकर उनसे वर मांगनेको कहा ॥ १६ ॥

ततः सुन्दोपसुन्दौ तौ भ्रातरौ दृढविक्रमौ ।
दृष्ट्वा पितामहं देवं तस्थतुः प्राञ्जली तदा ॥ १७ ॥

दृढ विक्रमी सुन्द और उपसुन्द दोनों भाई प्रभु पितामह देवको देखकर दोनों हाथ जोडकर खडे हो गए ॥ १७ ॥

ऊचतुश्च प्रभुं देवं ततस्तौ सहितौ तदा ।
आवयोस्तपसानेन यदि प्रीतः पितामहः ॥ १८ ॥
मायाविदावस्त्रविदौ बलिनौ कामरूपिणौ ।
उभावप्यमरौ स्यावः प्रसन्नो यदि नौ प्रभुः ॥ १९ ॥

और दोनों इकट्ठे ही उस प्रभु देवसे बोले— प्रभो पितामह ! हमारी तपस्यासे यदि आप प्रसन्न हुए हैं तथा आनन्दित हुए हैं तो हमको यह वर दें, कि हम दोनों मायाके जानकार, अस्त्रके जानकार, बली, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और अमर हों ॥ १८-१९ ॥

पितामह उवाच

ऋतेऽमरत्वमन्यद्वां सर्वमुक्तं भविष्यति ।
अन्यद्वृणीतां मृत्योश्च विधानममरैः समम् ॥ २० ॥

पितामह बोले— तुमने जो जो प्रार्थना की उनमेंसे अमर होनेके अतिरिक्त तुम्हारी सब अभिलाषा पूरी होगी । अमरताके बिना और कुछ प्रार्थना ऐसी करो, कि जो अमर होनेके तुल्य हो ॥ २० ॥

करिष्यावेदमिति यन्महदभ्युत्थितं तपः ।
युवयोर्हेतुनानेन नामरत्वं विधीयते ॥ २१ ॥

तीनों लोकोंके प्रभु बननेहीकी इच्छासे तुमने यह बडी तपस्या प्रारम्भ की थी, इसलिये तुमको अमरता प्राप्त होना ठीक नहीं है ॥ २१ ॥

त्रैलोक्यविजयार्थाय भवद्भ्यामास्थितं तपः ।
हेतुनानेन दैत्येन्द्रौ न वां कामं करोम्यहम् ॥ २२ ॥

हे दोनों दैत्यवरो! तीनों लोक जय करनेके लिए ही तुमने तपस्या की है; इस कारण, हे दैत्यराजो! तुम्हारे अमर होनेकी अभिलाषा पूरी नहीं करूंगा ॥ २२ ॥

सुन्दोपसुन्दावूचतुः

त्रिषु लोकेषु यद्भूतं किंचित्स्थावरजङ्गमम् ।
सर्वस्मान्नौ भयं न स्यादृतेऽन्योन्यं पितामह ॥ २३ ॥

सुन्द और उपसुन्दने कहा– हे पितामह! हम दोनोंको एक दूसरेके सिवाय इस त्रिलोकभरमें उत्पन्न स्थावर जङ्गम आदि किसीसे भी मृत्युका भय न रहे ॥ २३ ॥

पितामह उवाच

यत्प्रार्थितं यथोक्तं च काममेतद्ददानि वाम् ।
मृत्योर्विधानमेत्तच्च यथावद्वां भविष्यति ॥ २४ ॥

पितामह बोले– तुमने जो प्रार्थना की और जो कहा, वह तुम्हारी इच्छा तुम्हें देता हूं। तुम्हारे कथनानुसार ही मृत्युका नियम निश्चित होगा ॥ २४ ॥

नारद उवाच

ततः पितामहो दत्त्वा वरमेतत्तदा तयोः ।
निवर्त्य तपसस्तौ च ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ २५ ॥

नारद बोले– तदनन्तर पितामह सुन्द और उपसुन्दको यह वर देकर तपसे निवृत्त कर ब्रह्मलोकमें गये ॥ २५ ॥

लब्ध्वा वराणि सर्वाणि दैत्येन्द्रावपि तावुभौ ।
अवध्यौ सर्वलोकस्य स्वमेव भवनं गतौ ॥ २६ ॥

दोनों दैत्यबर सब वर पाकर सब लोकोंके द्वारा वधके अयोग्य होकर अपने घरको पधारे ॥ २६ ॥

तौ तु लब्धवरौ दृष्ट्वा कृतकामौ महासुरौ ।
सर्वः सुहृज्जनस्ताभ्यां प्रमोदमुपजग्मिवान् ॥ २७ ॥

उनके स्वजन उन दोनों महासुरोंको वर प्राप्त किया हुआ और उनका मनोरथ सफल हुआ देखकर बडे प्रसन्न हुए ॥ २७ ॥

ततस्तौ तु जटा हित्वा मौलिनौ संबभूवतुः ।
महार्हाभरणोपेतौ विरजोम्बरधारिणौ ॥ २८ ॥

उन दोनों भाईयोंने जटा छोडकर किरीट आदि अतिमूल्यवान् आभूषण और साफ वस्त्र पहिने ॥ २८ ॥

अकालकौमुदीं चैव चक्रतुः सार्वकामिकीम् ।
दैत्येन्द्रौ परमप्रीतौ तयोश्चैव सुहृज्जनः ॥ २९ ॥

अनन्तर उन परम प्रसन्न दैत्येन्द्रों और उनके सुहृज्जनोंने सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली कौमुदीका महोत्सव समयके विना ही करना प्रारम्भ किया ॥ २९ ॥

भक्ष्यतां भुज्यतां नित्यं रम्यतां गीयतामिति ।
पीयतां दीयतां चेति वाच आसन्गृहे गृहे ॥ ३० ॥

भक्षण करो, भोजन करो, खेलो, गाओ, दो, पीओ, ऐसे शब्द घर घरमें उच्चारे जाने लगे ॥ ३० ॥

तत्र तत्र महापानैरुत्कृष्टतलनादितैः ।
हृष्टं प्रमुदितं सर्वं दैत्यानामभवत्पुरम् ॥ ३१ ॥

स्थान स्थानमें दैत्योंके सिंहके समान गर्जनके साथ करतालकी उत्कृष्ट ध्वनिसे सम्पूर्ण नगरमें आनन्दकी उमंग फैल पडी ॥ ३१ ॥

तैस्तैर्विहारैर्बहुभिर्दैत्यानां कामरूपिणाम् ।
समाः संक्रीडतां तेषामहरेकमिवाभवत् ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥ ६४८० ॥

कामरूपी दैत्योंके बडे आनन्दसे उस प्रकारके भांति भांतिके विहारमें लगे रहनेसे उनको एक एक वर्ष एक एक दिनके समान जान पडने लगा ॥ ३२ ॥

महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ एकवां अध्याय समाप्त ॥ २०१ ॥ ६४८० ॥

: २०२ :

नारद उवाच

उत्सवे वृत्तमात्रे तु त्रैलोक्याकाङ्क्षिणावुभौ ।
मन्त्रयित्वा ततः सेनां तावाज्ञापयतां तदा ॥ १ ॥

नारद बोले— अकालकौमुदीके महोत्सवके अन्त होनेपर तीनों लोकों पर अधिकार प्राप्त करनेके अभिलाषी होकर दोनों भाइयोंने विचारविमर्श करके सेनाओंको सजनेकी आज्ञा दी ॥१॥

सुहृद्भिरभ्यनुज्ञातौ दैत्यवृद्धैश्च मन्त्रिभिः ।
कृत्वा प्रास्थानिकं रात्रौ मघासु ययतुस्तदा ॥ २ ॥

उन्होंने स्वजन और वृद्ध दैत्यमन्त्रियोंकी आज्ञासे यात्रा करनेकी तैय्यारी पूरी कर रात्रिको मघा नक्षत्रमें यात्रा की ॥ २ ॥

×

गदापट्टिशधारिण्या शूलमुद्गरहस्तया ।
प्रस्थितौ सहधर्मिण्या महत्या दैत्यसेनया ॥ ३ ॥

तुल्यधर्मवाली बडी गदा, पट्टिश, शूल, मुद्गर आदि शस्त्र लेकर चलनेवाली बडी दैत्य-सेनाके साथ वे दोनों चल पडे ॥ ३ ॥

मङ्गलैः स्तुतिभिश्चापि विजयप्रतिसंहितैः ।
चारणैः स्तूयमानौ तु जग्मतुः परया मुदा ॥ ४ ॥

दोनों दैत्यराज चारणोंकी विजयसूचक मांगालिक स्तुति पाठसे प्रशंसित होकर परम हर्षपूर्वक जाने लगे ॥ ४ ॥

तावन्तरिक्षमुत्पत्य दैत्यौ कामगमावुभौ ।
देवानामेव भवनं जग्मतुर्युद्धदुर्मदौ ॥ ५ ॥

युद्धमें कठोर, अपनी इच्छाके अनुसार चलनेवाले वे दोनों दैत्यवर आकाश पर चढके देवलोकको गये ॥ ५ ॥

तयोरागमनं ज्ञात्वा वरदानं च तत्प्रभोः ।
हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्ब्रह्मलोकं ततः सुराः ॥ ६ ॥

तब देवगण उनके आनेका समाचार पाकर पितामहका वर देना स्मरण कर स्वर्ग छोडकर ब्रह्मलोकमें गये ॥ ६ ॥

ताविन्द्रलोकं निर्जित्य यक्षरक्षोगणांस्तथा ।
खेचराण्यपि भूतानि जिग्यतुस्तीव्रविक्रमौ ॥ ७ ॥

तेजस्वी विक्रमी दोनों दैत्योंने इन्द्रलोकको जीतकर यक्षगण, राक्षसगण और दूसरे खेचरी प्राणियोंको भी जीत लिया ॥ ७ ॥

अन्तर्भूमिगतान्नागाञ्जित्वा तौ च महासुरौ ।
समुद्रवासिनः सर्वान्म्लेच्छजातीन्विजिग्यतुः ॥ ८ ॥

और उन दोनों महासुरोंने पातालमें बसे हुए सर्पोंको परास्त कर, समुद्र द्वीपमें रहनेवाली सभी म्लेच्छ जातियोंको हराया ॥ ८ ॥

ततः सर्वां महीं जेतुमारब्धावुग्रशासनौ ।
सैनिकांश्च समाहूय सुतीक्ष्णां वाचमूचतुः ॥ ९ ॥

तदनन्तर कठोर शासन करनेवाले दोनों महाबली भाइयोंने सारे भूमण्डलको परास्त करनेको उद्यत होकर सेनाओंको पुकार पुकार यह तीव्र वचन कहे ॥ ९ ॥

राजर्षयो महायज्ञैर्हव्यकव्यैर्द्विजातयः ।
तेजो बलं च देवानां वर्धयन्ति श्रियं तथा ॥ १० ॥

राजर्षि वृन्द महायज्ञोंसे और ब्राह्मणगण हव्यकव्यसे देवोंके तेज, बल और श्रीको बढाते हैं ॥ १० ॥

तेषामेवं प्रवृद्धानां सर्वेषामसुरद्विषाम् ।
संभूय सर्वैरस्माभिः कार्यः सर्वात्मना वधः ॥ ११ ॥

इस प्रकारके कार्यमें लगे हुए उन सभी असुरद्वेषी जनोंका हर तरहसे वध हमें मिल कर करना होगा ॥ ११ ॥

एवं सर्वान्समादिश्य पूर्वतीरे महोदधेः ।
क्रूरां मतिं समास्थाय जग्मतुः सर्वतोमुखम् ॥ १२ ॥

इस प्रकार सब सेनाओंको आज्ञा देकर वे महासमुद्रके पूर्व तट पर ऐसा निष्ठुर विचार कर चारों ओर दौडे ॥ १२ ॥

यज्ञैर्यजन्ते ये केचिद्याजयन्ति च ये द्विजाः ।
तान्सर्वान्प्रसभं दृष्ट्वा बलिनौ जघ्नतुस्तदा ॥ १३ ॥

उन दोनों वली भाइयोंने जिन जिन ब्राह्मणोंको यज्ञ करते वा कराते देखा, उसी क्षण उन सबको जबर्दस्ती मार दिया ॥ १३ ॥

आश्रमेष्वग्निहोत्राणि ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
गृहीत्वा प्रक्षिपन्त्यप्सु विश्रब्धाः सैनिकास्तयोः ॥ १४ ॥

उनकी सेना निःशङ्कचित्तसे आत्मशक्तिसे युक्त ऋषियोंके आश्रममें जाकर उनके अग्निहोत्र ले लेके जलमें छोडने लगी ॥ १४ ॥

तपोधनैश्च ये शापाः क्रुद्धैरुक्ता महात्मभिः ।
नाक्रामन्ति तयोस्तेऽपि वरदानेन जृम्भतोः ॥ १५ ॥

महात्मा तपोधनवृन्द क्रोधित होकर शाप देने लगे, जो ब्रह्माके वरके कारण उपद्रव मचानेवाले उन पर प्रभाव नहीं डाल सके ॥ १५ ॥

नाक्रामन्ति यदा शापा बाणा मुक्ताः शिलास्विव ।
नियमांस्तदा परित्यज्य व्यद्रवन्त द्विजातयः ॥ १६ ॥

जब द्विजोंका शाप शिला पर छोडे गए बाणकी भांति व्यर्थ होने लगे, तब वे ब्राह्मण अपने व्रत एवं नियमादि छोडकर भागने लगे ॥ १६ ॥

पृथिव्यां ये तपःसिद्धा दान्ताः शमपरायणाः।
तयोर्भयाद्दुद्रुवुस्ते वैनतेयादिवोरगाः ॥ १७ ॥

भूमण्डलमें जितने शमशील, तपःसिद्ध दान्त ऋषि थे, वे इस प्रकार भागे, कि जैसे गरुडके भयसे सर्प भागते हैं ॥ १७ ॥

मथितैराश्रमैर्भग्नैर्विकीर्णकलशस्रुवैः।
शून्यमासीज्जगत्सर्वं कालेनेव हतं यथा ॥ १८ ॥

इस प्रकार मथे हुए आश्रमोंसे तथा टूटे फूटे तथा बिखरे हुए कलशों और स्रुवाओंसे यह सारा संसार इस प्रकार शून्य हो गया, जिस प्रकार प्रलयकालमें कालके द्वारा सब नष्ट कर दिया जाता है ॥ १८ ॥

राजर्षिभिरदृश्यद्भिर्ऋषिभिश्च महासुरौ।
उभौ विनिश्चयं कृत्वा विकुर्वाते वधैषिणौ ॥ १९ ॥

तदनन्तर मुनियोंके और राजर्षियोंके इधर उधर छिपकर दृष्टिके बाहर हो जानेपर दोनों महासुर उनके वधका निश्चय करके नाना रूप धरने लगे ॥ १९ ॥

प्रभिन्नकरटौ मत्तौ भूत्वा कुञ्जररूपिणौ।
संलीनानपि दुर्गेषु निन्यतुर्यमसादनम् ॥ २० ॥

वे कभी मदोन्मत्त गजका स्वरूप लेकर दुर्गमें गये हुए तपस्वियोंको भी नष्ट करने लगे ॥२०॥

सिंहौ भूत्वा पुनर्व्याघ्रौ पुनश्चान्तर्हितावुभौ।
तैस्तैरुपायैस्तौ क्रूरावृषीन्दृष्ट्वा निजघ्नतुः ॥ २१ ॥

वे दोनों क्रूर असुर कभी सिंहका स्वरूप और कभी व्याघ्रका रूप धारण करते थे और कभी दृष्टिसे ओझल हो जाते थे। इस प्रकार उन्होंने नाना उपायोंसे ऋषियोंको देखकर नष्ट किया ॥ २१ ॥

निवृत्तयज्ञस्वाध्याया प्रणष्टनृपतिद्विजा।
उत्सन्नोत्सवयज्ञा च बभूव वसुधा तदा ॥ २२ ॥

तब धरती यज्ञ और स्वाध्यायसे रहित और ब्राह्मण तथा राजासे रहित होकर यज्ञोत्सवसे भी हीन हो गई ॥ २२ ॥

हाहाभूता भयार्ता च निवृत्तविपणापणा।
निवृत्तदेवकार्या च पुण्योद्वाहविवर्जिता ॥ २३ ॥

सब लोक भयभीत होकर हाय हाय करने लगे। मोल विक्री आदि बाजारका कार्य, दैवी कार्य, पुण्यकार्य, विवाहकार्य सभी नष्ट हो गए ॥ २३ ॥

निवृत्तकृषिगोरक्षा विध्वस्तनगराश्रमा ।
अस्थिकङ्कालसंकीर्णा भूर्बभूवोग्रदर्शना ॥ २४ ॥

कृषिकार्य और गोरक्षा आदि सम्पूर्ण कार्य ही रुक गये। नगर और आश्रमोंका सत्यानाश होकर केवल हड्डी कङ्कालोंसे पृथ्वी बहुत भयावनी दीख पडने लगी ॥ २४ ॥

निवृत्तपितृकार्यं च निर्वषट्कारमङ्गलम् ।
जगत्प्रतिभयाकारं दुष्प्रेक्ष्यमभवत्तदा ॥ २५ ॥

सम्पूर्ण देशोंमें पितृकार्य और वषट्कार आदि मांगलिक क्रियाके लोप हो जानेपर जग बडा भयानक होनेके कारण देखनेके अयोग्य हो गया ॥ २५ ॥

चन्द्रादित्यौ ग्रहास्तारा नक्षत्राणि दिवौकसः ।
जग्मुर्विषादं तत्कर्म दृष्ट्वा सुन्दोपसुन्दयोः ॥ २६ ॥

चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारे और आकाशमें रहनेवाले अश्विनी आदि नक्षत्र सुन्द उपसुन्दका यह कार्य देखकर दुःखी हो गए ॥ २६ ॥

एवं सर्वा दिशो दैत्यौ जित्वा क्रूरेण कर्मणा ।
निःसपत्नौ कुरुक्षेत्रे निवेशमभिचक्रतुः ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्व्यदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥ ६५०७ ॥

वे दैत्य इस प्रकार कुटिल कार्यसे सब दिशाओंको जीतकर अन्तमें शत्रुरहित होकर कुरुक्षेत्रमें निवास करने लगे ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दोसौ दोवां अध्याय समाप्त ॥ २०२ ॥ ६५०७ ॥

: २०३ :

नारद उवाच

ततो देवर्षयः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ।
जग्मुस्तदा परामार्तिं दृष्ट्वा तत्कदनं महत् ॥ १ ॥

नारद बोले– तब सब देवर्षि, परमर्षि और सिद्धगण उस भारी प्राणीहत्याको देखकर बहुत दुःखको प्राप्त हुए ॥ १ ॥

तेऽभिजग्मुर्जितक्रोधा जितात्मानो जितेन्द्रियाः ।
पितामहस्य भवनं जगतः कृपया तदा ॥ २ ॥

तब क्रोधको जीतनेवाले, आत्मवान् इन्द्रियोंको जीतनेवाले वे सब जगत् पर कृपायुक्त होकर पितामहके भवनको गये ॥ २ ॥

ततो ददृशुरासीनं सह देवैः पितामहम् ।
सिद्धैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव समन्तात्परिवारितम् ॥ ३ ॥

और वहां पितामहको सिद्ध और ब्रह्मर्षियोंसे चारों ओरसे घिरे और देवोंके साथ बैठे देखा ॥ ३ ॥

तत्र देवो महादेवस्तत्राग्निर्वायुना सह ।
चन्द्रादित्यौ च धर्मश्च परमेष्ठी तथा बुधः ॥ ४ ॥

वहां देवोंके देव महादेव, अग्नि, वायु, चन्द्र, आदित्य, धर्म, परमेष्ठी और बुध ॥ ४ ॥

वैखानसा वालखिल्या वानप्रस्था मरीचिपाः ।
अजाश्चैवाविमूढाश्च तेजोगर्भास्तपस्विनः ।
ऋषयः सर्व एवैते पितामहमुपासते ॥ ५ ॥

वैखानस, वालखिल्य, वानप्रस्थ, मरीचिप, अज, अविमुग्ध और तेजोगर्भ आदि भिन्न भिन्न तपस्वी ऋषिगण सभी पितामहके पास उपस्थित थे ॥ ५ ॥

ततोऽभिगम्य सहिताः सर्व एव महर्षयः ।
सुन्दोपसुन्दयोः कर्म सर्वमेव शशंसिरे ॥ ६ ॥

उन सम्पूर्ण महर्षिगणने एक साथ जाकर पितामहसे सुन्द और उपसुन्दके कार्योंका सभी वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ६ ॥

यथाकृतं यथा चैव कृतं येन क्रमेण च ।
न्यवेदयंस्ततः सर्वमखिलेन पितामहे ॥ ७ ॥

उन दोनों दैत्योंने जो कुछ काम किया और जैसे मारा वह सब क्रमसे पितामहसे आद्योपान्त कह सुनाया ॥ ७ ॥

ततो देवगणाः सर्वे ते चैव परमर्षयः ।
तमेवार्थं पुरस्कृत्य पितामहमचोदयन् ॥ ८ ॥

तब उन सम्पूर्ण देवगण और परमर्षियोंने उस विषयके लिये पितामहको प्रेरित किया ॥८॥

ततः पितामहः श्रुत्वा सर्वेषां तद्वचस्तदा ।
मुहूर्तमिव संचिन्त्य कर्तव्यस्य विनिश्चयम् ॥ ९ ॥

तब पितामह उन सबोंका वह वचन सुनके क्षणभर सोचकर क्या करना ठीक है, इसका निश्चय कर ॥ ९ ॥

तयोर्वधं समुद्दिश्य विश्वकर्माणमाह्वयत् ।
दृष्ट्वा च विश्वकर्माणं व्यादिदेश पितामहः ।
सृज्यतां प्रार्थनीयेह प्रमदेति महातपाः ॥ १० ॥

दुराचारी दोनों दैत्योंके वधके लिये विश्वकर्माको बुलवाया । विश्वकर्माको देखकर महानुभाव पितामहने आज्ञा दी, कि " सभीके मनको हरनेवाली एक स्त्री बनाओ " ॥ १० ॥

पितामहं नमस्कृत्य तद्वाक्यमभिनन्द्य च ।
निर्ममे योषितं दिव्यां चिन्तयित्वा प्रयत्नतः ॥ ११ ॥

विश्वकर्माने उनको प्रणाम कर आदरपूर्वक उनकी आज्ञा मानकर यत्नपूर्वक सोचकर विचार कर एक दिव्य सुन्दरी बाला बनाई ॥ ११ ॥

त्रिषु लोकेषु यत्किंचिद् भूतं स्थावरजङ्गमम् ।
समानयद्दर्शनीयं तत्तद्यत्नात्ततस्ततः ॥ १२ ॥

त्रिलोकभरमें दर्शनयोग्य परम सुन्दर जितने स्थावर जङ्गम पदार्थ थे, विश्वकर्मा वहां वहांसे उसे ले आए ॥ १२ ॥

कोटिशश्चापि रत्नानि तस्या गात्रे न्यवेशयत् ।
तां रत्नसंघातमयीमसृजद्देवरूपिणीम् ॥ १३ ॥

करोडों रत्न उसके शरीरमें जड दिए और इस प्रकार उस स्त्रीको रत्न समूहोंसे देवरूपिणी बनाया ॥ १३ ॥

सा प्रयत्नेन महता निर्मिता विश्वकर्मणा ।
त्रिषु लोकेषु नारीणां रूपेणाप्रतिमाभवत् ॥ १४ ॥

विश्वकर्माके बडे प्रयत्नसे बनायी गई वह कन्या ऐसी रूपवती बनी, कि तीनों भुवनमें कोई भी नारी उसकी उपमाके योग्य न रही ॥ १४ ॥

न तस्याः सूक्ष्ममप्यस्ति यद्गात्रे रूपसंपदा ।
न युक्तं यत्र वा दृष्टिर्न सज्जति निरीक्षताम् ॥ १५ ॥

उसके शरीर भरमें ऐसा कोई भी सूक्ष्म स्थान न था, कि जिसपर देखनेवालेकी दृष्टि उसकी अपूर्व रूपकी शोभामें फंस नहीं जाती थी ॥ १५ ॥

सा विग्रहवतीव श्रीः कान्तरूपा वपुष्मती ।
जहार सर्वभूतानां चक्षूंषि च मनांसि च ॥ १६ ॥

साक्षात् लक्ष्मीकी भांति वह सुन्दर रूप और शरीरवाली कामिनी हरेक प्राणीके नयन और मन चुराने लगी ॥ १६ ॥

तिलं तिलं समानीय रत्नानां यद्विनिर्मिता ।
तिलोत्तमेत्यतस्तस्या नाम चक्रे पितामहः ॥ १७ ॥

विश्वकर्माने सम्पूर्ण रत्न बटोरके तिल तिल चुनकर उस कन्याको बनाया था; इसलिये पितामहने उसका नाम तिलोत्तमा रखा ॥ १७ ॥

पितामह उवाच

गच्छ सुन्दोपसुन्दाभ्यामसुराभ्यां तिलोत्तमे ।
प्रार्थनीयेन रूपेण कुरु भद्रे प्रलोभनम् ॥ १८ ॥

पितामह बोले– हे कल्याणी ! तुम सुन्द और उपसुन्द, दोनों असुरोंके पास जाओ, वहां सुन्दर रूपसे उनको लुभानेकी चेष्टा करो ॥ १८ ॥

त्वत्कृते दर्शनादेव रूपसंपत्कृतेन वै ।
विरोधः स्याद्यथा ताभ्यामन्योन्येन तथा कुरु ॥ १९ ॥

ऐसी चेष्टा करो, कि वे तुम्हारे रूपकी सम्पदा देखकर ही तुम्हें पानेके लिए उन दोनोंमें आपसमें झगडा उत्पन्न हो ॥ १९ ॥

नारद उवाच

सा तथेति प्रतिज्ञाय नमस्कृत्य पितामहम् ।
चकार मण्डलं तत्र विबुधानां प्रदक्षिणम् ॥ २० ॥

नारद बोले– अनन्तर तिलोत्तमाने उनका कहना मानकर पितामहको प्रणाम कर ज्ञानियोंके मण्डलकी चारों ओर परिक्रमा की ॥ २० ॥

प्राङ्मुखो भगवानास्ते दक्षिणेन महेश्वरः ।
देवाश्चैवोत्तरेणासन्सर्वतस्त्वृषयोऽभवन् ॥ २१ ॥

उस समय भगवान् पितामह पूर्वकी ओर, महेश्वर दक्षिणकी ओर, दूसरे देवगण उत्तरकी ओर और ऋषिवृन्द सब ओर थे ॥ २१ ॥

कुर्वन्त्या तु तया तत्र मण्डलं तत्प्रदक्षिणम् ।
इन्द्रः स्थाणुश्च भगवान्धैर्येण प्रत्यवस्थितौ ॥ २२ ॥

तिलोत्तमा जब मण्डलकी परिक्रमा कर रही थी तब इन्द्र और भगवान् महेश्वर अति धीरज धरकर अपने अपने स्थानोंमें बैठे थे ॥ २२ ॥

द्रष्टुकामस्य चात्यर्थं गतायाः पार्श्वतस्तदा ।
अन्यदञ्चितपक्ष्मान्तं दक्षिणं निःसृतं मुखम् ॥ २३ ॥

महेश्वरमें बडे वेगसे देखनेकी चाह उमडने पर तिलोत्तमा जब उनकी दक्षिणकी ओरको गयी तब कटाक्ष युक्त नेत्रोंसे सुशोभित एक दक्षिण मुख निकल आया ॥ २३ ॥

पृष्ठतः परिवर्तन्त्याः पश्चिमं निःसृतं मुखम् ।
गतायाश्चोत्तरं पार्श्वमुत्तरं निःसृतं मुखम् ॥ २४ ॥

तिलोत्तमा जब उनके पीछे गयी, तब उनका एक पश्चिम मुख निकला; और वह बाला जब उत्तरकी ओर गयी तब उनके बांई ओरसे एक मुख निकल आया ॥ २४ ॥

महेन्द्रस्यापि नेत्राणां पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः ।
रक्तान्तानां विशालानां सहस्रं सर्वतोऽभवत् ॥ २५ ॥

महेन्द्रके भी देखनेकी इच्छा होनेके कारण जब तिलोत्तमा उनकी परिक्रमा करने लगी, तब उनके सामने, पार्श्वमें और पीठ पर सम्पूर्ण शरीरहीमें बडी बडी हजार लाल आखें निकल आंई ॥ २५ ॥

एवं चतुर्मुखः स्थाणुर्महादेवोऽभवत्पुरा ।
तथा सहस्रनेत्रश्च बभूव बलसूदनः ॥ २६ ॥

हे पार्थ ! पूर्वकालमें इस प्रकार महादेव चतुर्मुख और बलासुरनाशक इंद्र सहस्रनेत्रयुक्त हुए ॥ २६ ॥

तथा देवनिकायानामृषीणां चैव सर्वशः ।
मुखान्यभिप्रवर्तन्ते येन याति तिलोत्तमा ॥ २७ ॥

और परिक्रमाके समय तिलोत्तमा जिस जिस ओर गयी, देव और महर्षियोंके मुख भी उस उसी ओर घूम गये ॥ २७ ॥

तस्या गात्रे निपतिता तेषां दृष्टिर्महात्मनाम् ।
सर्वेषामेव भूयिष्ठमृते देवं पितामहम् ॥ २८ ॥

उस समय उस ब्रह्मसभामें जो जो उपस्थित थे उनमें केवल पितामहके सिवाय सब महात्माओंकी दृष्टि उस नारीकी देह पर पडी ॥ २८ ॥

गच्छन्त्यास्तु तया देवाः सर्वे च परमर्षयः ।
कृतमित्येव तत्कार्यं मेनिरे रूपसंपदा ॥ २९ ॥

जब तिलोत्तमा जाने लगी, तब सम्पूर्ण देव और परमर्षियोंने उसके रूपकी सम्पत्तिको देखकर अपनी अभीष्टकामनाको सिद्ध जाना ॥ २९ ॥

×

तिलोत्तमायां तु तदा गतायां लोकभावनः ।
सर्वान्विसर्जयामास देवानृषिगणांश्च तान् ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥ ६५३७ ॥

तिलोत्तमाके देवकार्य साधनेके लिए चले जाने पर लोकभावन ब्रह्माने उन सम्पूर्ण देव और ऋषियोंको विदा किया ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ तीनवां अध्याय समाप्त ॥ २०३ ॥ ६५३७ ॥

: २०४ :

नारद उवाच

जित्वा तु पृथिवीं दैत्यौ निःसपत्नौ गतव्यथौ ।
कृत्वा त्रैलोक्यमव्यग्रं कृतकृत्यौ बभूवतुः ॥ १ ॥

नारद बोले– इधर दैत्य, सुन्द और उपसुन्द दो भाई भूमण्डलको परास्त कर तीनों भुवनोंको हथेली तले लाकर दुःखसे रहित कर तथा शत्रुओंसे रहित होकर अपनेको सफल जाना ॥ १ ॥

देवगन्धर्वयक्षाणां नागपार्थिवरक्षसाम् ।
आदाय सर्वरत्नानि परां तुष्टिमुपागतौ ॥ २ ॥

देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, भूपाल आदिके सम्पूर्ण रत्न लेके परम सन्तुष्ट हुए ॥ २ ॥

यदा न प्रतिषेद्धारस्तयोः सन्तीह केचन ।
निरुद्योगौ तदा भूत्वा विजह्रातेऽमराविव ॥ ३ ॥

जब देखा, कि इस त्रिलोकभरमें कोई भी उनको रोकनेवाला नहीं है, तब उद्योग छोडकर देवोंकी भांति परमसुखसे विहार करने लगे ॥ ३ ॥

स्त्रीभिर्माल्यैश्च गन्धैश्च भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पुष्कलैः ।
पानैश्च विविधैर्हृद्यैः परां प्रीतिमवापतुः ॥ ४ ॥

माला, चन्दन, स्त्री, सुन्दर खाने, चबाने और चूसनेकी सामग्री इन सब भांति भांतिकी वस्तुओंसे अति आनन्द भोगने लगे ॥ ४ ॥

अन्तःपुरे वनोद्याने पर्वतोपवनेषु च ।
यथेप्सितेषु देशेषु विजह्रातेऽमराविव ॥ ५ ॥

देवोंकी भांति कभी अन्तःपुरमें, कभी वनमें, कभी फुलवारीमें, कभी पर्वत पर इस प्रकार यथेच्छ स्थानोंमें विहार करने लगे ॥ ५ ॥

ततः कदाचिद्विन्ध्यस्य पृष्ठे समशिलातले ।
पुष्पिताग्रेषु शालेषु विहारमभिजग्मतुः ॥ ६ ॥

एक दिन फूलयुक्त वृक्षोंसे सुशोभित सम शिलातलवाली विन्ध्याचलकी चोटी पर विहार करनेको गये ॥ ६ ॥

दिव्येषु सर्वकामेषु समानीतेषु तत्र तौ ।
वरासनेषु संहृष्टौ सह स्त्रीभिर्निषेदतुः ॥ ७ ॥

वहां मनमाने सम्पूर्ण दिव्य काम्य वस्तुओंको ले जाकर स्त्रियोंके साथ प्रमुदित मनसे सुन्दर आसनों पर जा बैठे ॥ ७ ॥

ततो वादित्रनृत्ताभ्यामुपातिष्ठन्त तौ स्त्रियः ।
गीतैश्च स्तुतिसंयुक्तैः प्रीत्यर्थमुपजग्मिरे ॥ ८ ॥

नारियां उनके संतोषके लिये सुन्दर नाच, गीत और स्तुतिभरे संगीतोंसे उनको प्रसन्न करने लगीं ॥ ८ ॥

ततस्तिलोत्तमा तत्र वने पुष्पाणि चिन्वती ।
वेषमाक्षिप्तमाधाय रक्तेनैकेन वाससा ॥ ९ ॥

ऐसे समय तिलोत्तमा एक ही लाल वस्त्र पहिनकर और बन ठनकर उस वनमें आकर फूल तोडने लगी ॥ ९ ॥

नदीतीरेषु जातान्सा कर्णिकारान्विचिन्वती ।
शनैर्जगाम तं देशं यत्रास्तां तौ महासुरौ ॥ १० ॥

और नदीके किनारे पैदा हुए कर्णिकारके फूलोंको तोडती हुई उस स्थान पर गई जहां दोनों दैत्य थे ॥ १० ॥

तौ तु पीत्वा वरं पानं मदरक्तान्तलोचनौ ।
दृष्ट्वैव तां वरारोहां व्यथितौ संबभूवतुः ॥ ११ ॥

वे दोनों बहुत मद पीकर आंखें लालकर नशेसे चूर थे, अतः उस सुन्दरीको देखते ही कामदेवके बाणसे घायल हो गए ॥ ११ ॥

तावुत्पत्यासनं हित्वा जग्मतुर्यत्र सा स्थिता ।
उभौ च कामसंमत्तावुभौ प्रार्थयतश्च ताम् ॥ १२ ॥

वे दोनों कामवश हो करके आसन छोडकर उठकर वहां गए, जहां वह खडी थी, उन दोनोंके मन उस पर आसक्त हो गए और दोनों उससे प्रार्थना करने लग गए ॥ १२ ॥

दक्षिणे तां करे सुभ्रूं सुन्दो जग्राह पाणिना।
उपसुन्दोऽपि जग्राह वामे पाणौ तिलोत्तमाम् ॥ १३ ॥

सुन्दने अपने हाथसे उस सुन्दर भौंहवालीका दाहिना हाथ थाम लिया और उपसुन्दने उस तिलोत्तमाका बायां हाथ पकडा ॥ १३ ॥

वरप्रदानमत्तौ तावौरसेन बलेन च।
धनरत्नमदाभ्यां च सुरापानमदेन च ॥ १४ ॥

वे एक तो वर पानेके अहङ्कार, अपने भुजवीर्यके अहंकार और धनरत्नोंके अहंकारसे तथा सुरापानसे उन्मत्त थे ही ॥ १४ ॥

सर्वैरेतैर्मदैर्मत्तावन्योन्यं भ्रुकुटीकृतौ।
मदकामसमाविष्टौ परस्परमथोचतुः ॥ १५ ॥

फिर उस पर दोनों मद्य और कामके नशेमें उन्मत्त हो गए थे; अतः एक दूसरेकी ओर भौंह चढाकर आपसमें बोले ॥ १५ ॥

मम भार्या तव गुरुरिति सुन्दोऽभ्यभाषत।
मम भार्या तव वधूरुपसुन्दोऽभ्यभाषत ॥ १६ ॥

सुन्द बोला– यह बाला मेरी स्त्री है, अतः तुमसे बडी है, तुम छोड दो। उपसुन्द बोला– यह नारी मेरी स्त्री है और तुम्हारी वधू है, तुम छोड दो ॥ १६ ॥

नैषा तव ममैषेति ततस्तौ मन्युराविशत्।
तस्या हेतोर्गदे भीमे तावुभावप्यगृह्णताम् ॥ १७ ॥

अनन्तर आपसमें ऐसा कहते हुए, कि "यह मेरी स्त्री है, तुम्हारी नहीं" दोनोंहीका क्रोध उभडा और दोनोंने उसके लिए भयंकर गदायें उठा लीं ॥ १७ ॥

तौ प्रगृह्य गदे भीमे तस्याः कामेन मोहितौ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमित्यन्योन्यं निजघ्नतुः ॥ १८ ॥

उस एक नारीके लिये काममोहित वे दोनों भाईने बडी बडी गदा उठाकर यह कहते हुए, कि "मैं पहिले, मैं पहिले" एक दूसरेको मारने लगे ॥ १८ ॥

तौ गदाभिहतौ भीमौ पेततुर्धरणीतले।
रुधिरेणावलिप्ताङ्गौ द्वाविवार्कौ नभश्च्युतौ ॥ १९ ॥

उस गदाकी चोटसे वे भयानक दोनों दैत्य मारे गए और रक्तसे नहाये हुए आकाशसे गिरे दो सूर्योंकी भांति धरती पर गिर गये ॥ १९ ॥

ततस्ता विद्रुता नार्यः स च दैत्यगणस्तदा ।
पातालमगमत्सर्वो विषादभयकम्पितः ॥ २० ॥

तब विषाद और भयसे कम्पित उनके मित्र, दैत्य और दैत्योंकी स्त्रियां भाग कर पातालमें जा घुसीं ॥ २० ॥

ततः पितामहस्तत्र सह देवैर्महर्षिभिः ।
आजगाम विशुद्धात्मा पूजयिष्यंस्तिलोत्तमाम् ॥ २१ ॥

तदनन्तर विशुद्धात्मा भगवान् पितामह तिलोत्तमाके सत्कारके लिये देव और महर्षियोंके साथ वहां आ पहुंचे ॥ २१ ॥

वरेण छन्दिता सा तु ब्रह्मणा प्रीतिमेव ह ।
वरयामास तत्रैनां प्रीतः प्राह पितामहः ॥ २२ ॥

भगवान् पितामहने वहां पहुंच कर तिलोत्तमाको वर देना चाहा । वह वर देना स्वीकार कर प्रसन्न होकर उससे बोले ॥ २२ ॥

आदित्यचरिताँल्लोकान्विचरिष्यसि भामिनि
तेजसा च सुदृष्टां त्वां न करिष्यति कश्चन ॥ २३ ॥

हे भामिनि ! तुम सूर्यलोकमें विचर सकोगी । तुम्हारा इतना तेज होगा, कि कोई पुरुष तुमको नहीं देख सकेगा ॥ २२ ॥

एवं तस्मै वरं दत्त्वा सर्वलोकपितामहः ।
इन्द्रे त्रैलोक्यमाधाय ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ॥ २४ ॥

सब लोकोंके पितामह प्रभु उसे ऐसा वर देकर और इन्द्रके हाथ तीनों लोकोंका अधिकार सौंप कर ब्रह्मलोकको सिधारे ॥ २४ ॥

एवं तौ सहितौ भूत्वा सर्वार्थेष्वेकनिश्चयौ ।
तिलोत्तमार्थे संक्रुद्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २५ ॥

हे भरतवंशश्रेष्ठो ! सुन्द और उपसुन्द दोनों भाई मित्रभावयुक्त और हर बातमें एकमत होने पर भी तिलोत्तमाके लिये क्रोधित होकर आप ही एक दूसरेको मारकर नष्ट हुए ॥२५॥

तस्माद्ब्रवीमि वः स्नेहात्सर्वान्भरतसत्तमान् ।
यथा वो नात्र भेदः स्यात्सर्वेषां द्रौपदीकृते ।
तथा कुरुत भद्रं वो मम चेत्प्रियमिच्छथ ॥ २६ ॥

अतः, स्नेहके हेतु मैं तुम भरतश्रेष्ठोंसे कहता हूं, कि तुम मेरा प्रिय कर्म करना चाहो, तो ऐसा कोई नियम निश्चित कर लो, कि द्रौपदीके लिये तुम भाइयोंमें बिगाड न हो और तुम्हारा कल्याण हो ॥ २६ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ता महात्मानो नारदेन महर्षिणा ।
समयं चक्रिरे राजंस्तेऽन्योन्येन समागताः ।
समक्षं तस्य देवर्षेर्नारदस्यामितौजसः ॥ २७ ॥

वैशम्पायन बोले– हे महाराज ! महात्मा पाण्डवोंने अमित तेजस्वी महर्षि नारदकी यह बात सुन कर एक दूसरेके मतके अनुसार उस अत्यन्त तेजस्वी देवर्षिके सामने ही यह नियम ठहराया ॥ २७ ॥

द्रौपद्या नः सहासीनमन्योन्यं योऽभिदर्शयेत् ।
स नो द्वादश वर्षाणि ब्रह्मचारी वने वसेत् ॥ २८ ॥

हममेंसे एक भाई जब द्रौपदीके साथ बैठा होगा तब जो दूसरा भाई उसको देख लेगा, उसे बारह वर्ष ब्रह्मचारी बन कर वनमें रहना होगा ॥ २८ ॥

कृते तु समये तस्मिन्पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ।
नारदोऽप्यगमत्प्रीत इष्टं देशं महामुनिः ॥ २९ ॥

धर्मचारी पाण्डवोंके ऐसा नियम बना लेने पर महामुनि नारद प्रसन्न होकर अपने इच्छित स्थानको चले गये ॥ २९ ॥

एवं तैः समयः पूर्वं कृतो नारदचोदितैः ।
न चाभिद्यन्त ते सर्वे तदान्योन्येन भारत ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥ ६५६७ ॥

हे भारत ! पहिले पाण्डवोंके नारदकी बातसे ऐसा नियम कर लेने पर उन भाइयोंमें आपसमें शत्रुता नहीं हुई ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ चौथा अध्याय समाप्त ॥ २०४ ॥ ६५६७ ॥

: २०५ :

वैशम्पायन उवाच

एवं ते समयं कृत्वा न्यवसंस्तत्र पाण्डवाः ।
वशे शस्त्रप्रतापेन कुर्वन्तोऽन्यान्महीक्षितः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद पाण्डवोंने द्रौपदीके विषयमें उस प्रकारका नियम निश्चित करके उस स्थानमें रह कर अस्त्रोंके प्रभावसे दूसरे भूपालोंको वशीभूत किया ॥ १ ॥

तेषां मनुजसिंहानां पञ्चानाममितौजसाम् ।
बभूव कृष्णा सर्वेषां पार्थानां वशवर्तिनी ॥ २ ॥

कृष्णा उन सभी बडे तेजस्वी मनुष्यसिंह पांच पाण्डवोंके वशवर्तिनी बनी रही ॥ २ ॥

ते तया तैश्च सा वीरैः पतिभिः सह पञ्चभिः ।
बभूव परमप्रीता नागैरिव सरस्वती ॥ ३ ॥

सरोवरयुक्त वन और हस्तीगण जिस प्रकार एक दूसरेका सौभाग्य बढाते हैं, वैसे ही द्रौपदी और उसके पांच पति एक दूसरेकी प्रीति बढाने लगे ॥ ३ ॥

वर्तमानेषु धर्मेण पाण्डवेषु महात्मसु ।
व्यवर्धन्कुरवः सर्वे हीनदोषाः सुखान्विताः ॥ ४ ॥

महात्मा पाण्डवोंके धर्मपथ पर चलनेके कारण कौरव भी दोषसे बचकर सुखपूर्वक वृद्धि पाने लगे ॥ ४ ॥

अथ दीर्घेण कालेन ब्राह्मणस्य विशां पते ।
कस्यचित्तस्कराः केचिज्जह्रुर्गा नृपसत्तम ॥ ५ ॥

हे नृपश्रेष्ठ राजन् ! बहुत दिन बीत जाने पर एक ब्राह्मणके घरमें घुसकर कुछ चोरोंने गौओंको चुरा लिया ॥ ५ ॥

ह्रियमाणे धने तस्मिन्ब्राह्मणः क्रोधमूर्च्छितः ।
आगम्य खाण्डवप्रस्थमुदक्रोशत पाण्डवान् ॥ ६ ॥

लुटेरोंसे गौ चुरायी जानेपर ब्राह्मण क्रोधसे मूर्च्छित होकर खाण्डवप्रस्थमें आकर चिल्ला चिल्लाकर पाण्डवोंको पुकार पुकारके बोला ॥ ६ ॥

ह्रियते गोधनं क्षुद्रैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ।
प्रसह्य वोऽस्माद्विषयादभिधावत पाण्डवाः ॥ ७ ॥

हे पाण्डवों ! तुम्हारे राज्यमें आज दुष्ट नीच निष्ठुर लुटेरे जबर्दस्ती मेरी गौ चुरा रहे हैं, तुम तुरन्त दौडो ॥ ७ ॥

ब्राह्मणस्य प्रमत्तस्य हविर्ध्वाङ्क्षैर्विलुप्यते ।
शार्दूलस्य गुहां शून्यां नीचः क्रोष्टाभिमर्शति ॥ ८ ॥

हा ! कितने दुःखकी बात है ! काकोंके द्वारा शान्त ब्राह्मणके यज्ञका घृत हरा जा रहा है, नीच सियार सिंहकी गुफा खाली देखकर उसे नष्ट रहा है ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ता महात्मानो नारदेन महर्षिणा ।
समयं चक्रिरे राजंस्तेऽन्योन्येन समागताः ।
समक्षं तस्य देवर्षेर्नारदस्यामितौजसः ॥ २७ ॥

वैशम्पायन बोले– हे महाराज ! महात्मा पाण्डवोंने अमित तेजस्वी महर्षि नारदकी यह बात सुन कर एक दूसरेके मतके अनुसार उस अत्यन्त तेजस्वी देवर्षिके सामने ही यह नियम ठहराया ॥ २७ ॥

द्रौपद्या नः सहासीनमन्योन्यं योऽभिदर्शयेत् ।
स नो द्वादश वर्षाणि ब्रह्मचारी वने वसेत् ॥ २८ ॥

हममेंसे एक भाई जब द्रौपदीके साथ बैठा होगा तब जो दूसरा भाई उसको देख लेगा, उसे बारह वर्ष ब्रह्मचारी बन कर वनमें रहना होगा ॥ २८ ॥

कृते तु समये तस्मिन्पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ।
नारदोऽप्यगमत्प्रीत इष्टं देशं महामुनिः ॥ २९ ॥

धर्मचारी पाण्डवोंके ऐसा नियम बना लेने पर महामुनि नारद प्रसन्न होकर अपने इच्छित स्थानको चले गये ॥ २९ ॥

एवं तैः समयः पूर्वं कृतो नारदचोदितैः ।
न चाभिद्यन्त ते सर्वे तदान्योन्येन भारत ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥ ६५६७ ॥

हे भारत ! पहिले पाण्डवोंके नारदकी बातसे ऐसा नियम कर लेने पर उन भाइयोंमें आपसमें शत्रुता नहीं हुई ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ चौथा अध्याय समाप्त ॥ २०४ ॥ ६५६७ ॥

: २०५ :

वैशम्पायन उवाच

एवं ते समयं कृत्वा न्यवसंस्तत्र पाण्डवाः ।
वशे शस्त्रप्रतापेन कुर्वन्तोऽन्यान्महीक्षितः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद पाण्डवोंने द्रौपदीके विषयमें उस प्रकारका नियम निश्चित करके उस स्थानमें रह कर अस्त्रोंके प्रभावसे दूसरे भूपालोंको वशीभूत किया ॥ १ ॥

तेषां मनुजसिंहानां पञ्चानाममितौजसाम् ।
बभूव कृष्णा सर्वेषां पार्थानां वशवर्तिनी ॥ २ ॥

कृष्णा उन सभी बडे तेजस्वी मनुष्यसिंह पांच पाण्डवोंके वशवर्तिनी बनी रही ॥ २ ॥

ते तया तैश्च सा वीरैः पतिभिः सह पञ्चभिः ।
बभूव परमप्रीता नागैरिव सरस्वती ॥ ३ ॥

सरोवरयुक्त वन और हस्तीगण जिस प्रकार एक दूसरेका सौभाग्य बढाते हैं, वैसे ही द्रौपदी और उसके पांच पति एक दूसरेकी प्रीति बढाने लगे ॥ ३ ॥

वर्तमानेषु धर्मेण पाण्डवेषु महात्मसु ।
व्यवर्धन्कुरवः सर्वे हीनदोषाः सुखान्विताः ॥ ४ ॥

महात्मा पाण्डवोंके धर्मपथ पर चलनेके कारण कौरव भी दोषसे बचकर सुखपूर्वक वृद्धि पाने लगे ॥ ४ ॥

अथ दीर्घेण कालेन ब्राह्मणस्य विशां पते ।
कस्यचित्तस्कराः केचिज्जह्रुर्गा नृपसत्तम ॥ ५ ॥

हे नृपश्रेष्ठ राजन् ! बहुत दिन बीत जाने पर एक ब्राह्मणके घरमें घुसकर कुछ चोरोंने गौओंको चुरा लिया ॥ ५ ॥

ह्रियमाणे धने तस्मिन्ब्राह्मणः क्रोधमूर्च्छितः ।
आगम्य खाण्डवप्रस्थमुदक्रोशत पाण्डवान् ॥ ६ ॥

लुटेरोंसे गौ चुरायी जानेपर ब्राह्मण क्रोधसे मूर्च्छित होकर खाण्डवप्रस्थमें आकर चिल्ला चिल्लाकर पाण्डवोंको पुकार पुकारके बोला ॥ ६ ॥

ह्रियते गोधनं क्षुद्रैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ।
प्रसह्य वोऽस्माद्विषयादभिधावत पाण्डवाः ॥ ७ ॥

हे पाण्डवों ! तुम्हारे राज्यमें आज दुष्ट नीच निष्ठुर लुटेरे जबर्दस्ती मेरी गौ चुरा रहे हैं, तुम तुरन्त दौडो ॥ ७ ॥

ब्राह्मणस्य प्रमत्तस्य हविर्ध्वाङ्क्षैर्विलुप्यते ।
शार्दूलस्य गुहां शून्यां नीचः क्रोष्टाभिमर्शति ॥ ८ ॥

हा ! कितने दुःखकी बात है ! काकोंके द्वारा शान्त ब्राह्मणके यज्ञका घृत हरा जा रहा है, नीच सियार सिंहकी गुफा खाली देखकर उसे नष्ट रहा है ॥ ८ ॥

ब्राह्मणस्वे हृते चोरैर्धर्मार्थे च विलोपिते।
रोरूयमाणे च मयि क्रियतामस्त्रधारणम् ॥ ९ ॥

हे पाण्डवो ! चोर ब्राह्मणका धन हर रहे हैं, धर्म कर्म लोप हो रहे हैं, मैं शोकरूपी कीचडमें डूबकर बार बार रो रहा हूं, अतः अस्त्र धारण कीजिए ॥ ९ ॥

रोरूयमाणस्याभ्याशे तस्य विप्रस्य पाण्डवः।
तानि वाक्यानि शुश्राव कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ १० ॥

कुन्तीपुत्र पाण्डव धनञ्जयने निकट आकर रोते पीटते हुए उन ब्राह्मणके वाक्योंको सुना ॥ १० ॥

श्रुत्वा चैव महाबाहुर्मा भैरित्याह तं द्विजम्।
आयुधानि च यत्रासन्पाण्डवानां महात्मनाम्।
कृष्णया सह तत्रासीद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ११ ॥

उन महाभुजने वह सुनकर ब्राह्मणको मत डरो कहकर ढाढस दिया, पर जिस घरमें महात्मा पाण्डवोंके अस्त्र रखे हुए थे, उस घरमें धर्मराज युधिष्ठिर द्रौपदीके साथ बैठे हुए थे ॥ ११ ॥

स प्रवेशाय चाशक्तो गमनाय च पाण्डवः।
तस्य चार्तस्य तैर्वाक्यैश्चोद्यमानः पुनः पुनः।
आक्रन्दे तत्र कौन्तेयश्चिन्तयामास दुःखितः ॥ १२ ॥

अतः वह उस भयभीत ब्राह्मणकी उन बातोंसे बारबार प्रेरित होने पर भी निश्चित किए हुए नियमके अनुसार अस्त्रशालामें प्रवेश नहीं कर सके, अतः ब्राह्मणके उस आर्तनादको सुनकर दुःखीचित्तसे सोचने लगे ॥ १२ ॥

ह्रियमाणे धने तस्मिन्ब्राह्मणस्य तपस्विनः।
अश्रुप्रमार्जनं तस्य कर्तव्यमिति निश्चितः ॥ १३ ॥

सोचकर उन्होंने निश्चय किया कि इस तपस्वी ब्राह्मणकी गौएं चुरायी जाती हैं, अतः उन्हें बचाकर इसके आंसू अवश्य पोंछने चाहिये ॥ १३ ॥

उपप्रेक्षणजोऽधर्मः सुमहान्स्यान्महीपतेः।
यद्यस्य रुदतो द्वारि न करोम्यद्य रक्षणम् ॥ १४ ॥

द्वारपर आकर रोनेवाले इस ब्राह्मणकी रक्षा न करूं तो मुझ राजाको उपेक्षा रूप बडा अधर्म लग जाएगा ॥ १४ ॥

अनास्तिक्यं च सर्वेषामस्माकमपि रक्षणे।
प्रतितिष्ठेत लोकेऽस्मिन्नधर्मश्चैव नो भवेत् ॥ १५ ॥

इसके अलावा यह भी बात फैल जायगी, कि पाण्डव आर्तोंके रक्षक नहीं हैं और हमें अधर्म भी लगेगा ॥ १५ ॥

अनापृच्छय च राजानं गते मयि न संशयः ।
अजातशत्रोर्नृपतेर्मम चैवाप्रियं भवेत् ॥ १६ ॥

पर राजासे बिना पूछे वहां जानेपर अजातशत्रु युधिष्ठिर और मेरा दोनोंका अप्रिय होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥

अनुप्रवेशे राज्ञस्तु वनवासो भवेन्मम ।
अधर्मो वा महानस्तु वने वा मरणं मम ।
शरीरस्यापि नाशेन धर्म एव विशिष्यते ॥ १७ ॥

और उनके सामने जानेसे मुझको वनमें जाना पडेगा । पर चाहे अधर्म हो और वनमें चाहे मृत्यु ही हो (घरमें जाकर भी इस ब्राह्मणकी रक्षा करनी ही होगी) क्योंकि शरीरके नाशकी अपेक्षा भी धर्म बडा है ॥ १७ ॥

एवं विनिश्चित्य ततः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अनुप्रविश्य राजानमापृच्छय च विशां पते ॥ १८ ॥

हे नरनाथ ! तब कुन्तीपुत्र धनंजय ऐसा निश्चय कर अस्त्रशालामें घुस राजा युधिष्ठिरसे मिलकर ॥ १८ ॥

धनुरादाय संहृष्टो ब्राह्मणं प्रत्यभाषत ।
ब्राह्मणागम्यतां शीघ्रं यावत्परधनैषिणः ॥ १९ ॥

और धनुष लेकर प्रसन्न मनसे बाहर आकर ब्राह्मणसे बोले– हे द्विज ! शीघ्र चलो, पराये धनके लोभी नीच लुटेरोंके ॥ १९ ॥

न दूरे ते गताः क्षुद्रास्तावद्गच्छामहे सह ।
यावदावर्तयाम्यद्य चोरहस्ताद्धनं तव ॥ २० ॥

बडी दूर जाते न जाते हम एकत्र चलकर उनके हाथसे तुम्हारे चुराये हुए धनको चोरोंके हाथसे छीनूंगा ॥ २० ॥

सोऽनुसृत्य महाबाहुर्धन्वी वर्मी रथी ध्वजी ।
शरैर्विध्वंसितांश्चोरानवजित्य च तद्धनम् ॥ २१ ॥

महाभुज पृथापुत्र सव्यसाची धनञ्जय यह कहकर कवच कसकर धनुष लेकर ध्वजा फहराते हुए रथ पर चढे और उन्होंने वेगसे लुटेरोंको बाणोंसे काटकर धन जीत लिया ॥ २१ ॥

ब्राह्मणस्य उपाहृत्य यशः पीत्वा च पाण्डवः ।
आजगाम पुरं वीरः सव्यसाची परंतपः ॥ २२ ॥

और उन ब्राह्मणको उनकी गौ देकर तथा यश पाकर वह शत्रुनाशी सव्यसाची वीर अपने पुरमें लौट आए ॥ २२ ॥

×

सोऽभिवाद्य गुरून्सर्वांस्तैश्चापि प्रतिनन्दितः ।
धर्मराजमुवाचेदं व्रतमादिश्यतां मम ॥ २३ ॥

सब गुरुओंका अभिनन्दन कर उनसे स्वागत पाकर उन्होंने धर्मराजसे कहा— हे प्रभो ! आप मुझे व्रत करनेकी आज्ञा दें ॥ २३ ॥

समयः समतिक्रान्तो भवत्संदर्शनान्मया ।
वनवासं गमिष्यामि समयो ह्येष नः कृतः ॥ २४ ॥

हे प्रभो ! मैंने द्रौपदीके संग आपको देखकर निश्चित किए हुए नियमको तोड दिया है, मैं वनवासको जाऊंगा क्योंकि यह नियम हमने ही बनाया है ॥ २४ ॥

इत्युक्तो धर्मराजस्तु सहसा वाक्यमप्रियम् ।
कथमित्यब्रवीद्वाचा शोकार्तः सज्जमानया ।
युधिष्ठिरो गुडाकेशं भ्राता भ्रातरमच्युतम् ॥ २५ ॥

धर्मराज युधिष्ठिर एकाएक भाई अर्जुनकी यह अप्रिय बात सुन करके ही, शोकसे बिकल हुए; और कुछ टूटी फूटी वाणीसे कहा— " क्यों ? " और युधिष्ठिर मलिन चित्तसे अपने अच्युत भाई गुडाकेश धनञ्जयसे बोले ॥ २५ ॥

प्रमाणमस्मि यदि ते मत्तः शृणु वचोऽनघ ।
अनुप्रवेशे यद्वीर कृतवांस्त्वं ममाप्रियम् ।
सर्वं तदनुजानामि व्यलीकं न च मे हृदि ॥ २६ ॥

हे अनघ ! यदि मैं तुम्हारे लिये प्रमाण हूं, तो मेरी बात सुनो। मैं जब द्रौपदीके साथ बैठा हुआ था तब मेरे यहां जाकर मेरा जो अप्रिय तुमने किया है, उससे मेरे चित्तमें असंतोष नहीं पहुंचा । उस विषयमें मैं तुमको आज्ञा देता हूं ॥ २६ ॥

गुरोरनुप्रवेशो हि नोपघातो यवीयसः ।
यवीयसोऽनुप्रवेशो ज्येष्ठस्य विधिलोपकः ॥ २७ ॥

जब बडे भाई स्त्रीके साथ बैठा हो, तब छोटेके उस घरमें जानेसे कोई हानि नहीं होती, पर ज्येष्ठ भाईहीका कनिष्ठके घरमें जाना नियमके विरुद्ध है ॥ २७ ॥

निवर्तस्व महाबाहो कुरुष्व वचनं मम ।
न हि ते धर्मलोपोऽस्ति न च मे धर्षणा कृता ॥ २८ ॥

अतः, हे महाभुज ! रह जाओ, मेरी बात मानो । अतएव इससे तुम्हारा धर्मलोप नहीं हुआ और मेरा अपमान भी नहीं हुआ ॥ २८ ॥

अर्जुन उवाच

न व्याजेन चरेद्धर्ममिति मे भवतः श्रुतम् ।
न सत्याद्विचलिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥ २९ ॥

अर्जुन बोले– मैंने आपसे सुना है, कि छलपूर्वक धर्मका आचरण नहीं करना चाहिए, अतः मैं सत्यसे टल नहीं सकूंगा । मैं सत्यसे अस्त्रकी शपथ ले रहा हूँ ॥ २९ ॥

वैशम्पायन उवाच

सोऽभ्यनुज्ञाप्य राजानं ब्रह्मचर्याय दीक्षितः ।
वने द्वादश वर्षाणि वासायोपजगाम ह ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥ ६५२७ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर अर्जुन राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर ब्रह्मचर्यमें दीक्षित हो बारह वर्ष वनवासके लिये वन चले गये ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ पांचवां अध्याय समाप्त ॥ २०५ ॥ ६५२७ ॥

: २०६ :

वैशम्पायन उवाच

तं प्रयान्तं महाबाहुं कौरवाणां यशस्करम् ।
अनुजग्मुर्महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर उस महाबाहु कुरुकुलके कीर्तिरूपी महाभुज अर्जुनके चलनेपर महात्मा वेदज्ञ ब्राह्मण आदि उनके साथ चले ॥ १ ॥

वेदवेदाङ्गविद्वांसस्तथैवाध्यात्मचिन्तकाः ।
चौक्षाश्च भगवद्भक्ताः सूताः पौराणिकाश्च ये ॥ २ ॥

हे महाराज ! वेदपारग और वेदवेदाङ्गोंमें पण्डित, अध्यात्मकी चिन्ता करनेवाले ब्राह्मण, गानके पण्डित, पुराणकी कथा कहनेवाले सूत ॥ २ ॥

कथकाश्चापरे राजञ्श्रमणाश्च वनौकसः ।
दिव्याख्यानानि ये चापि पठन्ति मधुरं द्विजाः ॥ ३ ॥

भगवद्भक्त कथक, ऊर्ध्वरेता वनवासी और जो मधुर भावसे सुन्दर उपाख्यानका पाठ करते हैं ॥ ३ ॥

एतैश्चान्यैश्च बहुभिः सहायैः पाण्डुनन्दनः ।
वृतः श्लक्ष्णकथैः प्रायान्मरुद्भिरिव वासवः ॥ ४ ॥

इन सब जन और दूसरे साथियोंके संग मरुद्गणके साथ चलते हुए देवराजकी भांति अर्जुन चलने लगे ॥ ४ ॥

रमणीयानि चित्राणि वनानि च सरांसि च ।
सरितः सागरांश्चैव देशानपि च भारत ॥ ५ ॥
पुण्यानि चैव तीर्थानि ददर्श भरतर्षभः ।
स गङ्गाद्वारमासाद्य निवेशमकरोत्प्रभुः ॥ ६ ॥

हे भारत ! अनेक प्रकारके सुन्दर सुन्दर वन, सरोवर, नदी, समुद्र, भांति भांतिके देश और पुण्यतीर्थोंको उस भरतश्रेष्ठ अर्जुनने देखा । और वे प्रभु गंगाद्वारमें पहुंचकर वहां रहने लगे ॥ ५-६ ॥

तत्र तस्याद्भुतं कर्म शृणु मे जनमेजय ।
कृतवान्यद्विशुद्धात्मा पाण्डूनां प्रवरो रथी ॥ ७ ॥

हे जनमेजय ! पाण्डववर विशुद्धात्मा रथी अर्जुनने उस स्थानमें जो अद्भुत कर्म किया वह कहता हूं, सुनो ॥ ७ ॥

निविष्टे तत्र कौन्तेये ब्राह्मणेषु च भारत ।
अग्निहोत्राणि विप्रास्ते प्रादुश्चक्रुरनेकशः ॥ ८ ॥

कुन्तीपुत्रके साथ ब्राह्मणोंके वहां विराजनेपर वे सब ब्राह्मण नाना प्रकारके अग्निहोत्र प्रकट करने लगे ॥ ८ ॥

तेषु प्रबोध्यमानेषु ज्वलितेषु हुतेषु च ।
कृतपुष्पोपहारेषु तीरान्तरगतेषु च ॥ ९ ॥
कृताभिषेकैर्विद्वद्भिर्नियतैः सत्पथि स्थितैः ।
शुशुभेऽतीव तद्राजन्गङ्गाद्वारं महात्मभिः ॥ १० ॥

उन सब अग्निहोत्रोंके प्रबोधित और फूलोंसे सुशोभित होने तथा ज्वलित और आहुति दिये जाने पर और गंगातीरमें अभिषेक किए हुए, नियतेन्द्रिय तथा सन्मार्गमें स्थित उन महात्माओंके कारण उस गंगाद्वारकी बडी शोभा हुई ॥ ९-१० ॥

तथा पर्याकुले तस्मिन्निवेशे पाण्डुनन्दनः ।
अभिषेकाय कौन्तेयो गङ्गामवततार ह ॥ ११ ॥

एक समय पाण्डुनन्दन अर्जुन नहानेके लिये द्विजोंसे भरे हुए आश्रमके निकट भागीरथीके जलमें उतरे ॥ ११ ॥

तत्राभिषेकं कृत्वा स तर्पयित्वा पितामहान् ।
उत्तितीर्षुर्जलाद्राजन्नग्निकार्यचिकीर्षया ॥ १२ ॥

महाराज ! वह नहा धोकर पितरोंका तर्पण कर अग्निकार्य करनेकी इच्छासे जलसे उठना चाहते थे ॥ १२ ॥

अपकृष्टो महाबाहुर्नागराजस्य कन्यया ।
अन्तर्जले महाराज उलूप्या कामयानया ॥ १३ ॥

उसी समय पाताल रहनेवाली उलूपी नामकी नागराज पुत्री काममोहित होकर उनको जलमें घसीट कर ले गयी ॥ १३ ॥

ददर्श पाण्डवस्तत्र पावकं सुसमाहितम् ।
कौरव्यस्याथ नागस्य भवने परमार्चिते ॥ १४ ॥

तब उन पाण्डव अर्जुनने कौरव्य नामक सर्पराजके परम सुन्दर भवनमें जाकर प्रज्ज्वलित अग्निको देखा ॥ १४ ॥

तत्राग्निकार्यं कृतवान्कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अशङ्कमानेन हुतस्तेनातुष्यद्धुताशनः ॥ १५ ॥

और भली प्रकार अर्जुनने उसमें अग्निकार्य किया । उनके शंकारहित चित्तसे आहुति देनेसे अग्निको बडा सन्तोष हुआ ॥ १५ ॥

अग्निकार्यं स कृत्वा तु नागराजसुतां तदा ।
प्रहसन्निव कौन्तेय इदं वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥

कुन्तीपुत्र धनञ्जय इस अग्निकार्यके हो जाने पर मुसकराते हुए नागराजकन्यासे यह वचन बोले ॥ १६ ॥

किमिदं साहसं भीरु कृतवत्यसि भामिनि ।
कश्चायं सुभगो देशः का च त्वं कस्य चात्मजा ॥ १७ ॥

हे भामिनि ! हे सुन्दरी ! तुमने यह क्या साहस किया ? हे भीरु ! यह सुन्दर देश कौनसा है ? और तुम कौन ? किसकी कन्या हो ? ॥ १७ ॥

उलूप्युवाच

ऐरावतकुले जातः कौरव्यो नाम पन्नगः ।
तस्यास्मि दुहिता पार्थ उलूपी नाम पन्नगी ॥ १८ ॥

उलूपी बोली– हे पार्थ ! ऐरावतवंशमें उत्पन्न कौरव्य नामक एक नागराज हैं, हे अर्जुन ! मैं उनकी कन्या उलूपी नामकी पन्नगी हूं ॥ १८ ॥

साहं त्वामभिषेकार्थमवतीर्णं समुद्रगाम् ।
दृष्ट्वत्येव कौन्तेय कन्दर्पेणास्मि मूर्च्छिता ॥ १९ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! तुम स्नानके लिये जब गङ्गामें उतरे, तब मैं तुमको देख करके मदनबाणसे घायल हो गई ॥ १९ ॥

तां मामनङ्गमथितां त्वत्कृते कुरुनन्दन ।
अनन्यां नन्दयस्वाद्य प्रदानेनात्मनो रहः ॥ २० ॥

हे कुरुनन्दन ! मेरा विवाह नहीं हुआ, मैं किसीसे पहिले मिली नहीं, अब तुम्हारे लिये कामसे मोहित हुई हूं । हे अनघ! अब तुम आत्मदान करके मुझे आनन्द दो ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच

ब्रह्मचर्यमिदं भद्रे मम द्वादशवार्षिकम् ।
धर्मराजेन चादिष्टं नाहमस्मि स्वयंवशः ॥ २१ ॥

अर्जुन बोले– हे भद्रे ! मैंने धर्मराजकी आज्ञासे बारहवर्षके लिये ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार किया है, अतः मैं अपने अधीन नहीं हूं; ॥ २१ ॥

तव चापि प्रियं कर्तुमिच्छामि जलचारिणि ।
अनृतं नोक्तपूर्वं च मया किंचन कर्हिचित् ॥ २२ ॥

पर, हे जलमें विचरनेवाली ! तुम्हारा प्रिय भी करना चाहता हूं; पर मैंने पहिले कभी झूठी बात नहीं कही ॥ २२ ॥

कथं च नानृतं तत्स्यात्तव चापि प्रियं भवेत् ।
न च पीडयेत मे धर्मस्तथा कुर्यां भुजङ्गमे ॥ २३ ॥

अतः, हे भुजङ्गमे ! तुम ऐसा उपाय बताओ कि मेरी बातकी सचाई बनी रहे और तुम्हारा प्रिय भी कर सकूं और मुझको अधर्ममें पडना न पडे ॥ २३ ॥

उलूप्युवाच

जानाम्यहं पाण्डवेय यथा चरसि मेदिनीम् ।
यथा च ते ब्रह्मचर्यमिदमादिष्टवान्गुरुः ॥ २४ ॥

उलूपी बोली– हे पाण्डव ! तुम जिस कारण पृथ्वीका भ्रमण कर रहे हो और गुरुने जिस प्रकार तुमको ब्रह्मचर्य व्रत करनेकी आज्ञा दी है, वह सब कुछ मैं जानती हूं ॥ २४ ॥

परस्परं वर्तमानान्द्रुपदस्यात्मजां प्रति ।
यो नोऽनुप्रविशेन्मोहात्स नो द्वादशवार्षिकम् ।
वने चरेद्ब्रह्मचर्यमिति वः समयः कृतः ॥ २५ ॥

तुमने नियम किया था, कि तुम पांच भाइयोंमें कोई जब द्रौपदीसे मिलता हो, तब जो मोहसे वहां जा पहुंचेगा, उसको बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य लेकर वनमें जाना पडेगा ॥ २५ ॥

तदिदं द्रौपदीहेतोरन्योन्यस्य प्रवासनम् ।
कृतं वस्तत्र धर्मार्थमत्र धर्मो न दुष्यति ॥ २६ ॥

तुममें आपसका वनमें जानेका यह नियम केवल द्रौपदीके कारण ही है, अतः तुम केवल उस धर्मकी रक्षाहीके लिये भेजे गये हो; ऐसी दशामें तुम्हारे धर्म बिगडनेकी कौनसी सम्भावना है ? ॥ २६ ॥

परित्राणं च कर्तव्यमार्तानां पृथुलोचन
कृत्वा मम परित्राणं तव धर्मो न लुप्यते ॥ २७ ॥

हे सुन्दर नेत्रवाले पुरुष ! विह्वल जनको बचाना कर्तव्य है, अतः मुझको विह्वल जानकर मेरी रक्षा करने पर तुम्हारा धर्म लुप्त नहीं होगा ॥ २७ ॥

यदि वाप्यस्य धर्मस्य सूक्ष्मोऽपि स्याद्व्यतिक्रमः ।
स च ते धर्म एव स्याद्दत्वा प्राणान्ममार्जुन ॥ २८ ॥

हे अर्जुन ! यद्यपि इसमें धर्मकी कुछ हानि होती भी है, तो मुझको प्राण देनेसे तुम्हारा वह धर्म ही बना रहेगा ॥ २८ ॥

भक्तां भजस्व मां पार्थ सतामेतन्मतं प्रभो ।
न करिष्यसि चेदेवं मृतां मामुपधारय ॥ २९ ॥

हे पार्थ ! तुझ पर अनुरक्त हुई हुई मेरा तुम उपभोग करो । यही सज्जनोंका धर्म है । हे प्रभो ! यदि तुम यह नहीं करोगे, तो मुझको मरी हुई ही समझो ॥ २९ ॥

प्राणदानान्महाबाहो चर धर्ममनुत्तमम् ।
शरणं च प्रपन्नास्मि त्वामद्य पुरुषोत्तम ॥ ३० ॥

हे पुरुषोत्तम महाभुज ! आज मैंने तुम्हारी शरण ली है, मुझको प्राण देकर परम धर्मका आचरण करो ॥ ३० ॥

दीनाननाथान्कौन्तेय परिरक्षसि नित्यशः ।
साहं शरणमभ्येमि रोरवीमि च दुःखिता ॥ ३१ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! मैं अनाथ और दीन होकर बार बार रोती हुई तुम्हारी शरण लेती हूं, तुम भी दीनों और अनाथोंकी सदा रक्षा करते हो ॥ ३१ ॥

याचे त्वामभिकामाहं तस्मात्कुरु मम प्रियम् ।
स त्वमात्मप्रदानेन सकामां कर्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥

मैं तुम्हारी अभिलाषा कर रही हूं, तुमसे भीख मांगती हूं, अतः तुमको मेरा प्रिय करना चाहिये । अतएव तुम अपनेको सौंप कर मेरी अभिलाषा पूरी करो ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु कौन्तेयः पन्नगेश्वरकन्यया ।
कृतवांस्तत्तथा सर्वं धर्ममुद्दिश्य कारणम् ॥ ३३ ॥

वैशम्पायन बोले– नागराजकी पुत्रीके द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर अर्जुनने उसका कथन धर्मके अनुकूल समझ कर उसकी सभी इच्छायें पूरी कीं ॥ ३३ ॥

स नागभवने रात्रिं तामुषित्वा प्रतापवान् ।
उदितेऽभ्युत्थितः सूर्ये कौरव्यस्य निवेशनात् ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥ ६६३१ ॥

प्रतापी अर्जुन उस कौरव्य नामक सर्पराजके भवनमें वह रात बिता कर सूर्योदयके समय उस कौरव्यके भवनसे चल पडे ॥ ३४ ॥

महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ छैवां अध्याय समाप्त ॥ २०६ ॥ ६६३१ ॥

: २०७ :

वैशम्पायन उवाच

कथयित्वा तु तत्सर्वं ब्राह्मणेभ्यः स भारत ।
प्रययौ हिमवत्पार्श्वं ततो वज्रधरात्मजः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर वज्रधारी इन्द्रके पुत्र ब्राह्मणोंसे पहिले दिनका सब समाचार कहकर हिमालयके पास गये ॥ १ ॥

अगस्त्यवटमासाद्य वसिष्ठस्य च पर्वतम् ।
भृगुतुङ्गे च कौन्तेयः कृतवाञ्शौचमात्मनः ॥ २ ॥

वहां अगस्त्य वटको देखकर वसिष्ठ पर्वतमें जा पहुंचे और भृगुतुङ्ग नामक पर्वत पर अपनी शौचक्रिया करके अर्जुनने अपनी शुद्धि की ॥ २ ॥

प्रददौ गोसहस्राणि तीर्थेष्वायतनेषु च ।
निवेशांश्च द्विजातिभ्यः सोऽददत्कुरुसत्तमः ॥ ३ ॥

उस कुरुश्रेष्ठ अर्जुनने तीर्थस्थानोंमें अनेक सहस्र गौ और गृह ब्राह्मणोंको दान किये ॥ ३ ॥

हिरण्यबिन्दोस्तीर्थे च स्नात्वा पुरुषसत्तमः ।
दृष्टवान्पर्वतश्रेष्ठं पुण्यान्यायतनानि च ॥ ४ ॥

इसके बाद पुरुषोत्तम अर्जुनने हिरण्यबिन्दु नामक तीर्थमें नहा धोकर उस पर्वतश्रेष्ठ एवं वहांके पुण्यस्थानोंको देखा ॥ ४ ॥

अवतीर्य नरश्रेष्ठो ब्राह्मणैः सह भारत ।
प्राचीं दिशमभिप्रेप्सुर्जगाम भरतर्षभः ॥ ५ ॥

तदनन्तर, हे भारत ! ब्राह्मणोंके साथ उस स्थानमें उतर कर पूर्वदिशाको देखनेकी इच्छासे वे भरतश्रेष्ठ आगे चले ॥ ५ ॥

आनुपूर्व्येण तीर्थानि दृष्टवान्कुरुसत्तमः ।
नदीं चोत्पलिनीं रम्यामरण्यं नैमिषं प्रति ॥ ६ ॥

हे भारत ! उन कौरवश्रेष्ठने क्रमसे तीर्थोंको देखा; नैमिषारण्यसे बहती हुई सुन्दर उत्पलिनी नदी ॥ ६ ॥

नन्दामपरनन्दां च कौशिकीं च यशस्विनीम् ।
महानदीं गयां चैव गङ्गामपि च भारत । ॥ ७ ॥

हे भारत ! गया और यशस्विनी महानदी, गङ्गा, कौशिकी, नन्दा और अपरनन्दा ॥७॥

एवं सर्वाणि तीर्थानि पश्यमानस्तथाश्रमान् ।
आत्मनः पावनं कुर्वन्ब्राह्मणेभ्यो ददौ वसु ॥ ८ ॥

और अन्यान्य तीर्थ तथा आश्रमोंका दर्शन करते हुए आत्माको पवित्र कर ब्राह्मणोंको धन दान दिया ॥ ८ ॥

अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु यानि पुण्यानि कानिचित् ।
जगाम तानि सर्वाणि तीर्थान्यायतनानि च ।
दृष्ट्वा च विधिवत्तानि धनं चापि ददौ ततः ॥ ९ ॥

अङ्ग, वङ्ग और कलिङ्ग देशोंमें जितने तीर्थ और पवित्र स्थान हैं, उन्होंने उन पवित्र स्थानोंमें जाकर उनका दर्शन कर उन स्थानोंमें ब्राह्मणोंको धन दान दिया ॥ ९ ॥

कलिङ्गराष्ट्रद्वारेषु ब्राह्मणाः पाण्डवानुगाः ।
अभ्यनुज्ञाय कौन्तेयमुपावर्तन्त भारत ॥ १० ॥

हे भरतनन्दन ! जो सब ब्राह्मण कुन्तीनन्दनके साथ जा रहे थे, वे कलिङ्ग राज्यके द्वार अर्थात् वहांकी पर्वत-सन्धितक जाकर उनकी आज्ञासे लौट गये ॥ १० ॥

स तु तैरभ्यनुज्ञातः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
सहायैरल्पकैः शूरः प्रययौ येन सागरम् ॥ ११ ॥

कुन्तीपुत्र वीर धनञ्जय द्विजोंकी आज्ञासे थोडे मनुष्योंको साथमें लेकर उस ओर चले जहां सागर था ॥ ११ ॥

स कलिङ्गानतिक्रम्य देशानायतनानि च ।
धर्म्याणि रमणीयानि प्रेक्षमाणो ययौ प्रभुः ॥ १२ ॥

वह प्रभु कलिङ्ग देशको पारकर नाना देश, आश्रम और बडे बडे तथा सुन्दर धर्मस्थलोंको देखते हुए चले ॥ १२ ॥

महेन्द्रपर्वतं दृष्ट्वा तापसैरुपशोभितम् ।
समुद्रतीरेण शनैर्मणलूरं जगाम ह ॥ १३ ॥

क्रमसे तपस्वियोंसे सुशोभित महेन्द्र पर्वतको देखकर समुद्रतीरसे मणलूरमें जा पहुंचे ॥ १३ ॥

तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
अभिगम्य महाबाहुरभ्यगच्छन्महीपतिम् ।
मणलूरेश्वरं राजन्धर्मज्ञं चित्रवाहनम् ॥ १४ ॥

हे महाराज ! वह महाभुज उस देशमें पुण्यतीर्थ और यज्ञ स्थानोंको देखकर अन्तमें मणलूरनाथ चित्रवाहन नामक धर्मज्ञ महीपालके निकट गये ॥ १४ ॥

तस्य चित्राङ्गदा नाम दुहिता चारुदर्शना ।
तां ददर्श पुरे तस्मिन्विचरन्तीं यदृच्छया ॥ १५ ॥

उस राजाकी चित्राङ्गदा नामकी एक सुन्दरी कन्या थी उसे उस नगरमें स्वेच्छानुसार घूमते हुए अर्जुनने देखा ॥ १५ ॥

दृष्ट्वा च तां वरारोहां चकमे चैत्रवाहिनीम् ।
अभिगम्य च राजानं ज्ञापयत्स्वं प्रयोजनम् ।
तमुवाचाथ राजा स सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥ १६ ॥

और उस चित्रवाहनकी सुन्दरी पुत्रीको देखकर अर्जुन कामके वशमें हो गये और राजाके पास पहुंचकर उन्होंने अपने आनेका प्रयोजन बताया, तब राजा मीठी बातोंमें उनसे यह बोले ॥ १६ ॥

राजा प्रभंकरो नाम कुले अस्मिन्बभूव ह ।
अपुत्रः प्रसवेनार्थी तपस्तेपे स उत्तमम् ॥ १७ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस कुलमें प्रभंकर नामक एक राजाने जन्म लिया था । उनकी सन्तान न होनेसे वह सन्तानकी कामनासे भली प्रकार तप करने लगे ॥ १७ ॥

उग्रेण तपसा तेन प्रणिपातेन शंकरः ।
ईश्वरस्तोषितस्तेन महादेव उमापतिः ॥ १८ ॥

उन्होंने अपने उग्र तपसे और नमस्कारसे महादेव, उमापति, ईश्वर शंकरको प्रसन्न किया ॥ १८ ॥

स तस्मै भगवान्प्रादादेकैकं प्रसवं कुले ।
एकैकः प्रसवस्तस्माद्भवत्यस्मिन्कुले सदा ॥ १९ ॥

उन्होंने उनको वर दिया, कि पुरुषोंकी परम्परासे उनके इस वंशमें एक एक सन्तान जन्म लेगी । इसलिये हमारे कुलमें सदा एक ही सन्तान उत्पन्न होती है ॥ १९ ॥

तेषां कुमाराः सर्वेषां पूर्वेषां मम जज्ञिरे ।
कन्या तु मम जातेयं कुलस्योत्पादनी ध्रुवम् ॥ २० ॥

मेरे सब पूर्वजोंके पुत्र उपजे थे । पर निश्चयसे मेरे वंशको बढानेवाली यह एक ही कन्या मेरे हुई है ॥ २० ॥

पुत्रो ममेयमिति मे भावना पुरुषोत्तम ।
पुत्रिका हेतुविधिना संज्ञिता भरतर्षभ ॥ २१ ॥

इसलिए, हे पुरुषोत्तम ! यह मेरा पुत्र ही है, ऐसी इसमें मेरी भावना है । हे भारतवर ! मैंने इस कन्याको विधि-पूर्वक पुत्रिका (इसके पेट जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही मेरा पुत्र होगा, इस दृष्टिसे) बनाया है ॥ २१ ॥

एतच्छुल्कं भवत्वस्याः कुलकृज्जायतामिह ।
एतेन समयेनेमां प्रतिगृह्णीष्व पाण्डव ॥ २२ ॥

वही इस कन्याका शुल्क हो और मेरे वंशकी रक्षा करे, इस शर्तके अनुसार, हे अर्जुन ! तुम मेरी यह कन्या ग्रहण करो ॥ २२ ॥

स तथेति प्रतिज्ञाय कन्यां तां प्रतिगृह्य च ।
उवास नगरे तस्मिन्कौन्तेयस्त्रिहिमाः समाः ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०७ ॥ ६६५४ ॥

कुन्ती-पुत्र अर्जुनने "तथास्तु" कहकर मान लिया । और उस कन्यासे विवाह कर उस नगरमें अर्जुनने तीन वर्ष बिताये ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ सातवां अध्याय समाप्त ॥ २०७ ॥ ६६५४ ॥

: २०८ :

वैशम्पायन उवाच

ततः समुद्रे तीर्थानि दक्षिणे भरतर्षभः ।
अभ्यगच्छत्सुपुण्यानि शोभनानि तपस्विभिः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन दक्षिण समुद्रके किनारेपर स्थित एवं तपस्वियोंसे शोभायमान सब पुण्य तीर्थोंमें गये ॥ १ ॥

वर्जयन्ति स्म तीर्थानि पञ्च तत्र तु तापसाः ।
आचीर्णानि तु यान्यासन्पुरस्तात्तु तपस्विभिः ॥ २ ॥

वहां पहले तपस्वियोंसे व्याप्त जो पांच थे, वे तीर्थ इस समय तपस्वियों द्वारा त्याग दिए गए थे ॥ २ ॥

अगस्त्यतीर्थं सौभद्रं पौलोमं च सुपावनम् ।
कारन्धमं प्रसन्नं च हयमेधफलं च यत् ।
भारद्वाजस्य तीर्थं च पापप्रशमनं महत् ॥ ३ ॥

अगस्त्य, सौभद्र, परम पवित्र पौलोम और अश्वमेधका फल देनेवाला कारन्धम और पापको शान्त करनेवाला भारद्वाज यह पांच महातीर्थ थे ॥ ३ ॥

विविक्तान्युपलक्ष्याथ तानि तीर्थानि पाण्डवः ।
दृष्ट्वा च वर्ज्यमानानि मुनिभिर्धर्मबुद्धिभिः ॥ ४ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनने उन पञ्चतीर्थोंको निर्जन और धर्मज्ञ मुनियोंसे त्यागे हुए देखा ॥ ४ ॥

तपस्विनस्ततोऽपृच्छत्प्राञ्जलिः कुरुनन्दनः ।
तीर्थानीमानि वर्ज्यन्ते किमर्थं ब्रह्मवादिभिः ॥ ५ ॥

तब कुरुनन्दन अर्जुनने हाथ जोडकर तपस्वियोंसे पूछा कि ब्रह्मवादी ब्राह्मण लोग यह पञ्चतीर्थ क्यों छोड देते हैं ? ॥ ५ ॥

तापसा ऊचुः

ग्राहाः पञ्च वसन्त्येषु हरन्ति च तपोधनान् ।
अत एतानि वर्ज्यन्ते तीर्थानि कुरुनन्दन ॥ ६ ॥

तपस्वीगण बोले– हे कुरुनन्दन ! इन पञ्चतीर्थोंके जलमें पांच ग्राह हैं, वे तपस्वियोंको मार डालते हैं, अतः मुनिलोग इन तीर्थोंमें नहीं बसते ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच

तेषां श्रुत्वा महाबाहुर्वार्यमाणस्तपोधनैः ।
जगाम तानि तीर्थानि द्रष्टुं पुरुषसत्तमः ॥ ७ ॥

वैशम्पायन बोले– पुरुषोत्तम महाभुज अर्जुन तपोधनोंका वह वचन सुनकर उनसे रोके जानेपर भी उन सब तीर्थोंको देखने गये ॥ ७ ॥

ततः सौभद्रमासाद्य महर्षेस्तीर्थमुत्तमम् ।
विगाह्य सहसा शूरः स्नानं चक्रे परंतपः ॥ ८ ॥

पहिले महर्षि सम्बन्धी सौभद्र नामक अच्छे तीर्थमें पहुंच कर उसमें एकाएक देहको डुबाकर वह शत्रुनाशी शूर अर्जुन नहाने लगे ॥ ८ ॥

अथ तं पुरुषव्याघ्रमन्तर्जलचरो महान् ।
निजग्राह जले ग्राहः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ ९ ॥

इसी समयमें जलके भीतर चलनेवाले एक बडे ग्राहने उन शत्रुदमन तथा वीरपुरुषोंमें व्याघ्र-रूपी कुन्तीपुत्र धनञ्जयको जलमें पकड लिया ॥ ९ ॥

स तमादाय कौन्तेयो विस्फुरन्तं जलेचरम् ।
उदतिष्ठन्महाबाहुर्बलेन बलिनां वरः ॥ १० ॥

महाबली महाभुज पाण्डुपुत्र उस फुर्तीले जलचर मगरको लेकर बलपूर्वक तट पर चले आये ॥ १० ॥

उत्कृष्ट एव तु ग्राहः सोऽर्जुनेन यशस्विना ।
बभूव नारी कल्याणी सर्वाभरणभूषिता ।
दीप्यमाना श्रिया राजन्दिव्यरूपा मनोरमा ॥ ११ ॥

हे महाराज ! जलचर ग्राह यशस्वी अर्जुनके द्वारा बाहर खींचे जानेके साथ ही सभी अलंकारोंसे विभूषित एक परम सुन्दरी स्त्री बन गया। वह सुन्दरी शोभासे प्रदीप्त दिव्य रूपवाली और मनोरम थी ॥ ११ ॥

तदद्भुतं महद्दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
तां स्त्रियं परमप्रीत इदं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥

कुन्तीपुत्र धनञ्जय उस बडी आश्चर्य लीलाको देखकर अति प्रसन्नचित्तसे उस नारीसे यह वचन बोले ॥ १२ ॥

का वै त्वमसि कल्याणि कुतो वासि जलेचरी ।
किमर्थं च महत्पापमिदं कृतवती पुरा ॥ १३ ॥

हे कल्याणि जलचरि ! तुम कौन हो ? और तुम जलचरी क्यों बन गई हो ? और क्यों पहिले ऐसा महापाप किया था ? ॥ १३ ॥

नार्युवाच

अप्सरास्मि महाबाहो देवारण्यविचारिणी ।
इष्टा धनपतेर्नित्यं वर्गा नाम महाबल ॥ १४ ॥

नारी बोली– हे महाबली महाभाग ! मैं देववनमें विचरनेवाली अप्सरा हूं, मेरा नाम वर्गा है, मैं सदासे कुबेरकी प्यारी हूं ॥ १४ ॥

मम सख्यश्चतस्रोऽन्याः सर्वाः कामगमाः शुभाः
ताभिः सार्धं प्रयातास्मि लोकपालनिवेशनम् ॥ १५ ॥

मेरी इच्छानुसार विचरनेवाली शुभ–लक्षणा और चार सखियां हैं, एक समय मैं उन चार सखियोंके साथ लोकपालके यहां जा रही थी ॥ १५ ॥

ततः पश्यामहे सर्वा ब्राह्मणं संशितव्रतम् ।
रूपवन्तमधीयानमेकमेकान्तचारिणम् ॥ १६ ॥

उस समय हम सबने प्रशंसित व्रतधारी एकान्तमें रहनेवाले परम रूपवान् एक ब्राह्मणको वेद पढते हुए देखा ॥ १६ ॥

तस्य वै तपसा राजंस्तद्वनं तेजसावृतम् ।
आदित्य इव तं देशं कृत्स्नं स व्यवभासयत् ॥ १७ ॥

हे महाराज ! उनके तपके तेजसे वह बन ढक गया था । उन्होंने आदित्यकी भांति उस सब स्थानमें उजाला कर दिया था ॥ १७ ॥

तस्य दृष्ट्वा तपस्तादृग्रूपं चाद्भुतदर्शनम् ।
अवतीर्णाः स्म तं देशं तपोविघ्नचिकीर्षया ॥ १८ ॥

हम उनकी वैसी अति तपस्या और आश्चर्य रूप देखकर तपमें विघ्न डालनेकी इच्छासे वहां उतर गयीं ॥ १८ ॥

अहं च सौरभेयी च समीची बुद्बुदा लता ।
यौगपद्येन तं विप्रमभ्यगच्छाम भारत ॥ १९ ॥

हे भारत ! सौरभेयी, समीचि, बुद्बुदा, लता और मैं यह पांच एकत्र होकर उस ब्राह्मणके यहां एक साथ जा पहुंचीं ॥ १९ ॥

गायन्त्यो वै हसन्त्यश्च लोभयन्त्यश्च तं द्विजम् ।
स च नास्मासु कृतवान्मनो वीर कथंचन ।
नाकम्पत महातेजाः स्थितस्तपसि निर्मले ॥ २० ॥

हे वीर ! हम उनको लुभानेके लिये हंसने और गीत गाने लगीं; पर उस विप्रने किसी प्रकार भी हमारी ओर ध्यान नहीं दिया । निर्मल तपस्यामें मग्न वे महातेजस्वी ब्राह्मण ज़रा भी विचलित नहीं हुए ॥ २० ॥

सोऽशपत्कुपितोऽस्मांस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियर्षभ ।
ग्राहभूता जले यूयं चरिष्यध्वं शतं समाः ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥ ६७५ ॥

हे क्षत्रिय वर ! तदनन्तर ब्राह्मणने क्रोधित होकर हमको यह शाप दिया, कि तुम ग्राह बनकर जलमें सौ वर्षतक विचरोगी ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दोसौ आठवां अध्याय समाप्त ॥ २०८ ॥ ६६७१ ॥

: २०९ :

वर्गोवाच

ततो वयं प्रव्यथिताः सर्वा भरतसत्तम ।
आयाम शरणं विप्रं तं तपोधनमच्युतम् ॥ १ ॥

वर्गा बोली— हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ ! तब हम सब अत्यन्त दुःखी हो गईं और अच्युत तपोधन उस ब्राह्मणकी शरण लेकर कहा ॥ १ ॥

रूपेण वयसा चैव कन्दर्पेण च दर्पिताः ।
अयुक्तं कृतवत्यः स्म क्षन्तुमर्हसि नो द्विज ॥ २ ॥

हे द्विज ! हमने रूप, यौवन और कामके अहङ्कारसे यह अनुचित कार्य किया है। हे द्विज ! आप हमें क्षमा कर सकते हैं ॥ २ ॥

एष एव वधोऽस्माकं सुपर्याप्तस्तपोधन ।
यद्वयं संशितात्मानं प्रलोब्धुं त्वामिहागताः ॥ ३ ॥

यही हमारे लिये पर्याप्त वधके समान है, कि हम तुम ऐसे जितेन्द्रिय मुनिको लुभानेकी इच्छासे यहां आई हैं ॥ ३ ॥

अवध्यास्तु स्त्रियः सृष्टा मन्यन्ते धर्मचिन्तकाः ।
तस्माद्धर्मेण धर्मज्ञ नास्मान्हिंसितुमर्हसि ॥ ४ ॥

धर्म विचारक मानते हैं कि नारी वधके अयोग्य बनायी गयी है; अतः, हे धर्म जाननेवाले ! धर्मके अनुसार आप हमारी हिंसा नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

सर्वभूतेषु धर्मज्ञ मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।
सत्यो भवतु कल्याण एष वादो मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

हे धर्मज्ञ ! पण्डित लोग कहते हैं, कि ब्राह्मण सब प्राणियोंके मित्र हैं; हे कल्याण करनेवाले ! पण्डितोंका वह वचन सत्य हो ॥ ५ ॥

शरणं च प्रपन्नानां शिष्टाः कुर्वन्ति पालनम् ।
शरणं त्वां प्रपन्नाः स्म तस्मात्त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ ६ ॥

सज्जन लोग शरणमें आये हुए लोगोंकी रक्षा करते हैं; हमने आपकी शरण ली है; अतः आप हमें क्षमा करें ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा ब्राह्मणः शुभकर्मकृत् ।
प्रसादं कृतवान्वीर रविसोमसमप्रभः ॥ ७ ॥

वैशम्पायन बोले– हे वीर ! तब सूर्य और चन्द्रमाके समान तेजस्वी शुभकर्म करनेवाले धर्मात्मा वह ब्राह्मण अप्सराओंकी यह बात सुनकर प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥

ब्राह्मण उवाच

शतं सहस्रं विश्वं च सर्वमक्षयवाचकम् ।
परिमाणं शतं त्वेतन्नैतदक्षयवाचकम् ॥ ८ ॥

ब्राह्मण बोले– शत, सहस्र और विश्वका अर्थ अनन्तकाल भी होता है, पर मैंने "शत वर्ष" यह शब्द कहा है, उसका अर्थ सौ ही होगा, अनन्तकाल नहीं ॥ ८ ॥

यदा च वो ग्राहभूता गृह्णन्तीः पुरुषाञ्जले ।
उत्कर्षति जलात्कश्चित्स्थलं पुरुषसत्तमः ॥ ९ ॥

तुम जलचर ग्राह बनकर पुरुषोंको पकडा करोगी, पर सौ वर्ष होनेपर जब एक पुरुष श्रेष्ठ तुमको पकड कर स्थल पर खींच लाएगा ॥ ९ ॥

तदा यूयं पुनः सर्वाः स्वरूपं प्रतिपत्स्यथ ।
अनृतं नोक्तपूर्वं मे हसतापि कदाचन ॥ १० ॥

तब तुम सब फिर अपना अपना रूप प्राप्त करोगी, मैंने पहिले कभी हंसीमें भी झूठी बात नहीं कही है ॥ १० ॥

तानि सर्वाणि तीर्थानि इतः प्रभृति चैव ह ।
नारीतीर्थानि नाम्नेह ख्यातिं यास्यन्ति सर्वशः ।
पुण्यानि च भविष्यन्ति पावनानि मनीषिणाम् ॥ ११ ॥

तुम्हारे छुटकारा पानेपर वे सब तीर्थ, नारीतीर्थके नामसे संसारमें प्रख्यात होंगे और वे साधुओंको पवित्र करनेवाले और पुण्यदायी बनेंगे ॥ ११ ॥

वर्गोवाच

ततोऽभिवाद्य तं विप्रं कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।
अचिन्तयामोपसृत्य तस्माद्देशात्सुदुःखिताः ॥ १२ ॥

वर्गा बोली– इसके बाद हम उन ब्राह्मणको प्रणाम कर तथा उनकी परिक्रमा कर दुःखी चित्तसे वहांसे दूर जाकर सोचने लगीं ॥ १२ ॥

क नु नाम वयं सर्वाः कालेनाल्पेन तं नरम् ।
समागच्छेम यो नस्तद्रूपमापादयेत्पुनः ॥ १३ ॥

जो हमें अपना रूप प्राप्त करा सके उस पुरुषसे शीघ्रसे शीघ्र किस क्षेत्रमें हमारी भेंट होगी ॥ १३ ॥

ता वयं चिन्तयित्वैवं मुहूर्तादिव भारत ।
दृष्टवत्यो महाभागं देवर्षिमुत नारदम् ॥ १४ ॥

हे भारत ! हम सब ऐसी चिन्ता कर रही थीं कि पलभरमें महाभाग देवर्षि नारदको हमने देखा ॥ १४ ॥

सर्वा हृष्टाः स्म तं दृष्ट्वा देवर्षिममितद्युतिम् ।
अभिवाद्य च तं पार्थ स्थिताः स्म व्यथिताननाः ॥ १५ ॥

और उन अमित तेजस्वी नारदको देखकर हम बडी प्रसन्न हुईं और, हे पार्थ ! उनका अभिवादन कर दुःखी होकर हम वहीं खडी रहीं ॥ १५ ॥

स नोऽपृच्छद्दुःखमूलमुक्तवत्यो वयं च तत् ।
श्रुत्वा तच्च यथावृत्तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥

उन्होंने हमारे दुःखका कारण पूछा और हमने भी आद्योपान्त सब कह सुनाया। वह हमारा वृत्तान्त सुनकर यह वचन बोले ॥ १६ ॥

दक्षिणे सागरानूपे पञ्च तीर्थानि सन्ति वै ।
पुण्यानि रमणीयानि तानि गच्छत माचिरम् ॥ १७ ॥

दक्षिण–समुद्रमें प्रायः जलसे भरे हुए स्थानमें पांच तीर्थ हैं, वे बडे रमणीय और पुण्य-दायक हैं तुम वहां जाओ, देर मत करो ॥ १७ ॥

तत्राशु पुरुषव्याघ्रः पाण्डवो वो धनञ्जयः ।
मोक्षयिष्यति शुद्धात्मा दुःखादस्मान्न संशयः ॥ १८ ॥

उस स्थानमें शुद्धात्मा पुरुषश्रेष्ठ पाण्डुपुत्र धनञ्जय तुमको इस दुःखसे निःसन्देह बचावेंगे ॥ १८ ॥

तस्य सर्वा वयं वीर श्रुत्वा वाक्यमिहागताः ।
तदिदं सत्यमेवाद्य मोक्षिताहं त्वयानघ ॥ १९ ॥

हे वीर ! हम सब उन महर्षिका वचन सुनकर यहां आयी थीं। हे अनघ ! अब सचमुच मैं तुम्हारे द्वारा छुडा दी गई हूँ ॥ १९ ॥

×

एतास्तु मम वै सख्यश्चतस्त्रोऽन्या जले स्थिताः ।
कुरु कर्म शुभं वीर एताः सर्वा विमोक्षय ॥ २० ॥

मेरी वे चार सखियां भी इसी प्रकार दूसरे जलमें हैं, हे वीर ! तुम शुभ कर्म करो और इन सबोंको भी छुडा दो ॥ २० ॥

वैशंपायन उवाच

ततस्ताः पाण्डवश्रेष्ठः सर्वा एव विशां पते ।
तस्माच्छापाददीनात्मा मोक्षयामास वीर्यवान् ॥ २१ ॥

वैशम्पायन बोले— हे राजन् ! तब वीर्यवान् महात्मा पाण्डव श्रेष्ठ अर्जुनने प्रसन्न मनसे उन सबको उस शापसे मुक्त किया ॥ २१ ॥

उत्थाय च जलात्तस्मात्प्रतिलभ्य वपुः स्वकम् ।
तास्तदाप्सरसो राजन्नदृश्यन्त यथा पुरा ॥ २२ ॥

हे महाराज ! तब अप्सरायें उस जलसे उठकर अपने पहिलेके रूपको पाकर पहलेके समान दीखने लग गईं ॥ २२ ॥

तीर्थानि शोधयित्वा तु तथानुज्ञाय ताः प्रभुः ।
चित्राङ्गदां पुनर्द्रष्टुं मणलूरपुरं ययौ ॥ २३ ॥

इस प्रकार अर्जुन उन पञ्चतीर्थोंको सुधारकर उन स्त्रियोंको आज्ञा देकर चित्राङ्गदाको देखनेके लिये फिर मणलूरपुरको गए ॥ २३ ॥

तस्यामजनयत्पुत्रं राजानं बभ्रुवाहनम् ।
तं दृष्ट्वा पाण्डवो राजन्गोकर्णमभितोऽगमत् ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥ ६६९९ ॥

हे राजन् ! तब अर्जुनने चित्रांगदासे राजा बभ्रुवाहन नामक पुत्रको पैदा किया और उस बभ्रुबाहनको देखकर पाण्डुपुत्र अर्जुन गोकर्णकी तरफ चले गए ॥ २४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दोसौ नौवां अध्याय समाप्त ॥ २०९ ॥ ६६९९ ॥

: २१० :

वैशम्पायन उवाच

सोऽपरान्तेषु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
सर्वाण्येवानुपूर्व्येण जगामामितविक्रमः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— तदनन्तर अति विक्रमी अर्जुन पश्चिम प्रदेशमें जितने तीर्थ और पुण्य स्थान थे, एक एक कर उन सबमें गये ॥ १ ॥

समुद्रे पश्चिमे यानि तीर्थान्यायतनानि च ।
तानि सर्वाणि गत्वा स प्रभासमुपजग्मिवान् ॥ २ ॥

और पश्चिम समुद्रमें जितने तीर्थ और स्थान हैं, वहां घूमघामकर अन्तमें प्रभास तीर्थमें जा पहुंचे ॥ २ ॥

प्रभासदेशं संप्राप्तं बीभत्सुमपराजितम् ।
तीर्थान्यनुचरन्तं च शुश्राव मधुसूदनः ॥ ३ ॥

मधुसूदन माधवने तीर्थोंमें घूमते हुए अपराजित अर्जुनको प्रभास तीर्थमें पहुंचा हुआ सुना ॥ ३ ॥

ततोऽभ्यगच्छत्कौन्तेयमज्ञातो नाम माधवः ।
ददृशाते तदान्योन्यं प्रभासे कृष्णपाण्डवौ ॥ ४ ॥

तब माधव कृष्ण उनकी भेंटके लिये वहां गये, तब प्रभासमें कृष्ण और पाण्डवने एक दूसरेको देखा ॥ ४ ॥

तावन्योन्यं समाश्लिष्य पृष्ट्वा च कुशलं वने ।
आस्तां प्रियसखायौ तौ नरनारायणावृषी ॥ ५ ॥

दोनों प्यारे सखा ऋषि नर और नारायणरूपी कृष्ण तथा अर्जुन एक दूसरेको गले लगाकर कुशलक्षेम पूछकर वहां बैठे ॥ ५ ॥

ततोऽर्जुनं वासुदेवस्तां चर्यां पर्यपृच्छत ।
किमर्थं पाण्डवेमानि तीर्थान्यनुचरस्युत ॥ ६ ॥

वासुदेव अर्जुनका भ्रमण वृत्तान्त सुननेकी इच्छासे बोले— हे पाण्डव ! तुम क्यों इन तीर्थोंमें फिर रहे हो ? ॥ ६ ॥

ततोऽर्जुनो यथावृत्तं सर्वमाख्यातवांस्तदा ।
श्रुत्वोवाच च वार्ष्णेय एवमेतदिति प्रभुः ॥ ७ ॥

तब अर्जुनने आद्योपान्त सब कह सुनाया । प्रभु वार्ष्णेयने सुनकर कहा— यह उचित ही हुआ है ॥ ७ ॥

तौ विहृत्य यथाकामं प्रभासे कृष्णपाण्डवौ ।
महीधरं रैवतकं वासायैवाभिजग्मतुः ॥ ८ ॥

अनन्तर वे दोनों कृष्ण और अर्जुन प्रभासमें यथेच्छ विहारकरके रहनेके लिये रैवतक पर्वत पर गये ॥ ८ ॥

पूर्वमेव तु कृष्णस्य वचनात्तं महीधरम् ।
पुरुषाः समलंचक्रुरुपजह्रुश्च भोजनम् ॥ ९ ॥

इसके पहिले ही कृष्णकी आज्ञासे नौकरोंने पर्वतको सजा रखा था, उनके पहुंचते ही वे भोजन ले आए ॥ ९ ॥

प्रतिगृह्यार्जुनः सर्वमुपभुज्य च पाण्डवः ।
सहैव वासुदेवेन दृष्टवान्नटनर्तकान् ॥ १० ॥

अर्जुनने वहां उन सब पदार्थोंको स्वीकार किया और वासुदेवके साथ वहां भोजनादि करके नट नाचनेवालोंके नाच आदि देखे ॥ १० ॥

अभ्यनुज्ञाप्य तान्सर्वानर्चयित्वा च पाण्डवः ।
सत्कृतं शयनं दिव्यमभ्यगच्छन्महाद्युतिः । ॥ ११ ॥

इसके बाद महातेजस्वी पाण्डव अर्जुनने उनको यथोचित पारितोषिक देकर विदा किया, और भली प्रकार सजी सजायी दिव्य सेज पर जाकर वे सोये ॥ ११ ॥

तीर्थानां दर्शनं च पर्वतानां च भारत ।
आपगानां वनानां च कथयामास सात्वते ॥ १२ ॥

अर्जुन कृष्णसे भांति भांतिके तीर्थोंके दर्शन, पर्वत, नदी, बन आदिकी कथा कहने लगे ॥ १२ ॥

स कथाः कथयन्नेव निद्रया जनमेजय ।
कौन्तेयोऽपहृतस्तस्मिञ्शयने स्वर्गसंमिते ॥ १३ ॥

जनमेजय ! वह इस प्रकारकी नाना कथायें कहते हुए ही उस स्वर्गका सुख देनेवाले सेज पर निद्रा द्वारा हर लिए गए ॥ १३ ॥

मधुरेण स गीतेन वीणाशब्देन चानघ ।
प्रबोध्यमानो बुबुधे स्तुतिभिर्मङ्गलैस्तथा ॥ १४ ॥

इसके बाद, हे अनघ ! रात बीतने पर मीठे गीत, मंगलकारक स्तुतिपाठ और वीणाकी ध्वनिसे जगाये जाकर जग उठे ॥ १४ ॥

स कृत्वावश्यकार्याणि वार्ष्णेयेनाभिनन्दितः ।
रथेन काञ्चनाङ्गेन द्वारकामभिजग्मिवान् ॥ १५ ॥

और नित्यकृत्योंको करके, यादवोंसे नमस्कार किये जाकर सुवर्णके रथ पर बैठकर द्वारकाको गये ॥ १५ ॥

अलंकृता द्वारका तु बभूव जनमेजय ।
कुन्तीसुतस्य पूजार्थमपि निष्कुटकेष्वपि ॥ १६ ॥

हे जनमेजय ! कुन्तीनन्दनके गौरवके लिये द्वारकापुरीके राजपथ, फुलवारी और भवन आदि सब सजाये गये थे ॥ १६ ॥

दिदृक्षवश्च कौन्तेयं द्वारकावासिनो जनाः ।
नरेन्द्रमार्गमाजग्मुस्तूर्णं शतसहस्रशः ॥ १७ ॥

सैंकडों सहस्रों द्वारकावासी जन अर्जुनको देखनेके लिये राजपथ पर वेगसे पहुंचने लगे ॥ १७ ॥

अवलोकेषु नारीणां सहस्राणि शतानि च ।
भोजवृष्ण्यन्धकानां स समवायो महानभूत् ॥ १८ ॥

पाण्डवदर्शनके लिये सैंकडों सहस्रों भोज वृष्णि और अंधकवंशी नरनारियोंकी बडी भीड लग गई ॥ १८ ॥

स तथा सत्कृतः सर्वैर्भोजवृष्ण्यन्धकात्मजैः ।
अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वैश्च प्रतिनन्दितः ॥ १९ ॥

अर्जुन भोज वृष्णि और अन्धकवंशियोंसे यथायोग्य सत्कृत हुए, नमस्कारयोग्य जनोंको नमस्कार किया और उनके द्वारा सत्कृत हुए ॥ १९ ॥

कुमारैः सर्वशो वीरः सत्कारेणाभिवादितः ।
समानवयसः सर्वानाश्लिष्य स पुनः पुनः ॥ २० ॥

और सब कुमारोंके सत्कारोंसे अभिवादित होकर उस वीर अर्जुनने अपनी समान अवस्था-वालोंको बारबार गले लगाया ॥ २० ॥

कृष्णस्य भवने रम्ये रत्नभोज्यसमावृते ।
उवास सह कृष्णेन बहुलास्तत्र शर्वरीः ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥
॥ समाप्तमर्जुनवनवासपर्व ॥ ६७२० ॥

बादमें कृष्णके साथ भांति भांतिके रत्न तथा भोगकी सामग्रियोंसे भरे पूरे सुन्दर भवनमें बहुत दिन काटे ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दोसौ दसवां अध्याय समाप्त ॥ २१० ॥
॥ अर्जुनवनवासपर्व समाप्त ॥ ६७२० ॥

: २११ :

वैशंपायन उवाच

तत: कतिपयाहस्य तस्मिन्रैवतके गिरौ ।
वृष्ण्यन्धकानामभवत्सुमहानुत्सवो नृप ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद उस रैवतक पर्वत पर वृष्णि और अन्धक-बंशियोंका उत्सव होने लगा ॥ १ ॥

तत्र दानं ददुर्वीरा ब्राह्मणानां सहस्रशः ।
भोजवृष्ण्यन्धकाश्चैव महे तस्य गिरेस्तदा ॥ २ ॥

भोज, वृष्णि और अन्धकवंशी वीर उस गिरि सम्बन्धी उत्सवमें सहस्रों ब्राह्मणोंको भांति भांतिकी सामग्री दान देने लगे ॥ २ ॥

प्रासादै रत्नचित्रैश्च गिरेस्तस्य समन्ततः ।
स देशः शोभितो राजन्दीपवृक्षैश्च सर्वशः ॥ ३ ॥

हे महाराज ! रैवतक पर्वतकी चारों ओरकी उपत्यकायें और अधित्यकायें रत्नोंसे सजे दीप वृक्षके समान कामनाओंकी वस्तुओंसे भरे गृहोंसे सुहाने लगीं ॥ ३ ॥

वादित्राणि च तत्र स्म वादकाः समवादयन् ।
ननृतुर्नर्तकाश्चैव जगुर्गानानि गायनाः ॥ ४ ॥

वहां बाजेवालोंने बाजे बजाये, नृत्य करनेवाले नृत्य करने लगे और गायकोंने गीत गाए ॥ ४ ॥

अलंकृताः कुमाराश्च वृष्णीनां सुमहौजसः ।
यानैर्हाटकचित्राङ्गैश्चञ्चूर्यन्ते स्म सर्वशः ॥ ५ ॥

अति वीर्यवान् वृष्णिवंशी कुमारगण सजधजकर सुनहले रथों पर इधर उधर घूमते हुए सुहाने लगे ॥ ५ ॥

पौराश्च पादचारेण यानैरुच्चावचैस्तथा ।
सदाराः सानुयात्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६ ॥

सैंकडों सहस्रों पुरवासी पत्नी और साथियों समेत अनेक प्रकारके यान पर टहलने लगे। कोई कोई पैदल ही घूमने लगा ॥ ६ ॥

ततो हलधरः क्षीबो रेवतीसहितः प्रभुः ।
अनुगम्यमानो गन्धर्वैरचरत्तत्र भारत ॥ ७ ॥

हे भारत ! रेवतीके साथ मधुसे मतवाले प्रभु हलधर बलराम अपने सहचर गन्धर्वोंसे घिरे हुए घूमने लगे ॥ ७ ॥

तथैव राजा वृष्णीनामुग्रसेनः प्रतापवान् ।
उपगीयमानो गन्धर्वैः स्त्रीसहस्रसहायवान् ॥ ८ ॥

वैसे ही सहस्र नारियोंके साथ वृष्णियोंके राजा प्रतापी उग्रसेन सहचर गन्धर्वोंसे घिरे हुए घूमनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ८ ॥

रौक्मिणेयश्च साम्बश्च क्षीबौ समरदुर्मदौ ।
दिव्यमाल्याम्बरधरौ विजह्रातेऽमराविव ॥ ९ ॥

युद्धमें कठोर साम्ब और रुक्मिणीकुमार मधुसे मतवाले हो सुन्दर माला और वस्त्र पहिने देवोंकी भांति विहार करने लगे ॥ ९ ॥

अक्रूरः सारणश्चैव गदो भानुर्विडूरथः ।
विशठश्चारुदेष्णश्च पृथुर्विपृथुरेव च ॥ १० ॥

अक्रूर, सारण, गद, भानु, विडूरथ, विशठ, चारुदेष्ण, पृथु और विपृथु ॥ १० ॥

सत्यकः सात्यकिश्चैव भङ्गकारसहाचरौ ।
हार्दिक्यः कृतवर्मा च ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥ ११ ॥

सत्यक, सात्यकि, भङ्गकार, सहाचर, हार्दिक्य, कृतवर्मा और दूसरे जो नहीं कहे गए हैं ॥ ११ ॥

एते परिवृताः स्त्रीभिर्गन्धर्वैश्च पृथक्पृथक् ।
तमुत्सवं रैवतके शोभयाश्चक्रिरे तदा ॥ १२ ॥

उन्होंने अलग अलग स्त्री और गन्धर्वोंके साथ वहां टहलते हुए उस पर्वत पर महोत्सवकी शोभा बढायी ॥ १२ ॥

तदा कोलाहले तस्मिन्वर्तमाने महाशुभे ।
वासुदेवश्च पार्थश्च सहितौ परिजग्मतुः ॥ १३ ॥

इस प्रकार उस मनोहर अति शुभ कोलाहलके होने पर वासुदेव और पार्थ एक साथ वहां गए ॥ १३ ॥

तत्र चङ्क्रम्यमाणौ तौ वसुदेवसुतां शुभाम् ।
अलंकृतां सखीमध्ये सुभद्रां ददृशतुस्तदा ॥ १४ ॥

वहां उन दोंनो अर्जुन और कृष्णने इधर उधर घूमते समय सखियोंसे घिरी नाना आभूषणोंसे बनी ठनी, शुभ लक्षणोंसे युक्त वसुदेवकी कन्या सुभद्राको देखा ॥ १४ ॥

दृष्ट्वैव तामर्जुनस्य कन्दर्पः समजायत ।
तं तदैकाग्रमनसं कृष्णः पार्थमलक्षयत् ॥ १५ ॥

अर्जुन उस कोमलाङ्गी बालाको देखकरके ही मदन बाणसे मोहित हुए। हे भारत ! कृष्णने उनके मनको सुभद्रामें आकृष्ट हुए हुए देखा ॥ १५ ॥

अथाब्रवीत्पुष्कराक्षः प्रहसन्निव भारत ।
वनेचरस्य किमिदं कामेनालोड्यते मनः ॥ १६ ॥
ममैषा भगिनी पार्थ सारणस्य सहोदरा ।
यदि ते वर्तते बुद्धिर्वक्ष्यामि पितरं स्वयम् ॥ १७ ॥

हे भारत ! तब कमलके समान सुन्दर आंखोंवाले कृष्ण हंसकर बोले– यह क्या है ? वन-वासीके मनको भी काम मथ रहा है ? हे पार्थ ! यह कन्या सारणकी सगी बहिन और मेरी भी बहिन है, यदि तुम्हारा चित्त इस पर आसक्त हो गया हो तो कहो, मैं स्वयं ही पितासे यह कहूं ॥ १६–१७ ॥

अर्जुन उवाच

दुहिता वसुदेवस्य वासुदेवस्य च स्वसा ।
रूपेण चैव संपन्ना कमिवैषा न मोहयेत् ॥ १८ ॥

अर्जुन बोले– वसुदेवकी कन्या, वासुदेवकी बहिन अनुपम रूपवती यह कन्या किसके मनको मोहित न करेगी ? ॥ १८ ॥

कृतमेव तु कल्याणं सर्वं मम भवेद्ध्रुवम् ।
यदि स्यान्मम वार्ष्णेयी महिषीयं स्वसा तव ॥ १९ ॥

तुम्हारी बहिन यह सुभद्रा यदि मेरी रानी बने, तो इसमें सन्देह नहीं, कि तुमसे मेरा सब प्रकार कल्याण होगा ॥ १९ ॥

प्राप्तौ तु क उपायः स्यात्तद्ब्रवीहि जनार्दन ।
आस्थास्यामि तदा सर्वं यदि शक्यं नरेण तत् ॥ २० ॥

हे जनार्दन ! कहो, अब किस उपायसे सुभद्रा मिल सकती है ? यदि मनुष्यके सामर्थ्यमें हो तो सब प्रकारसे वह करूंगा ॥ २० ॥

वासुदेव उवाच

स्वयंवरः क्षत्रियाणां विवाहः पुरुषर्षभ ।
स च संशयितः पार्थ स्वभावस्यानिमित्ततः ॥ २१ ॥

वासुदेव बोले– हे पुरुषश्रेष्ठ पार्थ ! क्षत्रियोंका स्वयंवर विवाहका नियम तो है, पर उसमें शङ्का हो रही है, क्योंकि नारियोंका स्वभाव और हृदय शूरता पाण्डित्य आदि पर नहीं चलता ॥ २१ ॥

प्रसह्य हरणं चापि क्षत्रियाणां प्रशस्यते ।
विवाहहेतोः शूराणामिति धर्मविदो विदुः ॥ २२ ॥

(वे पहिले देखनेमें सुन्दर जन पर मोहित होती हैं) अतएव शूर क्षत्रियोंके लिये बलसे कन्याका हरण कर विवाह करनेके नियमकी धर्मज्ञगण प्रशंसा करते हैं ॥ २२ ॥

स त्वमर्जुन कल्याणीं प्रसह्य भगिनीं मम ।
हर स्वयंवरे ह्यस्याः को वै वेद चिकीर्षितम् ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! तुम उस विधानके अनुसार बलपूर्वक इस शुभलक्षणा मेरी बहिनको हर लो, क्योंकि कौन जानता है, कि स्वयंवरमें सुभद्राका क्या अभिप्राय है ? ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततोऽर्जुनश्च कृष्णश्च विनिश्चित्येतिकृत्यताम् ।
शीघ्रगान्पुरुषन्राजन्प्रेषयामासतुस्तदा ॥ २४ ॥
धर्मराजाय तत्सर्वमिन्द्रप्रस्थगताय वै ।
श्रुत्वैव च महाबाहुरनुजज्ञे स पाण्डवः ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २११ ॥ ६७४५ ॥

वैशम्पायन बोले-- अनन्तर अर्जुन और कृष्णने क्या करना उचित है, उसका निश्चय कर इन्द्रप्रस्थमें रहनेवाले धर्मराजके पास शीघ्र जानेवाला दूत भेज दिया । महाबाहु पाण्डव-नन्दन युधिष्ठिरने वह सब वृत्तान्त सुनते ही उसके लिए आज्ञा भिजवा दी ॥ २४-२५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥ २११ ॥ ॥ ६७४५ ॥

: २१२ :

वैशम्पायन उवाच

ततः संवादिते तस्मिन्ननुज्ञातो धनंजयः ।
गतां रैवतके कन्यां विदित्वा जनमेजय ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले-- हे जनमेजय ! तदनन्तर युधिष्ठिरकी आज्ञा पाने पर पुरुषश्रेष्ठ धनञ्जयने रैवतकपर्वत पर कन्या गई है, यह जानकर ॥ १ ॥

वासुदेवाभ्यनुज्ञातः कथयित्वेतिकृत्यताम् ।
कृष्णस्य मतमाज्ञाय प्रययौ भरतर्षभः ॥ २ ॥

वासुदेवकी आज्ञा पाकर तथा अपने कर्तव्यको निश्चित करके और कृष्णके मतके अनुसार भारतश्रेष्ठने यात्रा की ॥ २ ॥

रथेन काञ्चनाङ्गेन कल्पितेन यथाविधि ।
सैन्यसुग्रीवयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना ॥ ३ ॥

सैन्य सुग्रीव नामक घोडोंसे युक्त, किंकण जालसे युक्त, विधिपूर्वक सोनेसे बनाए गए रथसे ॥ ३ ॥

सर्वशस्त्रोपपन्नेन जीमूतरवनादिना ।
ज्वलिताग्निप्रकाशेन द्विषतां हर्षघातिना ॥ ४ ॥

सब शस्त्रोंसे युक्त, बादलके सदृश गंभीर शब्द करनेवाले, प्रज्ज्वलित अग्निके समान चमकीले विपक्षीके हर्षनाशी रथ पर ॥ ४ ॥

संनद्धः कवची खड्गी बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ।
मृगयाव्यपदेशेन यौगपद्येन भारत ॥ ५ ॥

कवच, तलवार, दस्ताने और अंगुलिके रक्षक साधनोंसे युक्त हो शिकारके बहाने अर्जुन अचानक उधर गए ॥ ५ ॥

सुभद्रा त्वथ शैलेन्द्रमभ्यर्च्य सह रैवतम् ।
दैवतानि च सर्वाणि ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ॥ ६ ॥

सुभद्रा शैलराज रैवतकको पूजकर देवोंकी पूजा कर और ब्राह्मणोंसे स्वस्ति कहलवा कर ॥२॥

प्रदक्षिणं गिरिं कृत्वा प्रययौ द्वारकां प्रति ।
तामभिद्रुत्य कौन्तेयः प्रसह्यारोपयद्रथम् ॥ ७ ॥

पर्वतकी परिक्रमा कर द्वारकाकी ओर जा रही थी, कि ऐसे समय कुन्तीनन्दन धनञ्जयने उसकी ओर दौडकर जबर्दस्ती उस सुभद्राको रथपर चढा लिया ॥ ७ ॥

ततः स पुरुषव्याघ्रस्तामादाय शुचिस्मिताम् ।
रथेनाकाशगेनैव प्रययौ स्वपुरं प्रति ॥ ८ ॥

पुरुषव्याघ्र अर्जुन इस प्रकारसे सुन्दर मुस्कराहटोंवाली सुभद्राको लेकर आकाशमें चलने-वाले रथसे अपने नगरकी ओर चले गए ॥ ८ ॥

ह्रियमाणां तु तां दृष्ट्वा सुभद्रां सैनिको जनः ।
विक्रोशन्प्राद्रवत्सर्वो द्वारकामभितः पुरीम् ॥ ९ ॥

सैनिक लोग सुभद्राको अर्जुनसे हरे जाते देखकर चिल्लाते हुए द्वारका नगरकी ओर दौडे ॥ ९ ॥

ते समासाद्य सहिताः सुधर्मामभितः सभाम् ।
सभापालस्य तत्सर्वमाचख्युः पार्थविक्रमम् ॥ १० ॥

उन सबोंने देवसभाके समान उस राजसभामें उपस्थित हो सभापालसे अर्जुनका वह सारा विक्रमवृत्तान्त कह सुनाया ॥ १० ॥

तेषां श्रुत्वा सभापालो भेरीं सांनाहिकीं ततः ।
समाजघ्ने महाघोषां जाम्बूनदपरिष्कृताम् ॥ ११ ॥

सभापालने उनसे सब वृत्तान्त सुनकर सुवर्णसे शोभित बडी आवाज करनेवाली युद्धके लिये तैय्यार होनेकी सूचना देनेवाली भेरी बजाई ॥ ११ ॥

क्षुब्धास्तेनाथ शब्देन भोजवृष्ण्यन्धकास्तदा ।
अन्नपानमपास्याथ समापेतुः सभां ततः ॥ १२ ॥

भोज, वृष्णि और अन्धक लोग उस भेरीके शब्दसे क्षुब्ध हो, अन्नपान छोड करके सभाके चारों ओर इकट्ठ होने लगे ॥ १२ ॥

ततो जाम्बूनदाङ्गानि स्पर्ध्यास्तरणवन्ति च ।
मणिविद्रुमचित्राणि ज्वलिताग्निप्रभाणि च ॥ १३ ॥

भेजिरे पुरुषव्याघ्रा वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
सिंहासनानि शतशो धिष्ण्यानीव हुताशनाः ॥ १४ ॥

तेज अग्नि जिस प्रकार अपना आधार इन्धन पकड लेती है, वैसे ही महारथी पुरुषव्याघ्र वृष्णि और अन्धक लोग परम सुन्दर चादरोंसे आच्छादित, मणियोंसे खचित, जलती हुई अग्निके समान चमकीले सैंकडों सोनेके सिंहासनों पर जा बैठे ॥ १३-१४ ॥

तेषां समुपविष्टानां देवानामिव संनये ।
आचख्यौ चेष्टितं जिष्णोः सभापालः सहानुगः ॥ १५ ॥

देवोंके समागमकी भांति उनके इकट्ठ होनेपर सभापालने उनसे अर्जुनका किया कार्य कह सुनाया ॥ १५ ॥

तच्छ्रुत्वा वृष्णिवीरास्ते मदरक्तान्तलोचनाः ।
अमृष्यमाणाः पार्थस्य समुत्पेतुरहंकृताः ॥ १६ ॥

अहङ्कारसे नेत्र लाल किये हुए गर्वित वे वृष्णि वीरगण उस वृत्तान्तको सुनते ही पार्थके उस कामको न सहन करते हुए सिंहासनोंसे उठ खडे हुए ॥ १६ ॥

योजयध्वं रथानाशु प्रासानाहरतेति च ।
धनूंषि च महार्हाणि कवचानि बृहन्ति च ॥ १७ ॥

उनमेंसे किसी किसीने कहा, कि तुरन्त रथ जोडो, किसी किसीने कहा कि प्रक्षेपणास्त्र लाओ, किसी किसीने कहा मूल्यवान् धनुष और बडे बडे कवच लाओ ॥ १७ ॥

सूतानुच्चुक्रुशुः केचिद्रथान्योजयतेति च ।
स्वयं च तुरगान्केचिन्निन्युर्हेमविभूषितान् ॥ १८ ॥

किसी किसीने चिल्लाकर सारथीको पुकारके कहा, कि तुरन्त रथ जोतो; कोई कोई तो स्वयं ही शीघ्रताके लिये सुवर्णके अलंकारोंसे युक्त घोडे लेजाने लगे ॥ १८ ॥

रथेष्वानीयमानेषु कवचेषु ध्वजेषु च ।
अभिक्रन्दे नृवीराणां तदासीत्संकुलं महत् ॥ १९ ॥

तब रथ कवच ध्वजा आदिको लानेपर उन मनुष्य वीरोंका महान् कोलाहल होने लगा ॥ १९ ॥

वनमाली ततः क्षीबः कैलासशिखरोपमः ।
नीलवासा मदोत्सिक्त इदं वचनमब्रवीत् ॥ २० ॥

तदनन्तर गलेमें वनमाला डाले, कैलासपर्वतके समान नीलाम्बर पहिने हुए मदसे मदोन्मत्त बलदेव यह वचन बोले ॥ २० ॥

किमिदं कुरुथाप्रज्ञास्तूष्णीं भूते जनार्दने ।
अस्य भावमविज्ञाय संक्रुद्धा मोघगर्जिताः ॥ २१ ॥

हे मूर्खो ! जनार्दनके कुछ न कहने पर भी तुम यह क्या कर रहे हो ? इनका अभिप्राय न जान करके ही तुम क्रोधके मारे व्यर्थकी गर्जना कर रहे हो ॥ २१ ॥

एष तावदभिप्रायमाख्यातु स्वं महामतिः ।
यदस्य रुचितं कर्तुं तत्कुरुध्वमतन्द्रिताः ॥ २२ ॥

यह महामति कृष्ण पहिले अपना मत प्रगट करें और तब इनको जो पसन्द हो वह आप सब आलस्यसे रहित होकर करें ॥ २२ ॥

ततस्ते तद्वचः श्रुत्वा ग्राह्यरूपं हलायुधात् ।
तूष्णीं भूतास्ततः सर्वे साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥ २३ ॥

तब सब जन हलधरकी सुनने योग्य वह बात सुनकर साधु साधु कहकर चुप हो गए ॥ २३ ॥

समं वचो निशम्येति बलदेवस्य धीमतः ।
पुनरेव सभामध्ये सर्वे ते समुपाविशन् ॥ २४ ॥

और बुद्धिमान् बलदेवकी वह योग्य बात सुनकर वे सब वीर फिर सभामें बैठ गए ॥ २४ ॥

ततोऽब्रवीत्कामपालो वासुदेवं परंतपम् ।
किमवागुपविष्टोऽसि प्रेक्ष्यमाणो जनार्दन ॥ २५ ॥

तब कामपालने शत्रुनाशी वासुदेवसे कहा— जनार्दन ! यह सब देखते हुए भी तुम नीचे मुंह किए क्यों बैठे हो ? ॥ २५ ॥

सत्कृतस्त्वत्कृते पार्थः सर्वैरस्माभिरच्युत ।
न च सोऽर्हति तां पूजां दुर्बुद्धिः कुलपांसनः ॥ २६ ॥

अच्युत ! हम सबने पृथापुत्रका तुम्हारे कारण भली प्रकार सत्कार किया था । पर वह कुबुद्धि कुलाङ्गार इस तरहके सत्कारके योग्य नहीं है ॥ २३ ॥

को हि तत्रैव भुक्त्वान्नं भाजनं भेत्तुमर्हति ।
मन्यमानः कुले जातमात्मानं पुरुषः क्वचित् ॥ २७ ॥

ऐसा कौन मनुष्य होगा कि जो अपने आपको उत्तम कुलमें पैदा हुआ हुआ मानता हो, और वह अन्न खाकर अन्नके बर्तनको तोड दे ॥ २७ ॥

ईप्समानश्च सम्बन्धं कृतपूर्वं च मानयन् ।
को हि नाम भवेनार्थी साहसेन समाचरेत् ॥ २८ ॥

वास्तवमें सम्बन्ध जोडनेकी इच्छा करनेवाला तथा पूर्वकृत उपकारको स्मरण करनेवाला कौन मनुष्य इस प्रकारके साहसका काम कर सकता है ? ॥ २८ ॥

सोऽवमन्य च नामास्माननादृत्य च केशवम् ।
प्रसह्य हृतवानद्य सुभद्रां मृत्युमात्मनः ॥ २९ ॥

वह पाण्डव कृष्णका अनादर कर और हमको तुच्छ समझकर अपनी मृत्युस्वरूप सुभद्राको आज जबर्दस्ती हर ले गया है ॥ २९ ॥

कथं हि शिरसो मध्ये पदं तेन कृतं मम ।
मर्षयिष्यामि गोविन्द पादस्पर्शमिवोरगः ॥ ३० ॥

गोविंद ! उसने मेरे शिर पर लात क्यों मारी है ? अतः सर्प जिस प्रकार दूसरेके पांवको सह नहीं सकता वैसे ही मैं भी कभी यह न सह सकूंगा ॥ ३० ॥

अद्य निष्कौरवामेकः करिष्यामि वसुन्धराम् ।
न हि मे मर्षणीयोऽयमर्जुनस्य व्यतिक्रमः ॥ ३१ ॥

मैं अर्जुनका यह विपरीत क्रम सह नहीं सकता, अतः आज ही इस वसुन्धराको कौरवोंसे रहित कर दूंगा ॥ ३१ ॥

तं तथा गर्जमानं तु मेघदुन्दुभिनिःस्वनम् ।
अन्वपद्यन्त ते सर्वे भोजवृष्ण्यन्धकास्तदा ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२ ॥
॥ समाप्तं सुभद्राहरणपर्व ॥ ६७७७ ॥

भोज, वृष्णि और अन्धक सबने बादल और नगाडेकी भांति गरजते हुए उन बलदेवकी बातको मान लिया ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ बारहवां अध्याय समाप्त ॥ २१२ ॥
॥ सुभद्राहरणपर्व समाप्त ॥ ६७७७ ॥

: २१३ :

वैशम्पायन उवाच

उक्तवन्तो यदा वाक्यमसकृत्सर्ववृष्णयः ।
ततोऽब्रवीद्वासुदेवो वाक्यं धर्मार्थसंहितम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– जब वृष्णियोंने बार बार इस प्रकारके वचन कहे तब वासुदेव धर्मार्थयुक्त यह वचन कहने लगे ॥ १ ॥

नावमानं कुलस्यास्य गुडाकेशः प्रयुक्तवान् ।
संमानोऽभ्यधिकस्तेन प्रयुक्तोऽयमसंशयम् ॥ २ ॥

अर्जुनने जो कार्य किया है, उससे हमारे कुलका अपमान नहीं हुआ; अपितु निस्सन्देह उन्होंने हमारा सम्मान बढाया है ॥ २ ॥

अर्थलुब्धान्न वः पार्थो मन्यते सात्वतान्सदा ।
स्वयंवरमनाधृष्यं मन्यते चापि पाण्डवः ॥ ३ ॥

सात्वतकुलमें जन्मे हुए तुम लोगोंको अर्जुन धनका लोभी नहीं मानता और स्वयंवरको भी पाण्डव स्वीकार नहीं करता है (इसीलिए उन्होंने तुम्हें धन देकर अथवा स्वयंवरके द्वारा सुभद्राको अपनाना नहीं चाहा) ॥ ३ ॥

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत्कोऽनुमंस्यते ।
विक्रयं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात्पुरुषो भुवि ॥ ४ ॥

पशुकी भांति कन्यादान किस क्षत्रियको प्रिय होगा और कन्याको बेचना भी इस पृथ्वी पर कौन मनुष्य पसन्द करेगा ? ॥ ४ ॥

एतान्दोषांश्च कौन्तेयो दृष्टवानिति मे मतिः ।
अतः प्रसह्य हृतवान्कन्यां धर्मेण पाण्डवः ॥ ५ ॥

मुझको जान पडता है कि कुन्तीपुत्रने इन सब दोषोंको भलीभांति देखा है, इसीलिए अर्जुनने धर्मका आचरण करते हुए जबर्दस्ती कन्याका हरण किया है ॥ ५ ॥

उचितश्चैव संबन्धः सुभद्रा च यशस्विनी ।
एष चापीदृशः पार्थः प्रसह्य हृतवानिति ॥ ६ ॥

सुभद्रा जैसी यशस्विनी है, पार्थ भी वैसे ही गुणवान् हैं, अतः यह सम्बन्ध अयोग्य नहीं है, इसका भी विचार करके उन्होंने कन्याका जबर्दस्ती हरण किया है ॥ ६ ॥

भरतस्यान्वये जातं शन्तनोश्च महात्मनः ।
कुन्तिभोजात्मजापुत्रं को बुभूषेत नार्जुनम् ॥ ७ ॥

फिर भी भरतवंशी महात्मा शन्तनु कुंतीभोजके दौहित्र उस अर्जुनको ऐसा कौन है, जो मित्र बनाना न चाहता होगा ? ॥ ७ ॥

न च पश्यामि यः पार्थं विक्रमेण पराजयेत् ।
अपि सर्वेषु लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु मारिष ॥ ८ ॥

हे वीर ! विशेष कर इस त्रिलोकी भरमें इन्द्र और रुद्रोंमें भी कोई ऐसा नहीं दीखता, जो बलसे अर्जुनको परास्त कर सके ॥ ८ ॥

स च नाम रथस्तादृङ्मदीयास्ते च वाजिनः ।
योद्धा पार्थश्च शीघ्रास्त्रः को नु तेन समो भवेत् ॥ ९ ॥

हे आर्य ! उनका वह रथ, मेरे वे सब घोडे, वह स्वयं वैसे योद्धा और वैसी शीघ्रतासे शस्त्र फेंकनेवाले,इन सबको देखकर मैं यही सोचता हूँ कि उनके समान कौन हो सकता है ? ॥९॥

तमनुद्रुत्य सान्त्वेन परमेण धनंजयम् ।
निवर्तयध्वं संहृष्टा ममैषा परमा मतिः ॥ १० ॥

अतः, मेरा उत्तम विचार यह है, कि तुम तुरन्त दौड कर प्रसन्नचित्तसे धनञ्जयको सांत्वना देकर लौट आओ ॥ १० ॥

यदि निर्जित्य वः पार्थो बलाद्गच्छेत्स्वकं पुरम् ।
प्रणश्येद्वो यशः सद्यो न तु सान्त्वे पराजयः ॥ ११ ॥

यदि वह बलपूर्वक तुम सबको परास्त कर अपनी राजधानीमें चले जायेंगे, तो आज ही तुम्हारे यशका लोप हो जायेगा, अतः सान्त्वना देनेसे तुम्हारी पराजय नहीं होगी ॥ ११ ॥

तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य तथा चक्रुर्जनाधिप ।
निवृत्तश्चार्जुनस्तत्र विवाहं कृतवांस्ततः ॥ १२ ॥

हे जनाधिप ! यादवोंने वासुदेवकी वह बात सुन कर उसके अनुसार कार्य किया । प्रभावी अर्जुनने द्वारकापुरीमें लौटकर सुभद्रासे विवाह किया ॥ १२ ॥

उषित्वा तत्र कौन्तेयः संवत्सरपराः क्षपाः ।
पुष्करेषु ततः शिष्टं कालं वर्तितवान्प्रभुः ।
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे खाण्डवप्रस्थमाविशत् ॥ १३ ॥

वहां वर्षभरकी रात्रियां बिताकर पुष्करतीर्थमें जाकर शेषकाल बिताने लगे । बारह वर्षोंके बीत जाने पर खाण्डवप्रस्थमें लौट आए ॥ १३ ॥

अभिगम्य च राजानं नियमेन समाहितः ।
अभ्यर्च्य ब्राह्मणान्पार्थो द्रौपदीमभिजग्मिवान् ॥ १४ ॥

और नियमके साथ विनयपूर्वक राजा युधिष्ठिर और ब्राह्मणोंको पूजकर द्रौपदीके निकट गये ॥ १४ ॥

तं द्रौपदी प्रत्युवाच प्रणयात्कुरुनन्दनम् ।
तत्रैव गच्छ कौन्तेय यत्र सा सात्वतात्मजा ।
सुबद्धस्यापि भारस्य पूर्वबन्धः श्लथायते ॥ १५ ॥

द्रौपदी प्रेमसे उन कुरुनन्दनसे बोली— हे कुन्तीपुत्र ! जहां सात्वतपुत्री सुभद्रा है, वहीं जाओ; रस्सीसे बंधी वस्तुको एक और दूसरी रस्सीसे कसकर बांध देनेपर पहिलेका बंधन अवश्य ही ढीला हो जाता है (अब तुम नये प्रेमके जालमें फंसे हो, अतः पहिलेका बंधा मेरे प्रेमजालका बन्धन ढीला हो गया होगा) ॥ १५ ॥

तथा बहुविधं कृष्णां विलपन्तीं धनंजयः ।
सान्त्वयामास भूयश्च क्षमयामास चासकृत् ॥ १६ ॥

धनंजय द्रौपदीको इस प्रकार नाना रीतिसे विलपते देखकर बार बार समझाने लगे और बार बार क्षमा मांगी ॥ १६ ॥

सुभद्रां त्वरमाणश्च रक्तकौशेयवाससम् ।
पार्थः प्रस्थापयामास कृत्वा गोपालिकावपुः ॥ १७ ॥

तदनन्तर उन्होंने लाल रेशमी वस्त्र पहिने हुई सुभद्राके यहां जाकर वेगसे उसका गोपीवेष बनाकर उसको अन्तःपुरमें भिजवाया ॥ १७ ॥

साधिकं तेन रूपेण शोभमाना यशस्विनी ।
भवनं श्रेष्ठमासाद्य वीरपत्नी वराङ्गना ।
ववन्दे पृथुताम्राक्षी पृथां भद्रा यशस्विनी ॥ १८ ॥

वीरपत्नी, यशस्विनी, ताम्र रङ्गकी बडी बडी आंखवाली उस बालाने उस वेषमें और भी शोभित होकर परम सुन्दर भवनमें पहुंचकर पहिले कल्याणी कुन्तीके निकट जाकर उनके पांवको छूकर प्रणाम किया ॥ १८ ॥

ततोऽभिगम्य त्वरिता पूर्णेन्दुसदृशानना ।
ववन्दे द्रौपदीं भद्रा प्रेष्याहमिति चाब्रवीत् ॥ १९ ॥

तब पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली सुभद्राने वेगसे द्रौपदीके निकट जाकर उसको प्रणाम किया और कहा, कि मैं आपकी दासी होकर आयी हूं ॥ १९ ॥

प्रत्युत्थाय च तां कृष्णा स्वसारं माधवस्य ताम् ।
सस्वजे चावदत्प्रीता निःसपत्नोऽस्तु ते पतिः ।
तथैव मुदिता भद्रा तामुवाचैवमस्त्विति ॥ २० ॥

कृष्णा उसी क्षण उठकर माधवकी बहिनको गले लगाकर प्रीतिपूर्वक बोली— तुम्हारे पतिका कोई शत्रु न हो । सुभद्राने तब प्रमुदित चित्तसे उससे " तथास्तु " यह बात कही ॥ २० ॥

ततस्ते हृष्टमनसः पाण्डवेया महारथाः ।
कुन्ती च परमप्रीता बभूव जनमेजय ॥ २१ ॥

हे जनमेजय ! तदनन्तर महारथी पाण्डवगण बहुत प्रसन्न हृदयवाले हुए और कुन्ती भी परम प्रसन्ना हुई ॥ २१ ॥

श्रुत्वा च पुण्डरीकाक्षः संप्राप्तं स्वपुरोत्तमम् ।
अर्जुनं पाण्डवश्रेष्ठमिन्द्रप्रस्थगतं तदा ॥ २२ ॥

पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णने जब सुना, कि पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन इन्द्रप्रस्थमें जाकर अपनी सुन्दर राजधानीमें पहुंच गए हैं ॥ २२ ॥

आजगाम विशुद्धात्मा सह रामेण केशवः ।
वृष्ण्यन्धकमहामात्रैः सह वीरैर्महारथैः ॥ २३ ॥

तब विशुद्धात्मा कृष्ण, बलराम और महारथी वीर वृष्णि अंधकवंशी मंत्रियोंके साथ वहां जा पहुंचे ॥ २३ ॥

भ्रातृभिश्च कुमारैश्च योधैश्च शतशो वृतः ।
सैन्येन महता शौरिरभिगुप्तः परंतपः ॥ २४ ॥

शत्रुनाशी कृष्ण भाइयों, कुमारों, सैंकडों योद्धाओं और महान् सेनासे घिरकर सुरक्षित होकर वहां गए ॥ २४ ॥

तत्र दानपतिर्धीमानाजगाम महायशाः ।
अक्रूरो वृष्णिवीराणां सेनापतिररिन्दमः ॥ २५ ॥

और धीमान् अति कीर्तिवान् दाता अक्रूर, वृष्णि वीरोंके सेनापति, शत्रुनाशी ॥ २५ ॥

अनाधृष्टिर्महातेजा उद्धवश्च महायशाः ।
साक्षाद्बृहस्पतेः शिष्यो महाबुद्धिर्महायशाः ॥ २६ ॥

अनाधृष्टि, महातेजस्वी बडे यशस्वी उद्धव, साक्षात् बृहस्पतिके शिष्य अति यशस्वी महाबुद्धिमान् ॥ २६ ॥

सत्यकः सात्यकिश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
प्रद्युम्नश्चैव साम्बश्च निशठः शङ्कुरेव च ॥ २७ ॥

सत्यक, सात्यकि, सात्वत, कृतवर्मा, प्रद्युम्न, साम्ब, निशठ और शंकु ॥ २७ ॥

चारुदेष्णश्च विक्रान्तो झिल्ली विपृथुरेव च ।
सारणश्च महाबाहुर्गदश्च विदुषां वरः ॥ २८ ॥

चारुदेष्ण, विक्रमी झिल्ली और विपृथु, महाबाहु सारण और विद्वानोंमें श्रेष्ठ गद ॥ २८ ॥

एते चान्ये च बहवो वृष्णिभोजान्धकास्तथा ।
आजग्मुः खाण्डवप्रस्थमादाय हरणं बहु ॥ २९ ॥

यह सब तथा दूसरे बहुत वृष्णि, भोज और अन्धक अनेक तरहके धन लेकर खाण्डवप्रस्थमें आये ॥ २९ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा श्रुत्वा माधवमागतम् ।
प्रतिग्रहार्थं कृष्णस्य यमौ प्रास्थापयत्तदा ॥ ३० ॥

राजा युधिष्ठिरने माधवका शुभागमन सुनकर उनको आदरपूर्वक लिवालानेके लिये नकुल और सहदेवको भेजा ॥ ३० ॥

ताभ्यां प्रतिगृहीतं तद्वृष्णिचक्रं समृद्धिमत् ।
विवेश खाण्डवप्रस्थं पताकाध्वजशोभितम् ॥ ३१ ॥

बडे भारी समृद्धिशाली वृष्णिदलने उन दो पुरुषोंसे स्वागत पाकर पताका और ध्वजाओंसे सुशोभित खाण्डवप्रस्थपुरीमें प्रवेश किया ॥ ३१ ॥

सिक्तसंमृष्टपन्थानं पुष्पप्रकरशोभितम् ।
चन्दनस्य रसैः शीतैः पुण्यगन्धैर्निषेवितम् ॥ ३२ ॥

पवित्र गन्धवाले चंदनके जलसे छिडके हुए मार्गवाले अनेक तरहके फूलोंसे सुशोभित ॥ ३२ ॥

दह्यतागुरुणा चैव देशे देशे सुगन्धिना ।
सुसंमृष्टजनाकीर्णं वणिग्भिरुपशोभितम् ॥ ३३ ॥

जलते हुए अगरकी सुगंधिसे प्रत्येक जगह जिसकी सुगंधित हो चुकी है, ऐसे तथा अनेक तरहके पुरुषोंसे युक्त तथा बनियोंसे सम्पन्न ॥ ३३ ॥

प्रतिपेदे महाबाहुः सह रामेण केशवः ।
वृष्ण्यन्धकमहाभोजैः संवृतः पुरुषोत्तमः ॥ ३४ ॥

उस नगरमें वृष्णि, अंधक और भोजोंसे घिरे हुए पुरुषोत्तम महाभुज केशव रामके साथ जा पहुंचे ॥ ३४ ॥

संपूज्यमानः पौरैश्च ब्राह्मणैश्च सहस्रशः ।
विवेश भवनं राज्ञः पुरन्दरगृहोपमम् ॥ ३५ ॥

सहस्रों ब्राह्मण और पुरवासियोंसे पूजित होते हुए इन्द्रके घरके समान सुन्दर राजभवनमें कृष्णने प्रवेश किया ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिरस्तु रामेण समागच्छद्यथाविधि ।
मूर्ध्नि केशवमाघ्राय पर्यष्वजत बाहुना ॥ ३६ ॥

राजा युधिष्ठिरने विधिपूर्वक बलदेवके साथ आते हुए श्रीकृष्णका सिर सूंघकर उन्हें भुजाओंमें जकड लिया ॥ ३६ ॥

तं प्रीयमाणं कृष्णस्तु विनयेनाभ्यपूजयत् ।
भीमं च पुरुषव्याघ्रं विधिवत्प्रत्यपूजयत् ॥ ३७ ॥

कृष्णने विनयपूर्वक प्रसन्न मनवाले उनकी पूजा की और पुरुषश्रेष्ठ भीमको विधिपूर्वक नमस्कार किया ॥ ३७ ॥

तांश्च वृष्ण्यन्धकश्रेष्ठान्धर्मराजो युधिष्ठिरः
प्रतिजग्राह सत्कारैर्यथाविधि यथोपगम् ॥ ३८ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने उन सब वृष्णि और अन्धकोंको यथायोग्य आदरसे ग्रहण किया ॥ ३८ ॥

गुरुवत्पूजयामास कांश्चित्कांश्चिद्वयस्यवत् ।
कांश्चिदभ्यवदत्प्रेम्णा कैश्चिदप्यभिवादितः ॥ ३९ ॥

उन्होंने किसी किसीको गुरुकी भांति प्रणाम किया, किसी किसीसे समवस्थावालोंके सदृश व्यवहार किया और किसी किसीको प्रेमालापसे सम्मानित किया और किसीने उनको प्रणाम किया ॥ ३९ ॥

भ्रातृभिश्च कुमारैश्च योधैश्च शतशो वृतः ।
सैन्येन महता शौरिरभिगुप्तः परंतपः ॥ २४ ॥

शत्रुनाशी कृष्ण भाइयों, कुमारों, सैंकडों योद्धाओं और महान् सेनासे घिरकर सुरक्षित होकर वहां गए ॥ २४ ॥

तत्र दानपतिर्धीमानाजगाम महायशाः ।
अक्रूरो वृष्णिवीराणां सेनापतिररिन्दमः ॥ २५ ॥

और धीमान् अति कीर्तिवान् दाता अक्रूर, वृष्णि वीरोंके सेनापति, शत्रुनाशी ॥ २५ ॥

अनाधृष्टिर्महातेजा उद्धवश्च महायशाः ।
साक्षाद्बृहस्पतेः शिष्यो महाबुद्धिर्महायशाः ॥ २६ ॥

अनाधृष्टि, महातेजस्वी बडे यशस्वी उद्धव, साक्षात् बृहस्पतिके शिष्य अति यशस्वी महाबुद्धि-मान् ॥ २६ ॥

सत्यकः सात्यकिश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
प्रद्युम्नश्चैव साम्बश्च निशठः शङ्कुरेव च ॥ २७ ॥

सत्यक, सात्यकि, सात्वत, कृतवर्मा, प्रद्युम्न, साम्ब, निशठ और शंकु ॥ २७ ॥

चारुदेष्णश्च विक्रान्तो झिल्ली विपृथुरेव च ।
सारणश्च महाबाहुर्गदश्च विदुषां वरः ॥ २८ ॥

चारुदेष्ण, विक्रमी झिल्ली और विपृथु, महाबाहु सारण और विद्वानोंमें श्रेष्ठ गद ॥ २८ ॥

एते चान्ये च बहवो वृष्णिभोजान्धकास्तथा ।
आजग्मुः खाण्डवप्रस्थमादाय हरणं बहु ॥ २९ ॥

यह सब तथा दूसरे बहुत वृष्णि, भोज और अन्धक अनेक तरहके धन लेकर खाण्डवप्रस्थमें आये ॥ २९ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा श्रुत्वा माधवमागतम् ।
प्रतिग्रहार्थं कृष्णस्य यमौ प्रास्थापयत्तदा ॥ ३० ॥

राजा युधिष्ठिरने माधवका शुभागमन सुनकर उनको आदरपूर्वक लिवालानेके लिये नकुल और सहदेवको भेजा ॥ ३० ॥

ताभ्यां प्रतिगृहीतं तद्वृष्णिचक्रं समृद्धिमत् ।
विवेश खाण्डवप्रस्थं पताकाध्वजशोभितम् ॥ ३१ ॥

बडे भारी समृद्धिशाली वृष्णिदलने उन दो पुरुषोंसे स्वागत पाकर पताका और ध्वजाओंसे सुशोभित खाण्डवप्रस्थपुरीमें प्रवेश किया ॥ ३१ ॥

सिक्तसंमृष्टपन्थानं पुष्पप्रकरशोभितम् ।
चन्दनस्य रसैः शीतैः पुण्यगन्धैर्निषेवितम् ॥ ३२ ॥

पवित्र गन्धवाले चंदनके जलसे छिडके हुए मार्गवाले अनेक तरहके फूलोंसे सुशोभित ॥ ३२ ॥

दह्यतागुरुणा चैव देशे देशे सुगन्धिना ।
सुसंमृष्टजनाकीर्णं वणिग्भिरुपशोभितम् ॥ ३३ ॥

जलते हुए अगरकी सुगंधिसे प्रत्येक जगह जिसकी सुगंधित हो चुकी है, ऐसे तथा अनेक तरहके पुरुषोंसे युक्त तथा बनियोंसे सम्पन्न ॥ ३३ ॥

प्रतिपेदे महाबाहुः सह रामेण केशवः ।
वृष्ण्यन्धकमहाभोजैः संवृतः पुरुषोत्तमः ॥ ३४ ॥

उस नगरमें वृष्णि, अंधक और भोजोंसे घिरे हुए पुरुषोत्तम महाभुज केशव रामके साथ जा पहुंचे ॥ ३४ ॥

संपूज्यमानः पौरैश्च ब्राह्मणैश्च सहस्रशः ।
विवेश भवनं राज्ञः पुरन्दरगृहोपमम् ॥ ३५ ॥

सहस्रों ब्राह्मण और पुरवासियोंसे पूजित होते हुए इन्द्रके घरके समान सुन्दर राजभवनमें कृष्णने प्रवेश किया ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिरस्तु रामेण समागच्छद्यथाविधि ।
मूर्ध्नि केशवमाघ्राय पर्यष्वजत बाहुना ॥ ३६ ॥

राजा युधिष्ठिरने विधिपूर्वक बलदेवके साथ आते हुए श्रीकृष्णका सिर सूंघकर उन्हें भुजाओंमें जकड लिया ॥ ३६ ॥

तं प्रीयमाणं कृष्णस्तु विनयेनाभ्यपूजयत् ।
भीमं च पुरुषव्याघ्रं विधिवत्प्रत्यपूजयत् ॥ ३७ ॥

कृष्णने विनयपूर्वक प्रसन्न मनवाले उनकी पूजा की और पुरुषश्रेष्ठ भीमको विधिपूर्वक नमस्कार किया ॥ ३७ ॥

तांश्च वृष्ण्यन्धकश्रेष्ठान्धर्मराजो युधिष्ठिरः
प्रतिजग्राह सत्कारैर्यथाविधि यथोपगम् ॥ ३८ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने उन सब वृष्णि और अन्धकोंको यथायोग्य आदरसे ग्रहण किया ॥ ३८ ॥

गुरुवत्पूजयामास कांश्चित्कांश्चिद्वयस्यवत् ।
कांश्चिदभ्यवदत्प्रेम्णा कैश्चिदप्यभिवादितः ॥ ३९ ॥

उन्होंने किसी किसीको गुरुकी भांति प्रणाम किया, किसी किसीसे समवस्थावालोंके सदृश व्यवहार किया और किसी किसीको प्रेमालापसे सम्मानित किया और किसीने उनको प्रणाम किया ॥ ३९ ॥

ततो ददौ वासुदेवो जन्यार्थे धनमुत्तमम् ।
हरणं वै सुभद्राया ज्ञातिदेयं महायशाः ॥ ४० ॥

कन्यापक्षके लोगोंके द्वारा वरपक्षके लोगोंको दिए जानेवाले उपहारको लेकर आए हुए, महायशस्वी श्रीकृष्णने सुभद्राके विवाहके निमित्त बहुत सा धन दिया ॥ ४० ॥

रथानां काञ्चनाङ्गानां किङ्किणीजालमालिनाम् ।
चतुर्युजामुपेतानां सूतैः कुशलसंमतैः ।
सहस्रं प्रददौ कृष्णो गवामयुतमेव च ॥ ४१ ॥

कृष्णने पाण्डवोंको सुशिक्षित सारथियोंके समेत चार घोडेके किङ्किणीजाल मालासे सुहावने सहस्र सोनेके रथ और दस हजार गायें दीं ॥ ४१ ॥

श्रीमान्माथुरदेश्यानां दोग्ध्रीणां पुण्यवर्चसाम् ।
वडवानां च शुभ्राणां चन्द्रांशुसमवर्चसाम् ।
ददौ जनार्दनः प्रीत्या सहस्रं हेमभूषणम् ॥ ४२ ॥

जो मथुरा खण्डकी, तेजस्वी और बहुत दूध देनेवाली थीं, चन्द्रमाके समान सफेद और सुवर्णसे सजी हजार घोडियां कृष्णने प्रसन्नतासे दीं ॥ ४२ ॥

तथैवाश्वतरीणां च दान्तानां वातरंहसाम् ।
शतान्यञ्जनकेशीनां श्वेतानां पञ्च पञ्च च ॥ ४३ ॥

काले केशवाली, सफेद, पवनके समान वेगवती अच्छी सिखी सिखायी सहस्र खच्चरियां दीं ॥ ४३ ॥

स्नापनोत्सादने चैव सुयुक्तं वयसान्वितम् ।
स्त्रीणां सहस्रं गौरीणां सुवेषाणां सुवर्चसाम् ॥ ४४ ॥

स्नानपानोत्सवमें तेज, युवती, गौर रङ्गकी, उत्तम पोषाक पहनी हुई, वर्चस्वी हजार स्त्रियें दीं ॥ ४४ ॥

सुवर्णशतकण्ठीनामरोगाणां सुवाससाम् ।
परिचर्यासु दक्षाणां प्रददौ पुष्करेक्षणः ॥ ४५ ॥

जो रोगोंसे मुक्त, सुन्दरी, भली प्रकार बनीठनी, गलेमें सोनेके सौ मुहर पहिनी हुई, सेवा करनेमें चतुर हजार दासियां कमलनेत्र कृष्णने दीं ॥ ४५ ॥

कृताकृतस्य मुख्यस्य कनकस्याग्निवर्चसः ।
मनुष्यभारान्दाशार्हो ददौ दश जनार्दनः ॥ ४६ ॥

और सुभद्राको मनुष्यके द्वारा ले जाने योग्य दस मनुष्य भार विशुद्ध अग्निके रंगका सुवर्ण जनार्दनने दिया ॥ ४६ ॥

गजानां तु प्रभिन्नानां त्रिधा प्रस्रवतां मदम् ।
गिरिकूटनिकाशानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ४७ ॥

फूटे हुए गण्डस्थलवाले तथा तीन तरफसे मद बहानेवाले, पहाडके समान बडे, युद्धसे मुंह न मोडनेवाले हाथी ॥ ४७ ॥

क्लृप्तानां पटुघण्टानां वराणां हेममालिनाम् ।
हस्त्यारोहैरुपेतानां सहस्रं साहसप्रियः ॥ ४८ ॥

जो सुवर्णहारसे सजे, झनकती हुई घण्टालियां लटकाये, बैठनेके हौदेसे युक्त, साहसी, अनेक प्रकारसे सुन्दर सुन्दर थे ॥ ४८ ॥

रामः पादग्राहणिकं ददौ पार्थाय लाङ्गली ।
प्रीयमाणो हलधरः संबन्धप्रीतिमावहन् ॥ ४९ ॥

उन्हें हलधर बलरामने इस सम्बन्ध पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए अर्जुनको दहेजमें दिए ॥ ४९ ॥

स महाधनरत्नौघो वस्त्रकम्बलफेनवान् ।
महागजमहाग्राहः पताकाशैवलाकुलः ॥ ५० ॥

पाण्डुसागरमाविद्धः प्रविवेश महानदः ।
पूर्णमापूरयंस्तेषां द्विषच्छोकावहोऽभवत् ॥ ५१ ॥

बडे बडे गजरूपी बडे बडे ग्राहोंसे पूर्ण और झण्डेरूपी वस्त्र, कम्बलादिरूपी फेनभरे, शैवालोंसे भरपूर उस अनंत धनरत्नरूपी जलसे भरी महानदियां प्रशस्त पाण्डवरूपी सागरमें मिल गईं और उनसे उस सागरके भर जानेपर वह सागर शत्रुओंको शोकमें डुबाने लगा ॥ ५०-५१ ॥

प्रतिजग्राह तत्सर्वं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
पूजयामास तांश्चैव वृष्ण्यन्धकमहारथान् ॥ ५२ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने वह सब लेकर वृष्णि और अंधकोंके महारथिओंका भली प्रकार सत्कार किया ॥ ५२ ॥

ते समेता महात्मानः कुरुवृष्ण्यन्धकोत्तमाः ।
विजह्रुरमरावासे नराः सुकृतिनो यथा ॥ ५३ ॥

तदनंतर पुण्यशील जन जिस प्रकार देवलोकमें विहार करते हैं, वैसे ही महात्मा कुरु, वृष्णि और अंधकवंशी लोग वहां एकत्र होकर आनन्दसे विहार करने लगे ॥ ५३ ॥

तत्र तत्र महानानैरुत्कृष्टतलनादितैः ।
यथायोगं यथाप्रीति विजन्हुः कुरुवृष्णयः ॥ ५४ ॥

वे कुरु वृष्णिवीर अपनी अपनी प्रीतिके अनुसार खापीकर और गा बजाकर यथायोग्य विहार करने लगे ॥ ५४ ॥

एवमुत्तमवीर्यास्ते विहृत्य दिवसान्बहून् ।
पूजिताः कुरुभिर्जग्मुः पुनर्द्वारवतीं पुरीम् ॥ ५५ ॥

अति वीर्यवान् महारथी अन्धक और वृष्णिलोग उस नगरमें बहुत दिनोंतक आनन्द उडाते रहे । तदनन्तर कौरवोंसे पूजे जाकर वे फिर द्वारका चले गए ॥ ५५ ॥

रामं पुरस्कृत्य ययुर्वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
रत्नान्यादाय शुभ्राणि दत्तानि कुरुसत्तमैः ॥ ५६ ॥

कुरुश्रेष्ठोंके द्वारा दिये गए अमूल्य रत्नोंको लेकर रामको आगे करके वे महारथी वृष्णि अन्धक द्वारकापुरीको गये ॥ ५६ ॥

वासुदेवस्तु पार्थेन तत्रैव सह भारत ।
उवास नगरे रम्ये शक्रप्रस्थे महामनाः
व्यचरद्यमुनाकूले पार्थेन सह भारत ॥ ५७ ॥

हे भारत ! बडे यशस्वी महानुभाव वासुदेव अर्जुनके साथ उसी सुन्दर इन्द्रप्रस्थ नगरमें रहे और उनके साथ यमुना तटपर विहार करने लगे ॥ ५७ ॥

ततः सुभद्रा सौभद्रं केशवस्य प्रिया स्वसा ।
जयन्तमिव पौलोमी द्युतिमन्तमजीजनत् ॥ ५८ ॥

तदनन्तर शचीने जिस प्रकार प्रख्यात जयन्तको उत्पन्न किया था, वैसे ही कृष्णकी प्यारी बहिन कल्याणी सुभद्राने अभिमन्युको पैदा किया ॥ ५८ ॥

दीर्घबाहुं महासत्त्वमृषभाक्षमरिंदमम् ।
सुभद्रा सुषुवे वीरमभिमन्युं नरर्षभम् ॥ ५९ ॥

सुभद्राने दीर्घबाहु, महाबलशाली, बैलके समान नेत्रवाले, शत्रुनाशी तथा मनुष्योंमें श्रेष्ठ वीर अभिमन्युको उत्पन्न किया ॥ ५९ ॥

अभीश्च मन्युमांश्चैव ततस्तमरिमर्दनम् ।
अभिमन्युमिति प्राहुरार्जुनिं पुरुषर्षभम् ॥ ६० ॥

वह शत्रुनाशी पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन कुमार अभी अर्थात् निर्भयचित्त और मन्युयुक्त थे, अतः सब लोग उनको अभिमन्यु कहने लगे ॥ ६० ॥

स सात्वत्यामतिरथः संबभूव धनंजयात्।
मखे निर्मथ्यमानाद्वा शमीगर्भाद्धुताशनः ॥ ६१ ॥

यज्ञस्थलमें मथनेसे जिस प्रकार शमीगर्भसे अग्नि उत्पन्न होती है, वैसे ही सात्वतवंशमें उत्पन्न सुभद्राके गर्भमें धनञ्जयसे उस महारथी अभिमन्युने जन्म लिया था ॥ ६१ ॥

यस्मिञ्जाते महाबाहुः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
अयुतं गा द्विजातिभ्यः प्रादान्निष्कांश्च तावतः ॥ ६२ ॥

हे भारत ! उस कुमारके जन्म होते ही बडी भुजाओंवाले कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको दस सहस्र गौ और दस सहस्र निष्क दान दिया ॥ ६२ ॥

दयितो वासुदेवस्य बाल्यात्प्रभृति चाभवत्।
पितॄणां चैव सर्वेषां प्रजानामिव चन्द्रमाः ॥ ६३ ॥

चन्द्रमा जिस प्रकार सब प्रजाओंका प्यारा होता है, वैसे ही अभिमन्यु बालकपनसे ही सभी पिताओं और वासुदेवके प्यारा था ॥ ६३ ॥

जन्मप्रभृति कृष्णश्च चक्रे तस्य क्रियाः शुभाः।
स चाऽपि ववृधे बालः शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ६४ ॥

कृष्णने जन्मसे ही उसके सब शुभ जात-कर्म किये। वह बालक भी शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान दिन पर दिन बढने लगा ॥ ६४ ॥

चतुष्पादं दशविधं धनुर्वेदमरिंदमः।
अर्जुनाद्वेद वेदज्ञात्सकलं दिव्यमानुषम् ॥ ६५ ॥

शत्रुनाशी अभिमन्युने वेदके जानकार अर्जुनसे (आदान, सन्धान, मोक्षण, विनिवर्त्तन, स्थान, मुष्टि प्रयोग, प्रतिकार, मण्डल और भेद इन) दशाङ्ग युक्त तथा (मन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, मुक्तामुक्त और अमुक्त यह) चार पादयुक्त सम्पूर्ण दिव्य और मानुषी धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की ॥ ६५ ॥

विज्ञानेष्वपि चास्त्राणां सौष्ठवे च महाबलः।
क्रियास्वपि च सर्वासु विशेषानभ्यशिक्षयत् ॥ ६६ ॥

महाबली अर्जुनने उसको अस्त्रविज्ञान, सौष्ठव और उत्सर्पण, प्रसर्पण आदि सब क्रियाओंके विषयमें अच्छी शिक्षा दी ॥ ६६ ॥

आगमे च प्रयोगे च चक्रे तुल्यमिवात्मनः।
तुतोष पुत्रं सौभद्रं प्रेक्षमाणो धनंजयः ॥ ६७ ॥

उन्होंने शास्त्रमें और प्रयोगके विषयमें उसको अपने सदृश बनाया और अपने पुत्र सौभद्र अर्थात् अभिमन्युको देखकर अर्जुन बडे प्रसन्न हुए ॥ ६७ ॥

सर्वसंहननोपेतं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
दुर्धर्षमृषभस्कन्धं व्यात्ताननमिवोरगम् ॥ ६८ ॥

गुणयुक्त सब लक्षणोंसे युक्त, कठोर, बैलके समान कंधेवाले, बडे मुखवाले सर्पके समान ॥ ६८ ॥

सिंहदर्पं महेष्वासं मत्तमातङ्गविक्रमम् ।
मेघदुन्दुभिनिर्घोषं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ॥ ६९ ॥

सिंहके सदृश दर्पयुक्त, बडे धनुर्धारी, उन्मत्त गजकी भांति विक्रमी, बादल और नगाडेके समान गरजनेवाले, पूर्ण चन्द्रके समान मुखवाले ॥ ६९ ॥

कृष्णस्य सदृशं शौर्ये वीर्ये रूपे तथाकृतौ ।
ददर्श पुत्रं बीभत्सुर्मघवानिव तं यथा ॥ ७० ॥

और शूरता वीर्य तथा कार्यमें कृष्णके सदृश अपने पुत्रको अर्जुनने उसी प्रकार देखा जिस प्रकार देवराज इंद्र अर्जुनको देखते थे ॥ ७० ॥

पाञ्चाल्यपि च पञ्चभ्यः पतिभ्यः शुभलक्षणा ।
लेभे पञ्च सुतान्वीराञ्शुभान्पञ्चाचलानिव ॥ ७१ ॥

शुभलक्षणा पाञ्चालीने भी पांच पतियोंसे पांच पर्वतके समान बडे वीर पांच पुत्र प्राप्त किये ॥ ७१ ॥

युधिष्ठिरात्प्रतिविन्ध्यं सुतसोमं वृकोदरात् ।
अर्जुनाच्छ्रुतकर्माणं शतानीकं च नाकुलिम् ॥ ७२ ॥

युधिष्ठिरसे प्रतिविंध्य, वृकोदरसे सुतसोम, अर्जुनसे श्रुतकर्मा, नकुलसे शतानीक ॥ ७२ ॥

सहदेवाच्छ्रुतसेनमेतान्पञ्च महारथान् ।
पाञ्चाली सुषुवे वीरानादित्यानदितिर्यथा ॥ ७३ ॥

सहदेवसे श्रुतसेन ये पांच महारथी वीरपुत्र पांचालीने उसी प्रकार प्रसूत किये जिस प्रकार अतिदिने देवोंको उत्पन्न किया था ॥ ७३ ॥

शास्त्रतः प्रतिविन्ध्यं तमूचुर्विप्रा युधिष्ठिरम् ।
परप्रहरणज्ञाने प्रतिविन्ध्यो भवत्वयम् ॥ ७४ ॥

ब्राह्मणोंने शास्त्रोंके अनुसार यह जानकर, कि युधिष्ठिरका पुत्र शत्रुके प्रहारोंको विन्ध्याचलके समान सहन करेगा, उसका नाम प्रतिविन्ध्य रखा ॥ ७४ ॥

सुते सोमसहस्रे तु सोमार्कसमतेजसम् ।
सुतसोमं महेष्वासं सुषुवे भीमसेनतः ॥ ७५ ॥

सहस्र सोमयज्ञ करनेके बाद भीमसेनसे सोमके तेजके समान तेजस्वी बडे धनुर्धारी सुतके उत्पन्न होनेसे उसका नाम सुतसोम हुआ ॥ ७५ ॥

श्रुतं कर्म महत्कृत्वा निवृत्तेन किरीटिना ।
जातः पुत्रस्तवेत्येवं श्रुतकर्मा ततोऽभवत् ॥ ७६ ॥

किरीटीके अनेक श्रुत अर्थात् प्रसिद्ध कर्म करके लौटने पर उनका वह पुत्र पैदा हुआ था, अतः उसका नाम श्रुतकर्मा हुआ ॥ ७६ ॥

शतानीकस्य राजर्षेः कौरव्यः कुरुनन्दनः ।
चक्रे पुत्रं सनामानं नकुलः कीर्तिवर्धनम् ॥ ७७ ॥

कुरुवंशकी कीर्ति बढानेवाले शतानीक नामक एक राजर्षि थे, नकुलने उस राजाके नामके ऊपर कुलको बढानेवाले अपने पुत्रका नाम शतानीक रखा ॥ ७७ ॥

ततस्त्वजीजनत्कृष्णा नक्षत्रे वह्निदैवते ।
सहदेवात्सुतं तस्माच्छ्रुतसेनेति तं विदुः ॥ ७८ ॥

सहदेवसे द्रौपदीके जिस पुत्रने जन्म लिया था, वह कृत्तिका नक्षत्रमें हुआ था, अतः सहदेवके पुत्रका नाम श्रुतसेन हुआ × ॥ ७८ ॥

एकवर्षान्तरास्त्वेव द्रौपदेया यशस्विनः ।
अन्वजायन्त राजेन्द्र परस्परहिते रताः ॥ ७९ ॥

हे महाराज ! द्रौपदीके कुमारोंमें वर्ष वर्ष भरका अन्तर था, वे सब एक दूसरेके हित चाहने-वाले और यशस्वी हुए ॥ ७९ ॥

जातकर्माण्यानुपूर्व्याच्चूडोपनयनानि च ।
चकार विधिवद्धौम्यस्तेषां भरतसत्तम ॥ ८० ॥

हे भरतवंश श्रेष्ठ ! पुरोहित धौम्यने विधिपूर्वक उनका जातकर्म, चूडा, उपनयन, संस्कार कर्म क्रमसे कराया ॥ ८० ॥

कृत्वा च वेदाध्ययनं ततः सुचरितव्रताः ।
जगृहुः सर्वमिष्वस्त्रमर्जुनाद्दिव्यमानुषम् ॥ ८१ ॥

तदनन्तर सुचरित्र बालकोंने वेद पढकर अर्जुनसे सब दिव्य और मानुषी अस्त्रोंकी शिक्षा ली ॥ ८१ ॥

× कृत्तिकाका पुत्र कार्तिकेय देवोंका सेनापति है, वह श्रुत अर्थात् प्रसिद्ध सेन अर्थात् सेनावाला होनेके कारण श्रुतसेन है, अतः कृत्तिका नक्षत्रमें पैदा होनेके कारण सहदेवके पुत्रका नाम भी श्रुतसेन पडा ।

×

दिव्यगर्भोपमैः पुत्रैर्व्यूढोरस्कैर्महाबलैः ।
अन्विता राजशार्दूल पाण्डवा मुदमाप्नुवन् ॥ ८२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥
॥ समाप्तं हरणहारिकपर्व ॥ ६८५९ ॥

हे राजशार्दूल ! पाण्डवलोग देवकुमारोंके समान चौडी छातीवाले महाबली कुमारोंको प्राप्त कर बडे प्रसन्न हुए ॥ ८२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ २१३ ॥ हरणहारिकपर्व समाप्त ॥ ६८५९॥

: २१४ :

वैशम्पायन उवाच

इन्द्रप्रस्थे वसन्तस्ते जघ्नुरन्यान्नराधिपान् ।
शासनाद् धृतराष्ट्रस्य राज्ञः शान्तनवस्य च ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारतश्रेष्ठ ! पाण्डवगण राजा धृतराष्ट्र और शान्तनुनन्दन भीष्मकी आज्ञासे इन्द्रप्रस्थमें रहकर दूसरे राजाओंपर अधिकार करने लगे ॥ १ ॥

आश्रित्य धर्मराजानं सर्वलोकोऽवसत्सुखम् ।
पुण्यलक्षणकर्माणं स्वदेहमिव देहिनः ॥ २ ॥

आत्मा जिस प्रकार पुण्यकर्म करनेवाले शरीरमें सुखसे विराजती है, वैसे ही सब प्रजा धर्मराज युधिष्ठिरका आश्रय लेकर सुखसे रहने लगी ॥ २ ॥

स समं धर्मकामार्थान्सिषेवे भरतर्षभः ।
त्रीनिवात्मसमान्बन्धून्बन्धुमानिव मानयन् ॥ ३ ॥

जिस प्रकार कोई भाइयोंसे युक्त व्यक्ति अपने जैसे अपने तीन भाइयोंका पालन करता है, उसी प्रकार भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर धर्म, अर्थ और काम इन तीन वर्गोंकी सेवा करने लगे ॥३॥

तेषां समविभक्तानां क्षितौ देहवतामिव ।
बभौ धर्मार्थकामानां चतुर्थ इव पार्थिवः ॥ ४ ॥

समान रूपसे विभक्त धर्म, अर्थ, काम, मानो यह देह धरके धरती पर उतर आये थे; राजा युधिष्ठिर मानो उनमें चौथे अर्थात् मोक्ष बनकर शोभा पाने लगे ॥ ४ ॥

अध्येतारं परं वेदाः प्रयोक्तारं महाध्वराः ।
रक्षितारं शुभं वर्णा लेभिरे तं जनाधिपम् ॥ ५ ॥

प्रजाओंने उस राजाको बडा यज्ञकारी और वेदोंका अध्ययन करनेवाला, वर्णोंकी रक्षा करनेवाला पाया ॥ ५ ॥

अधिष्ठानवती लक्ष्मीः परायणवती मतिः ।
बन्धुमानखिलो धर्मस्तेनासीत्पृथिवीक्षिता ॥ ६ ॥

उनके साम्राज्यके दिनोंमें राजाओंकी लक्ष्मी अटल हो गई, चित्त परब्रह्मकी ओर लग गया और धर्म भाईके समान हो गया ॥ ६ ॥

भ्रातृभिः सहितो राजा चतुर्भिरधिकं बभौ ।
प्रयुज्यमानैर्विततो वेदैरिव महाध्वरः ॥ ७ ॥

जिस प्रकार प्रयुज्यमान चतुर्वेदसे फैला हुआ बडा यज्ञ सुशोभित होता है, वैसे ही धर्मराज युधिष्ठिर चार भाइयोंसे और भी अधिक सुहावने लगने लगे ॥ ७ ॥

तं तु धौम्यादयो विप्राः परिवार्योपतस्थिरे ।
बृहस्पतिसमा मुख्याः प्रजापतिमिवामराः ॥ ८ ॥

जिस प्रकार देवगण प्रजापतिको घेरकर उपासना किया करते हैं, वैसे ही धौम्य आदि बृहस्पतिके सदृश प्रधान प्रधान ब्राह्मणगण उनको चारों ओर घेरे रहते थे ॥ ८ ॥

धर्मराजे अतिप्रीत्या पूर्णचन्द्र इवामले ।
प्रजानां रेमिरे तुल्यं नेत्राणि हृदयानि च ॥ ९ ॥

पूर्णचन्द्रमाके समान निर्मल धर्मराज युधिष्ठिरमें प्रजाओंके नयन और मन दोनों अत्यधिक प्रसन्नतासे रमने लगे ॥ ९ ॥

न तु केवलदैवेन प्रजा भावेन रेमिरे ।
यद्बभूव मनःकान्तं कर्मणा स चकार तत् ॥ १० ॥

प्रजायें उन युधिष्ठिर पर केवल इसीलिए प्रेम नहीं करती थीं कि वे भाग्यसे राजा बन गए हैं, अपितु वे प्रेमभावनासे युधिष्ठिर पर प्रेम करती थीं । वे युधिष्ठिर भी ऐसे ही कार्यमें दत्तचित्त होते थे, कि जिनसे प्रजाको सन्तोष मिले ॥ १० ॥

न ह्ययुक्तं न चासत्यं नानृतं न च विप्रियम् ।
भाषितं चारुभाषस्य जज्ञे पार्थस्य धीमतः ॥ ११ ॥

बुद्धिमान् मधुरभाषी पाण्डवोंका वचन न कभी झूठा होता था, न कभी युक्तिके विरुद्ध होता था, न कभी असत्य वा अप्रिय ही होता था ॥ ११ ॥

स हि सर्वस्य लोकस्य हितमात्मन एव च ।
चिकीर्षुः सुमहातेजा रेमे भरतसत्तमः ॥ १२ ॥

वह भरतश्रेष्ठ बडे तेजस्वी पुरुष अपने और दूसरे सब जनोंके हित साधनेमें सदा रत रह कर परम सुखसे काल बिताने लगे ॥ १२ ॥

तथा तु मुदिताः सर्वे पाण्डवा विगतज्वराः ।
अवसन्पृथिवीपालांस्त्रासयन्तः स्वतेजसा ॥ १३ ॥

उनके भाईलोग भी अपने अपने तेजसे भूपालोंको भयभीत करते हुए निर्भय होकर प्रमुदित चित्तसे रहने लगे ॥ १३ ॥

ततः कतिपयाहस्य बीभत्सुः कृष्णमब्रवीत् ।
उष्णानि कृष्ण वर्तन्ते गच्छामो यमुनां प्रति ॥ १४ ॥

कुछ दिन बीतने पर अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले– कृष्ण ! अब ग्रीष्मकाल आ गया, चलो हम यमुनाके किनारे चलें ॥ १४ ॥

सुहृज्जनवृतास्तत्र विहृत्य मधुसूदन ।
सायाह्ने पुनरेष्यामो रोचतां ते जनार्दन ॥ १५ ॥

हे जनार्दन ! हम मित्रोंके साथ वहां विहार कर सन्ध्याको फिर लौट आयेंगे, यह तुमको पसन्द होगा ॥ १५ ॥

वासुदेव उवाच

कुन्तीमातर्ममाप्येतद्रोचते यद्वयं जले ।
सुहृज्जनवृताः पार्थ विहरेम यथासुखम् ॥ १६ ॥

श्रीकृष्ण बोले– हे कुन्तीपुत्र ! मेरी भी इच्छा हो रही है, कि हम मित्रोंके साथ सुखसे जलमें विहार करें ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच

आमन्त्र्य धर्मराजानमनुज्ञाप्य च भारत ।
जग्मतुः पार्थगोविन्दौ सुहृज्जनवृतौ ततः ॥ १७ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत ! तदनन्तर अर्जुन और कृष्ण आपसमें ऐसी बातें कर धर्मराजकी आज्ञा लेकर मित्रोंके साथ निकले ॥ १७ ॥

विहारदेशं संप्राप्य नानाद्रुमवदुत्तमम् ।
गृहैरुच्चावचैर्युक्तं पुरंदरगृहोपमम् ॥ १८ ॥

अनेक पेडोंसे घिरे हुए इन्द्रपुरीकी भांति ऊंचे और नीचे नाना घरोंसे सजे हुए विहारके स्थानपर पहुंचकर ॥ १८ ॥

भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च रसवद्भिर्महाधनैः ।
माल्यैश्च विविधैर्युक्तं युक्तं वार्ष्णेयपार्थयोः ॥ १९ ॥

वे कृष्ण और अर्जुन स्वादिष्ट भक्ष्य, भोज्य और पानकी सामग्रीसे भरे हुए महामूल्य भांति भांतिकी सुगन्धित मालाओंसे सुहावने स्थान पर जा पहुंचे ॥ १९ ॥

आविवेशातुरापूर्णं रत्नैरुच्चावचैः शुभैः ।
यथोपजोषं सर्वश्च जनश्चिक्रीड भारत ॥ २० ॥

और नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित विहारके स्थान पर पहुंचकर साथी लोग सुखसे खेलने कूदने लगे ! ॥ २० ॥

वने काश्चिज्जले काश्चित्काश्चिद्वेश्मसु चाङ्गनाः ।
यथादेशं यथाप्रीति चिक्रीडुः कृष्णपार्थयोः ॥ २१ ॥

कोई स्त्री वनमें, कोई स्त्री जलमें, कोई स्त्री घरमें प्रीतिके साथ अर्जुन और कृष्णकी आज्ञानुसार बिहार करने लगीं ॥ २१ ॥

द्रौपदी च सुभद्रा च वासांस्याभरणानि च ।
प्रयच्छेतां महार्हाणि स्त्रीणां ते स्म मदोत्कटे ॥ २२ ॥

महाराज ! तब वे द्रौपदी और सुभद्रा मदसे मतवाली बनकर उन सब स्त्रियोंको बहुमूल्य वस्त्र और गहने देने लगीं ॥ २२ ॥

काश्चित्प्रहृष्टा ननृतुश्चुक्रुशुश्च तथापराः ।
जहसुश्चापरा नार्यः पपुश्चान्या वरासवम् ॥ २३ ॥

कोई कोई स्त्रियां तो आनन्दित चित्तसे नाचने लगीं, कुछ गाने लगीं, कुछ रमणियां हंसने लगीं और कुछ स्त्रियां अच्छा आसव पीने लगीं ॥ २३ ॥

रुरुदुश्चापरास्तत्र प्रजघ्नुश्च परस्परम् ।
मन्त्रयामासुरन्याश्च रहस्यानि परस्परम् ॥ २४ ॥

कुछ स्त्रियां एक दूसरेको मारने पीटने तथा रोने लगीं और कुछ स्त्रियां आपसमें रहस्यकी बातें करने लगीं ॥ २४ ॥

वेणुवीणामृदङ्गानां मनोज्ञानां च सर्वशः ।
शब्देनापूर्यते ह स्म तद्वनं सुसमृद्धिमत् ॥ २५ ॥

तब वह वन बांसुरी, वीणा, मृदङ्ग आदि बाजेके मनोहारी शब्दोंसे भर कर बहुत सुहावना बन गया ॥ २५ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने कुरुदाशार्हनन्दनौ ।
समीपे जग्मतुः कंचिदुद्देशं सुमनोहरम् ॥ २६ ॥

हे महाराज ! इस प्रकारसे बडा भारी उत्सव उपस्थित होने पर कुरु और दाशार्हके वंशज अर्जुन और श्रीकृष्ण पासके ही किसी सुन्दर स्थानपर गए ॥ २६ ॥

तत्र गत्वा महात्मानौ कृष्णौ परपुरंजयौ ।
महार्हासनयो राजंस्ततस्तौ संनिषीदतुः ॥ २७ ॥

शत्रुके नगरोंको जीतनेवाले वे महात्मा अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों उस स्थानपर जाकर बडे बडे मूल्यवान् सिंहासनों पर बैठ गए ॥ २७ ॥

तत्र पूर्वव्यतीतानि विक्रान्तानि रतानि च ।
बहूनि कथयित्वा तौ रेमाते पार्थमाधवौ ॥ २८ ॥

अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों वे उस स्थानमें अतीत विक्रमके सम्बन्धमें और दूसरी भांति भांतिकी कथा कहते सुनते हुए खेलने लगे ॥ २८ ॥

तत्रोपविष्टौ मुदितौ नाकपृष्ठेऽश्विनाविव ।
अभ्यागच्छत्तदा विप्रो वासुदेवधनञ्जयौ ॥ २९ ॥

जिस प्रकार देवलोकमें दोनों अश्विनीकुमार एकत्र विराजते हैं, वैसे ही वासुदेव और धनञ्जय प्रमुदित मनसे उस स्थानमें बैठे थे, कि उसी समय एक ब्राह्मण उनके पास आया ॥२९॥

बृहच्छालप्रतीकाशः प्रतप्तकनकप्रभः ।
हरिपिङ्गो हरिश्मश्रुः प्रमाणायामतः समः ॥ ३० ॥

वह ब्राह्मण बडे सालके वृक्ष समान लम्बा, तपे सुवर्णके सदृश तेजवाला, हरी और पिंगल रंगकी चमकीली दाढीसे शोभित, लम्बाई और चौडाईमें उपयुक्त प्रमाण ॥ ३० ॥

तरुणादित्यसंकाशः कृष्णवासा जटाधरः ।
पद्मपत्राननः पिङ्गस्तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ ३१ ॥

तरुण सूर्यकी भांति तेजस्वी, पद्मपत्रके समान मुखवाला, तेजसे प्रदीप्त पिंगल वर्ण, जटाधारी, काला वस्त्र पहिने हुए था ॥ ३१ ॥

उपसृष्टं तु तं कृष्णौ भ्राजमानं द्विजोत्तमम् ।
अर्जुनो वासुदेवश्च तूर्णमुत्पत्य तस्थतुः ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥ ६८२१ ॥

तेजसे प्रकाशमान् उस द्विजोत्तमको निकट ही आया हुआ देखकर अर्जुन और कृष्ण आसन छोडकर शीघ्र उठ खडे हुए ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ २१४ ॥ ६८२१ ॥

: २१५ :

वैशम्पायन उवाच

सोऽब्रवीदर्जुनं चैव वासुदेवं च सात्वतम् ।
लोकप्रवीरौ तिष्ठन्तौ खाण्डवस्य समीपतः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तब ब्राह्मणने खाण्डववनके पास खडे हुए और संसारमें श्रेष्ठ वीर उन सात्वत कुलोत्पन्न श्रीकृष्ण और अर्जुनसे कहा ॥ १ ॥

ब्राह्मणो बहुभोक्तास्मि भुञ्जेऽपरिमितं सदा ।
भिक्षे वार्ष्णेयपार्थौ वामेकां तृप्तिं प्रयच्छताम् ॥ २ ॥

मैं बहुत खानेवाला ब्राह्मण हूं, सदा अपरिमित भोजन खाता हूं । अब तुम कृष्ण और अर्जुनसे भिक्षा मांगता हूं, कि तुम भोजन देकर मुझको तृप्त करो ॥ २ ॥

एवमुक्तौ तमब्रूतां ततस्तौ कृष्णपाण्डवौ ।
केनान्नेन भवांस्तृप्येत्तस्यान्नस्य यतावहे ॥ ३ ॥

इस प्रकार कहे जानेपर अर्जुन और कृष्ण उनसे बोले– कहिये, किस प्रकारका अन्न खानेसे आपकी तृप्ति होगी, हम उसके लिए प्रयत्न करेंगे ॥ ३ ॥

एवमुक्तः स भगवानब्रवीत्तावुभौ ततः ।
भाषमाणौ तदा वीरौ किमन्नं क्रियतामिति ॥ ४ ॥
नाहमन्नं बुभुक्षे वै पावकं मां निबोधतम् ।
यदन्नमनुरूपं मे तद्युवां संप्रयच्छतम् ॥ ५ ॥

कृष्ण और अर्जुन कैसा अन्न बनवाया जाए, इस विषयमें आपसमें बातचीत कर रहे थे, कि उस ब्राह्मणरूपी भगवान्‌ने उनसे कहा, कि मैं अन्न नहीं खाना चाहता । तुम मुझे अग्नि जानो, जो अन्न मेरे योग्य हो वही मुझको तुम दो ॥ ४–५ ॥

इदामिन्द्रः सदा दावं खाण्डवं परिरक्षति ।
तं न शक्नोम्यहं दग्धुं रक्ष्यमाणं महात्मना ॥ ६ ॥

देवराज इन्द्र सदा इस खाण्डव वनकी रक्षा करते हैं, अतः महात्मा इन्द्रके द्वारा रक्षित इस वनको मैं जला नहीं सकता ॥ ६ ॥

तत्र गत्वा महात्मानौ कृष्णौ परपुरंजयौ ।
महार्हासनयो राजंस्ततस्तौ संनिषीदतुः ॥ २७ ॥

शत्रुके नगरोंको जीतनेवाले वे महात्मा अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों उस स्थानपर जाकर बडे बडे मूल्यवान् सिंहासनों पर बैठ गए ॥ २७ ॥

तत्र पूर्वव्यतीतानि विक्रान्तानि रतानि च ।
बहूनि कथयित्वा तौ रेमाते पार्थमाधवौ ॥ २८ ॥

अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों वे उस स्थानमें अतीत विक्रमके सम्बन्धमें और दूसरी भांति भांतिकी कथा कहते सुनते हुए खेलने लगे ॥ २८ ॥

तत्रोपविष्टौ मुदितौ नाकपृष्ठेऽश्विनाविव ।
अभ्यागच्छत्तदा विप्रो वासुदेवधनञ्जयौ ॥ २९ ॥

जिस प्रकार देवलोकमें दोनों अश्विनीकुमार एकत्र विराजते हैं, वैसे ही वासुदेव और धनञ्जय प्रमुदित मनसे उस स्थानमें बैठे थे, कि उसी समय एक ब्राह्मण उनके पास आया ॥ २९ ॥

बृहच्छालप्रतीकाशः प्रतप्तकनकप्रभः ।
हरिपिङ्गो हरिश्मश्रुः प्रमाणायामतः समः ॥ ३० ॥

वह ब्राह्मण बडे सालके वृक्ष समान लम्बा, तपे सुवर्णके सदृश तेजवाला, हरी और पिंगल रंगकी चमकीली दाढीसे शोभित, लम्बाई और चौडाईमें उपयुक्त प्रमाण ॥ ३० ॥

तरुणादित्यसंकाशः कृष्णवासा जटाधरः ।
पद्मपत्राननः पिङ्गस्तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ ३१ ॥

तरुण सूर्यकी भांति तेजस्वी, पद्मपत्रके समान मुखवाला, तेजसे प्रदीप्त पिंगल वर्ण, जटाधारी, काला वस्त्र पहिने हुए था ॥ ३१ ॥

उपसृष्टं तु तं कृष्णौ भ्राजमानं द्विजोत्तमम् ।
अर्जुनो वासुदेवश्च तूर्णमुत्पत्य तस्थतुः ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥ ६८२१ ॥

तेजसे प्रकाशमान् उस द्विजोत्तमको निकट ही आया हुआ देखकर अर्जुन और कृष्ण आसन छोडकर शीघ्र उठ खडे हुए ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ २१४ ॥ ६८२१ ॥

: २१५ :

वैशम्पायन उवाच

सोऽब्रवीदर्जुनं चैव वासुदेवं च सात्वतम् ।
लोकप्रवीरौ तिष्ठन्तौ खाण्डवस्य समीपतः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तब ब्राह्मणने खाण्डववनके पास खडे हुए और संसारमें श्रेष्ठ वीर उन सात्वत कुलोत्पन्न श्रीकृष्ण और अर्जुनसे कहा ॥ १ ॥

ब्राह्मणो बहुभोक्तास्मि भुञ्जेऽपरिमितं सदा ।
भिक्षे वार्ष्णेयपार्थौ वामेकां तृप्तिं प्रयच्छताम् ॥ २ ॥

मैं बहुत खानेवाला ब्राह्मण हूं, सदा अपरिमित भोजन खाता हूं । अब तुम कृष्ण और अर्जुनसे भिक्षा मांगता हूं, कि तुम भोजन देकर मुझको तृप्त करो ॥ २ ॥

एवमुक्तौ तमब्रूतां ततस्तौ कृष्णपाण्डवौ ।
केनान्नेन भवांस्तृप्येत्तस्यान्नस्य यतावहे ॥ ३ ॥

इस प्रकार कहे जानेपर अर्जुन और कृष्ण उनसे बोले– कहिये, किस प्रकारका अन्न खानेसे आपकी तृप्ति होगी, हम उसके लिए प्रयत्न करेंगे ॥ ३ ॥

एवमुक्तः स भगवानब्रवीत्तावुभौ ततः ।
भाषमाणौ तदा वीरौ किमन्नं क्रियतामिति ॥ ४ ॥
नाहमन्नं बुभुक्षे वै पावकं मां निबोधतम् ।
यदन्नमनुरूपं मे तद्युवां संप्रयच्छतम् ॥ ५ ॥

कृष्ण और अर्जुन कैसा अन्न बनवाया जाए, इस विषयमें आपसमें बातचीत कर रहे थे, कि उस ब्राह्मणरूपी भगवान्ने उनसे कहा, कि मैं अन्न नहीं खाना चाहता । तुम मुझे अग्नि जानो, जो अन्न मेरे योग्य हो वही मुझको तुम दो ॥ ४–५ ॥

इदामिन्द्रः सदा दावं खाण्डवं परिरक्षति ।
तं न शक्नोम्यहं दग्धुं रक्ष्यमाणं महात्मना ॥ ६ ॥

देवराज इन्द्र सदा इस खाण्डव वनकी रक्षा करते हैं, अतः महात्मा इन्द्रके द्वारा रक्षित इस वनको मैं जला नहीं सकता ॥ ६ ॥

वसत्यत्र सखा तस्य तक्षकः पन्नगः सदा ।
सगणस्तत्कृते दावं परिरक्षति वज्रभृत् ॥ ७ ॥

इन्द्रका सखा तक्षक नामक सर्प साथियों समेत इस वनमें रहता है, उन्हीं सांपोंके कारण वह वज्रधारी इस वनकी रक्षा करते हैं ॥ ७ ॥

तत्र भूतान्यनेकानि रक्ष्यन्ते स्म प्रसङ्गतः ।
तं दिधक्षुर्न शक्नोमि दग्धुं शक्रस्य तेजसा ॥ ८ ॥

साथ ही साथ अन्य भी अनेक जीव भी इस वनमें रहते हैं, उनको जलानेकी इच्छा करते हुए मैं देवराजके तेजके कारण इसे जला नहीं पाता ॥ ८ ॥

स मां प्रज्वलितं दृष्ट्वा मेघाम्भोभिः प्रवर्षति ।
ततो दग्धुं न शक्नोमि दिधक्षुर्दावमीप्सितम् ॥ ९ ॥

वह मुझको जलता हुआ देखकर जलधर मेघकी जलधारासे बुझा देते हैं, अतः मनमें खाण्डवको जलानेकी बडी चाह रखने पर भी उसे जला नहीं सकता ॥ ९ ॥

स युवाभ्यां सहायाभ्यामस्त्रविद्भ्यां समागतः ।
दहेयं खाण्डवं दावमेतदन्नं वृतं मया ॥ १० ॥

अस्त्र–विद्यामें पण्डित तुम दोनोंकी सहायतासे मैं इस खाण्डववनको जला सकता हूं, तुमसे मैं यही अन्न मांगता हूं ॥ १० ॥

युवां ह्युदकधारास्ता भूतानि च समन्ततः ।
उत्तमास्त्रविदौ सम्यक्सर्वतो वारयिष्यथः ॥ ११ ॥

खाण्डवदाहके कालमें जो सब जीव इधर उधर भागने लगें उनको और जलधरकी जलधाराओंको अस्त्रविद्याओंको उत्तम रीतिसे जाननेवाले तुम बलसे सब प्रकारसे रोकना ॥ ११ ॥

एवमुक्ते प्रत्युवाच बीभत्सुर्जातवेदसम् ।
दिधक्षुं खाण्डवं दावमकामस्य शतक्रतोः ॥ १२ ॥

इस प्रकार कहने पर अर्जुन इन्द्रकी इच्छाके विरुद्ध खाण्डववनको जलानेकी इच्छा करनेवाले अग्निसे बोले ॥ १२ ॥

उत्तमास्त्राणि मे सन्ति दिव्यानि च बहूनि च ।
यैरहं शक्नुयां योद्धुमपि वज्रधरान्बहून् ॥ १३ ॥

हे भगवन् ! मेरे पास अनेक दिव्य और उत्तम अस्त्र हैं, उनसे मैं वज्रधारी सैंकडों इन्द्रोंसे भी युद्ध कर सकता हूं ॥ १३ ॥

धनुर्मे नास्ति भगवन्बाहुवीर्येण संमितम् ।
कुर्वतः समरे यत्नं वेगं यद्विषहेत मे ॥ १४ ॥

पर युद्धकालमें मेरा वेग सब प्रकारसे सह ले, ऐसा मेरे भुजवीर्यके योग्य धनुष नहीं है ॥ १४ ॥

शरैश्च मेऽर्थो बहुभिरक्षय्यैः क्षिप्रमस्यतः ।
न हि वोढुं रथः शक्तः शरान्मम यथेप्सितान् ॥ १५ ॥

विशेष मुझको शीघ्रतासे बाण छोडने पडेंगे, अतः अनेक अक्षय बाणोंकी मुझे आवश्यकता है और मेरा जो रथ है, वह मेरी इच्छाके अनुसार उन बाणोंको ढो नहीं सकेगा ॥ १५ ॥

अश्वांश्च दिव्यानिच्छेयं पाण्डुरान्वातरंहसः ।
रथं च मेघनिर्घोषं सूर्यप्रतिमतेजसम् ॥ १६ ॥

अतः, श्वेत वर्णवाले, वायुके समान वेगवान् दिव्य घोडे और बादलके सदृश गरजनेवाले सूर्यकी भांति तेजयुक्त रथ मैं चाहता हूँ ॥ १६ ॥

तथा कृष्णस्य वीर्येण नायुधं विद्यते समम् ।
येन नागान्पिशाचांश्च निहन्यान्माधवो रणे ॥ १७ ॥

और इन माधवके भुजवीर्यके योग्य कोई अस्त्र नहीं है, कि जिससे यह माधव रणभूमिमें पिशाच और सर्पोंको गिरा सकें ॥ १७ ॥

उपायं कर्मणः सिद्धौ भगवन्वक्तुमर्हसि ।
निवारयेयं येनेन्द्रं वर्षमाणं महावने ॥ १८ ॥

अतएव, हे भगवन् ! कर्मकी सिद्धिके लिए ऐसा कोई उपाय बतावें, कि जिससे इस बडे वनमें वर्षा करते हुए इन्द्रको हम रोक सकें ॥ १८ ॥

पौरुषेण तु यत्कार्यं तत्कर्तारौ स्व पावक ।
करणानि समर्थानि भगवन्दातुमर्हसि ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥ ६९१० ॥

हे पावक ! पौरुषसे जो सिद्ध हो, वह हम करनेको प्रस्तुत हैं, पर युद्ध करनेके लिये जिन उपकरणोंकी आवश्यकता हो, वह आप हमको देवें ॥ १९ ॥

महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ॥ २१५ ॥ ६९१० ॥

: २१९ :

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु भगवान्धूमकेतुर्हुताशनः।
चिन्तयामास वरुणं लोकपालं दिदृक्षया।
आदित्यमुदके देवं निवसन्तं जलेश्वरम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तब भगवान् धूमकेतु हुताशनने अर्जुनका यह वचन सुनकर जलमें रहने-वाले जलके स्वामी अदिति पुत्र लोकपाल वरुणको देखनेकी इच्छासे उनका स्मरण किया ॥ १ ॥

स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा दर्शयामास पावकम्।
तमब्रवीद्धूमकेतुः प्रतिपूज्य जलेश्वरम्।
चतुर्थं लोकपालानां रक्षितारं महेश्वरम् ॥ २ ॥

अग्निने मुझे याद किया है, यह जानकर वरुण अग्निके सम्मुख आ पहुंचे। अग्नि उन रक्षा करनेवाले, महेश्वर, जलके स्वामी चौथे लोकपाल वरुणका आदरपूर्वक स्वागत करके बोले ॥ २ ॥

सोमेन राज्ञा यद्दत्तं धनुश्चैवेषुधी च ते।
तत्प्रयच्छोभयं शीघ्रं रथं च कपिलक्षणम् ॥ ३ ॥

राजा सोमने तुमको जो तूणीर और धनुष तथा कपिध्वज रथ दिया था, वह सब तुरन्त दे दो ॥ ३ ॥

कार्यं हि सुमहत्पार्थो गाण्डीवेन करिष्यति।
चक्रेण वासुदेवश्च तन्मदर्थे प्रदीयताम्
ददानीत्येव वरुणः पावकं प्रत्यभाषत ॥ ४ ॥

पार्थ उस गाण्डीव धनुषसे और वासुदेव चक्रसे बडा भारी कार्य पूरा करेंगे। अतः मुझको दो, वरुणने अग्निसे "देता हूँ" यह कहा ॥ ४ ॥

ततोऽद्भुतं महावीर्यं यशःकीर्तिविवर्धनम्।
सर्वशस्त्रैरनाधृष्यं सर्वशस्त्रप्रमाथि च।
सर्वायुधमहामात्रं परसेनाप्रधर्षणम् ॥ ५ ॥

तब अद्भुत वीर्यवान् सब शस्त्रोंको मथनेहारा, यश और कीर्ति बढानेवाला, शस्त्रोंसे काटे जानेके अयोग्य, सम्पूर्ण अस्त्रोंसे बडा, शत्रुसेनाको नष्ट करनेवाला ॥ ५ ॥

एकं शतसहस्रेण संमितं राष्ट्रवर्धनम् ।
चित्रमुच्चावचैर्वर्णैः शोभितं श्लक्ष्णमव्रणम् ॥ ६ ॥

राज्य बढानेवाला, सैंकडों सहस्रों धनुषोंका सामना करने पर भी न टूटनेवाला, रंगबिरंगे सुन्दर सुन्दर वर्णोंसे रंगा हुआ, मनोहर, न टूटा हुआ ॥ ६ ॥

देवदानवगन्धर्वैः पूजितं शाश्वतीः समाः ।
प्रादाद्वै धनुरत्नं तदक्षय्यौ च महेषुधी ॥ ७ ॥

और जिसकी पूजा देव दानव गन्धर्व सदा किया करते हैं ऐसा ही अद्भुत धनुष-रत्न और दो ऐसे तूणीर, कि जिनमें बाण रखनेसे वे कभी खतम नहीं होते थे, वरुणने दे दिये ॥७॥

रथं च दिव्याश्वयुजं कपिप्रवरकेतनम् ।
उपेतं राजतैरश्वैर्गान्धर्वैर्हेममालिभिः ।
पाण्डुराभ्रप्रतीकाशैर्मनोवायुसमैर्जवे ॥ ८ ॥

वेगमें मन और पवनके समान पाण्डुरवर्ण बादलके सदृश, चांदीकी भांति तेजवाले, उत्तम वर्णसे सुशोभित, गंधर्वदेशके घोडोंसे युक्त, सोनेकी मालाओंसे युक्त, हनुमान्‌की ध्वजासे सुशोभित तथा दिव्य अश्वोंसे युक्त एक रथ भी दिया ॥ ८ ॥

सर्वोपकरणैर्युक्तमजय्यं देवदानवैः ।
भानुमन्तं महाघोषं सर्वरत्नमनोहरम् ॥ ९ ॥

जो सब उपकरणोंसे युक्त और देव दानवोंसे अजेय, जिसकी घरघराहट बडी दूरसे सुनाई देती है, जो सब रत्नोंसे जटित होनेके कारण बडा मनोहारी तथा अत्यन्त तेजस्वी था ॥९॥

ससर्ज यत्स्वतपसा भौवनो भुवनप्रभुः ।
प्रजापतिरनिर्देश्यं यस्य रूपं रवेरिव ॥ १० ॥

जिसको भुवनके प्रभु प्रजापति विश्वकर्माने बडी तपस्यासे बनाया था, जिसका रूप सूर्यके सदृश दृष्टिसे देखनेके अयोग्य था ॥ १० ॥

यं स्म सोमः समारुह्य दानवानजयत्प्रभुः ।
नगमेघप्रतीकाशं ज्वलन्तमिव च श्रिया ॥ ११ ॥

जिस पर चढकर प्रभु सोमने दानवोंको परास्त किया था, जो शोभासे प्रकाशित हो रहा था, जो पहाड और बादलके समान ऊंचा था ॥ ११ ॥

आश्रिता तं रथश्रेष्ठं शक्रायुधसमा शुभा ।
तापनीया सुरुचिरा ध्वजयष्टिरनुत्तमा ॥ १२ ॥

जिसके ऊपर इन्द्रधनुषके सदृश शोभायमान मनोहर परम सुन्दर झण्डेकी लकडीके ऊपर ॥ १२ ॥

तस्यां तु वानरो दिव्यः सिंहशार्दूललक्षणः ।
विनर्दन्निव तत्रस्थः संस्थितो मूर्ध्न्यशोभत ॥ १३ ॥

सिंहशार्दूलके समान पराक्रमी सुन्दर दिव्य बन्दर मानों गरजनेकी इच्छासे रथके चोटीपर विराज रहा था ॥ १३ ॥

ध्वजे भूतानि तत्रासन्विविधानि महान्ति च ।
नादेन रिपुसैन्यानां येषां संज्ञा प्रणश्यति ॥ १४ ॥

ध्वजापताकामें और भी अनेक भांति भांतिके प्राणी थे, जिनके शब्दको सुनकर शत्रुसेनाकी चेतना नष्ट हो जाती थी, ऐसा रथ वरुणने दिया ॥ १४ ॥

स तं नानापताकाभिः शोभितं रथमुत्तमम् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य दैवतेभ्यः प्रणम्य च ॥ १५ ॥

वह अर्जुन अनेक पताकाओंसे सुशोभित उस अनुपम सुन्दर रथकी परिक्रमा देकर देवोंको प्रणाम कर ॥ १५ ॥

संनद्धः कवची खड्गी बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ।
आरुरोह रथं पार्थो विमानं सुकृती यथा ॥ १६ ॥

कवच पहनकर, तलवार धारण कर तथा हाथोंमें दस्ताने और उंगलीरक्षक साधन पहनकर तैय्यार हो पुण्यात्मा जनके विमान पर चढनेकी भांति उस पर चढे ॥ १६ ॥

तच्च दिव्यं धनुःश्रेष्ठं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
गाण्डीवमुपसंगृह्य बभूव मुदितोऽर्जुनः ॥ १७ ॥

और पहले ब्रह्माके द्वारा बनाये गए उस दिव्यश्रेष्ठ धनुष गाण्डीवको लेकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥

हुताशनं नमस्कृत्य ततस्तदपि वीर्यवान् ।
जग्राह बलमास्थाय ज्यया च युयुजे धनुः ॥ १८ ॥

तदनन्तर वीर्यवान् अर्जुनने हुताशनको नमस्कार कर बल प्रकट कर उस गाण्डीवमें डोरी चढायी ॥ १८ ॥

मौर्व्यां तु योज्यमानायां बलिना पाण्डवेन ह ।
येऽशृण्वन्कूजितं तत्र तेषां वै व्यथितं मनः ॥ १९ ॥

बलशाली पाण्डुनन्दनके गुण चढाने पर उसका शब्द जिसने सुना उन उनका हृदय थर-थराने लगा ॥ १९ ॥

लब्ध्वा रथं धनुश्चैव तथाक्षय्यौ महेषुधी ।
बभूव कल्यः कौन्तेयः प्रहृष्टः साह्यकर्मणि ॥ २० ॥

अर्जुन इस प्रकारसे रथ, धनुष और दो महान् अक्षय तूणीर पाकर आनन्दित चित्तसे हुताशनको सहायता देनेके काममें समर्थ हुए ॥ २० ॥

वज्रनाभं ततश्चक्रं ददौ कृष्णाय पावकः ।
आग्नेयमस्त्रं दयितं स च कल्योऽभवत्तदा ॥ २१ ॥

तदनन्तर हुताशनने श्रीकृष्णको वज्रकी नाभिवाला और अत्यन्त प्यारा चक्र और अग्न्यस्त्र दे दिया, इससे वह भी अग्निकी सहायता करनेको तैय्यार हो गए ॥ २१ ॥

अब्रवीत्पावकश्चैनमेतेन मधुसूदन ।
अमानुषानपि रणे विजेष्यसि न संशयः ॥ २२ ॥

तब अग्निने उनसे कहा– हे मधुसूदन ! तुम युद्धस्थलमें इस अस्त्रसे बिना सन्देह मानवके अतिरिक्त अन्य प्राणियोंको भी परास्त कर सकोगे ॥ २२ ॥

अनेन त्वं मनुष्याणां देवानामपि चाहवे ।
रक्षःपिशाचदैत्यानां नागानां चाधिकः सदा ।
भविष्यसि न संदेहः प्रवरारिनिबर्हणे ॥ २३ ॥

तुम रणस्थलमें इस अस्त्रसे देव, दानव, राक्षस, पिशाच, नाग और मनुष्य इनसे निःसन्देह अधिक शक्तिमान् और शत्रुके नाश करनेमें श्रेष्ठ होगे ॥ २३ ॥

क्षिप्तं क्षिप्तं रणे चैतत्त्वया माधव शत्रुषु ।
हत्वाप्रतिहतं सङ्ख्ये पाणिमेष्यति ते पुनः ॥ २४ ॥

हे माधव ! यह अस्त्र यदि शत्रुदल पर बारबार फेंका जाय, तो भी बिना किसी रुकावटके शत्रुनाश करता हुआ फिर तुम्हारे हाथमें आ जायेगा ॥ २४ ॥

वरुणश्च ददौ तस्मै गदामशनिनिःस्वनाम् ।
दैत्यान्तकरणीं घोरां नाम्ना कौमोदकीं हरेः ॥ २५ ॥

तब वरुणने उनको दैत्यकुलका नाश करनेवाली भयंकर वज्रके समान गरजनेवाली कौमोदकी नामकी गदा दी ॥ २५ ॥

ततः पावकमब्रूतां प्रहृष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
कृतास्त्रौ शस्त्रसंपन्नौ रथिनौ ध्वजिनावपि ॥ २६ ॥

तब अस्त्रमें पण्डित, शस्त्रमें सम्पन्न, रथवाले और पताकाओंसे सुशोभित अर्जुन और श्रीकृष्ण प्रसन्नचित्तसे अग्निसे बोले ॥ २६ ॥

कल्यौ स्वो भगवन्योद्धुमपि सर्वैः सुरासुरैः ।
किं पुनर्वज्रिणैकेन पन्नगार्थे युयुत्सुना ॥ २७ ॥

हे भगवन् ! अब हम लोग सम्पूर्ण सुरासुरसे लडनेमें समर्थ हैं फिर, सर्परक्षाके लिये युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले अकेले वज्रधारी इन्द्रसे लडनेकी बात ही क्या है ? ॥ २७ ॥

अर्जुन उवाच

चक्रमस्त्रं च वार्ष्णेयो विसृजन्युधि वीर्यवान् ।
त्रिषु लोकेषु तन्नास्ति यन्न जीयाज्जनार्दनः ॥ २८ ॥

अर्जुन बोले– हे पावक ! तीनों लोकोंमें ऐसा कोई नहीं है, कि जिसे वीर्यवान् जनार्दन रणस्थलमें छोडे हुए अपने इस चक्र और अस्त्रसे मार न सकें ॥ २८ ॥

गाण्डीवं धनुरादाय तथाक्षय्यौ महेषुधी ।
अहमप्युत्सहे लोकान्विजेतुं युधि पावक ॥ २९ ॥

हे अग्ने ! मैं भी यह अक्षय तूणीर और गाण्डीव धनुष लेकर युद्धमें सम्पूर्ण लोकोंको परास्त करनेका उत्साह कर सकता हूं ॥ २९ ॥

सर्वतः परिवार्यैनं दावेन महता प्रभो ।
कामं संप्रज्वलाद्यैव कल्यौ स्वः साह्यकर्मणि ॥ ३० ॥

अतः, आप आज ही इच्छानुसार इस बडे वनको सम्पूर्ण रूपसे घेर कर जलावें; हम आपको सहायता देनेके कामके लिए तैय्यार हैं ॥ ३० ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः स भगवान्दाशार्हेणार्जुनेन च ।
तैजसं रूपमास्थाय दावं दग्धुं प्रचक्रमे ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन बोले– भगवान् हुताशन अर्जुन और श्रीकृष्णके यह वचन सुनकर तैजसरूप धारण कर उस वनको जलाने लगे ॥ ३१ ॥

सर्वतः परिवार्याथ सप्तार्चिर्ज्वलनस्तदा ।
ददाह खाण्डवं क्रुद्धो युगान्तमिव दर्शयन् ॥ ३२ ॥

तब सात ज्वालाओंवाले अग्निदेव सब ओर फैलकर क्रुद्ध होकर खाण्डववनको जलाने लगे । उस समय ऐसा जान पडने लगा, कि मानो युगके अन्तमें आनेवाला काल प्रकट हो रहा है ॥ ३२ ॥

परिगृह्य समाविष्टस्तद्वनं भरतर्षभ ।
मेघस्तनितनिर्घोषं सर्वभूतानि निर्दहन् ॥ ३३ ॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! प्रज्वलित अग्निदेव उस भारी वनको जकड कर उसमें घुसकर बादलकी गडगडाहटकी भांति भयानक शब्दसे सब प्राणियोंको जलाने लगे ॥ ३३ ॥

दह्यतस्तस्य विबभौ रूपं दावस्य भारत ।
मेरोरिव नगेन्द्रस्य काञ्चनस्य महाद्युतेः ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥ ६९४४ ॥

हे भारत ! तब जलते हुए उस वनका रूप सोनेसे मढे हुए महातेजस्वी सुमेरु पर्वतके समान हो गया ॥ ३४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दोसौ सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ २१६ ॥ ६९४४ ॥

: २१७ :

वैशम्पायन उवाच

तौ रथाभ्यां नरव्याघ्रौ दावस्योभयतः स्थितौ ।
दिक्षु सर्वासु भूतानां चक्राते कदनं महत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— तदनन्तर पुरुषोंमें व्याघ्रके समान श्रीकृष्ण और अर्जुन रथपर चढकर उस वनके दोनों ओर रहकर चारों दिशाओंमें प्राणियोंका महान् संहार करने लग गए ॥ १ ॥

यत्र यत्र हि दृश्यन्ते प्राणिनः खाण्डवालयाः ।
पलायन्तस्तत्र तत्र तौ वीरौ पर्यधावताम् ॥ २ ॥

खाण्डववासी प्राणी जहां जहां भागते दीख पडे, वे दोनों वीर वहां वहां दौडने लगे ॥ २ ॥

छिद्रं हि न प्रपश्यन्ति रथयोराशुविक्रमात् ।
आविद्धाविव दृश्येते रथिनौ तौ रथोत्तमौ ॥ ३ ॥

वे दोनों महारथी रथ पर वनके चारों ओर इतना शीघ्र घूमने लगे, कि दोनों रथ आपसमें जुडे हुए जान पडते थे, उनमें कुछ भी अन्तर नहीं दीख पडता था ॥ ३ ॥

खाण्डवे दह्यमाने तु भूतान्यथ सहस्रशः ।
उत्पेतुर्भैरवान्नादान्विनदन्तो दिशो दश ॥ ४ ॥

इस प्रकार खाण्डव वनके जलनेसे सहस्रों प्राणी भयंकर कोलाहल मचाते हुए दसों दिशाओंमें भागने लगे ॥ ४ ॥

दग्धैकदेशा बहवो निष्टप्ताश्च तथापरे ।
स्फुटिताक्षा विशीर्णाश्च विप्लुताश्च विचेतसः ॥ ५ ॥

किसी किसीका एक एक अङ्ग जल गया; कोई कोई अति तापसे जल भुनके गिर गया, किसी किसी जन्तुकी आंखें फूट गयीं, कोई कोई चेतना हीनसे होकर दुबक गए, कोई कोई भयसे दौडने लगे ॥ ५ ॥

समालिङ्ग्य सुतानन्ये पितॄन्मातॄंस्तथापरे ।
त्यक्तुं न शेकुः स्नेहेन तथैव निधनं गताः ॥ ६ ॥

किसी प्राणीने बच्चेसे, किसीने पितासे, किसीने मातासे लिपट कर वासस्थलहीमें प्राण छोडे, पर वे स्नेहवश उनको छोड नहीं सके ॥ ६ ॥

विकृतैर्दर्शनैरन्ये समुत्पेतुः सहस्रशः ।
तत्र तत्र विघूर्णन्तः पुनरग्नौ प्रपेदिरे ॥ ७ ॥

कोई तो जल जानेके कारण कुरूप सूरतवाले होकर अनेक बार गिरते हुए और बहुत चक्कर खाते हुए आगमें गिरने लगे ॥ ७ ॥

दग्धपक्षाक्षिचरणा विचेष्टन्तो महीतले ।
तत्र तत्र स्म दृश्यन्ते विनश्यन्तः शरीरिणः ॥ ८ ॥

कई पंख, आंख और पैर जल जानेके कारण भूमिपर लोटते हुए तथा कई प्राणी मरते हुए दिखाई देते थे ॥ ८ ॥

जलस्थानेषु सर्वेषु क्वाथ्यमानेषु भारत ।
गतसत्त्वाः स्म दृश्यन्ते कूर्ममत्स्याः सहस्रशः ॥ ९ ॥

हे भारत! वहांके सभी जलाशयोंके अग्निके कारण उबलनेसे हजारों मछली कछुए आदि प्राणी इधर उधर मरे हुए दिखाई देने लगे ॥ ९ ॥

शरीरैः संप्रदीप्तैश्च देहवन्त इवाग्नयः ।
अदृश्यन्त वने तस्मिन्प्राणिनः प्राणसंक्षये ॥ १० ॥

उस वनमें देहियोंकी जो सब देहें जलीं, वह जली देह मानो भांति भांतिकी अग्निदेहके समान प्रतीत होती थीं ॥ १० ॥

त्वांस्तथोत्पततः पार्थः शरैः संछिद्य खण्डशः ।
दीप्यमाने ततः प्रास्यत्प्रहसन्कृष्णवर्त्मनि ॥ ११ ॥

उस वनमें जो सब पक्षी उड रहे थे, अर्जुन उनको बाणोंसे टुकडे टुकडे कर कर हंसते हुए जलते हुए अग्निमें गिराने लगे ॥ ११ ॥

ते शराचितसर्वाङ्गा विनदन्तो महारवान् ।
ऊर्ध्वमुत्पत्य वेगेन निपेतुः पावके पुनः ॥ १२ ॥

वे प्राणी सब देहमें बाणोंके घुस जानेपर बडा कोलाहल मचाते हुए वेगसे कुछ ऊपर चढकर फिर उस अग्निहीमें गिरने लगे ॥ १२ ॥

शरैरभ्याहतानां च दह्यतां च वनौकसाम् ।
विरावः श्रूयते ह स्म समुद्रस्येव मथ्यतः ॥ १३ ॥

समुद्रमथनेके कालमें जैसा घोर शब्द उठा था उसी प्रकारका कोलाहल बाणोंसे घायल तथा जलते हुए वनैले जानवरोंका सुनाई पडने लगा ॥ १३ ॥

वह्नेश्चापि प्रहृष्टस्य खमुत्पेतुर्महार्चिषः ।
जनयामासुरुद्वेगं सुमहान्तं दिवौकसाम् ॥ १४ ॥

जलती हुई अग्निकी बडी बडी ज्वालायें आकाशमें जा पहुंची और उसने देवोंमें बडी घबराहट पैदा कर दी ॥ १४ ॥

ततो जग्मुर्महात्मानः सर्व एव दिवौकसः ।
शरणं देवराजानं सहस्राक्षं पुरंदरम् ॥ १५ ॥

तब स्वर्गमें रहनेवाले सभी महात्मा सहस्रनेत्रवाले पुरंदर देवराज इन्द्रकी शरणमें गये ॥ १५ ॥

देवा ऊचुः

किं न्विमे मानवाः सर्वे दह्यन्ते कृष्णवर्त्मना ।
कच्चिन्न संक्षयः प्राप्तो लोकानाममरेश्वर ॥ १६ ॥

देव बोले— अमरनाथ ! अग्निके द्वारा ये मानव क्यों यह सब जला रहे हैं ? क्या अब सब-लोगोंका प्रलय काल आ गया है ? ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा वृत्रहा तेभ्यः स्वयमेवान्ववेक्ष्य च ।
खाण्डवस्य विमोक्षार्थं प्रययौ हरिवाहनः ॥ १७ ॥

वैशम्पायन बोले— हाथी पर चढनेवाले वृत्रनाशी इन्द्र उनसे वह सुनकर और स्वयं भी देख कर खाण्डव वनकी रक्षाके लिये चल पडे ॥ १८ ॥

महता मेघजालेन नानारूपेण वज्रभृत् ।
आकाशं समवस्तीर्य प्रववर्ष सुरेश्वरः ॥ १८ ॥

उन वज्रधारी देवेन्द्रने अनेक तरहकी बडी मेघमालाओंसे आकाशमण्डलको छाकर जल वर्षाना आरम्भ कर दिया ॥ १८ ॥

ततोऽक्षमात्रा विसृजन्धाराः शतसहस्रशः ।
अभ्यवर्षत्सहस्राक्षः पावकं खाण्डवं प्रति ॥ १९ ॥

तब देवराज खाण्डव वनमें जलती हुई अग्नि पर रथके पहियेकी लडकीके समान मोटी जलकी हजारों धारायें वर्षाने लगे ॥ १९ ॥

असंप्राप्तास्तु ता धारास्तेजसा जातवेदसः ।
ख एव समशुष्यन्त न काश्चित्पावकं गताः ॥ २० ॥

सब मोटी धारायें नीचे न जाकर अग्निके तेजसे आकाशहीमें सूख गयीं, एक भी धार अग्नि पर नहीं गिर सकी ॥ २० ॥

ततो नमुचिहा क्रुद्धो भृशमर्चिष्मतस्तदा ।
पुनरेवाभ्यवर्षत्तमम्भः प्रविसृजन्बहु ॥ २१ ॥

तब नमुचि नामक राक्षसको मारनेवाले इन्द्र बहुत क्रोध करके फिर बादलोंसे अग्निके ऊपर बहुत जल बरसाने लगे ॥ २१ ॥

अर्चिर्धाराभिसंबद्धं धूमविद्युत्समाकुलम् ।
बभूव तद्वनं घोरं स्तनयित्नुसघोषवत् ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥ ६९६६ ॥

तब अग्नि और पानीके संयोगके कारण उत्पन्न हुए धुवेंसे युक्त हुआ, बिजलीसे युक्त तथा मेघके शब्दसे गूंजता हुआ वह वन बहुत भयंकर दीखने लगा ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दोसौ सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ २१७ ॥ ६९६६ ॥

: २१८ :

वैशंपायन उवाच

तस्याभिवर्षतो वारि पाण्डवः प्रत्यवारयत् ।
शरवर्षेण बीभत्सुरुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— तब पाण्डुनन्दन अर्जुनने देवराजको उस प्रकार जल बरसाते देखकर अपना उत्तम अस्त्र प्रकट करके बाण वर्षा कर उसको रोक दिया ॥ १ ॥

शरैः समन्ततः सर्वं खाण्डवं चापि पाण्डवः ।
छादयामास तद्वर्षमपकृष्य ततो वनात् ॥ २ ॥

तब अर्जुनने उस वर्षाको उस वनसे दूर करके उस सारे वनको चारों ओरसे बाणोंसे ढक दिया ॥ २ ॥

न च स्म किंचिच्छक्नोति भूतं निश्चरितुं ततः ।
संछाद्यमाने खगमैरस्यता सव्यसाचिना ॥ ३ ॥

वहांका आकाशमण्डल बाणवर्षा करते हुए सव्यसाची धनञ्जयके द्वारा ढक दिए जानेपर कोई भी प्राणी वहांसे निकल नहीं सका ॥ ३ ॥

तक्षकस्तु न तत्रासीत्सर्पराजो महाबलः ।
दह्यमाने वने तस्मिन्कुरुक्षेत्रेऽभवत्तदा ॥ ४ ॥

पर महाबली सर्पराज तक्षक उस समय वहां नहीं था । जब खाण्डवदाह आरम्भ हुआ था, तब वह कुरुक्षेत्रमें गया हुआ था ॥ ४ ॥

अश्वसेनस्तु तत्रासीत्तक्षकस्य सुतो बली ।
स यत्नमकरोत्तीव्रं मोक्षार्थं हव्यवाहनात् ॥ ५ ॥

उस तक्षकका पुत्र बलवान् अश्वसेन वहां था । तक्षकके उस पुत्रने अग्निसे निकलनेकी बडी चेष्टा की ॥ ५ ॥

न शशाक विनिर्गन्तुं कौन्तेयशरपीडितः ।
मोक्षयामास तं माता निगीर्य भुजगात्मजा ॥ ६ ॥

पर अर्जुनके बाणोंसे विद्ध होकर वह निकल नहीं सका । तब उसकी माता सर्पकन्याने उसको निगल कर बचाया ॥ ६ ॥

तस्य पूर्वं शिरो ग्रस्तं पुच्छमस्य निगीर्यते ।
ऊर्ध्वमाचक्रमे सा तु पन्नगी पुत्रगृद्धिनी ॥ ७ ॥

उस अपने पुत्रको बचानेकी इच्छा करनेवाली वह नागकन्या उसका सिर निगल कर उसकी पूंछको निगलती हुई आकाशमार्गसे निकल रही थी ॥ ७ ॥

तस्यास्तीक्ष्णेन भल्लेन पृथुधारेण पाण्डवः ।
शिरश्चिच्छेद गच्छन्त्यास्तामपश्यत्सुरेश्वरः ॥ ८ ॥

उसी समय अर्जुनने उसको देख चौडी नोकवाले तेजबाणसे उस जाती हुई सर्पिणीका सिर काट डाला, देवोंके राजा इन्द्रने यह देखा ॥ ८ ॥

तं मुमोचयिषुर्वज्री वातवर्षेण पाण्डवम् ।
मोहयामास तत्कालमश्वसेनस्त्वमुच्यत ॥ ९ ॥

और अश्वसेनको बचानेकी इच्छावाले वज्रधारी इन्द्रने उसी क्षण पवन चलाकर अर्जुनको मोहमें डाल दिया और उसी समय अश्वसेन बचकर भाग निकला ॥ ९ ॥

तां च मायां तदा दृष्ट्वा घोरां नागेन वञ्चितः ।
द्विधा त्रिधा च चिच्छेद खगतानेव भारत ॥ १० ॥

अर्जुनने तब उस सर्पसे ठगे जाकर और वह घोर माया देखकर आकाशतक पहुंचे हुए भयानक प्राणियोंको दो तीन भागोंमें काट डाला ॥ १० ॥

शशाप तं च संक्रुद्धो बीभत्सुर्जिह्मगामिनम् ।
पावको वासुदेवश्च अप्रतिष्ठो भवेदिति ॥ ११ ॥

अर्जुन, वासुदेव और पावकने बहुत क्रोधित होकर उस कुटिलगामी सर्पको शाप दिया, कि तुम्हारी प्रतिष्ठा खत्म हो जाएगी ॥ ११ ॥

ततो जिष्णुः सहस्राक्षं खं वितत्येषुभिः शितैः ।
योधयामास संक्रुद्धो वञ्चनां तामनुस्मरन् ॥ १२ ॥

तदनन्तर पाण्डुपुत्रने उस वञ्चनाको स्मरण कर क्रोधसे तुरन्त दौडनेवाले बाणोंसे आकाश मण्डलको छाकर सहस्रनेत्रसे लडाई शुरु कर दी ॥ १२ ॥

देवराडपि तं दृष्ट्वा संरब्धमिव फल्गुनम् ।
स्वमस्त्रमसृजद्दीप्तं यत्तताना खिलं नभः ॥ १३ ॥

देवराजने भी फाल्गुनको युद्धमें कटिबद्ध देखकर अपना तीक्ष्ण अस्त्र छोडा, जिसने आकाश मण्डलको छा दिया ॥ १३ ॥

ततो वायुर्महाघोषः क्षोभयन्सर्वसागरान् ।
वियत्स्थोऽजनयन्मेघाञ्जलधारामुचोऽऽकुलान् ॥ १४ ॥

तदनन्तर आकाशस्थ पवनने बडे शब्दके साथ फैलकर सम्पूर्ण समुद्रमें हलचल मचाकर अति घोर बादल उपजाये और उन मेघोंने जलधारायें बरसानी शुरु कर दीं ॥ १४ ॥

तद्विघातार्थमसृजदर्जुनोऽप्यस्त्रमुत्तमम् ।
वायव्यमेवाभिमन्त्र्य प्रतिपत्तिविशारदः ॥ १५ ॥

प्रतिकार करनेमें चतुर अर्जुनने उन सबको दूर करनेके लिये सुन्दर वायव्यास्त्रको मन्त्र पढ कर छोडा ॥ १५ ॥

तेनेन्द्राशनिमेघानां वीर्यौजस्तद्विनाशितम् ।
जलधाराश्च ताः शोषं जग्मुर्नेशुश्च विद्युतः ॥ १६ ॥

उससे इन्द्रके उस वज्र और बादलोंका वीर्य तथा तेज नष्ट हो गया और वे जलधारायें सूख गईं तथा बिजली नष्ट हो गई ॥ १६ ॥

क्षणेन चाभवद्व्योम संप्रशान्तरजस्तमः ।
सुखशीतानिलगुणं प्रकृतिस्थार्कमण्डलम् ॥ १७ ॥

पलभरमें आकाशमण्डल गर्द और अन्धेरेसे साफ हो गया । सुखदायी ठण्डी हवा चलने लगी और सूर्यमण्डलने पहिलेकी अवस्था प्राप्त की ॥ १७ ॥

निष्प्रतीकारहृष्टश्च हुतभुग्विविधाकृतिः ।
प्रजज्वालातुलार्चिष्मान्स्वनादैः पूरयञ्जगत् ॥ १८ ॥

तब अग्नि बिना रोक टोकसे प्रबल होकर आनन्दकी उमंगमें नाना आकार धरके और बडे शब्दसे जग भरमें ज्वालायें फैलाकर जल उठा ॥ १८ ॥

कृष्णाभ्यां रक्षितं दृष्ट्वा तं च दावमहंकृताः ।
समुत्पेतुरथाकाशं सुपर्णाद्याः पतत्रिणः ॥ १९ ॥

सुपर्ण आदि पक्षीगण श्रीकृष्ण और अर्जुनसे उस खाण्डवके दावानलको रक्षित होते देखकर अहङ्कारसे आकाशको उडे ॥ १९ ॥

गरुडा वज्रसदृशैः पक्षतुण्डनखैस्तथा ।
प्रहर्तुकामाः संपेतुराकाशात्कृष्णपाण्डवौ ॥ २० ॥

और वज्रके समान पंख चोंच और नखोंसे युक्त गरुड वासुदेव और धनञ्जयको मारनेकी इच्छासे आकाशसे नीचे उतर आये ॥ २० ॥

तथैवोरगसङ्घाताः पाण्डवस्य समीपतः ।
उत्सृजन्तो विषं घोरं निश्चेरुर्ज्वलिताननाः ॥ २१ ॥

तथा जलते हुए मुखवाले विषैले सर्पगण भयंकर विष गिराते हुए पाण्डवके सामने विचरने लगे ॥ २१ ॥

तांश्चकर्त शरैः पार्थः रोषान्दृश्य खेचरान् ।
विवशाश्चापतन्दीप्तं देहाभावाय पावकम् ॥ २२ ॥

तब पाण्डुनन्दनने क्रोधित हुए उन आकाशचारियोंको देखकर बाणोंसे काट डाला, तब विवश होकर वे अपनी देहको नष्ट करनेके लिये भली प्रकार जलती हुई अग्निमें जा गिरे ॥२२॥

ततः सुराः सगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
उत्पेतुर्नादमतुलमुत्सृजन्तो रणार्थिनः ॥ २३ ॥

तब लडनेकी इच्छा करनेवाले सुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पन्नगगण बडा कोलाहल मचाते हुए दौडे ॥ २३ ॥

अयःकणपचक्राश्मभृशुण्डयुद्यतबाहवः ।
कृष्णपार्थौ जिघांसन्तः क्रोधसंमूर्च्छितौजसः ॥ २४ ॥

क्रोधसे मूर्छित हुए वे तेजस्वी अयःकण (लोहेकी गेंद गिरानेके यन्त्र) और चक्राश्म (पत्थरके टुकडोंको बडी दूरतक फेंकनेके लिए लकडीका बना यन्त्र) भुशुण्डी (पत्थर फेंकनेके लिए चमडेकी रस्सीसे बना हुआ यन्त्र) यह सब अस्त्र लेके हाथ उठाकर श्रीकृष्ण और अर्जुनको नष्ट करनेके लिये उद्यत हुए ॥ २४ ॥

तेषामभिव्याहरतां शस्त्रवर्षं च मुञ्चताम् ।
प्रममाथोत्तमाङ्गानि बीभत्सुर्निशितैः शरैः ॥ २५ ॥

अर्जुन उनको अयोग्य वचन कह कहकर बाण वर्षाते देखकर तीखे बाणोंसे उनके सिर मथने लगे ॥ २५ ॥

कृष्णश्च सुमहातेजाश्चक्रेणारिनिहा तदा ।
दैत्यदानवसङ्घानां चकार कदनं महत् ॥ २६ ॥

शत्रुकुलनाशी बडे तेजस्वी श्रीकृष्ण चक्रसे उन सब दैत्य दानवोंका बडा भारी संहार करने लगे ॥ २६ ॥

अथापरे शरैर्विद्धाश्चक्रवेगेरितास्तदा ।
वेलामिव समासाद्य व्यातिष्ठन्त महौजसः ॥ २७ ॥

कोई कोई अति बली दैत्य दानव शरोंसे विद्ध और चक्रसे घायल हो उत्साह छोडकर ऐसे शांत हो गए कि जैसे जलके सोतेमें लहरकी चोटसे घूमते हुए तिनके किनारे पर स्थिर हो जाते हैं ॥ २७ ॥

ततः शक्रोऽभिसंक्रुद्धस्त्रिदशानां महेश्वरः ।
पाण्डुरं गजमास्थाय तावुभौ समभिद्रवत् ॥ २८ ॥

तदनन्तर देवोंके अधीश इन्द्र बहुत क्रोधित होकर सफेद वर्णके हाथीपर चढकर धनञ्जय और श्रीकृष्णकी तरफ दौडे ॥ २८ ॥

अशनिं गृह्य तरसा वज्रमस्त्रमवासृजत् ।
हतावेताविति प्राह सुरानसुरसूदनः ॥ २९ ॥

और उन असुर विनाशक इन्द्रने वेगसे अमोघ अस्त्र वज्र लेकर उन पर फेंका और वे देवोंसे बोले– इस बार यह दोनों मरेंगे ॥ २९ ॥

ततः समुद्यतां दृष्ट्वा देवेन्द्रेण महाशनिम् ।
जगृहुः सर्वशस्त्राणि स्वानि स्वानि सुरास्तदा ॥ ३० ॥

तब देवोंने देवराजको महावज्र उठाते देखकर अपने अपने सब अस्त्र उठा लिये ॥ ३० ॥

कालदण्डं यमो राजा शिबिकां च धनेश्वरः ।
पाशं च वरुणस्तत्र विचक्रं च तथा शिवः ॥ ३१ ॥

हे महाराज ! यमराज कालदण्ड लेकर खडे हुए, धननाथ कुबेरने गदा उठा ली; वरुणने पाश और शिवने चक्र उठा लिया ॥ ३१ ॥

ओषधीर्दीप्यमानाश्च जगृहातेऽश्विनावपि ।
जगृहे च धनुर्धाता मुसलं च जयस्तथा ॥ ३२ ॥

दोनों अश्विनीकुमार हाथोंमें दीप्यमान औषधि लेकर खडे हो गए, धाताने धनुष उठा लिया, जयने मूसल उठा लिया ॥ ३२ ॥

पर्वतं चापि जग्राह क्रुद्धस्त्वष्टा महाबलः ।
अंशस्तु शक्तिं जग्राह मृत्युर्देवः परश्वधम् ॥ ३३ ॥

महाबली त्वष्टाने क्रुद्ध होकर पर्वत उठा लिया, सूर्य हाथोंमें देवशक्ति लेकर लडनेको उद्यत हो गया, मृत्युदेवने परश्वध उठा लिया ॥ ३३ ॥

प्रगृह्य परिघं घोरं विचचारार्यमा अपि ।
मित्रश्च क्षुरपर्यन्तं चक्रं गृह्य व्यतिष्ठत ॥ ३४ ॥

अर्यमा भी घोर परिघ लेके घूमने लगे और मित्र उस्तुरेके समान नोकदार चक्र लेकर तैय्यार हो गए ॥ ३४ ॥

पूषा भगश्च संक्रुद्धः सविता च विशां पते ।
आत्तकार्मुकनिस्त्रिंशाः कृष्णपार्थावभिद्रुताः ॥ ३५ ॥

भग, पूषा और क्रुद्ध सविता भयानक धनुष और तलवार लेकर क्रोधसे अर्जुन और श्रीकृष्ण-की ओर दौडे ॥ ३५ ॥

रुद्राश्च वसवश्चैव मरुतश्च महाबलाः ।
विश्वेदेवास्तथा साध्या दीप्यमाना स्वतेजसा ॥ ३६ ॥

अपने तेजसे दीप्यमान महाबली रुद्रगण, वसुगण, मरुद्गण, विश्वेदेवगण और साध्यगण ॥ ३६ ॥

एते चान्ये च बहवो देवास्तौ पुरुषोत्तमौ ।
कृष्णपार्थौ जिघांसन्तः प्रतीयुर्विविधायुधाः ॥ ३७ ॥

ये और दूसरे भी अनेक देवगण भांति भांतिके अस्त्र लेकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण और अर्जुनको नष्ट करनेके लिये चढ दौडे ॥ ३७ ॥

तत्राऽद्भुतान्यदृश्यन्त निमित्तानि महाहवे ।
युगान्तसमरूपाणि भूतोत्सादाय भारत ॥ ३८ ॥

तब युगके अन्त होनेके कालकी भांति भूतोंके नाशके लिए उस युद्धमें आश्चर्यकारक और बुरे बुरे चिन्ह प्रगट होने लगे ॥ ३८ ॥

तथा तु दृष्ट्वा संरब्धं शक्रं देवैः सहाच्युतौ ।
अभीतौ युधि दुर्धर्षौ तस्थतुः सज्जकार्मुकौ ॥ ३९ ॥

युद्धमें अति दुर्धर्ष अर्जुन और श्रीकृष्ण देवोंके साथ देवराजको युद्धमें सब प्रकारसे सन्नद्ध देखकर तैय्यार धनुष लेकर ॥ ३९ ॥

आगतांश्चैव तान्दृष्ट्वा देवानेकैकशस्ततः ।
न्यवारयेतां संक्रुद्धौ बाणैर्वज्रोपमैस्तदा ॥ ४० ॥

निर्भय और अटल चित्तसे खडे हो गए और युद्धमें दक्ष वे दोनों वीर आये हुए देवोंको वज्रके समान तीक्ष्ण बाणोंसे क्रोधपूर्वक सब प्रकारसे पीछे हटाने लगे ॥ ४० ॥

असकृद्भग्नसंकल्पाः सुराश्च बहुशः कृताः ।
भयाद्रणं परित्यज्य शक्रमेवाभिशिश्रियुः ॥ ४१ ॥

तब देवोंने कृष्ण और अर्जुनके कारण बारबार सङ्कल्प टूटने पर भयभीत होकर युद्धस्थलको छोडकर देवराजकी शरण ली ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वा निवारितान्देवान्माधवेनार्जुनेन च ।
आश्चर्यमगमंस्तत्र मुनयो दिवि विष्ठिताः ॥ ४२ ॥

आकाशमें खडे मुनि देवोंको कृष्ण और अर्जुनके द्वारा भगा दिए जाने पर आश्चर्य करने लगे ॥ ४२ ॥

शक्रश्चापि तयोर्वीर्यमुपलभ्यासकृद्रणे ।
बभूव परमप्रीतो भूयश्चैतावयोधयत् ॥ ४३ ॥

अर्जुन और श्रीकृष्णका रणस्थलमें बार बार पराक्रम देखकर देवराज बहुत प्रसन्न हुए और फिर उन दोनोंसे लडने लगे ॥ ४३ ॥

ततोऽश्मवर्षं सुमहद्व्यसृजत्पाकशासनः ।
भूय एव तदा वीर्यं जिज्ञासुः सव्यसाचिनः ।
तच्छरैरर्जुनो वर्षं प्रतिजघ्नेऽत्यमर्षणः ॥ ४४ ॥

पाकशासन इन्द्र तब सव्यसाची धनञ्जयका सामर्थ्य जाननेकी इच्छासे बहुत पत्थर बरसाने लगे । अर्जुनने भी बहुत क्रोध करके महावेगवान् बाणोंसे उस पत्थरवृष्टिको रोका ॥४४॥

विफलं क्रियमाणं तत्संप्रेक्ष्य च शतक्रतुः ।
भूयः संवर्धयामास तद्वर्षं देवराडथ ॥ ४५ ॥

इन्द्र पत्थर वृष्टिको विफल होते देखकर फिर और भी अधिक पत्थर गिराने लगे ॥ ४५ ॥

सोऽश्मवर्षं महावेगैरिषुभिः पाकशासनिः ।
विलयं गमयामास हर्षयन्पितरं तदा ॥ ४६ ॥

इन्द्रनन्दन अर्जुनने अपने पिताका हर्ष बढाते हुए बडे तेज बाणोंसे उस भयानक पत्थर वृष्टिको नष्ट कर दिया ॥ ४६ ॥

समुत्पाट्य तु पाणिभ्यां मन्दराच्छिखरं महत् ।
सद्रुमं व्यसृजच्छक्रो जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥ ४७ ॥

इसके बाद महेन्द्रने पाण्डुपुत्रको मारनेकी इच्छासे दोनों हाथोंसे मन्दर पर्वतसे वृक्षसहित एक बडी भारी चोटीको उखाड कर फेंका ॥ ४७ ॥

ततोऽर्जुनो वेगवद्भिर्ज्वलिताग्रैरजिह्मगैः ।
बाणैर्विध्वंसयामास गिरेः शृङ्गं सहस्रधा ॥ ४८ ॥

तब अर्जुनने सीधे जलती हुई नोकवाले बडे वेगवान् बाणोंसे उस पहाडकी चोटीको हजारों टुकडोंमें तोड डाला ॥ ४८ ॥

गिरेर्विशीर्यमाणस्य तस्य रूपं तदा बभौ ।
सार्कचन्द्रग्रहस्येव नभसः प्रविशीर्यतः ॥ ४९ ॥

आकाश मण्डलसे चन्द्र सूर्यादि ग्रहके टुकडे गिरते समय जैसे दीख पडते हैं, वही रूप उस टूटकर गिरनेवाली पहाडकी चोटीका दिखाई दिया ॥ ४९ ॥

तेनाभिपतता दावे शैलेन महता भृशम् ।
भूय एव हतास्तत्र प्राणिनः खाण्डवालयाः ॥ ५० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥ ७०१६ ॥

उस बडी भारी चोटीके खाण्डववन पर गिर जानेके कारण उसकी चोटसे उस खाण्डव-वनमें रहनेवाले बहुतसे प्राणी मारे गए ॥ ५० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ अठारहवां अध्याय समाप्त ॥ २१८ ॥ ७०१६ ॥

×

: २१९ :

वैशम्पायन उवाच

तथा शैलनिपातेन भीषिताः खाण्डवालयाः ।
दानवा राक्षसा नागास्तरक्ष्वृक्षवनौकसः ।
द्विपाः प्रभिन्नाः शार्दूलाः सिंहाः केसरिणस्तथा ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— तदनन्तर उस पहाडके गिरनेसे भयभीत हुए हुए खाण्डव वनके रहने-वाले, दानव, राक्षस, सर्प, ऋक्ष, भेडिये, विदीर्ण हुए गण्डस्थलवाले हाथी, अयालवाले सिंह, वाघ ॥ १ ॥

मृगाश्च महिषाश्चैव शरभाः पक्षिणस्तथा ।
समुद्विग्ना विसस्रुपुस्तथान्या भूतजातयः ॥ २ ॥

मृग, भैंसे, जंगली प्राणी तथा पक्षी भी दूसरे प्राणियोंके समान भयभीत होकर भागने लगे ॥ २ ॥

तं दावं समुदीक्षन्तः कृष्णौ चाभ्युद्यतायुधौ ।
उत्पातनादशब्देन संत्रासित इवाभवन् ॥ ३ ॥

जब प्राणियोंने श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको अस्त्र उठाये और उस वनको बडे शब्दके साथ जलता हुआ देखा, तब उपद्रवके कोलाहलसे भयभीत हो गए ॥ ३ ॥

स्वतेजोभास्वरं चक्रमुत्ससर्ज जनार्दनः ।
तेन ता जातयः क्षुद्राः सदानवनिशाचराः ।
निकृत्ताः शतशः सर्वा निपेतुरनलं क्षणात् ॥ ४ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्णने अपने तेजसे जलता हुआ चक्र उठाया । उस चक्रसे दानव निशाचर आदि वे सब जानवर सैंकडों टुकडोंमें काट दिए गए और वे उसी क्षण अग्निके मुखमें जा गिरे ॥ ४ ॥

अदृश्यन्राक्षसास्तत्र कृष्णचक्रविदारिताः ।
वसा रुधिरसंपृक्ताः सन्ध्यायामिव तोयदाः ॥ ५ ॥

दैत्यगण श्रीकृष्णके चक्रसे टुकडे टुकडे हो और चर्बी तथा रक्तकी धारसे नहाकर सन्ध्या-कालके घने बादलकी भांति दीखने लगे ॥ ५ ॥

पिशाचान्पक्षिणो नागान्पशूंश्चापि सहस्रशः ।
निघ्नंश्चरति वार्ष्णेयः कालवत्तत्र भारत ॥ ६ ॥

हे भारत ! वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण यमराजकी भांति सहस्रों पिशाच, पक्षी, सर्प और पशुओंको मारते हुए घूमने लगे ॥ ६ ॥

क्षिप्तं क्षिप्तं हि तच्चक्रं कृष्णस्यामित्रघातिनः ।
हत्वानेकानि सत्त्वानि पाणिमेति पुनः पुनः ॥ ७ ॥

शत्रुनाशी कृष्णका वह चक्र बार बार फेंका जानेपर अनेक प्राणियोंको मार कर फिर उनके हाथमें आ जाता था ॥ ७ ॥

तथा तु निघ्नतस्तस्य सर्वसत्त्वानि भारत ।
बभूव रूपमत्युग्रं सर्वभूतात्मनस्तदा ॥ ८ ॥

सब भूतोंकी आत्मा श्रीकृष्णके इस प्रकार सब प्राणियोंको नष्ट करनेपर उस समय उनका रूप बडा भयंकर जान पडने लगा ॥ ८ ॥

समेतानां च देवानां देवतानां च सर्वशः ।
विजेता नाभवत्कश्चित्कृष्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ९ ॥

आये हुए सभी देवों और देवताओंमेंसे एक भी कृष्ण और अर्जुनके युद्धमें विजेता नहीं बन सका ॥ ९ ॥

तयोर्बलात्परित्रातुं तं दावं तु यदा सुराः ।
नाशक्नुवञ्शमयितुं तदाभूवन्पराङ्मुखाः ॥ १० ॥

कृष्ण और अर्जुनके बाहुबलसे उस वनको बचाने और दावानल बुझानेमें वे देवगण समर्थ नहीं हुए, तब वे पीठ दिखाकर भाग गये ॥ १० ॥

शतक्रतुश्च संप्रेक्ष्य विमुखान्देवतागणान् ।
बभूवावस्थितः प्रीतः प्रशंसन्कृष्णपाण्डवौ ॥ ११ ॥

इन्द्रने देवोंको मुख मोडते देख प्रसन्न होकर केशव और अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ११ ॥

निवृत्तेषु तु देवेषु वागुवाचाशरीरिणी ।
शतक्रतुमभिप्रेक्ष्य महागम्भीरनिःस्वना ॥ १२ ॥

तदनन्तर सब स्वर्गवासियोंके निवृत्त हो जानेपर एक अशरीरी वाणी बडी गंभीर आवाजमें इन्द्रसे यह बोली ॥ १२ ॥

न ते सखा संनिहितस्तक्षकः पन्नगोत्तमः ।
दाहकाले खाण्डवस्य कुरुक्षेत्रं गतो ह्यसौ ॥ १३ ॥

तुम्हारा सखा सर्पश्रेष्ठ तक्षक मारा नहीं गया है, खाण्डवके दाहके समय वह कुरुक्षेत्र गया हुआ था ॥ १३ ॥

न च शक्यौ त्वया जेतुं युद्धेऽस्मिन्समवस्थितौ ।
वासुदेवार्जुनौ शक्र निबोधेदं वचो मम ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! तुम इस मेरे वचनको सुनो, कि युद्धमें खडे हुए इन वासुदेव और अर्जुन तुमसे जीते नहीं जा सकेंगे ॥ १४ ॥

नरनारायणौ देवौ तावेतौ विश्रुतौ दिवि ।
भवानप्यभिजानाति यद्वीर्यौ यत्पराक्रमौ ॥ १५ ॥

यह दोनों देवलोकमें प्रसिद्ध नर और नारायण हैं, इनका जैसा वीर्य और जितना पराक्रम है, वह तुम भी जानते हो ॥ १५ ॥

नैतौ शक्यौ दुराधर्षौ विजेतुमजितौ युधि ।
अपि सर्वेषु लोकेषु पुराणावृषिसत्तमौ ॥ १६ ॥

दोनों युद्धमें अजेय, दुर्द्धर्ष, पुराने और श्रेष्ठ ऋषि हैं, सब लोकोंमें किसीसे भी ये पराजित नहीं हो सकते ॥ १६ ॥

पूजनीयतमावेतावपि सर्वैः सुरासुरैः ।
सयक्षरक्षोगन्धर्वनरकिंनरपन्नगैः ॥ १७ ॥

ये दोनों अमर, असुर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, नर, किन्नर, पन्नग आदि सभीके द्वारा पूजनीय हैं ॥ १७ ॥

तस्मादितः सुरैः सार्धं गन्तुमर्हसि वासव ।
दिष्टं चाप्यनुपश्यैतत्खाण्डवस्य विनाशनम् ॥ १८ ॥

अतः, हे इन्द्र ! तुम देवोंके साथ यहांसे लौट जाओ और इस खाण्डववनका नाश दैवने ही निश्चित कर रखा था ऐसा तुम समझो ॥ १८ ॥

इति वाचमभिश्रुत्य तथ्यमित्यमरेश्वरः ।
कोपामर्षौ समुत्सृज्य संप्रतस्थे दिवं तदा ॥ १९ ॥

तब देवराज इन्द्र वह वचन सच जानकर क्रोध और अमर्षको तजकर देवलोकको चले गये ॥ १९ ॥

तं प्रस्थितं महात्मानं समवेक्ष्य दिवौकसः ।
त्वरिताः सहिता राजन्ननुजग्मुः शतक्रतुम् ॥ २० ॥

हे महाराज ! देव भी अपने राजा महात्मा इन्द्रको वापस जाते देखकर इकट्ठे होकर उनके पीछे पीछे चले गए ॥ २० ॥

देवराजं तदा यान्तं सह देवैरुदीक्ष्य तु ।
वासुदेवार्जुनौ वीरौ सिंहनादं विनेदतुः ॥ २१ ॥

वीर अर्जुन और वासुदेवने देवोंके साथ इन्द्रको वापस जाते देखकर सिंहनाद किया ॥ २१ ॥

देवराजे गते राजन्प्रहृष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
निर्विशङ्कं पुनर्दावं दाहयामासतुस्तदा ॥ २२ ॥

हे महाराज ! इन्द्रके चले जाने पर प्रसन्न हुए हुए कृष्ण और अर्जुन निर्भय होकर फिर खाण्डववनको जलाने लगे ॥ २२ ॥

स मारुत इवाभ्राणि नाशयित्वार्जुनः सुरान् ।
व्यधमच्छरसङ्घातैः प्राणिनः खाण्डवालयान् ॥ २३ ॥

पवन जिस प्रकार बादलोंको भगाता है, वैसे ही अर्जुन देवोंको परास्त कर खाण्डवमें रहनेवाले प्राणियोंको बाणोंसे मारकर जलाने लगे ॥ २३ ॥

न च स्म किंचिच्छक्नोति भूतं निश्चरितुं ततः ।
संछिद्यमानमिषुभिरस्यता सव्यसाचिना ॥ २४ ॥

सव्यसाची अर्जुनके द्वारा फेंके जाते हुए बाणोंसे काट जाता हुआ कोई भी प्राणी वहांसे निकल नहीं सका ॥ २४ ॥

नाशकंस्तत्र भूतानि महान्त्यपि रणेऽर्जुनम् ।
निरीक्षितुममोघेषुं करिष्यन्ति कुतो रणम् ॥ २५ ॥

बडे बडे महाबली प्राणी युद्धमें अर्जुनकी तरफ देखनेमें भी समर्थ नहीं थे, फिर लडनेकी बात ही दूर रही ॥ २५ ॥

शतेनैकं च विव्याध शतं चैकेन पत्रिणा ।
व्यसवस्तेऽपतन्नग्नौ साक्षात्कालहता इव ॥ २६ ॥

अर्जुन कभी कभी सौ बाणोंसे एकको मारते थे और कभी कभी एक बाणसे सौ प्राणी मारते थे। वे सब प्राणी मानों साक्षात् कालसे मारे जाकर और प्राण छोडकर अग्निके मुखमें गिरने लगे ॥ २६ ॥

न चालभन्त ते शर्म रोधःसु विषमेषु च ।
पितृदेवनिवासेषु संतापश्चाप्यजायत ॥ २७ ॥

वे नदी, तट, सूखी ठौर और श्मशानमें अर्थात् कहीं भी शरण नहीं पा सके। सभी जगह तापसे तपने लगे ॥ २७ ॥

भूतसंघसहस्राश्च दीनाश्चक्रुर्महास्वनम् ।
रुरुवुर्वारणाश्चैव तथैव मृगपक्षिणः ।
तेन शब्देन वित्रेसुर्गङ्गोदधिचरा झषाः ॥ २८ ॥

हजारों प्राणी दीन होकर बडी आवाज करने लगे; हाथी, हरिन और पक्षी रोने लगे, उस शब्दसे नदियों और समुद्रमें विचरनेवाली मछलियां बहुत भयभीत हो गयीं ॥ २८ ॥

न ह्यर्जुनं महाबाहुं नापि कृष्णं महाबलम् ।
निरीक्षितुं वै शक्नोति कश्चिद्योद्धुं कुतः पुनः ॥ २९ ॥

उस समय न कोई महाभुज अर्जुनकी तरफ और न कोई महाबली कृष्णकी तरफ ही देख सकता था, फिर लडनेकी तो बात ही क्या ? ॥ २९ ॥

एकायनगता येऽपि निष्पतन्त्यत्र केचन ।
राक्षसान्दानवान्नागाञ्जघ्ने चक्रेण तान्हरिः ॥ ३० ॥

जिन सब राक्षस, दानव और नागोंने इकट्ठे होकर दौडकर भागना चाहा, श्रीकृष्णने उनको चक्रसे नष्ट किया ॥ ३० ॥

ते विभिन्नशिरोदेहाश्चक्रवेगाद्गतासवः ।
पेतुरास्ये महाकाया दीप्तस्य वसुरेतसः ॥ ३१ ॥

वे महान् शरीरवाले चक्रके वेगसे सिर और धडसे रहित होकर प्राण छोडकर जलती हुई आगके मुंहमें जा गिरे ॥ ३१ ॥

स मांसरुधिरौघैश्च मेदोघैश्च समीरितः ।
उपर्याकाशगो वह्निर्विधूमः समदृश्यत ॥ ३२ ॥

तब अग्नि देव मांस रक्त और चर्बीसे भली प्रकार तृप्त होकर धुआं रहित होकर आकाशमें चढते हुए दिखाई देने लगे ॥ ३२ ॥

दीप्ताक्षो दीप्तजिह्वश्च दीप्तव्यात्तमहाननः ।
दीप्तोर्ध्वकेशः पिङ्गाक्षः पिबन्प्राणभृतां वसाम् ॥ ३३ ॥

और प्रदीप्त आंखें, प्रदीप्त जीभ, प्रदीप्त महान् मुख और ऊंचे ऊंचे बालोंको प्रज्ज्वलित कर तथा लाल आंखोंवाले होकर अग्नि देव जीवोंकी चर्बी पीने लगे ॥ ३३ ॥

तां स कृष्णार्जुनकृतां सुधां प्राप्य हुताशनः ।
बभूव मुदितस्तृप्तः परां निर्वृतिमागतः ॥ ३४ ॥

उन कृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे अमृत पीकर प्रमुदित और तृप्त होकर उस अग्निने परम सन्तोष प्राप्त किया ॥ ३४ ॥

अथासुरं मयं नाम तक्षकस्य निवेशनात् ।
विप्रद्रवन्तं सहसा ददर्श मधुसूदनः ॥ ३५ ॥

अनन्तर मधुसूदनने अचानक मय नामक असुरको तक्षकके वासस्थानसे भागते हुए देखा ॥ ३५ ॥

तमग्निः प्रार्थयामास दिधक्षुर्वातसारथिः ।
देहवान्वै जटी भूत्वा नदंश्च जलदो यथा ।
जिघांसुर्वासुदेवश्च चक्रमुद्यम्य विष्ठितः ॥ ३६ ॥

पवनके सारथि अग्नि शरीर लेकर और जटा धरकर बादलके समान शब्द करते हुए उसको जलानेकी इच्छासे उसकी तरफ दौडे। तब वासुदेव उसको मारनेके लिये चक्र उठाकर खडे हो गए ॥ ३६ ॥

स चक्रमुद्यतं दृष्ट्वा दिधक्षुं च हुताशनम् ।
अभिधावार्जुनेत्येवं मयश्चुक्रोश भारत ॥ ३७ ॥

हे भारत ! मय दानव उनको चक्र उठाते और अग्निको जलानेकी इच्छा करते हुए देखकर चिल्लाया, कि हे अर्जुन दौडो ॥ ३७ ॥

तस्य भीतस्वनं श्रुत्वा मा भैरिति धनंजयः ।
प्रत्युवाच मयं पार्थो जीवयन्निव भारत ॥ ३८ ॥

हे भारत ! अर्जुन उसका वह करुणपूर्ण स्वर सुनकर मानों जीवन देते हुए मयसे बोले, कि मत डरो ॥ ३८ ॥

तं पार्थेनाभये दत्ते नमुचेर्भ्रातरं मयम् ।
न हन्तुमैच्छद्दाशार्हः पावको न ददाह च ॥ ३९ ॥

तदनन्तर अर्जुनके नमुचिके भाई उस दैत्य मयको ढाढस देने पर दाशार्ह श्रीकृष्णने फिर उसे मारना नहीं चाहा और अग्नि भी जलानेको प्रवृत्त नहीं हुए ॥ ३९ ॥

तस्मिन्वने दह्यमाने षडग्निर्न ददाह च ।
अश्वसेनं मयं चापि चतुरः शाङ्र्गकानिति ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१९ ॥ ७०५६ ॥

उस वनको जलाते हुए अग्निने केवल अश्वसेन, मय और शाङ्र्गक नामक चार पक्षी इन छैको नहीं जलाया ॥ ४० ॥

महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ २१९ ॥ ७०५६ ॥

: २२० :

जनमेजय उवाच

किमर्थं शाङ्र्गकानग्निर्न ददाह तथागते ।
तस्मिन्वने दह्यमाने ब्रह्मन्नेतद्वदाशु मे ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– हे ब्रह्मन् ! यह मुझे बताओ, कि उस वनके जलानेके समय उस दशामें अग्निने शाङ्र्गक पक्षियोंको क्यों नहीं जलाया ॥ १ ॥

अदाहे ह्यश्वसेनस्य दानवस्य मयस्य च ।
कारणं कीर्तितं ब्रह्मञ्शाङ्र्गकानां न कीर्तितम् ॥ २ ॥

अश्वसेन और मयदानव किस कारण नहीं जले उसका कारण तो आपने बता दिया, पर चार शाङ्र्गके न जलनेका कारण नहीं कहा ॥ २ ॥

तदेनदद्भुतं ब्रह्मञ्शाङ्‌र्गनामविनाशनम् ।
कीर्तयस्वाग्निसंमर्दे कथं ते न विनाशिताः ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन् ! शाङ्‌र्गकोंका बचना मुझको अचरजसा जान पडता है, बताओ, कि वे उस अग्नि-दाहसे क्यों नहीं जल मरे ? ॥ ३ ॥

वैशंपायन उवाच

यदर्थं शाङ्‌र्गकानाग्निर्न ददाह तथागते ।
तत्ते सर्वं यथावृत्तं कथयिष्यामि भारत ॥ ४ ॥

वैशम्पायन बोले– हे शत्रुदमन ! उस दशामें हुताशनने जिस कारण शाङ्‌र्गकोंको नहीं जलाया, वह सब वृत्त तुमसे कहता हूं, सुनो ॥ ४ ॥

धर्मज्ञानां मुख्यतमस्तपस्वी संशितव्रतः ।
आसीन्महर्षिः श्रुतवान्मन्दपाल इति श्रुतः ॥ ५ ॥

हे महाराज ! मन्दपाल नामसे प्रख्यात तपस्वी विद्वान् व्रतशील धर्मके जानकारोंमें श्रेष्ठ एक महर्षि थे ॥ ५ ॥

स मार्गमास्थितो राजन्नृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्वाध्यायवान्धर्मरतस्तपस्वी विजितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

हे राजन् ! वह स्वाध्यायमें नियुक्त और जितेन्द्रिय होकर सदा तपस्या और धर्म करते थे । वह ऊर्ध्वरेता ऋषियोंके मार्गपर चलते थे ॥ ६ ॥

स गत्वा तपसः पारं देहमुत्सृज्य भारत ।
जगाम पितृलोकाय न लेभे तत्र तत्फलम् ॥ ७ ॥

हे भारत ! जब वह देह छोडकर तपस्याके उस पार जाकर पितृलोकको गये, तब उन्हें बटोरी हुई अपनी तपस्याका कोई फल वहां प्राप्त नहीं हुआ ॥ ७ ॥

स लोकानफलान्दृष्ट्वा तपसा निर्जितानपि ।
पप्रच्छ धर्मराजस्य समीपस्थान्दिवौकसः ॥ ८ ॥

उन महर्षिने अपनी कठोर तपस्यासे उपार्जित किये हुए लोकोंको न देखकर धर्मराजके निकट देवोंसे पूछा ॥ ८ ॥

किमर्थमावृता लोका ममैते तपसार्जिताः ।
किं मया न कृतं तत्र यस्येदं कर्मणः फलम् ॥ ९ ॥

मेरी तपस्यासे उपार्जित पुण्यलोक क्यों बन्द हैं ? जिन कर्मोंके करनेसे इन सब पुण्यलोकोंमें जाया जाता है, क्या मैंने उन कर्मोंको नहीं किया है ? ॥ ९ ॥

तत्राहं तत्करिष्यामि यदर्थमिदमावृतम् ।
फलमेतस्य तपसः कथयध्वं दिवौकसः ॥ १० ॥

हे देवगण ! जिस कारण मेरी तपस्याका फल रुका हुआ है, उस कारणको आप मुझे बतायें मैं उसको करनेको प्रस्तुत हूं ॥ १० ॥

देवा ऊचुः

ऋणिनो मानवा ब्रह्मञ्जायन्ते येन तच्छृणु ।
क्रियाभिर्ब्रह्मचर्येण प्रजया च न संशयः ॥ ११ ॥

देवोंने कहा– हे ब्रह्मन् ! सुनो इसमें संदेह नहीं कि मानवगण क्रिया, ब्रह्मचर्य और सन्तान उत्पन्न करनेके ऋणोंको लेकर जन्म लेते हैं ॥ ११ ॥

तदपाक्रियते सर्वं यज्ञेन तपसा सुतैः ।
तपस्वी यज्ञकृच्चासि न तु ते विद्यते प्रजा ॥ १२ ॥

यज्ञ, तपस्या और पुत्रोत्पादन इन तीन कर्मोंसे यह ऋण चुकता है । तुमने बहुत तपस्या और यज्ञ किया है, पर तुम्हारे सन्तान नहीं है ॥ १२ ॥

त इमे प्रसवस्यार्थे तव लोकाः समावृताः ।
प्रजायस्व ततो लोकानुपभोक्तासि शाश्वतान् ॥ १३ ॥

अतः, तुम्हारे पुत्रोत्पत्तिके लिए यह सब पुण्यलोक तुम्हारे लिये बन्द पडे हुए हैं । तुम पुत्र उत्पन्न करोगे तो इन श्रेष्ठ लोकोंको भोगने पाओगे ॥ १३ ॥

पुन्नाम्नो नरकात्पुत्रस्त्रातीति पितरं मुने ।
तस्मादपत्यसंताने यतस्व द्विजसत्तम ॥ १४ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ मुने ! पुत्र पिताको पुत् नामक नरकसे बचाता है अतः तुम पुत्रको उत्पन्न करनेका प्रयत्न करो ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा मन्दपालस्तु तेषां वाक्यं दिवौकसाम् ।
क्व नु शीघ्रमपत्यं स्याद्बहुलं चेत्यचिन्तयत् ॥ १५ ॥

वैशम्पायन बोले– तब मन्दपाल देवोंका वह वचन सुनकर सोचने लगे, कि किस योनिमें जन्म लेनेसे शीघ्र और अधिक सन्तान उत्पन्न हो सकती है ॥ १५ ॥

स चिन्तयन्नभ्यगच्छद्बहुलप्रसवान्खगान् ।
शाङ्गिकां शाङ्गको भूत्वा जरितां समुपेयिवान् ॥ १६ ॥

तदनन्तर वे यह सोचकर कि पक्षीकी जातिके स्वल्पकालमें बहुत सन्तानें होती हैं, शार्ङ्गक पक्षी बनकर जरिता नामक शार्ङ्गिकासे मिले ॥ १६ ॥

तस्यां पुत्रानजनयच्चतुरो ब्रह्मवादिनः ।
तानपास्य स तत्रैव जगाम लपितां प्रति ।
बालान्सुतानण्डगतान्मात्रासह मुनिर्वने ॥ १७ ॥

उसके गर्भसे उन्होंने चार ब्रह्मवादी पुत्र उत्पन्न किए, तदनन्तर वह अण्डेसे पैदा हुए बच्चोंको उनकी माताके साथ उसी वनमें छोडकर लपिताके पास गये ॥ १७ ॥

तस्मिन्गते महाभागे लपितां प्रति भारत ।
अपत्यस्नेहसंविग्ना जरिता बह्वचिन्तयत् ॥ १८ ॥

हे भारत ! उन महाभागके लपिताके पास चले जानेपर जरिता पुत्रस्नेहसे कातर हो अनेक प्रकारकी चिंता करने लगी ॥ १८ ॥

तेन त्यक्तानसंत्याज्यानृषीनण्डगतान्वने ।
नाजहत्पुत्रकानार्ता जरिता खाण्डवे नृप ।
बभार चैतान्संजातान्स्ववृत्त्या स्नेहविक्लवा ॥ १९ ॥

हे राजन् ! ऋषिके उस खांडव वनमें उन अण्डोंमें स्थित बच्चोंको छोड देने पर भी जरिता कातर होकर त्यागनेके अयोग्य उन बच्चोंको छोड नहीं सकी और अण्डेमेंसे उन बच्चोंके बाहर निकल आनेपर जरिता स्नेहके मारे अपने भोजनमेंसे उन्हें देकर उन्हें पालने लगी ॥ १९ ॥

ततोऽग्निं खाण्डवं दग्धुमायान्तं दृष्टवानृषिः ।
मन्दपालश्चरंस्तस्मिन्वने लपितया सह ॥ २० ॥

कुछ दिनोंके बाद ऋषि मन्दपालने लपिताके साथ उस वनमें विचरते हुए खाण्डव वनको जलानेके लिए आते हुए अग्निको देखा ॥ २० ॥

तं संकल्पं विदित्वास्य ज्ञात्वा पुत्रांश्च बालकान् ।
सोऽभितुष्टाव विप्रर्षिर्ब्राह्मणो जातवेदसम् ।
पुत्रान्परिददद्भीतो लोकपालं महौजसम् ॥ २१ ॥

ब्रह्मके जानकार विप्रर्षि वह मन्दपाल जातवेदाका वह अभिप्राय समझकर, अपनी सन्तानोंको बालक जानकर उनके लिये उनसे विनय करनेकी इच्छासे भयभीत होकर उस तेजस्वी लोकपाल अग्निकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥

मन्दपाल उवाच

त्वमग्ने सर्वदेवानां मुखं त्वमसि हव्यवाट् ।
त्वमन्तः सर्वभूतानां गूढश्चरसि पावक ॥ २२ ॥

मन्दपाल बोले– हे अग्ने ! तुम सब देवोंके मुखस्वरूप हो; तुम हवनके पदार्थ ग्रहण किया करते हो । हे पावक ! तुम सब मनुष्योंके हृदयमें गुप्त होकर संचार करते हो ॥ २२ ॥

त्वामेकमाहुः कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः ।
त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञवाहमकल्पयन् ॥ २३ ॥

कविगण तुमको अद्वितीय कहा करते हैं, और तुम्हींको तीन प्रकारका भी कहते हैं, तथा तुमको अष्टधा मान करके तुम्हें यज्ञवाहक बनाया है ॥ २३ ॥

त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्ति परमर्षयः ।
त्वदृते हि जगत्कृत्स्नं सद्यो न स्याद्धुताशन ॥ २४ ॥

हे हुताशन ! परमर्षिगण कहते हैं, कि तुम्हींने इस संसारको रचा है और तुम्हारे न रहनेसे आज ही सब जगमण्डल नष्ट हो जाएगा ॥ २४ ॥

तुभ्यं कृत्वा नमो विप्राः स्वकर्मविजितां गतिम् ।
गच्छन्ति सह पत्नीभिः सुतैरपि च शाश्वतीम् ॥ २५ ॥

ब्राह्मणगण तुम्हींको प्रणाम करके स्त्रीपुत्रोंके साथ अपने कर्मसे जीती गई शाश्वत गतिको प्राप्त करते हैं ॥ २५ ॥

त्वामग्ने जलदानाहुः खे विषक्तान्सविद्युतः ।
दहन्ति सर्वभूतानि त्वत्तो निष्क्रम्य हायनाः ॥ २६ ॥

हे अग्ने ! पण्डित लोग तुमको विद्युत्के साथ आकाशमें स्थिर मेघ कहते हैं । हे पावक ! तुमसे ज्वालायें निकलकर सब भूतोंको जलाती हैं ॥ २६ ॥

जातवेदस्तवैवेयं विश्वसृष्टिर्महाद्युते ।
तवैव कर्म विहितं भूतं सर्वं चराचरम् ॥ २७ ॥

हे महाद्युते अग्ने ! यह सब स्थावर जङ्गमात्मक जीव तुम्हारे कर्मके ही परिणाम हैं, यह सारी सृष्टि तुम्हारी ही है ॥ २७ ॥

त्वयापो विहिताः पूर्वं त्वयि सर्वमिदं जगत् ।
त्वयि हव्यं च कव्यं च यथावत्संप्रतिष्ठितम् ॥ २८ ॥

हे अग्ने ! पहिले तुम्हींने जलोंकी रचना की है । यह सम्पूर्ण जगत् तुममें स्थित है और सम्पूर्ण हव्यकव्य तुम्हारा ही आश्रय लेकर विद्यमान हैं ॥ २८ ॥

अग्ने त्वमेव ज्वलनस्त्वं धाता त्वं बृहस्पतिः ।
त्वमश्विनौ यमौ मित्रः सोमस्त्वमसि चानिलः ॥ २९ ॥

हे देव ! तुम्हीं ज्वलन, तुम्हीं विधाता, तुम्हीं बृहस्पति, तुम्हीं दोनों अश्विनीकुमार, तुम्हीं अर्क, तुम्हीं सोम और तुम्हीं पवन स्वरूप हो ॥ २९ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं स्तुतस्ततस्तेन मन्दपालेन पावकः ।
तुतोष तस्य नृपते मुनेरमिततेजसः ।
उवाच चैनं प्रीतात्मा किमिष्टं करवाणि ते ॥ ३० ॥

वैशम्पायन बोले— हे महाराज ! मन्दपालमुनिके इस प्रकार अग्निकी स्तुति करने पर अग्नि उन अत्यन्त तेजस्वी मुनि पर प्रसन्न हुए और प्रीतिपूर्वक उनसे कहा, कि बोलो तुम्हारा अभीष्ट क्या है, मैं पूरा कर देता हूं ॥ ३० ॥

तमब्रवीन्मन्दपालः प्राञ्जलिर्हव्यवाहनम् ।
प्रदहन्खाण्डवं दावं मम पुत्रान्विसर्जय ॥ ३१ ॥

मन्दपाल दोनों हाथ जोडकर उस हव्यवाहनसे बोले— तुम जब खाण्डववनको जलाओ तब मेरे बच्चोंको मत जलाना उन्हें जीवित छोड देना ॥ ३१ ॥

तथेति तत्प्रतिश्रुत्य भगवान्हव्यवाहनः ।
खाण्डवे तेन कालेन प्रजज्वाल दिधक्षया ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥ ७०८८ ॥

भगवान् हव्यवाहनने " तथास्तु " कहके उनको वचन दे दिया और उसी समय खाण्डव-वन जलानेकी अभिलाषासे जल उठे ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २२० ॥ ७०८८ ॥

: २२१ :

ततः प्रज्वलिते शुक्रे शाङ्‌र्गकास्ते सुदुःखिताः ।
व्यथिताः परमोद्विग्ना नाधिजग्मुः परायणम् ॥ १ ॥

तदनन्तर अग्निके जलने पर वे शाङ्‌र्गकपक्षीके बच्चे बहुत भयभीत होकर दुःखी होकर घबरा उठे; उनको ढूंढने पर भी बचनेका कोई उपाय नहीं मिला ॥ १ ॥

निशाम्य पुत्रकान्बालान्माता तेषां तपस्विनी ।
जरिता दुःखसंतप्ता विललाप नरेश्वर ॥ २ ॥

हे नरेश्वर ! उनकी माता तपस्विनी जरिता बच्चोंको बहुत छोटा देखकर दुःख और शोकसे विलपती हुई कहने लगी ॥ २ ॥

अयमग्निर्दहन्कक्षमित आयाति भीषणः ।
जगत्सन्दीपयन्भीमो मम दुःखविवर्धनः ॥ ३ ॥

मेरा दुःख बढानेवाली यह भयानक अग्नि वनको जलाती हुई सब जगह उजाला फैलाती हुई डरावने स्वरूपमें आ रही है ॥ ३ ॥

इमे च मां कर्षयन्ति शिशवो मन्दचेतसः ।
अबर्हाश्चरणैर्हीनाः पूर्वेषां नः परायणम् ।
त्रासयंश्चायमायाति लेलिहानो महीरुहान् ॥ ४ ॥

इधर हमारे पूर्वजोंके रक्षक (पूर्वजोंको नरकसे छुडानेवाले), पैर और पंखोंसे रहित अज्ञानी ये बच्चे मुझे अपनी तरफ खींच रहे हैं, और दूसरी तरफ यह अग्निदेव हरघडी वृक्षोंको चाटता और भयभीत करता हुआ इधर बढा आ रहा है ॥ ४ ॥

अशक्तिमत्त्वाच सुता न शक्ताः सरणे मम ।
आदाय च न शक्तोस्मि पुत्रांस्तरितुमन्यतः ॥ ५ ॥

पर मेरे बच्चोंमें अशक्ति होनेके कारण वे भागनेमें समर्थ नहीं हैं और मुझ अकेलीमें इतना सामर्थ्य नहीं है, कि इन सबोंको लेकर दूसरी जगह भाग सकूं ॥ ५ ॥

न च त्यक्तुमहं शक्ता हृदयं दूयतीव मे ।
कं नु जह्यामहं पुत्रं कमादाय व्रजाम्यहम् ॥ ६ ॥

और न इन्हें मैं छोड ही सकती हूँ, मेरा हृदय दुःखी हो रहा है। मैं किस बच्चेको लेकर जाऊं; किसको छोड दूं ॥ ६ ॥

किं नु मे स्यात्कृतं कृत्वा मन्यध्वं पुत्रकाः कथम् ।
चिन्तयाना विमोक्षं वो नाधिगच्छामि किंचन ।
छादयित्वा च वो गात्रैः करिष्ये मरणं सह ॥ ७ ॥

क्या करूं जो मनोरथ सिद्ध हो ? हे पुत्रो ! तुम क्या विचारते हो ? मैं तो बहुत विचार करनेपर भी तुम्हारे बचनेका कोई उपाय नहीं देखती; मैं अपनी देहसे तुमको छिपाकर अन्तमें तुम सबके साथ जल मरूंगी ॥ ७ ॥

जरितारौ कुलं हीदं ज्येष्ठत्वेन प्रतिष्ठितम् ।
सारिसृक्कः प्रजायेत पितॄणां कुलवर्धनः ॥ ८ ॥

"मेरे चार बेटोंमें ज्येष्ठ जरितारी नामक पुत्रसे वंश प्रतिष्ठित होगा; सारिसृक्व नामक पुत्र सन्तान उपजाकर कुल बढावेगा ॥ ८ ॥

स्तम्बमित्रस्तपः कुर्याद्द्रोणो ब्रह्मविदुत्तमः ।
इत्येवमुक्त्वा प्रययौ पिता वो निर्घृणः पुरा ॥ ९ ॥

स्तम्बमित्र नामक पुत्र तपस्या करेगा और द्रोणनामक प्रशंसित पुत्र वेदमें पण्डित होगा ।" यह बात कहकर तुम्हारा निर्दयी पिता पहले चला गया था ॥ ९ ॥

कमुपादाय शक्येत गन्तुं कस्यापदुत्तमा ।
किं नु कृत्वा कृतं कार्यं भवेदिति च विह्वला ॥ १० ॥

पर अब यह दुःखदायी विपत्ति आ पडी; मैं किसे लेकर जा सकूंगी ? क्या करनेसे कार्य पूरा कर सकूंगी ? जरिता इस प्रकार सोचकर घबरा उठी ॥ १० ॥

नापश्यत्स्वधिया मोक्षं स्वसुतानां तदानलात् ।
एवं ब्रुवन्ती शार्ङ्गास्ते प्रत्यूचुरथ मातरम् ॥ ११ ॥

उसको अपनी बुद्धिसे अपने पुत्रोंको अग्निसे बचानेका कोई उपाय नहीं सूझ पडा । शार्ङ्गकोंने माताको इस प्रकार विलपते सुनकर कहा ॥ ११ ॥

स्नेहमुत्सृज्य मातस्त्वं पत यत्र न हव्यवाट् ।
अस्मासु हि विनष्टेषु भवितारः सुतास्तव ।
त्वयि मातर्विनष्टायां न नः स्यात्कुलसन्ततिः ॥ १२ ॥

हे माता ! तू स्नेह छोडकर वहां उड जा, कि जहां आग न हो । हे माता ! हम मर जायेंगे तो तेरी और सन्तानें उत्पन्न हो सकेंगी; पर तेरे मरनेसे वंशरक्षाका उपाय न रहेगा ॥ १२ ॥

अन्ववेक्ष्यैतदुभयं क्षेमं स्याद्यत्कुलस्य नः ।
तद्वै कर्तुं परः कालो मातरेष भवेत्तव ॥ १३ ॥

हे माता ! अब तेरे लिये वह काल आ पहुंचा है । अतः हमारे साथ प्राण छोडना अथवा हमें छोडके अपनेको बचाना, इन दो विषयोंकी भली प्रकार आलोचना करके वही करना चाहिये, जिसके करनेसे हमारे कुलका मंगल हो ॥ १३ ॥

मा वै कुलविनाशाय स्नेहं कार्षीः सुतेषु नः ।
न हीदं कर्म मोघं स्याल्लोककामस्य नः पितुः ॥ १४ ॥

तू फिर कुलविनाशके लिए हम पुत्रोंमें स्नेह मत कर, ऐसा करनेसे स्वर्गलोकको देनेवाले पुत्रको चाहनेवाले पिताका सब कर्म व्यर्थ हो जायेगा ॥ १४ ॥

जरितोवाच

इदमाखोर्बिलं भूमौ वृक्षस्यास्य समीपतः ।
तदाविशध्वं त्वरिता वह्नेरत्र न वो भयम् ॥ १५ ॥

जरिता बोली– हे पुत्रो ! इस वृक्षके पास ही धरतीके भीतर चूहेका बिल दीख पडता है, तुम तुरन्त इसमें जा घुसो; यहां तुम्हें अग्निका भय नहीं रहेगा ॥ १५ ॥

ततोऽहं पांसुना छिद्रमपिधास्यामि पुत्रकाः ।
एवं प्रतिकृतं मन्ये ज्वलतः कृष्णवर्त्मनः ॥ १६ ॥

हे पुत्रो ! तब मैं धूलसे इस बिलका मुंह ढक दूंगी; अब प्रज्ज्वलित अग्निसे बचनेका यही एक उपाय देखती हूं ॥ १६ ॥

तत एष्याम्यतीतेऽग्नौ विहर्तुं पांसुसंचयम् ।
रोचतामेष वोपायो विमोक्षाय हुताशनात् ॥ १७ ॥

आग बुझनेपर मैं बिलके मुखसे राखका ढेर हटानेके लिए आऊंगी । तुम अग्निसे बचनेके लिये मेरा यह वचन मानो ॥ १७ ॥

शाङ्‍र्गका ऊचुः

अबर्हान्मांसभूतान्नः क्रव्यादाखुर्विनाशयेत् ।
पश्यमाना भयमिदं न शक्ष्यामो निषेवितुम् ॥ १८ ॥

शाङ्‍र्गकोंने कहा– हमारे पंख नहीं जमे हैं, हम केवल मांसपिण्ड ही हैं, अतः मांस खानेवाले चूहे हमको अवश्य नष्ट कर डालेंगे; इस भयको देखते हुए हम इसके भीतर रह नहीं सकते ॥ १८ ॥

कथमग्निर्न नो दह्यात्कथमाखुर्न भक्षयेत् ।
कथं न स्यात्पिता मोघः कथं माता ध्रियेत नः ॥ १९ ॥

अब किसी प्राकर अग्नि हमें न जला सके, किसी प्रकार चूहे हमें न खा सकें, किसी प्रकार पिताका पुत्र उत्पन्न होना व्यर्थ न होवे, किसी प्रकार हमारी माता हमें धारण करे (इनमेंसे किसीका एक भी उपाय नहीं देखते अतः निश्चय ही हमारी मृत्यु आ पहुंची है) ॥ १९ ॥

बिल आखोर्विनाशः स्यादग्नेराकाशचारिणाम् ।
अन्ववेक्ष्यैतदुभयं श्रेयान्दाहो न भक्षणम् ॥ २० ॥

बिलमें घुसेंगे तो हमें चूहे खा जायेंगे और बाहर रहेंगे तो अग्निसे मरेंगे; इन दो मृत्युओंके विषयमें विचार करनेसे यही उचित प्रतीत होता है, कि अग्निसे जल मरना ही अच्छा है, चूहे से खाये जाना अच्छा नहीं ॥ २० ॥

गर्हितं मरणं न स्यादाखुना खादता बिले ।
शिष्टादिष्टः परित्यागः शरीरस्य हुताशनात् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥ ७१०९ ॥

बिलमें चूहोंके द्वारा खा लिए जाने पर हमारी मृत्यु बडी निन्दनीय होगी, (इसके बिपरीत) अग्निकी सहायतासे शरीरका त्याग करना सज्जनोंके द्वारा सम्मत है ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥ २२१ ॥ ॥ ७१०९ ॥

: २२२ :

जरितोवाच

अस्माद्बिलान्निष्पतितं श्येन आखुं जहार तम् ।
क्षुद्रं गृहीत्वा पादाभ्यां भयं न भविता ततः ॥ १ ॥

जरिता बोली— इस गड्ढेसे एक छोटा चूहा निकला था; एक बाज आकर पंजोंसे उसे पकडकर ले गया है, अतः अब इस बिलमें तुम्हारे लिए भय नहीं है ॥ १ ॥

शार्ङ्गका ऊचु

न हृतं तं वयं विद्मः श्येनेनाखुं कथंचन ।
अन्येऽपि भवितारोऽत्र तेभ्योऽपि भयमेव नः ॥ २ ॥

शार्ङ्गोंने कहा— हम बाजके द्वारा चूहेको ले जानेकी बात नहीं जानते और ले भी गया हो, तो इस बिलमें और भी चूहे होंगे उनसे भी हमको भय है ही ॥ २ ॥

संशयो ह्यग्निरागच्छेद्दृष्टं वायोर्निवर्तनम् ।
मृत्युर्नो बिलवासिभ्यो भवेन्मातरसंशयम् ॥ ३ ॥

और यह अग्नि आवे कि नहीं इसमें सन्देह है क्योंकि वायुसे अग्निका बुझना भी देखा गया है, अतः, हे माता ! बिलमें रहनेसे निश्चय ही हमारी मृत्यु होगी ॥ ३ ॥

निःसंशयात्संशयितो मृत्युर्मातर्विशिष्यते ।
चर खे त्वं यथान्यायं पुत्रान्वेत्स्यसि शोभनान् ॥ ४ ॥

हे माता ! जिस स्थानमें मृत्युका होना निश्चित है, उससे वह स्थान कहीं ज्यादा अच्छा है, कि जहां मृत्युमें संदेह है, अतः न्यायके अनुसार तुमको आकाशमें उड जाना ही उचित है; तुम्हारा जीवन बचेगा तो तुम दूसरे अच्छे पुत्र पासकोगी ॥ ४ ॥

जरितोवाच

अहं वै श्येनमायान्तमद्राक्षं बिलमन्तिकात् ।
संचरन्तं समादाय जहाराखुं बिलाद्बली ॥ ५ ॥

जरिता बोली– मैंने बिलके पाससे विचरनेवाले चूहेको ले जाते हुए बलवान् बाजको देखा है ॥ ५ ॥

तं पतन्तमहं श्येनं त्वरिता पृष्ठतोऽन्वगाम् ।
आशिषोऽस्य प्रयुञ्जाना हरतो मूषकं बिलात् ॥ ६ ॥

हे बेटो ! जब पक्षीवर बाज बिलसे चूहेको लेकर वेगसे भागा था, तब मैंने उसके पीछे दौडकर अशीस दिया था ॥ ६ ॥

यो नो द्वेष्टारमादाय श्येनराज प्रधावसि ।
भव त्वं दिवमास्थाय निरमित्रो हिरण्मयः ॥ ७ ॥

हे बाजराज ! तुम हमारे शत्रुको लेकर भाग रहे हो, अतः तुम विना शत्रुके होकर देवलोकमें सुनहली देह पाकर रहो ॥ ७ ॥

यदा स भक्षितस्तेन क्षुधितेन पतत्रिणा ।
तदाहं तमनुज्ञाप्य प्रत्युपायां गृहान्प्रति ॥ ८ ॥

तदनन्तर उस भूखे बाजके द्वारा मूषको खा लिए जाने पर मैं उसे आज्ञा देकर घरको लौट आयी ॥ ८ ॥

प्रविशध्वं बिलं पुत्रा विश्रब्धा नास्ति वो भयम् ।
श्येनेन मम पश्यन्त्या हृत आखुर्न संशयः ॥ ९ ॥

हे बेटो ! अब तुम चित्तमें कोई शङ्का न करके बिलमें निर्भय होकर जाओ निस्सन्देह बाजने मेरे सामने ही मूषको खा डाला है ॥ ९ ॥

शाङ्र्गका ऊचुः

न विद्म वै वयं मातर्हृतमाखुमितः पुरा ।
अविज्ञाय न शक्ष्यामो बिलमाविशतुं वयम् ॥ १० ॥

शाङ्र्गोंने कहा– हे माता हमने नहीं देखा, कि बाज मूषको हर ले गया है, अतः हम विशेष जाने बिना बिलमें घुस नहीं सकते ॥ १० ॥

जरितोवाच

अहं हि तं प्रजानामि हृतं श्येनेन मूषकम्।
अत एव भयं नास्ति क्रियतां वचनं मम ॥ ११ ॥

जरिता बोली– बेटो ! तुम मेरी बात मानो, इसमें तुम्हें कोई भय नहीं है, क्योंकि मैं जानती हूं कि बाज चूहेको हर ले गया है ॥ ११ ॥

शाङ्र्गका ऊचुः

न त्वं मिथ्योपचारेण मोक्षयेथा भयं महत्।
समाकुलेषु ज्ञानेषु न बुद्धिकृतमेव तत् ॥ १२ ॥

शाङ्र्गोंने कहा– तुम झूठ उपचारसे हमारा भय मत दूर करो। संदेहयुक्त कार्यमें हाथ डालना बुद्धिमानी नहीं है ॥ १२ ॥

न चोपकृतमस्माभिर्न चास्मान्वेत्थ ये वयम्।
पीडयमाना भरस्यस्मान्का सती के वयं तव ॥ १३ ॥

हमने कभी तुम्हारा कोई उपकार नहीं किया और तुम यह भी नहीं जानतीं, कि हम कौन हैं, फिर क्यों कष्ट उठाकर हमको बचानेकी चेष्टा कर रही हो ? तुम हमारी कौन हो और हम तुम्हारे कौन लगते हैं ॥ १३ ॥

तरुणी दर्शनीयासि समर्था भर्तुरेषणे।
अनुगच्छ स्वभर्तारं पुत्रानाप्स्यसि शोभनान् ॥ १४ ॥

हे मा ! तुम युवती और रूपवती हो और पतिको ढूंढनेका सामर्थ्य भी रखती हो, अतः तुम अपने पतिके पीछे जाओ, उनसे तुम अच्छे पुत्र पा सकोगी ॥ १४ ॥

वयमप्यग्निमाविश्य लोकानाप्स्यामहे शुभान्।
अथास्मान्न दहेदग्निरायास्त्वं पुनरेव नः ॥ १५ ॥

हम भी अग्निमें घुसकर अच्छे लोकको प्राप्त करेंगे। यदि अग्नि हमको न जलावे; तो फिर तुम हमारे पास आना ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ता ततः शाङ्र्गी पुत्रानुत्सृज्य खाण्डवे।
जगाम त्वरिता देशं क्षेममग्नेरनाश्रयम् ॥ १६ ॥

वैशम्पायन बोले– शाङ्र्गी पुत्रोंसे वह बात सुनकर, उन्हें उस खाण्डववनमें छोडके तुरन्त ऐसी जगह चली गयी, कि जहां अग्निका भय नहीं था ॥ १६ ॥

ततस्तीक्ष्णार्चिरभ्यागाज्ज्वलितो हव्यवाहनः ।
यत्र शार्ङ्गा बभूवुस्ते मन्दपालस्य पुत्रकाः ॥ १७ ॥

तदन्तर अग्नि वेगसे और तेज ज्वालायें लिये उस जगह आए, जहां मन्दपालके पुत्र शार्ङ्ग थे ॥ १७ ॥

ते शार्ङ्गा ज्वलितं दृष्ट्वा ज्वलनं स्वेन तेजसा ।
जरितारिस्ततो वाचं श्रावयामास पावकम् ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥ ७१२७ ॥

तब उन पक्षियोंने अपने तेजसे प्रज्ज्वलित अग्निको देखा और उनमें ज्येष्ठ जरितारि उस अग्निको यह बात सुनाने लगा ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दो सौ बाईसवां अध्याय समाप्त ॥ २२२ ॥ ७१२७ ॥

: २२३ :

जरितारिरुवाच

पुरतः कृच्छ्रकालस्य धीमाञ्जागर्ति पूरुषः ।
स कृच्छ्रकालं संप्राप्य व्यथां नैवैति कर्हिचित् ॥ १ ॥

जरितारि बोला– ज्ञानी आपत्तिके कालके पहिलेसे जागता रहता है, वह कभी आपत्तिको पाकर पीडाको प्राप्त नहीं होता ॥ १ ॥

यस्तु कृच्छ्रमसंप्राप्तं विचेता नावबुध्यते ।
स कृच्छ्रकाले व्यथितो न प्रजानाति किंचन ॥ २ ॥

जो अज्ञानी आपत्तिके कालके आजाने पर भी सोते हुएके समान रहता है, वह आपत्तिके कालमें दुःखी होकर कुछ भी नहीं जान पाता ॥ २ ॥

सारिसृक्व उवाच

धीरस्त्वमसि मेधावी प्राणकृच्छ्रमिदं च नः ।
शूरः प्राज्ञो बहूनां हि भवत्येको न संशयः ॥ ३ ॥

सारिसृक्व बोला– हमारे प्राणोंपर संकट आ पडा है; तुम धीर और बुद्धिमान् हो, तुम्हीं हमारी रक्षा करो; क्योंकि बहुतोंहीमेंसे एक ही पुरुष बुद्धिमान् और शूर होता है इसमें कोई संशय नहीं ॥ ३ ॥

स्तम्बमित्र उवाच

ज्येष्ठस्त्राता भवति वै ज्येष्ठो मुञ्चति कृच्छ्रतः।
ज्येष्ठश्चेन्न प्रजानाति कनीयान्किं करिष्यति ॥ ४ ॥

स्तम्बमित्र बोला– ज्येष्ठ भ्राता कनिष्ठोंके त्राता होते हैं, अतः ज्येष्ठ भ्राता ही विपत्तिसे बचाते हैं। जो ज्येष्ठ भाई ही नहीं बचा सकता तो कनिष्ठ क्या कर सकता है ? ॥ ४ ॥

द्रोण उवाच

हिरण्यरेतास्त्वरितो ज्वलन्नायाति नः क्षयम्।
सप्तजिह्वोऽनलः क्षामो लेलिहानोपसर्पति ॥ ५ ॥

द्रोण बोला– वह सुवर्णरेता सात जीभ, सात मुंह सहित वेगसे जलाता पदार्थोंको चाटता हुआ हमारे घरपर आरहा है ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तो भ्रातृभिस्तु जरितारिर्विभावसुम्।
तुष्टाव प्राञ्जलिर्भूत्वा यथा तच्छृणु पार्थिव ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले– हे पृथ्वीनाथ ! इस प्रकार भाइयोंके कहनेपर जरितारिने हाथ जोडकर अग्निकी जो स्तुति की, वह कहता हूं सुनो ॥ ६ ॥

जरितारिरुवाच

आत्मासि वायोः पवनः शरीरमुत वीरुधाम्।
योनिरापश्च ते शुक्र योनिस्त्वमसि चाम्भसः ॥ ७ ॥
ऊर्ध्वं चाधश्च गच्छन्ति विसर्पन्ति च पार्श्वतः।
अर्चिषस्ते महावीर्य रश्मयः सवितुर्यथा ॥ ८ ॥

जरितारि बोला– हे अग्ने ! तुम पवित्र करनेवाले वायुकी आत्मा हो, तुम वनस्पतियोंकी देह हो। हे शुक्र ! तुम्हारे उत्पन्न होनेका स्थान जल है और तुम जलके उत्पन्न होनेका स्थान हो। हे महावीर्य ! तुम्हारी ज्वालायें सूर्यकी किरणोंके समान उंचे, नीचे, पीछे और बगलमें और सब जगह फैली रहती हैं ॥ ७–८ ॥

सारिसृक्व उवाच

माता प्रपन्ना पितरं न विद्मः पक्षाश्च नो न प्रजाताञ्जकेतो।
न नस्त्राता विद्यतेऽग्ने त्वदन्यस्तस्माद्धि नः परिरक्षैकवीर ॥ ९ ॥

सारिसृक्क बोला– हे धूमकेतो, हे अद्वितीय वीर ! हमारी मां दृष्टिके बाहर उड गयी है, पिताको भी हम नहीं पहिचानते और अभीतक हमारे पंख नहीं जमे, हम बहुत बच्चे हैं। हे अग्ने ! अब तुम्हारे विना हमें बचानेवाला कोई नहीं है; अतः तुम हमको बचाओ ॥ ९ ॥

यदग्ने ते शिवं रूपं ये च ते सप्त हेतयः ।
तेन नः परिरक्षाद्य ईडितः शरणैषिणः ॥ १० ॥

हे अग्ने ! तुम्हारा जो कल्याणकारी रूप है और जो सात ज्वालायें हैं, उन्हींसे तुम्हारी शरणमें आए हुए एवं तुम्हारी स्तुति करनेवाले हमारी आज रक्षा करो ॥ १० ॥

त्वमेवैकस्तपसे जातवेदो नान्यस्तप्ता विद्यते गोषु देव ।
ऋषीनस्मान्बालकान्पालयस्व परेणास्मान्प्रैहि वै हव्यवाह ॥ ११ ॥

हे जातवेद ! तुम अकेले ही ताप फैलाते हो । हे देव ! तपानेवाला सूर्य किरणोंमें तप्त होनेवाला तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं है । हे हव्यवाहन ! हम ऋषिके पुत्र और बच्चे हैं, हमारी रक्षा करो, हमारे यहांसे अन्य स्थानको जाओ ॥ ११ ॥

स्तम्बमित्र उवाच

सर्वमग्ने त्वमेवैकस्त्वयि सर्वमिदं जगत् ।
त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च ॥ १२ ॥

स्तम्बमित्र बोला– हे अग्ने ! तुम अकेले ही सर्वरूप हो, तुम्हींमें यह संपूर्ण जगत् विराजमान है, तुम जीवोंको धारण करते हो, तुम्हीं भुवनोंका पालन पोषण करते हो ॥ १२ ॥

त्वमग्निर्हव्यवाहस्त्वं त्वमेव परमं हविः ।
मनीषिणस्त्वां जानन्ति बहुधा चैकधैव च ॥ १३ ॥

तुम तेज पदार्थ हो, तुम हव्यको वहन करते हो और तुम उत्तम हव्यरूप हो । पण्डित-लोग तुमको (कारण रूपमें) एकरूप और (कार्य-रूपमें) बहुरूप जानते हैं ॥ १३ ॥

सृष्ट्वा लोकांस्त्रीनिमान्हव्यवाह प्राप्ते काले पचसि पुनः समिद्धः ।
सर्वस्यास्य भुवनस्य प्रसूतिस्त्वमेवाग्ने भवसि पुनः प्रतिष्ठा ॥ १४ ॥

हे हव्यवाहन अग्ने ! तुम पाहिले इन तीन सृष्टियोंको रचकर बादमें काल आने पर तुम्हीं प्रदीप्त होकर फिर उसका नाश करते हो; तुम्हीं सम्पूर्ण भुवनकी उत्पत्ति-स्थान हो और प्रलय स्थान भी तुम्हीं हो ॥ १४ ॥

त्वमन्नं प्राणिनां भुक्तमन्तर्भूतो जगत्पते ।
नित्यं प्रवृद्धः पचसि त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

हे जगत्पते ! तुम जीवोंके भीतर रहकर बढकर उनका खाया हुआ अन्न नित्य पचाते हो; अतः सब भूत तुम्हींमें प्रतिष्ठित हैं ॥ १५ ॥

स्तम्बमित्र उवाच

ज्येष्ठस्त्राता भवति वै ज्येष्ठो मुञ्चति कृच्छ्रतः।
ज्येष्ठश्चेन्न प्रजानाति कनीयान्किं करिष्यति ॥ ४ ॥

स्तम्बमित्र बोला– ज्येष्ठ भ्राता कनिष्ठोंके त्राता होते हैं, अतः ज्येष्ठ भ्राता ही विपत्तिसे बचाते हैं। जो ज्येष्ठ भाई ही नहीं बचा सकता तो कनिष्ठ क्या कर सकता है? ॥ ४ ॥

द्रोण उवाच

हिरण्यरेतास्त्वरितो ज्वलन्नायाति नः क्षयम्।
सप्तजिह्वोऽनलः क्षामो लेलिहानोपसर्पति ॥ ५ ॥

द्रोण बोला– वह सुवर्णरेता सात जीभ, सात मुंह सहित वेगसे जलाता पदार्थोंको चाटता हुआ हमारे घरपर आरहा है ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तो भ्रातृभिस्तु जरितारिर्विभावसुम्।
तुष्टाव प्राञ्जलिर्भूत्वा यथा तच्छृणु पार्थिव ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले– हे पृथ्वीनाथ! इस प्रकार भाइयोंके कहनेपर जरितारिने हाथ जोडकर अग्निकी जो स्तुति की, वह कहता हूं सुनो ॥ ६ ॥

जरितारिरुवाच

आत्मासि वायोः पवनः शरीरमुत वीरुधाम्।
योनिरापश्च ते शुक्र योनिस्त्वमसि चाम्भसः ॥ ७ ॥
ऊर्ध्वं चाधश्च गच्छन्ति विसर्पन्ति च पार्श्वतः।
अर्चिषस्ते महावीर्य रश्मयः सवितुर्यथा ॥ ८ ॥

जरितारि बोला– हे अग्ने! तुम पवित्र करनेवाले वायुकी आत्मा हो, तुम वनस्पतियोंकी देह हो। हे शुक्र! तुम्हारे उत्पन्न होनेका स्थान जल है और तुम जलके उत्पन्न होनेका स्थान हो। हे महावीर्य! तुम्हारी ज्वालायें सूर्यकी किरणोंके समान उंचे, नीचे, पीछे और बगलमें और सब जगह फैली रहती हैं ॥ ७–८ ॥

सारिसृक्व उवाच

माता प्रपन्ना पितरं न विद्मः पक्षाश्च नो न प्रजाताब्जकेतो।
न नस्त्राता विद्यतेऽग्ने त्वदन्यस्तस्माद्धि नः परिरक्षैकवीर ॥ ९ ॥

सारिसृक्क बोला– हे धूमकेतो, हे अद्वितीय वीर! हमारी मां दृष्टिके बाहर उड गयी है, पिताको भी हम नहीं पहिचानते और अभीतक हमारे पंख नहीं जमे, हम बहुत बचे हैं। हे अग्ने! अब तुम्हारे विना हमें बचानेवाला कोई नहीं है; अतः तुम हमको बचाओ ॥९॥

यदग्ने ते शिवं रूपं ये च ते सप्त हेतयः ।
तेन नः परिरक्षाद्य ईडितः शरणैषिणः　　॥ १० ॥

हे अग्ने! तुम्हारा जो कल्याणकारी रूप है और जो सात ज्वालायें हैं, उन्हींसे तुम्हारी शरणमें आए हुए एवं तुम्हारी स्तुति करनेवाले हमारी आज रक्षा करो ॥ १० ॥

त्वमेवैकस्तपसे जातवेदो नान्यस्तप्ता विद्यते गोषु देव ।
ऋषीनस्मान्बालकान्पालयस्व परेणास्मान्प्रैहि वै हव्यवाह　　॥ ११ ॥

हे जातवेद! तुम अकेले ही ताप फैलाते हो । हे देव! तपानेवाला सूर्य किरणोंमें तप्त होनेवाला तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं है । हे हव्यवाहन! हम ऋषिके पुत्र और बच्चे हैं, हमारी रक्षा करो, हमारे यहांसे अन्य स्थानको जाओ ॥ ११ ॥

स्तम्बमित्र उवाच

सर्वमग्ने त्वमेवैकस्त्वयि सर्वमिदं जगत् ।
त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च　　॥ १२ ॥

स्तम्बमित्र बोला— हे अग्ने! तुम अकेले ही सर्वरूप हो, तुम्हींमें यह संपूर्ण जगत् विराजमान है, तुम जीवोंको धारण करते हो, तुम्हीं भुवनोंका पालन पोषण करते हो ॥ १२ ॥

त्वमग्निर्हव्यवाहस्त्वं त्वमेव परमं हविः ।
मनीषिणस्त्वां जानन्ति बहुधा चैकधैव च　　॥ १३ ॥

तुम तेज पदार्थ हो, तुम हव्यको वहन करते हो और तुम उत्तम हव्यरूप हो । पण्डित-लोग तुमको (कारण रूपमें) एकरूप और (कार्य-रूपमें) बहुरूप जानते हैं ॥ १३ ॥

सृष्ट्वा लोकांस्त्रीनिमान्हव्यवाह प्राप्ते काले पचसि पुनः समिद्धः ।
सर्वस्यास्य भुवनस्य प्रसूतिस्त्वमेवाग्ने भवसि पुनः प्रतिष्ठा　　॥ १४ ॥

हे हव्यवाहन अग्ने! तुम पहिले इन तीन सृष्टियोंको रचकर बादमें काल आने पर तुम्हीं प्रदीप्त होकर फिर उसका नाश करते हो; तुम्हीं सम्पूर्ण भुवनकी उत्पत्ति-स्थान हो और प्रलय स्थान भी तुम्हीं हो ॥ १४ ॥

त्वमन्नं प्राणिनां भुक्तमन्तर्भूतो जगत्पते ।
नित्यं प्रवृद्धः पचसि त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्　　॥ १५ ॥

हे जगत्पते! तुम जीवोंके भीतर रहकर बढकर उनका खाया हुआ अन्न नित्य पचाते हो; अतः सब भूत तुम्हींमें प्रतिष्ठित हैं ॥ १५ ॥

द्रोण उवाच

सूर्यो भूत्वा रश्मिभिर्जातवेदो भूमेरम्भो भूमिजातान्रसांश्च ।
विश्वानादाय पुनरुत्सर्गकाले सृष्ट्वा वृष्ट्या भावयसीह शुक्र ॥ १६ ॥

द्रोण बोला– हे शुक्र ! हे जातवेद ! तुम सूर्य बनकर किरणसे भूमिमें उत्पन्न हुए सब रस और धरतीमें स्थित जलको लेकर समय समय पर फिर उसे वृष्टि द्वारा छोडकर सब अनाज उपजाते हो ॥ १६ ॥

त्वत्त एताः पुनः शुक्र वीरुधो हरितच्छदाः ।
जायन्ते पुष्करिण्यश्च समुद्रश्च महोदधिः ॥ १७ ॥

हे शुक्र ! तुम्हींसे यह सब पत्तोंवाली लता, सरोवर और मङ्गलनिधान समुद्र फिर उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥

इदं वै सद्म तिग्मांशो वरुणस्य परायणम् ।
शिवस्त्राता भवास्माकं मास्मानद्य विनाशय ॥ १८ ॥

हे तीव्र किरणोंसे युक्त अग्ने ! हमारी यह देह रसनेन्द्रियके नाथ जलपति वरुणपर निर्भर है; तुम जब उस जलके विधाता हो, अतः हमारे कल्याणकारी हो; तुम हमको नष्ट मत करो ॥१८॥

पिङ्गाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्त्मन्हुताशन ।
परेण प्रैहि मुञ्चास्मान्सागरस्य गृहानिव ॥ १९ ॥

हे पिङ्गलनेत्र ! हे लालग्रीव ! हे कृष्णवर्त्मन् ! हे हुताशन ! तुम हमसे दूरसे ही चले जाओ, सागरके पास बने हुए घरके समान हमें छोड दो ॥ १९ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तो जातवेदा द्रोणेनाक्लिष्टकर्मणा ।
द्रोणमाह प्रतीतात्मा मन्दपालप्रतिज्ञया ॥ २० ॥

वैशम्पायन बोले– तब प्रतीतात्मा जातवेदा अग्नि सरलकर्म करनेवाले द्रोणकी यह बात सुन प्रसन्न हुए और मन्दपालकी प्रतिज्ञाका स्मरण कर द्रोणसे बोले ॥ २० ॥

ऋषिर्द्रोणस्त्वमसि वै ब्रह्मैतद्व्याहृतं त्वया ।
ईप्सितं ते करिष्यामि न च ते विद्यते भयम् ॥ २१ ॥

हे द्रोण ! तुम ऋषि हो, तुमने जो कहा, वह वेदस्वरूप है, तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूंगा, तुम भय मत करो ॥ २१ ॥

मन्दपालेन यूयं हि मम पूर्वं निवेदिताः ।
वर्जयेः पुत्रकान्मह्यं दहन्दावमिति स्म ह ॥ २२ ॥

पहिले मन्दपालने तुम्हारे लिये मुझसे कहा था, कि "जब तुम खाण्डव वनको जलाओ, तब मेरे पुत्रोंको छोड देना ॥ २२ ॥

यच्च तद्वचनं तस्य त्वया यच्चेह भाषितम् ।
उभयं मे गरीयस्तद्ब्रूहि किं करवाणि ते ।
भृशं प्रीतोऽस्मि भद्रं ते ब्रह्मन्स्तोत्रेण ते विभो ॥ २३ ॥

हे द्रोण ! मन्दपालकी वह बात और तुम्हारी यह बात मेरे लिये बहुत अधिक है; अतः कहो, तुम्हारे लिये मैं क्या करूं ? हे ब्रह्मश्रेष्ठ ! तुम्हारी इस स्तुति पर मैं बडा प्रसन्न हुआ हूं; तुम्हारा मंगल हो ॥ २३ ॥

द्रोण उवाच

इमे मार्जारिकाः शुक्र नित्यमुद्वेजयन्ति नः ।
एतान्कुरुष्व दंष्ट्रासु हव्यवाह सबान्धवान् ॥ २४ ॥

द्रोण बोले– हे हव्यवाह तेजस्वी अग्ने ! यह सब बिल्लियां हमको नित्य सताया करती हैं, अतः तुम इन्हें बन्धुबांधवोंके साथ अपनी दाढोंके बीचमें रख लो अर्थात् जला डालो ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथा तत्कृतवान्वह्निरभ्यनुज्ञाय शार्ङ्गकान् ।
ददाह खाण्डवं चैव समिद्धो जनमेजय ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥ ७१५२ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर अग्निने शार्ङ्गोंको बताबताकर उनकी प्रार्थना पूरी की और हे जनमेजय ! समिद्ध होकर वे खाण्डव वनको जलाने लगे ॥ २५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दोसौ तेईसवां अध्याय समाप्त ॥ २२३ ॥ ७१५२ ॥

: २२४ :

वैशम्पायन उवाच

मन्दपालोऽपि कौरव्य चिन्तयानः सुतांस्तदा ।
उक्तवानप्यशीतांशुं नैव स स्म न तप्यते ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे कौरव्य ! इधर वह मन्दपाल तेज किरणोंवाले अग्निसे वैसा वचन कहने पर भी पुत्रोंके लिये सोचते हुए संतप्त नहीं हुए ऐसा नहीं अर्थात् संतप्त हुए ॥ १ ॥

स तप्यमानः पुत्रार्थे लपितामिदमब्रवीत् ।
कथं न्वशक्ताः प्लवने लपिते मम पुत्रकाः ॥ २ ॥

वह पुत्रके लिये संतप्त होकर लपितासे बोले– लपिते ! मेरे बेटे जो उडनेमें असमर्थ हैं कैसे होंगे ? ॥ २ ॥

वर्धमाने हुतवहे वाते शीघ्रं प्रवायति ।
असमर्था विमोक्षाय भविष्यन्ति ममात्मजाः ॥ ३ ॥

जब वायुके शीघ्र जलने पर अग्नि तेज होगा, तब मेरे बेटे अग्निसे बचनेमें असमर्थ होंगे ॥३॥

कथं न्वशक्ता त्राणाय माता तेषां तपस्विनी ।
भविष्यत्यसुखाविष्टा पुत्रत्राणमपश्यती ॥ ४ ॥

उनकी तपस्विनी माता उन बच्चोंको बचानेमें असमर्थ होकर क्या करती होगी ? पुत्रोंको बचानेका उपाय न देखकर शोकसे विकल होती होगी ॥ ४ ॥

कथं नु सरणेऽशक्तान्पतने च ममात्मजान् ।
संतप्यमाना अभितो वाशमानाभिधावती ॥ ५ ॥

चलने और ऊपर उडनेमें असमर्थ मेरे बच्चोंको लेकर हृदयमें दुःख पाकर कैसे बहुत रोती हुई दौड रही होगी ॥ ५ ॥

जरितारिः कथं पुत्रः सारिसृक्वः कथं च मे ।
स्तम्बमित्रः कथं द्रोणः कथं सा च तपस्विनी ॥ ६ ॥

हा ! जरितारि कैसा होगा ? सारिसृक्व कैसे प्राण बचायेगा ? स्तम्बमित्र कैसे बचेगा ? द्रोण कैसे रक्षा पायेगा ? मेरी वह तपस्विनी स्त्री किस प्रकार जी सकेगी ? ॥ ६ ॥

लालप्यमानं तमृषिं मन्दपालं तथा वने ।
लपिता प्रत्युवाचेदं सासूयमिव भारत ॥ ७ ॥

हे भारत ! उस वनमें इस प्रकार विलाप करते हुए उस मन्दपालसे लपिता द्वेषवश कहने लगी ॥ ७ ॥

न ते सुतेष्ववेक्षास्ति तानृषीनुक्तवानसि ।
तेजस्विनो वीर्यवन्तो न तेषां ज्वलनाद्भयम् ॥ ८ ॥

तुम्हें पुत्रोंके विषयमें सोचनेकी जरूरत नहीं है, क्योंकि तुमने जिन ऋषियोंकी बात कही है वे तेजस्वी और वीर्यवान् हैं, अग्निसे उनको भय नहीं है ॥ ८ ॥

तथाग्नौ ते परीत्ताश्च त्वया हि मम संनिधौ ।
प्रतिश्रुतं तथा चेति ज्वलनेन महात्मना ॥ ९ ॥

और तुमने मेरे सामने ही उन पुत्रोंकी रक्षाके लिये अग्निसे कहा था । महात्मा हुताशनने भी तथास्तु कहके उस बातको मान लिया था ॥ ९ ॥

लोकपालोऽनृतां वाचं न तु वक्ता कथंचन ।
समर्थास्ते च वक्तारो न ते तेष्वस्ति मानसम् ॥ १० ॥

वह लोकपाल अग्नि कभी झूठ बात नहीं कहेंगे । वे वक्ता समर्थ हैं अतः उनके बारेमें चिन्ता करनेकी तुम्हें कोई जरूरत नहीं है ॥ १० ॥

तामेव तु ममामित्रीं चिन्तयन्परितप्यसे ।
ध्रुवं मयि न ते स्नेहो यथा तस्यां पुराभवत् ॥ ११ ॥

तुम मेरी शत्रु जरिताहीको स्मरण कर व्याकुल हो रहे हो । पहिले जरिता पर तुम्हारा जैसा स्नेह था, अब मुझ पर वैसा नहीं है ॥ ११ ॥

न हि पक्षवता न्याय्यं निःस्नेहेन सुहृज्जने ।
पीडयमान उपद्रष्टुं शक्तेनात्मा कथंचन ॥ १२ ॥

पंख (सहाय्य) से युक्त तथा अत्यन्त प्रेम करनेवालेको चाहिए कि वह शक्तिमान् होकर आपत्तिमें पडे हुए अपने स्त्री पुत्र आदि प्रिय जनोंकी कभी उपेक्षा न करे ॥ १२ ॥

गच्छ त्वं जरितामेव यदर्थं परितप्यसे ।
चरिष्याम्यहमप्येका यथा कापुरुषे तथा ॥ १३ ॥

अतः तुम जिसके लिये शोक करते हो, उस जरिताहीके पास चले जाओ, मैं भी किसी कापुरुषके आश्रयको ग्रहण किए हुए स्त्रीके समान अकेली ही विचरूंगी ॥ १३ ॥

मन्दपाल उवाच

नाहमेवं चरे लोके यथा त्वमभिमन्यसे ।
अपत्यहेतोर्विचरे तच्च कृच्छ्रगतं मम ॥ १४ ॥

मन्दपाल बोले– तुम मुझको जैसा समझ रही हो, मैं उस भावसे व्यवहार नहीं करता । मैं केवल सन्तान उत्पन्न करनेके लिये ही ऐसे फिर रहा हूं । अब मेरी उत्पन्न हुई सन्तानें कष्टमें पडी हुई हैं ॥ १४ ॥

भूतं हित्वा भविष्येऽर्थे योऽवलम्बेत मन्दधीः ।
अवमन्येत तं लोको यथेच्छसि तथा कुरु ॥ १५ ॥

जो भूत विषयको छोड भावीकी आशा करता है, वह मूढजन लोगोंका अनादर प्राप्त करता है, अतः तुम जो चाहती हो सो करो ॥ १५ ॥

एष हि ज्वलमानोऽग्निर्लेलिहानो महीरुहान् ।
द्वेष्यं हि हृदि संतापं जनयत्यशिवं मम ॥ १६ ॥

यह प्रज्ज्वलित अग्नि वृक्षोंको चाटते हुए मेरे इस विकल हृदयमें अमंगल और दुःखको उत्पन्न कर रहा है ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्माद्देशादतिक्रान्ते ज्वलने जरिता ततः ।
जगाम पुत्रकानेव त्वरिता पुत्रगृद्धिनी ॥ १७ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर अग्निके उस देशको छोडकर आगे बढ जानेपर पुत्रोंकी इच्छा करनेवाली जरिता जल्दी ही पुत्रोंके पास पहुंची ॥ १७ ॥

सा तान्कुशलिनः सर्वान्निर्मुक्ताञ्जातवेदसः ।
रोरूयमाणा कृपणा सुतान्दृष्टवती वने ॥ १८ ॥

वनमें अग्निसे बचे हुए और वहां कुशल पर दयाके कारण रोते हुए पुत्रोंको देखा ॥१८॥

अश्रद्धेयतमं तेषां दर्शनं सा पुनः पुनः ।
एकैकशश्च तान्पुत्रान्क्रोशमानान्वपद्यत ॥ १९ ॥

जरिता अविश्वासके योग्य उनका दर्शन पाकर और उनको चिल्लाते देखकर धीरे धीरे एक एकके पास गई ॥ १९ ॥

ततोऽभ्यगच्छत्सहसा मन्दपालोऽपि भारत ।
अथ ते सर्व एवैनं नाभ्यनन्दन्त वै सुताः ॥ २० ॥

हे भारत ! इसी अवसर पर महर्षि मन्दपाल अचानक वहां जा पहुंचे, पर उनके पुत्रोंने उनको देखकर उनका अभिनन्दन नहीं किया ॥ २० ॥

लालप्यमानमेकैकं जरितां च पुनः पुनः ।
नोचुस्ते वचनं किंचित्तमृषिं साध्वसाधु वा ॥ २१ ॥

हर पुत्रसे और जरितासे बार बार प्यार करनेवाले उस ऋषिसे उन्होंने भला बुरा कुछ भी नहीं कहा ॥ २१ ॥

मन्दपाल उवाच

ज्येष्ठः सुतस्ते कतमः कतमस्तदनन्तरः ।
मध्यमः कतमपुत्रः कनिष्ठः कतमश्च ते ॥ २२ ॥

मन्दपाल बोले– कौन तुम्हारा बडा बेटा, कौन मझला, कौन तीसरा और कौन सबसे छोटा है ॥ २२ ॥

एवं ब्रुवन्तं दुःखार्तं किं मां न प्रतिभाषसे ।
कृतवानस्मि हव्याशे नैव शान्तिमितो लभे ॥ २३ ॥

इस प्रकार बोलते हुए मुझ दुःखीसे तुम क्यों नहीं बोलती हो ? मैं तुम्हें छोडकर यहांसे जा करके शांति पा नहीं सका ॥ २३ ॥

जरितोवाच

किं ते ज्येष्ठे सुते कार्यं किमनन्तरजेन वा ।
किं च ते मध्यमे कार्यं किं कनिष्ठे तपस्विनि ॥ २४ ॥

जरिता बोली– तुमको बडे बेटेसे क्या मतलब ? तुम्हें मझले बेटेसे क्या प्रयोजन तथा तुम्हें तीसरे बेटेको लेकर क्या करना है ? और तपस्वी छोटे बेटेसे भी तुम्हें क्या प्रयोजन है ? ॥ २४ ॥

यस्त्वं मां सर्वशो हीनामुत्सृज्यासि गतः पुरा।
तामेव लपितां गच्छ तरुणीं चारुहासिनीम् ॥ २५ ॥

पहिले तुमने मुझको हर बातमें निकृष्ट समझ कर मुझे छोडकर जिसके पास गये थे, अब उस मधुरहासिनी युवती लपिताहीके पास जाओ ॥ २५ ॥

मन्दपाल उवाच

न स्त्रीणां विद्यते किंचिदन्यत्र पुरुषान्तरात्।
सापत्नकमृते लोके भवितव्यं हि तत्तथा ॥ २६ ॥

मन्दपाल बोले— नारियोंके लिये सौत वा दूसरे पुरुषको छोडकर इस लोकमें अधिक शत्रु और कोई दीख नहीं पडता ॥ २६ ॥

सुव्रतापि हि कल्याणि सर्वलोकपरिश्रुता।
अरुन्धती पर्यशङ्कद्वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ २७ ॥
विशुद्धभावमत्यन्तं सदा प्रियहिते रतम्।
सप्तर्षिमध्यगं वीरमवमेने च तं मुनिम् ॥ २८ ॥

हे कल्याणि ! ऋषिश्रेष्ठ महानुभाव वसिष्ठ अति पवित्र स्वभावी और सदा पत्नीके प्रेमी और हितकारी कार्यमें लगे रहते थे। उस पर भी सब लोकोंमें प्रशंसिता सुव्रता अरुन्धतीने उन ऋषिवर वसिष्ठ पर शंका की और सप्तर्षियोंमें एक ऋषि उस मुनिका अनादर किया था ॥२७-२८॥

अपध्यानेन सा तेन धूमारुणसमप्रभा।
लक्ष्यालक्ष्या नाभिरूपा निमित्तमिव लक्ष्यते ॥ २९ ॥

वह कल्याणी अरुन्धतीके वैसी अनुचित शङ्का करनेके कारण ही वह अरुन्धती धूवें और अरुणके समान रङ्गवाली हो गई और कभी दीखती, कभी न दीखती हुई सौन्दर्यसे विहीन होकर दिखाई देती है ॥ २९ ॥

अपत्यहेतोः संप्राप्तं तथा त्वमपि मामिह।
इष्टमेवंगते हित्वा सा तथैव च वर्तसे ॥ ३० ॥

मैं केवल सन्तानहीके लिये यहां आया हूं और तुमने भी सन्तानके लिये ही मुझसे समागम किया है। अब तुम भी अपनी इच्छा पूरी हो जाने पर मुझसे अरुन्धतीके समान व्यवहार करती हो ॥ ३० ॥

नैव भार्येति विश्वासः कार्यः पुंसा कथंचन।
न हि कार्यमनुध्याति भार्या पुत्रवती सती ॥ ३१ ॥

मनुष्यको स्त्रियों पर भार्या कहकर कदापि विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि पुत्र हो जानेपर वे पतिकी सेवादि कार्य पर ध्यान नहीं देतीं ॥ ३१ ॥

सा तान्कुशलिनः सर्वान्निर्मुक्ताञ्जातवेदसः ।

रोरूयमाणा कृपणा सुतान्दृष्टवती वने ॥ १८ ॥

वनमें अग्निसे बचे हुए और वहां कुशल पर दयाके कारण रोते हुए पुत्रोंको देखा ॥१८॥

अश्रद्धेयतमं तेषां दर्शनं सा पुनः पुनः ।

एकैकशश्च तान्पुत्रान्क्रोशमानान्वपद्यत ॥ १९ ॥

जरिता अविश्वासके योग्य उनका दर्शन पाकर और उनको चिल्लाते देखकर धीरे धीरे एक एकके पास गई ॥ १९ ॥

ततोऽभ्यगच्छत्सहसा मन्दपालोऽपि भारत ।

अथ ते सर्व एवैनं नाभ्यनन्दन्त वै सुताः ॥ २० ॥

हे भारत ! इसी अवसर पर महर्षि मन्दपाल अचानक वहां जा पहुंचे, पर उनके पुत्रोंने उनको देखकर उनका अभिनन्दन नहीं किया ॥ २० ॥

लालप्यमानमेकैकं जरितां च पुनः पुनः ।

नोचुस्ते वचनं किंचित्तमृषिं साध्वसाधु वा ॥ २१ ॥

हर पुत्रसे और जरितासे बार बार प्यार करनेवाले उस ऋषिसे उन्होंने भला बुरा कुछ भी नहीं कहा ॥ २१ ॥

मन्दपाल उवाच

ज्येष्ठः सुतस्ते कतमः कतमस्तदनन्तरः ।

मध्यमः कतमपुत्रः कनिष्ठः कतमश्च ते ॥ २२ ॥

मन्दपाल बोले– कौन तुम्हारा बडा बेटा, कौन मझला, कौन तीसरा और कौन सबसे छोटा है ॥ २२ ॥

एवं ब्रुवन्तं दुःखार्तं किं मां न प्रतिभाषसे ।

कृतवानस्मि हव्याशं नैव शान्तिमितो लभे ॥ २३ ॥

इस प्रकार बोलते हुए मुझ दुःखीसे तुम क्यों नहीं बोलती हो ? मैं तुम्हें छोडकर यहांसे जा करके शांति पा नहीं सका ॥ २३ ॥

जरितोवाच

किं ते ज्येष्ठे सुते कार्यं किमनन्तरजेन वा ।

किं च ते मध्यमे कार्यं किं कनिष्ठे तपस्विनि ॥ २४ ॥

जरिता बोली– तुमको बडे बेटेसे क्या मतलब ? तुम्हें मझले बेटेसे क्या प्रयोजन तथा तुम्हें तीसरे बेटेको लेकर क्या करना है ? और तपस्वी छोटे बेटेसे भी तुम्हें क्या प्रयोजन है ? ॥ २४ ॥

यस्त्वं मां सर्वशो हीनामुत्सृज्यासि गतः पुरा ।
तामेव लपितां गच्छ तरुणीं चारुहासिनीम् ॥ २५ ॥

पहिले तुमने मुझको हर बातमें निकृष्ट समझ कर मुझे छोडकर जिसके पास गये थे, अब उस मधुरहासिनी युवती लपिताहीके पास जाओ ॥ २५ ॥

मन्दपाल उवाच

न स्त्रीणां विद्यते किंचिदन्यत्र पुरुषान्तरात् ।
सापत्नकमृते लोके भवितव्यं हि तत्तथा ॥ २६ ॥

मन्दपाल बोले— नारियोंके लिये सौत वा दूसरे पुरुषको छोडकर इस लोकमें अधिक शत्रु और कोई दीख नहीं पडता ॥ २६ ॥

सुव्रतापि हि कल्याणि सर्वलोकपरिश्रुता ।
अरुन्धती पर्यशङ्कद्वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ २७ ॥
विशुद्धभावमत्यन्तं सदा प्रियहिते रतम् ।
सप्तर्षिमध्यगं वीरमवमेने च तं मुनिम् ॥ २८ ॥

हे कल्याणि ! ऋषिश्रेष्ठ महानुभाव वसिष्ठ अति पवित्र स्वभावी और सदा पत्नीके प्रेमी और हित-कारी कार्यमें लगे रहते थे। उस पर भी सब लोकोंमें प्रशंसिता सुव्रता अरुन्धतीने उन ऋषिवर वसिष्ठ पर शंका की और सप्तर्षियोंमें एक ऋषि उस मुनिका अनादर किया था ॥ २७-२८ ॥

अपध्यानेन सा तेन धूमारुणसमप्रभा ।
लक्ष्यालक्ष्या नाभिरूपा निमित्तमिव लक्ष्यते ॥ २९ ॥

वह कल्याणी अरुन्धतीके वैसी अनुचित शङ्का करनेके कारण ही वह अरुन्धती धूवें और अरुणके समान रङ्गवाली हो गई और कभी दीखती, कभी न दीखती हुई सौन्दर्यसे विहीन होकर दिखाई देती है ॥ २९ ॥

अपत्यहेतोः संप्राप्तं तथा त्वमपि मामिह ।
इष्टमेवंगते हित्वा सा तथैव च वर्तसे ॥ ३० ॥

मैं केवल सन्तानहीके लिये यहां आया हूं और तुमने भी सन्तानके लिये ही मुझसे समागम किया है । अब तुम भी अपनी इच्छा पूरी हो जाने पर मुझसे अरुन्धतीके समान व्यवहार करती हो ॥ ३० ॥

नैव भार्येति विश्वासः कार्यः पुंसा कथंचन ।
न हि कार्यमनुध्याति भार्या पुत्रवती सती ॥ ३१ ॥

मनुष्यको स्त्रियों पर भार्या कहकर कदापि विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि पुत्र हो जानेपर वे पतिकी सेवादि कार्य पर ध्यान नहीं देतीं ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते सर्व एवैनं पुत्राः सम्यगुपासिरे ।
स च तानात्मजान्राजन्नाश्वासयितुमारभत् ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥ ७१८४ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर उनके सब पुत्र उनकी उपासना करने लगे, वह भी उन पुत्रोंको ढाढस देने लगे ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दोसौ चौवीसवां अध्याय समाप्त ॥ २२० ॥ ७१८४॥

: २२५ :

मन्दपाल उवाच

युष्माकं परिरक्षार्थं विज्ञप्तो ज्वलनो मया ।
अग्निना च तथेत्येवं पूर्वमेव प्रतिश्रुतम् ॥ १ ॥

मन्दपाल बोले– तुम्हारी रक्षा करनेके लिए अग्निसे प्रार्थना की थी; उस पर उन्होंने तथास्तु कहकर पहले ही मेरी बात मान ली थी ॥ १ ॥

अग्नेर्वचनमाज्ञाय मातुर्धर्मज्ञतां च वः ।
युष्माकं च परं वीर्यं नाहं पूर्वमिहागतः ॥ २ ॥

मैं उन अग्निकी बात, तुम्हारे माताकी धर्मनिष्ठा और तुम्हारे वीर्यको स्मरण कर पहिले यहां नहीं आया ॥ २ ॥

न संतापो हि वः कार्यः पुत्रका मरणं प्रति ।
ऋषीन्वेद हुताशोऽपि ब्रह्म तद्विदितं च वः ॥ ३ ॥

हे पुत्रो ! तुम वेदमें प्रसिद्ध ऋषि हो; अग्नि भी तुमको जानते हैं, अतः तुम्हें मरणके प्रति संताप नहीं करना चाहिए ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमाश्वास्य पुत्रान्स भार्यां चादाय भारत ।
मन्दपालस्ततो देशादन्यं देशं जगाम ह ॥ ४ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत जनमेजय ! तदनन्तर ऋषि मन्दपाल पुत्रोंको समझा बुझाकर पत्नीको साथ लेकर उस स्थानसे दूसरे स्थानको चले गये ॥ ४ ॥

भगवानपि तिग्मांशुः समिद्धं खाण्डवं वनम् ।
ददाह सह कृष्णाभ्यां जनयञ्जगतोऽभयम् ॥ ५ ॥

भगवान् अग्निने इस प्रकार प्रदीप्त होकर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे जगत्‌के अभयके निमित्त खाण्डव वनको जलाया ॥ ५ ॥

वसामेदोवहाः कुल्यास्तत्र पीत्वा च पावकः ।
अगच्छत्परमां तृप्तिं दर्शयामास चार्जुनम् ॥ ६ ॥
अग्नि उस स्थानमें मेद और वसाकी नदी पीकर कर परम परितृप्त होकर अर्जुनके सामने प्रकट हुए ॥ ६ ॥

ततोऽन्तरिक्षाद्भगवानवतीर्य सुरेश्वरः ।
मरुद्गणवृतः पार्थं माधवं चाब्रवीदिदम् ॥ ७ ॥
तदनन्तर मरुद्गणोंसे घिरे हुए भगवान् इन्द्र आकाशमण्डलसे उतरकर अर्जुन और केशवसे यह बोले ॥ ७ ॥

कृतं युवाभ्यां कर्मेदममरैरपि दुष्करम् ।
वरान्वृणीतं तुष्टोऽस्मि दुर्लभानप्यमानुषान् ॥ ८ ॥
जो कर्म देवतालोग भी सहजमें नहीं कर सकते, तुमने उसे पूरा किया है, अब मैं तुम पर प्रसन्न हूं, तुम दुर्लभ और अलौकिक भी वरोंको मांगो; ॥ ८ ॥

पार्थस्तु वरयामास शक्रादस्त्राणि सर्वशः ।
ग्रहीतुं तच्च शक्रोऽस्य तदा कालं चकार ह ॥ ९ ॥
तब पार्थने इन्द्रसे सब अस्त्र मांगे । अति द्युतिमान् देवराजने उन्हें देनेका एक काल निश्चित कर दिया ॥ ९ ॥

यदा प्रसन्नो भगवान्महादेवो भविष्यति ।
तुभ्यं तदा प्रदास्यामि पाण्डवास्त्राणि सर्वशः ॥ १० ॥
हे पाण्डव ! जब भगवान् महादेव तुम पर प्रसन्न होंगे, तब मैं तुमको सब अस्त्र दे दूंगा ॥ १० ॥

अहमेव च तं कालं वेत्स्यामि कुरुनन्दन ।
तपसा महता चापि दास्यामि तव तान्यहम् ॥ ११ ॥
हे कुरुनन्दन ! जब उन अस्त्रोंके देनेका काल आ पहुंचेगा तब मैं जान लूंगा; मैं तुम्हारी महातपस्यासे तुमको वे सब अस्त्र दूंगा ॥ ११ ॥

आग्नेयानि च सर्वाणि वायव्यानि तथैव च ।
मदीयानि च सर्वाणि ग्रहीष्यसि धनंजय ॥ १२ ॥
हे धनंजय अर्जुन ! अग्न्यस्त्र तथा सब वायव्य अस्त्र और मेरे दूसरे भी जो अस्त्र हों वे सब ले लेना ॥ १२ ॥

वासुदेवोऽपि जग्राह प्रीतिं पार्थेन शाश्वतीम् ।
ददौ च तस्मै देवेन्द्रस्तं वरं प्रीतिमांस्तदा ॥ १३ ॥
तदनन्तर वासुदेवने प्रार्थना की, कि अर्जुनसे उनका सदा प्रेम बना रहे । प्रसन्न हुए हुए देवराजने बुद्धिमान् श्रीकृष्णको वह वर दिया ॥ १३ ॥

दत्त्वा ताभ्यां वरं प्रीतः सह देवैर्मरुत्पतिः ।
हुताशनमनुज्ञाप्य जगाम त्रिदिवं पुनः ॥ १४ ॥

मरुतोंके स्वामी देवराज इस प्रकार देवोंके साथ श्रीकृष्ण और अर्जुनको वर देकर हुताशनसे अनुमति ले करके फिर देवलोकमें चले गये ॥ १४ ॥

पावकश्चापि तं दावं दग्ध्वा समृगपक्षिणम् ।
अहानि पञ्च चैकं च विरराम सुतर्पितः ॥ १५ ॥

भगवान् पावक मृग और पक्षियोंके सहित खाण्डव वनको जलाकर अति तृप्त होकर पन्द्रह दिनके बाद बुझ गये ॥ १५ ॥

जग्ध्वा मांसानि पीत्वा च मेदांसि रुधिराणि च ।
युक्तः परमया प्रीत्या तावुवाच विशां पते ॥ १६ ॥

हे प्रजाओंके स्वामी जनमेजय ! वह अग्निदेव रक्त, मेद पीकर और मांस खाकर परम प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण और अर्जुनसे बोले ॥ १६ ॥

युवाभ्यां पुरुषाग्र्याभ्यां तर्पितोऽस्मि यथासुखम् ।
अनुजानामि वां वीरौ चरतं यत्र वाञ्छितम् ॥ १७ ॥

वीर और पुरुषोंमें श्रेष्ठ तुम दोनोंने मुझको यथेच्छ तृप्त कर दिया है अब तुम्हें वर देता हूं, कि तुम्हारी गति कहीं नहीं रुकेगी, जहां चाहोगे, वहीं जा सकोगे ॥ १७ ॥

एवं तौ समनुज्ञातौ पावकेन महात्मना ।
अर्जुनो वासुदेवश्च दानवश्च मयस्तथा ॥ १८ ॥
परिक्रम्य ततः सर्वे त्रयोऽपि भरतर्षभ ।
रमणीये नदीकूले सहिताः समुपाविशन् ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां आदिपर्वणि पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥ समाप्तं खाण्डवदाहपर्व ॥ ७२०३ ॥

॥ समाप्तमादिपर्व ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! महात्मा पावकके द्वारा ऐसी आज्ञा प्राप्त कर अर्जुन, वासुदेव और मयदानव यह तीनों, हे भरतश्रेष्ठ ! एकत्र होकर कुछ काल घूम फिरकर नदीके सुन्दर तटपर जाकर बैठे ॥ १८-१९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दोसौ पचीसवां अध्याय समाप्त ॥ २२५ ॥ खाण्डवदाहपर्व समाप्त ॥ ७२०३ ॥

॥ आदिपर्व समाप्त ॥